Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Management Concept & Organisational Behaviour

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Commerce

Management Concept & Organisational Behaviour

1MCOM1

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Chhattisgarh, Bilaspur

A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MCOM1
Management Concept & Organisational Behaviour

1MCOM1
Management Concept & Organisational Behaviour

Credit- 4

Subject Expert Team

***Dr. Supriya Singh**, Dr. C.V. Raman*
University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. Niket Shukla,** Dr. C.V. Raman*
University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. S. Jabir Hussain,** Dr. C.V. Raman*
University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. Abhinav Awasthi,** Dr. C.V.*Raman
University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Sumona Bhattacharya,
Department of Commerce at Atal Bihari Vajpayee Vishwavidyalaya, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. R.P. Chaudhary,** Dr. C.V. Raman*
University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Course Editor:

Dr. Swati Jain, Associate Professor, Department of Commerce and Finance IES University, Bhopal, Madhya Pradesh

---

Unit Written By:

---

1. Dr. Vivek Bajpai (Professor, Dr. C. V. Raman University, Kota Bilaspur C.G.)

2. Dr. Abhishek Kumar Pathak (Professor, Dr. C. V. Raman University, Kota Bilaspur C.G)

3. Dr. Archana Agrawal (Associate Professor, Dr. C. V. Raman University, Kota Bilaspur C.G)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

विषय वस्तु

ब्लॉक I

इकाई -1 प्रबन्ध की अवधारणा – परिचय 1-51

इकाई -2 प्रबंध का महत्व एवं क्षेत्र 52-77

इकाई -3 प्रबन्ध की विचारधाराएँ 78-134

इकाई -4 नियोजन 135-180

ब्लॉक II

इकाई -5 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध 181-206

इकाई -6 निर्णयन : अवधारणा एवं प्रक्रिया 207-235

इकाई -7 संगठन: अवधारणा, प्रक्रिया एवं सिद्धान्त 236-270

इकाई -8 संगठन संरचना एवं चार्ट 271-308

ब्लॉक III

इकाई -9 प्रबन्ध का विस्तार 309-325

इकाई -10 अधिकार एवं भारार्पण या प्रत्यायोजन 326-363

इकाई -11 निर्देशन : अवधारणा एवं प्रकृति 364-377

इकाई -12 प्रबन्ध में संचार 378-429

ब्लॉक IV

इकाई -13	नियंत्रण : अवधारणा, उद्देश्य एवं प्रकृति	430-452
इकाई -14	प्रबन्धकीय नियन्त्रण की तकनीकें	453-469
इकाई -15	भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण	470-481
इकाई -16	संगठन का परिचय	482-512
इकाई -17	संगठन – सिद्धांत	513-565

ब्लॉक - I

इकाई -1

प्रबन्ध की अवधारणा - परिचय

(CONCEPT OF MANAGEMENT-INTRODUCTION)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्रबन्ध की अवधारणाएँ

1.4 प्रबन्ध की परिभाषाएँ

1.5 प्रबन्ध की प्रकृति या विशेषताएँ

1.6 प्रबंध-प्रक्रिया

1.7 प्रबंध-प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विशेषताएँ

1.8 प्रबंध के कार्य/प्रबंध के तत्व

1.9 सार संक्षेप

1.10 मुख्य शब्द

1.11 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

1.12 संदर्भ सूची

1.13 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान सभ्य समाज में प्रबन्ध एक सर्वव्यापक एवं सार्वभौमिक अंग बन गया है। प्रवन्ध का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानव की मानसिक एवं बौद्धिक क्रिया से है। प्रबन्ध की आवश्यकता उन सभी कार्यों में होती है जहाँ कुछ व्यक्ति मिलकर काम करते हैं। प्रवन्ध कारखाना, समिति, क्लब, सैन्य प्रतिष्ठान, शिक्षण संस्था, सरकारी एवं व्यावसायिक कार्यालयों आदि सभी स्थानों पर व्यापक एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब भी मानव किसी कार्य को करने के पहले उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित करता है प्रबन्ध एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उसके मस्तिष्क में पनपता है एवं उसका दिमाग इन उद्देश्यों/लक्ष्यों को पूरा करने के लिए एक कार्ययोजना पर विचार करने लगता है। प्रबन्ध हो वह तत्व है जो उसे अपने उद्देश्यों को पाने के लिए व्यक्तियों धन (पूँजी) तथा सामग्री (वस्तुओं) के बीच उचित सामंजस्य स्थापित करने हेतु प्रेरित करता है।

वर्तमान समय सम्पूर्ण विश्व के एकीकरण एवं सार्वभौमीकरण का चल रहा है। ऐसे में प्रबन्ध भी अपनी सोच के दायरे को सीमित नहीं रख पायेगा। प्रबन्ध को अपना विस्तार करना ही होगा वरन् इस वैश्विक दौड़ में वह पीछे रह जायेगा। अपनी परम्परागत विचारधारा को त्याग कर प्रवन्ध को अब नवीन वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक सोच को अपनाना पड़ेगा, तभी वह निर्धारित लक्ष्यों कर प्राप्त कर सकेगा। प्रबन्ध अत्यधिक शक्तिशाली तत्व है जो किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को स्वस्थ रखता है तथा उसे विकास के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ाता है। प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री जार्ज ने उचित ही कहा है कि "प्रवन्ध आर्थिक प्रगति का निर्णायक है, शिक्षित लोगों का नियोक्ता है, संसाधनों को एकत्र करने वाला है, प्रभावकारी सरकार के लिए पथ-प्रदर्शक है, हमारी राष्ट्रीय सुरक्षों की सक्ति है और हमारे समाज को परिवर्तित करने वाला है।"

इस प्रकार आज जो विकसित राष्ट्र दिखाई देते हैं उनके मूल में कुशल प्रबन्ध ही विद्यमान है। एक लम्बो सूची अब विकासशील देशों की बन गई है जिनमें भारत भी शीर्ष क्रम के आसपास ही है, जिन्हें वर्तमान समय की जीत्र माँगे

"कुशल प्रबन्ध द्वारा संसाधनों का पूर्ण विदोहन" की पूर्ति हेतु तत्पर रहना होगा अन्यथा वे दीसरी दुनिया के देश में काफी पीछे दिखाई देंगे।

प्रवन्ध का आशय (Meaning of Management) प्रबन्ध का सामान्य आशय दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति से है, लेकिन व्यापक अर्थों में प्रबन्ध एक ऐसी वैज्ञानिक कला है ओ निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न. मानवीय प्रयासों से सम्बन्ध रखता है। इस सम्बन्ध में प्रबन्ध के अन्तर्गत नियोजन, संगठन, समन्वय, निर्देशन, अभिप्रेरण, नियन्त्रण एवं नीति-निर्धारण आदि सम्मिलित किये जाते हैं। मूलतः प्रवन्ध को दो प्रकार से समझाया जा सकता है:

संकुचित अर्थ में -इसका प्रारम्भिक अर्थ मात्र अन्यों से काम कराने की कला के बारे में लिया जाता रहा है। इस सन्दर्भ में सी.एस. जार्ज के विचार उल्लेखनीय हैं कि "प्रबन्ध का आशय दूसरों के माध्यम से काम को पूरा कराना है, प्रबन्धक वह व्यक्ति है जो दूसरों के प्रयासों का निर्देशन करके उद्देश्यों की पूर्ति करता है।"

इस सीमित अर्थ में प्रबन्ध के दो मुख्य घटक उभरकर सामने आते हैं। प्रथम वह जो नेतृत्व एवं निर्देशन करता है अर्थात् प्रबन्धक वर्ग एवं दूसरा वह जो इसके निर्देशानुसार कार्य को पूर्ण करता है अर्थात् श्रमिक वर्ग। इकाई में क्या करना है, कैसे करना है तथा किसको करना है? इनका निर्धारण प्रबन्धक वर्ग करता है एवं कार्य को मूर्त रूप देकर लक्ष्य तक पहुँचाने का कार्य श्रमिक वर्ग करता है।

यह प्रबन्ध की अति सामान्य अर्थों वाली विचारधारा रही है जो वर्तमान समय में लगभग समाप्त हो गई है। आज प्रबन्ध का आशय केवल दूसरों से काम करवाने तक नहीं रह गया है बल्कि उसका कार्य प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करना होता है। आज प्रबन्ध उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए श्रम के साथ मिलकर कार्य करता है।

विस्तृत अर्थ में- इसके विस्तृत अर्थ में प्रबन्ध को कला एवं विज्ञान के रूप में लिया जाता है जो पूर्व निर्धारि लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए मानवीय प्रयासों में समन्वय स्थापित करता है। प्रसिद्ध प्रवन्धशास्त्री हर्बिसन और मायर के अनुसार प्रबन्ध तीन अर्थों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) आर्थिक संसाधन के रूप में प्रबन्य (Management as an economic resource)- विभिन्न अर्थशास्त्रियों के अनुसार भूमि, श्रम एवं पूँजी की प्रबन्ध भी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है। जैसे-जैसे औद्योगीकरण का विस्तार हो रहा है वैसे-वैसे पूँजी व श्रभ के विकल्प के रूप में प्रबन्ध की भूमिका बढ़ती जा रही है। संसाधनों के जुटाने का कार्य प्रबन्धक की कुशलता पर निर्भर होता जा रहा है।

(2) अधिकार सत्ता की प्रणाली के रूप में (As a system of authority)- प्रवन्ध विशेषज्ञों के अनुसा प्रबन्ध एक अधिकार सत्ता प्रणाली है। प्रबन्ध का प्रारम्भिक विकास सत्तावादी दर्शन (Authoritarian Philosophy, के रूप में हुआ, जबकि कुछ व्यक्ति कार्य के सभी क्रम निर्धारित करते थे, कालान्तर में यह पैतृक सत्तावादी एवं फि संवैधानिक प्रबन्ध के रूप में विकसित हुआ। इसके अन्तर्गत निश्चित एवं व्यवस्थित नीतियों व पद्धतियों का निर्धारण किया जाने लगा।

(3) वर्ग या अभिजन के रूप में (As a class or elite) समाजशास्त्रीय विचारधारा में प्रबन्ध एक वर्ग एवं हैसियत प्रणाली (status system) होता है। वर्तमान शिक्षित एवं जागरूक समाज में प्रवन्ध ने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। सामान्य मान्यता आज भी विद्यमान है कि वर्ग विशेष के परिवार में से ही प्रवन्धक बन जाते हैं चाहे वे प्रबन्ध का ज्ञान रखते हों अथवा नहीं।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि "प्रबन्ध एक सामाजिक क्रिया है जो किसी उपक्रम के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए

मानवीय तथा गैर-मानवीय संसाधनों का संगठन, समन्वय, निर्देशन तथा नियन्त्रण करता है।"

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. प्रबन्ध की अवधारणाओं और परिभाषाओं को समझ सकें।
2. प्रबन्ध की प्रकृति, विशेषताओं और प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकें।
3. प्रबन्ध प्रक्रिया के विभिन्न तत्वों और उनके महत्व को समझ सकें।
4. प्रबन्ध के कार्यों और उनकी भूमिका का विश्लेषण कर सकें।

1.3 प्रबन्ध की अवधारणाएँ (Concepts of Management)

वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार "अवधारणा एक निराकार विचार है जिसे विशिष्ट दृष्टांतों या उदाहरणों से सामान्यीकृत किया गया है।" अतः अवधारणा एक विचार, चिन्तन, मनःस्थिति या धारणा है जो किसी भी तथ्य, क्रिया वस्तु, विषय, तकनीक आदि के बारे में व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर अंकित होती है। प्रबन्ध के बारे में कई प्रकार की अवधारणाएँ व्यक्त की गई हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से किया जा रहा है:-

1. थियो हैमन की अवधारणा (Theo Haimann's Concept)- थियो हैमन ने प्रबन्ध शब्द का प्रयोग संज्ञा, प्रक्रिया एवं अनुशासन या विधा के रूप में किया है। थियो हैमन की मूल विचारधारा प्रकार्यात्मक रही है तथा प्रवन्ध करने वाले व्यक्ति इसमें सम्मिलित नहीं हैं। जो लोग प्रबन्ध के कार्यों का निष्पादन करते हैं-उन्हें प्रन्बन्धक, कार्यवाहक या प्रशासक कहते हैं। प्रबन्ध वास्तव में एक प्रक्रिया है, जो अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कई साधुनों का नियोजित प्रयोग करता है।

प्रबन्ध (Management)

वास्तव में एक प्रक्रिया है, जिसके आधारभूत अंग हैं

नियोजन (Planning)

संगठन (Organisation)

अभिप्रेरण (Motivation)

नियन्त्रण (Control)

एवं जो समुदाय के प्रयासों के श्रेष्ठतम व कुशलतम उपयोग के लिए निम्न संसाधनों का प्रयोग करता है: (माल मशीन विधि मुद्रा) (Material) (Machines) (Method) (Money) (Men)

2. हराल्ड कूण्ट्ज की अवधारणा (Harold Koontz's Concept)- प्रबन्ध के सन्दर्भ में हेरॉल्ड कूष्ट्ज का स्पष्ट विचार हाक "प्रबन्ध आंपचारिक रूप से संगठित समूह के साथ तथा उसके द्वारा काम करवाने की कला है। अतः सामान्यतः यह माना जाता है कि प्रबन्ध का कार्य अन्य लोगों से काम लेना है।" (Getting things done by others) कूण्ट्ज के इन विचारों को अधिनायकवादी या तानाशाही माना गया क्योंकि इसमें अधीनस्थों को हमेशा अपने बॉस के आदेशों का अक्षरशः निर्विरोध पालन करना है। इन आदेशों के संशोधन या अपने सुझाव वे नहीं देते। प्रबन्ध के आधुनिक दर्शन के अनुसार यह एक प्रजातांत्रिक तकनीक है जो अन्य से उनके साथ समन्वय, उन्हें अभिप्रेरित करके अपने कार्य के करने की कला है।

3. जेम्स लुण्डी की अवधारणा (James Lundy's Concept)- प्रबन्ध वही है जो प्रबन्ध करता है (Management is what management does) अर्थात् प्रबन्ध जो भी करे वही प्रबन्धकीय कार्य कहलाते हैं। जेम्स लुण्डी के मतानुसार "प्रवन्य मुख्य रूप से विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य के प्रयलों को नियोजित, अभिप्रेरित एवं नियंत्रित करने का कार्य है। अतः प्रबन्ध प्रक्रिया तीन चरणों में पूरी होती है- प्रथम नियोजन, दूसरी क्रियान्वयन एवं अन्तिम

नियन्त्रण। इन प्रक्रियाओं की पूर्णता पर ही निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हो पाती है। लुण्डी के इन विचारों को पर्याप्त सराहना मिली क्योंकि उन्होंने प्रबन्ध को एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का स्वरूप प्रदान किया था।

4. लॉरेन्स एप्पले की अवधारणा (Lawrence Appley's Concept)- प्रबन्धकीय विचारधाराओं में लॉरेन्स एप्पले ने अपनी नवीनतम विचारधारा प्रतिपादित की है। उन्होंने प्रबन्ध की पूर्ववर्ती अवधारणाओं को पूर्णतः नवीन स्वरूप प्रदान किया है। उनके अनुसार, "प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है, न कि वस्तुओं का निर्देशन......... कर्मचारी प्रशासन की प्रनन्ध है।" इस विचार ने सबका ध्यान प्रबन्ध के मानवीयकरण की ओर आकर्षित किया है। यह मानव तत्व को प्रबन्ध प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु मानती है। इस विचारधारा को पूर्ण रूप से समझने के लिए निम्न बिन्दुओं पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है

(i) प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है (Management is the development of people) श्रम के प्रति पदार्थवादी दृष्टिकोण को नकारने व मानवीय दृष्टिकोण को प्राथमिकता देने के लिए प्रो. एप्पले ने प्रवन्ध को 'व्यक्तियों का विकास' के रूप में प्रस्तुत करने का विचार रखा। यदि इकाई में कार्यरत कर्मचारियों का विकास नहीं किया जायेगा तो पर्याप्त लाभार्जन, ग्राहक सन्तुष्टि तथा दीर्घकालीन विकास व विस्तार के लक्ष्य न्यूनतम लागत पर प्राप्त नहीं किये जा सकते। अतः व्यक्ति ही प्रबन्ध का केन्द्र विन्दु है। व्यक्ति ही संगठनात्मक विकास का भार्ग प्रशस्त करता है एवं उसमें ही विकास की असीमित सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं। व्यक्तियों के विकास पर ही कार्य, संस्कृति एवं कार्य के अनुकूल वातावरण का निर्माण निर्भर करता है। योग्य एवं प्रतिभावान व्यक्ति ही परिवार, समाज एवं संस्था की रीढ़ होते हैं।

(ii) न कि वस्तुओं का निर्देशन (Not the direction of things)- एप्पले ने प्रबन्ध को वस्तुओं का निर्देशन कदापि नहीं माना है। उन्होंने स्वीकारा व समझाया है कि व्यक्ति सजीव घटक है एवं वस्तुएँ निर्जीव घटक, अतः सजीव

घटक ही निर्जीव घटकों का प्रयोग करता है। भौतिक साधन मानव के लिए होते हैं, मानव इन साधनों के लिए नहीं। यदि प्रबन्धक इस सामान्य तथ्य को स्वीकार कर लें और मानव तत्व पर पर्याप्त ध्यान दें तो प्रबन्ध की अनेक समस्याएँ स्वतः हल हो जाएँगी। विज्ञान कितनी भी प्रगति कर ले, किन्तु जब तक व्यक्तियों की योग्यताओं का विकास नहीं किया जाता, तब तक वैज्ञानिक प्रगति सामाजिक कल्याण को उन्नत नहीं कर सकती ।

मानवीय विकास में उद्यम का विकास भी छिपा रहता है। इसी तथ्य के आधार पर अमेरिकन कॉरपोरेशन के अध्यक्ष ने अपने कर्तव्यों को बताते हुए कहा था कि "हम मोटरें, हवाई जहाज, रेलें, फ्रिज, टी.वी. या जूते के फीते नहीं बनाते, हम बनाते हैं मनुष्य और मनुष्य इन वस्तुओं का निर्माण करते हैं।" अतः स्पष्ट है कि "प्रवन्ध मनुष्यों का विकास है न कि वस्तुओं का निर्देशन।"

5. हरर्विसन व मेयर्स की अवधारणा (Harbison and Mayer's Concept)- इनके अनुसार अन्य उत्पादन के साधनों की भाँति प्रबन्ध भी एक आर्थिक साधन है (Management is an economic resource) । भूमि, मशीन, कच्चा माल व पूँजी भौतिक संसाधन हैं जबकि श्रम एवं साहस मानवीय संसाधन। अतः प्रबन्ध भी इनकी तरह एक मानवीय साधन है। ये सभी अपनी जगह महत्व रखते हैं किन्तु 'प्रवन्ध' रूपी आर्थिक साधन अन्य सभी साधनों का एकत्रीकरण, समन्वय व संगठन करता है दथा इनकी विभिन्न क्रियाओं का निर्देशन करके निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करता है।

अतः स्पष्ट है कि प्रबन्ध नवीन विचारों का सृजन करना है। वर्तमान आधुनिक युग में तकनीकी विकास व बाजार की प्रतिस्पर्धा के कारण नये विचारों का सूजन महत्वपूर्ण हो गया है। प्रवन्ध में मानव तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि भौतिक साधनों का अनुकूलतम उपयोग कर्मचारियों की योग्यता तथा निष्ठा पर निर्भर करता है और मानवीय कार्यक्षमता में वृद्धि करना प्रबन्ध का मूल कार्य है।

6. प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Management)- प्रबन्ध के सन्दर्भ में कां अवधारणाएँ एवं विचारधाराएँ विकसित हुईं तथा इनमें समय-समय पर कई संशोधन व विकास भी हुए। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान आधुनिक समय तक प्रबन्ध के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। अनेक आधुनिक विचारों के कारण। आज के प्रबन्ध को 'आधुनिक प्रबन्ध' की संज्ञा दी जाती है। प्रबन्य की आधुनिक अवधारणाएँ निम्न है:

1. अन्य लोगों द्वारा तथा उनके साथ मिलकर कार्य करने की अवधारणा (Getting things done through and with other's Concept) प्रबन्ध की प्राचीन अवधारणा के अनुसार प्रबन्ध का अर्थ अन्य लोगों से कार्य लेन है जबकि आधुनिक विचार में प्रबन्ध का आशय अन्य लोगों के साथ मिलकर स्वयं भी कार्य करना होता है। वर्तमान में किसी संस्था को सफलता प्राप्त करनी है तो उसके प्रबन्धकों को भी अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करना होगा।

2. वैज्ञानिक अवधारणा (Scientific Concept)- टेलर एवं थियो हैमन कुछ अन्य लोगों के मत में वैज्ञानिक अवधारणा आधुनिक प्रवन्ध की आधारशिला है। इस धारणा में प्रबन्ध एक ऐसा विज्ञान है जो नियोजन, संगठन, समन्वय संचालन, अभिकरण तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध अवधारणा की एक आधारभूत मान्यता है कि "प्रत्येक कार्य को करने की एक सर्वोत्तम विधि । है।" प्रबन्ध से आशय कार्य करने की सर्वोत्तम विधि की खोज करना एवं न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्तादन को सम्भव बनाना है। इस अवधारणा के जन्मदाता टेलर के शब्दों में, "प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप क्या करना चाहते हैं, तत्पश्चात् यह देखना है कि आप इसे सर्वोत्तम एवं मितव्ययितापूर्वक करते हैं।"

3. कार्यात्मक अवधारणा (Functional Concept)- यह अवधारणा प्रबंध को एक प्रक्रिया के रूप में मानती है। प्रबन्ध वास्तव में एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से नीतियों का क्रियान्वयन, नियोजन एवं पर्यवेक्षण किया जाता है। प्रबन्ध का कार्य मुख्यतः समस्त संसाधनों में आपसी सामंजस्य स्थापित करके उनसे निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करना है।

4. नेतृत्वरूपी अवधारणा (Leadership Concept)- इस अवधारणा के अनुसार प्रबन्ध का आशय ऐसी विचार शक्ति से है जो संगठन के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नेतृत्व द्वारा सम्पूर्ण संगठन में प्रयुक्त की बाती है। वास्तव में किसी भी संस्था के लिए एक कुशल नेतृत्व की बहुत आवश्यकता होती है, क्योंकि कुशल नेतृत्व द्वास हो उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

5. सार्वभौमिकता सम्बन्धी अवधारणा (Universality Concept)- सार्वभौमिकता सम्बन्धी अवधारणा के मुख्य समर्थक हेनरी फेयोल थे। उनके अनुसार प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है जो प्रत्येक संस्था में चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक या व्यावसायिक हो समान रूप से सम्पन्न की जाती है।

6. पेशेवर अवधारणा (Professional Concept)- इसके अनुसार आधुनिक प्रवन्ध को एक पेशा मानते हैं। अमेरिकन प्रबन्ध संगठन के अनुसार "प्रबन्ध एक पेशा है और उसी रूप में आज इसका विकास हो रहा है।" अब हमारे देश में पूँजीपति प्रबंधकों का स्थान पेशेवर प्रवन्धकों ने लेना आरम्भ कर दिया है।

7. सामूहिक प्रयास व सहभागिता अवधारणा (Group Effort Concept)- इस अवधारणा के अनुसार मानव एकाकी रूप में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता निर्धारित लक्ष्यों हेतु सामूहिक प्रयासों को व्यवस्थित करके उनकी सहभागिता द्वारा सामूहिक रूप से ही कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

8. अधिकार सत्तारूपी अवधारणा (Authority Concept)- कुछ विद्वानों ने प्रवन्ध को अधिकार सत्ता की प्रणाली बताया है। यह प्रणाली निर्णय लेने और

उसे क्रियान्वित करने की अधिकार सत्ता से बनी होती है। इस दृष्टि से प्रबन्ध निर्णयन एवं अधिकार सत्ता की प्रविधि है।

9. औद्योगिक समाज में आर्थिक अंग सम्बन्धी अवधारणा (Economic Factor in Industrial Society Concept)- प्रो. ड्रकर के अनुसार प्रबन्ध औद्योगिक समाज का महत्वपूर्ण आर्थिक अंग है। इसमें उत्पादन के अन्य साधनों की तरह एक आर्थिक साधन के लक्षण भी हैं। वर्तमान में किसी फर्म की उत्पादकता व लाभदायकता मुख्य रूप से प्रबन्ध द्वारा ही निर्धारित की जाती है।

1.4 प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Management)

प्रबन्ध एक ऐसा विस्तृत एवं विशाल विचार है जिसके बारे में जितने भी विद्वानों से पूछा जावे, वे उसका एक अलग ही अर्थ बतायेंगे। यह इतनी जटिल प्रक्रिया है कि इसे एक सर्वसम्मत शब्दावली या अर्थ देना लगभग नामुमकिन सा है। कई विद्वानों ने प्रबन्धशास्त्र का गहन अध्ययन किया है एवं 'प्रबंध' (Management) को कई दृष्टिकोणों से परिभाषित भी किया है। इनके पृथक-पृथक दृष्टिकोणों से प्रबन्ध को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है.

(अ) उत्पादन-प्रधान परिभाषाएँ (Production-oriented Definitions)

इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना है। इस दृष्टिकोण के अनुसार न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना प्रबन्ध का मूल उद्देश्य होता है। इस दृष्टि को प्रवर्तक वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक डब्ल्यूएफ. टेलर रहे हैं। उनके साथ कुछ और विद्वानों ने भी इस बारे में अध्ययन किया है जिनके शब्दों में प्रबन्ध को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है-

(1) विन्सलो टेलर के अनुसार, "प्रबन्ध यह जानने कि आप क्या करना चाहते हैं और तत्पश्चात् यह देखने कि वे इसे सर्वोत्तम तथा मितव्ययी विधि से करते हैं, की कला है।"

(2) स्न्यूड़क के अनुसार, "प्रबन्ध से आशय किसी संस्था के मानवीय और भौतिक संसाधनों के प्रभावपूर्ण उपयोग से है।"

(3) जान.एफ. मी के अनुसार, "प्रबन्ध न्यूनतम प्रयल द्वारा अधिकतम परिणाम प्राप्त करने की कला है ताकि सेवानियोजक और कर्मचारी दोनों के लिए अधिकतम समृद्धि एवं खुशहाली प्राप्त की जा सके और जनसाधारण को सर्वश्रेष्ठ सेवा प्रदान की जा सके।"

इस प्रकार उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ प्रबन्ध के केवल एक पक्ष उत्पादन को प्रमुखता देती हैं एवं अन्य कार्य, प्रक्रियाएँ आदि इनमें गौण हो जाती है अतः इनके अतिरिक्त भी कुछ परिभाषाओं का विश्लेषण करना, निर्वचन करना तथा प्रबन्ध के बारे में श्रेष्ठतम राय करना अनिवार्य हो गया है।

(ब) कार्यात्मक या प्रक्रियात्मक परिभाषाएँ

(Functional or Process-oriented Definitions)

सामान्यतया प्रबन्ध को एक कार्यात्मक एवं निरन्तर कार्य करने वाला कहा जाता है। प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण यह बतलाता है कि प्रबन्धक किस तरह प्रवन्धकीय कार्यों को सम्पादित करते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रबन्ध की प्रक्रिया और प्रबन्ध के कार्य क्या है, इस पर यह विचारधारा बल देती है। इन विचारों को केन्द्रित करते हुए निम्न विद्वानों ने अपनी परिभाषाएँ दी हैं

हेनरी फेयोल के अनुसार, "प्रबन्ध करने से आशय पूर्वानुमान लगाने एवं योजना बनाने, संगठित करने,निर्देश देने, समन्वय करने तथा नियन्त्रण करने से है।"

(2) पीटर एफ. ड्रुकर के अनुसार, "प्रबंध औद्योगिक समाज का आर्थिक अंग है। वांछित परिणामों को प्राप्त करने हेतु कार्य करना ही प्रबन्ध है।"

ड्रकर की परिभाषा निम्न बातें स्पष्ट करती है:-

(i) 'प्रबन्ध' औद्योगिक सभ्यता एवं संस्कृति का उत्पाद है।

(ii) 'प्रबन्ध' काफी आधुनिक है अर्थात् औद्योगीकरण के बढ़ते हुये चरणों ने प्रबन्ध को जन्म दिया है और वर्तमान स्वरूप तक पहुँचाया है। इसीलिये ड्ङ्कर ने प्रबन्ध को औद्योगिक समाज का आर्थिक अंग कहा है।

(iii) 'प्रबंध' वांछित परिणामों को प्राप्त करने का कार्य है।

(iv) 'प्रबन्ध' वांछित परिणामों को प्राप्त करने के लिए 'व्यवसाय का प्रबन्ध', 'प्रबन्धकों का प्रबन्ध' तथा 'कर्मचारियों का प्रबन्ध' करता है।

(3) जोसेफ एल. वैसी के अनुसार "प्रबन्ध यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक सहकारी समूह सामान्य लक्ष्यों ४ ओर क्रियाओं को निर्देशित करता है।"

(टिप्पणी - पैशी ने प्रबन्ध को मानभीय क्रियाओं के निर्देशन की प्रक्रिया कहा है। उनके अनुशा प्रबन्ध का एक 'सहकारी समूह कार्य' है, जो अपने सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रियाओं को निर्देशित कार गौ ॥

(4) बेच के अनुसार, "प्रयन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक संस्था की क्रियाओं के प्रभार्व नियोजन एवं

बेच की परिभाषा निम्न तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करती है

(i) प्रबन्ध का अर्थ वस्तुओं, मशीनों या यान्त्रिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में नहीं समझा जा सकता। प्रवन्ध को केवल उन व्यकियों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है जो कि संसाधनों का उपयोग करने हेतु कार्य पर लगावे गरे है।

(ii) प्रबन्ध का सार तत्व कभी बदलता नहीं है और उसका दामित्व तो संस्था की क्रियाओं का प्रपायी नियोजन नियमन करना ही रहा है। एवं

(iii) प्रबन्ध समाजोन्मुखी प्रक्रिया है एवं प्रबन्ध सामाजिक संस्थाओं के लक्ष्यों की पूर्ति का एक क्रियात्मक उपकरण है।

(5) पीटरसन एफ. एलाऊमेन के अनुसार, "प्रबन्ध एक तकनीक है जिसके द्वारा एक विशिष्ट मानव-समूह के एवं लक्ष्यों का निर्धारण, स्पष्टीकरण और प्राप्ति की जाती है।"

इस परिभाषा से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं-

(i) प्रबन्ध एक तकनीक है अर्थात् प्रक्रिया है जो उद्देश्य-निर्धारण, उद्देश्य-स्पष्टीकरण तथा उद्देश्य-प्राप्ति हे सम्बन्ध रखती है।

(ii) उद्देश्य-निर्धारण 'विधायी कार्य' (Legislative function), उद्देश्य स्पष्टीकरण 'न्यायिक कार्य' (Judiciary function) तथा उद्देश्य-प्राप्ति 'कार्यपालिका कार्य' (Executive function) जैसा है।

(स) मानव-प्रधान परिभाषाएँ (People-oriented Definitions)

निःसंदेह प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य कार्य करना एवं उत्पादन करके उसे आम आदमी, समाज एवं राष्ट्र को उपलब्ध कराना है। उत्पादन के चार साधन भूमि, श्रम, पूँजी एवं संगठन मात्र साधन हैं जबकि पाँचवाँ साधन मानव सदैव से एक 'साध्य' रहा है अतः क्रियात्मक एवं उत्पादन अभिमुखी परिभाषाएँ परिपूर्ण तब तक नहीं हो सकतीं जब तक कि उनमें 'मानव' (People) को सम्मिलित नहीं कर लिया जाए। अतः हम यहाँ उन परिभाषाओं की व्याख्या तथा उल्लेख करेंगे जिनका केन्द्रबिन्दु मानव रहा है। ऐसी कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं:

(1) हेरोल्ड कून्ट्ज कार्य करने के अनुसार, "प्रबन्ध औपचारिक रूप से संगठित समूह से कार्य कराने और उसके साथ कार्य करने की कला है।"

कून्ट्ज ने प्रबन्ध को न केवल कार्य करने की प्रक्रिया तक बल्कि जिनके साथ कार्य करना है उन्हें भी प्रबन्ध का महत्वपूर्ण घटक माना है। उनके मतानुसार प्रबन्ध कार्य करने के वातावरण को निर्मित करने और बनाये रखने को कला है। कार्य वातावरण का निर्माण एवं अनुरक्षण कर्मचारी-विकास को पूर्व-आवश्यकता रखता है। सहभागी एवं प्रजातांत्रिक प्रबंध व्यवस्थाओं की आवश्यकता प्रबन्ध के अर्थ एवं स्वभाव में ही अन्तर्निहित है।

(2) स्टेनले वेन्स के अनुसार, "प्रबन्ध पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के स्पष्ट उद्देश्यों के लिए निर्णय लेने और मानवीय क्रियाओं पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया है।"

वेन्स की परिभाषा में प्रबन्ध के बारे में निम्न बातें स्पष्ट होती हैं:-

(i) 'प्रबन्ध' निर्णय लेने और नियन्त्रण करने की प्रक्रिया है।

(ii) नियन्त्रण का पहलू तय करने की मात्रा, दमन की भावना तथा शक्ति का संकेत देता है।

(ii) संस्था अपने लक्ष्य उचित निर्णय लेकर और मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण करके ही प्राप्त कर सकती है।

(3) लारेन्स ए, एप्पले के अनुसार, "प्रबंध व्यक्तियों का विकास है, न कि वस्तुओं का निर्देशन.... कर्मचारियों का प्रशासन ही प्रबन्ध है।"

अमेरिकन विद्वान लारेन्स एप्पले की यह परिभाषा प्रबन्ध में मानवीय तत्व को केन्द्र बिन्दु मानकर चलती है।इसमें यह माना गया है कि यदि उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों का विकास किया जाये तो उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति आसानी से हो सकती है। यद्यपि व्यावसायिक उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मानवीय एवं भौतिक दोनों ही प्रकार के साधनों का प्रयोग होता है किन्तु अगर कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर योग्य बनाया जाये और उनको अधिकाधिक सुविधाएँ देकर स्वतः प्रेरणा (Self motivation) की भावना विकसित की जाये तो वे भौतिक साधनों का उपयोग अधिक कुशलता एवं मितव्ययितापूर्वक कर सकेंगे। यह परिभाषा सेविवर्गीय प्रशासन पर ही प्रबन्ध का ध्यान केन्द्रित करके मानवीय एवं सामाजिक पहलू का समावेश तो करती है, परन्तु प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों की अवहेलना करती है।

नोट : एप्पले के विचारों का विस्तृत विश्लेषण इसके पूर्व 'अवधारणा' में किया जा चुका है।

(द) निर्णयन-प्रधान परिभाषाएँ (Decision making-oriented Definitions)

मानव को प्रबन्ध की परिभाषाओं का अभिन्न अंग माना जाता है अतः इस मानव ही के द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों पर सम्पूर्ण इकाई या उद्यम का दारोमदार होता है। अतः 'निर्णयन' के बारे में किये जाने वाले अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर प्रबन्ध को परिभाषित करने वाले विद्वानों के विचार जान लेना यहाँ अत्यंत आवश्यक है। प्रवन्ध को निर्णयन के साथ जोड़ने वाली परिभाषाएँ निम्नलिखित है-

(1) क्लॉग के अनुसार, "प्रबंध निर्णय लेने और नेतृत्व करने की कला और विज्ञान है।"

(2) रोस मूरे के अनुसार "प्रबन्ध का आशय निर्णय लेने से है।"

[टिप्पणी: रोस मूरे ने उक्त अति लघु परिभाषा दी है लेकिन इसमें प्रबन्ध के शीर्ष कार्य 'निर्णयन' को ही सर्वोपरि माना है। उनके अनुसार प्रबन्धक जो भी कार्य करते हैं वे निर्णय से प्रभावित होते हैं। प्रवन्ध की सम्पूर्ण प्रक्रिया में निर्णयन का कार्य अन्तर्निहित होता हैं।]

(3) हरबर्ट ए, साइमन के अनुसार, "निर्णयन न केवल प्रबन्ध का महत्वपूर्ण भाग है अपितु यह प्रवन्ध का पर्यायवाची भी है।"

(इ) नेतृत्व-प्रधान परिभाषाएँ (Leadership-oriented Definitions)

प्रबन्ध को सभी साधनों में समन्वय करने वाला तथा इनके कुशल नेतृत्व करने वाला व्यक्ति माना जाता है। नेतृत्व के सन्दर्भ में यह कथन उल्लेखनीय है कि "नेता जन्म नहीं लेते बल्कि बनाये जाते हैं।" प्रबन्ध को नेतृत्वकारी शक्ति भी कहा गया है जो संस्था में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों को नेतृत्व देना है। इस विचार का समर्थन करने वाली कुछ परिभाषाएँ निम्न है-

(1) आर.सी. डेविस के अनुसार, "प्रबन्ध कहीं पर भी कार्यकारी नेतृत्व का कार्य है, यह संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इसकी क्रियाओं का नियोजन, संगठन तथा नियंत्रण करने का कार्य है।"

(2) विलियन एवं न्यूमैन के अनुसार, "किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति समूह के प्रयत्नों का मार्गदर्शन, नेतृत्व एवं नियंत्रण ही प्रबन्ध कहलाता है।"

(फ) पर्यावरण-प्रधान परिभाषा (Environment-oriented Definition)

चूँकि प्रबन्ध मानवीय क्रियाओं का नेतृत्व करता है एवं उत्पादन करके मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है अतः प्रबन्ध का सामाजिक उत्तरदायित्व का पक्ष सर्वोपरि होता है। पर्यावरण को प्रदूषित किये बिना उत्पादन

की पूर्ति कर देना प्रबन्ध के विभिन्न लक्ष्यों में से एक लक्ष्य माना जाता है। पर्यावरण के सम्बन्ध में कूण्ट्ज एवं व्हीरिच के विचार महत्वपूर्ण हैं जो निम्न हैं

कूष्ट्ज एवं व्हीरिच के अनुसार, "प्रबन्ध पर्यावरण (वातावरण) के निर्माण एवं अनुरक्षण की प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति समूहों में कार्य करते हुए चुने हुए लक्ष्यों को दक्षतापूर्वक प्राप्त करते हैं।"

निष्कर्ष (Conclusion)- प्रवन्ध की छः विभिन्न दृष्टिकोण से की गई परिभाषाएँ हमने अब तक पढ़ीं समझी तथा उनके बारे में स्वविवेक से टिप्पणी भी की है। इन परिभाषाओं में किसी में दो मुख्य तत्व सम्मिलित हैं तो किसी में एक, लेकिन कोई भी परिभाषा प्रबन्ध के चहुँमुखी व्यक्तित्व को पूर्णतया उकेरने में सक्षम नहीं कही जा सकती है। इसलिए यह आति आवश्यक हो जाता है कि प्रबन्ध की इन सभी परिभाषाओं को समन्वित करते हुए एक श्रेष्ठतम परिभाषा दी जावे। यह निष्कर्षात्मक परिभाषा निम्न प्रकार से की जा सकती है-

"प्रबंध किसी भी प्रकार की वस्तु वा सेवा के उत्पादन करने की गतिशील प्रक्रिया है जो किसी भी संस्था के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उसमें कार्य करने वाले लोगों के सामूहिक प्रयत्नों का नियोजन, संगठन, समन्वय, निर्देशन उत्प्रेरण, निर्णयन एवं नियन्त्रण करती है। यह उद्यम में

मानवीय साधनों का विकास करने तथा अनुकूलतम वातावरण तैयार करने की कला है, ताकि कार्य करने वाले व्यक्तियों की सन्तुष्टि के साथ न्यूनतम त्नागत पर निर्धारित कार्य को पूर्ण करके सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके।

1.5 प्रबन्ध की प्रकृति या विशेषताएँ (Nature or Characteristics of Management)

प्रबन्ध एक अत्यन्त जटिलता लिये हुए कार्यों का सम्मिश्रण है, जैसा कि उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण एवं निर्णयन से स्पष्ट होता है। इनके आधार पर कुछ बिन्दु महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली मालूम होते हैं जो प्रबन्ध की प्रकृति, लक्षण या विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं। ये बिन्दु निम्न हैं

(1) पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति (Achievement of Pre-determined Goals)- प्रबन्ध को ऐसी प्रक्रिया माना गया है जो पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संस्था के साधनों का निर्देशन एवं उपयोग करती है। वस्तुतः उद्देश्यों के अभाव में मानवीय प्रयासों के निर्देशन, नेतृत्व, अभिप्रेरणा, नियोजन, संगठन एवं नियन्त्रण की कल्पना तक नहीं की जा सकती। हेन्स एवं मेसी ने भी लिखा है कि "बिना उद्देश्यों के प्रबन्ध यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा।" इस लक्षण ने आज 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' (Management by Objectives) एवं 'उद्देश्यों व परिणामों द्वारा प्रबन्ध' (Management by Objectives and Results) जैसी समुन्नत 'प्रबन्ध तकनीकों' के विकास में सहयोग किया है। यही कारण है कि थियो हैमन ने तो प्रभावी प्रबन्ध को 'उद्देश्यों द्वारा प्रबंध' की संज्ञा दे डाली है।

(2) सामूहिक प्रयासों की व्यवस्था (Arrangement of Group Efforts) प्रबन्ध को सामूहिक प्रयासों की व्यवस्था कहा गया है। यह व्यक्ति विशेष के प्रयासों की ओर संकेत नहीं करता अपितु किसी समूह के प्रयासों के नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण की ओर संकेत करता है। यही कारण है कि कूण्ट्ज एवं

ओ'डोनेल ने अपनी परिभाषा में 'औपचारिक रूप से संगठित दलों', चार्ल्स रेनाल्ड ने 'समुदाय का अधिकरण', मेसी ने 'सहकारी समूह' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। प्रबन्ध को सामूहिक प्रयासों की व्यवस्था इसलिए कहा गया है क्योंकि किसी मानव-समूह के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति एक व्यक्ति की तुलना में सामूहिक रूप से अधिक भली प्रकार की जानी सम्भव होती। है।

(3) प्रबन्ध एक जन्मजात या अर्जित प्रतिभा है (Management is an Acquired or Inborn Ability)- इस विचारधारा के अनुसार कुछ व्यक्ति जन्म से ही इतने अधिक योग्य, कुशल एवं दूरदर्शी होते हैं कि वे सरलता से नेतृत्व एवं संगठन करने का कार्य सफलतापूर्वक कर लेते हैं। वे इन गुणों एवं विशेषताओं को विरासत में लेकर पैदा होते हैं। अमेरिका में हेनरी फोर्ड तथा भारत के जमशेदजी टाटा, घनश्यामदास बिड़ला आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आधुनिक युग में जबकि स्वामित्व एवं प्रबन्ध दोनों अलग-अलग देखे जा सकते हैं, उपर्युक्त कथन कि प्रबन्ध एक जन्मजात प्रतिभा है, को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता। आज प्रबन्धकों का स्थान प्रबन्धकीय शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ग्रहण कर रहे हैं जो देश-विदेश में प्रबन्धकीय शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करके व्यावसायिक संस्थाओं को बड़ी कुशलता के साथ चला रहे हैं। अतः अब यह कहा जा सकता है कि "प्रवन्ध एक जन्मजात प्रतिभा के साथ-साथ अर्जित प्रतिभा भी है।"

प्रबंध को सार्वभौमिक क्रिया- प्रबंध सिद्धान्त केवल व्यवसाय में ही नहीं, बल्कि सभी संयुक्त मानवीय गतिविधियों में उपयोगी होते हैं। परिवार, क्लब, खेलदल, धार्मिक संस्था, श्रम संघ, स्कूल, नगर परिषद्, सरकार, संयुक्त राष्ट्र संघ सभी पर प्रबंध के सामान्य तथा आधारभूत सिद्धान्त लागू होते हैं, क्योंकि उनके सफल संचालन के लिए नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण, समन्वय और नियन्त्रण करने के नियम, तकनीकें, प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि चाहिए।

प्रत्येक उद्यम में अनिवार्य रूप से प्रबंध की आवश्यकता होती है इसलिये हम प्रबंध को सार्वभौमिक क्रिया कहते हैं। संगठन की प्रकृति व प्रबंधक का स्तर चाहे कुछ भी हो, उसके कार्य लगभग समान ही होते हैं। किसी भी प्रकृति, आकार या स्थान पर प्रबंध के मूलभूत सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जा सकता है। प्रबंध की सार्वभौमिकता इस बात में भी निहित है कि प्रबंधकीय योग्यता का स्थानांतरण, प्रशिक्षण तथा विकास किया जा सकता है। प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्रों मैगीन्सन एवं मेक्लन ने भी प्रबन्ध की सार्वभौमिकता को स्वीकारते हुए बतलाया है कि "प्रबन्ध के सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता विश्व के कुछ राष्ट्रों एवं संस्थाओं तक ही सीमित नहीं है।"

(5) प्रबन्ध एक पेशे के रूप में (Management as a Profession)- लुइस ऐलन ने पेशे की परिभाषा

इस प्रकार की है- "एक ऐसा कार्य जिसको सर्व सामान्य शब्दावली तथा वर्गीकृत ज्ञान के द्वारा एवं माध्यम से किया जाये और जिसमें एक मान्य संस्था द्वारा निर्धारित आचार संहिता तथा आचरण के मानकों का पालन किया जाये।" चिकित्सा विधि व लेखा आदि प्रतिष्ठित पेशों की विशेषताओं की तुलना हम यदि प्रबंध के गुणधर्मों से करें तो जान सकते हैं कि प्रबंध एक पेशा है या नहीं। पेशे के रूप में प्रबंध के अमलिखित तत्व महत्वपूर्ण हैं-

(i) सुव्यवस्थित ज्ञान : प्रत्येक पेशे में संगठित ज्ञान का एक स्पष्ट क्षेत्र होता है। प्रबंध के क्षेत्र में भी प्रबंधकीय कार्यों से संबंधित ज्ञान बहुत विकसित हो चुका है। प्रबंध की तकनीक अर्थशास्त्र व गणित जैसे अन्य विषयों से निकली है। इससे प्रबंधकों को अपना कार्य करने में सहायता मिलती है। प्रबंध के सिद्धान्तों से ही सभी प्रबंधकों को कुशल एवं सही निर्णय लेने का आधार प्राप्त होता है। अगर प्रबंधकों को आज के इस परिवर्तनशील संगठनात्मक वातावरण में सफलता प्राप्त करनी है तो उनको निरंतर ज्ञान प्राप्ति की इच्छा

जागृत करनी चाहिए और उसके लिये उन्हें सदैव प्रयोगात्मक प्रवृत्ति अपनानी चाहिए।

(ii) ज्ञान प्राप्ति की औपचारिक विधि आजकल प्रबंध से भी अन्य पेशों की तरह औपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण ज्ञान प्राप्ति के महत्वपूर्ण साधन हैं। मात्र किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अनुभव प्रदत्त ज्ञान या अन्तः ज्ञान ही प्रबंध के क्षेत्र में पर्याप्त नहीं है वरन् औपचारिक शिक्षण तथा गहन प्रशिक्षण से ही प्रबंध में प्रवीणता प्राप्त की जा सकती है।

(iii) प्रतिष्ठा के आधार पर निष्पादन आधुनिक संगठनों में प्रबंधक की प्रतिष्ठा उसके पारिवारिक या राजनैतिक संबंधों पर निर्भर नहीं करती वरन् उसकी कार्यशीलता व सफलता के आधार पर मापी जाती है। इस प्रकार प्रबंध का दर्शन भी अन्य पेशों की तरह सफलता के मापदंड पर आधारित है।

(iv) आचार संहिता: किसी भी पेशे में उसके सदस्यों की विश्वसनीयता बनाये रखने के लिए किसी मान्य संस्था द्वारा निर्धारित आचार संहिता का पालन करना आवश्यक है। प्रबंध के पेशे में भी कुछ संस्थायें बनी हैं परन्तु अभी तक कोई सर्वमान्य आचार संहिता नहीं बन पायी है।

(v) समर्पण एवं प्रतिबद्धता सच्चे पेशेवर अपने मुवक्किलों के हितों की रक्षा समर्पण एवं प्रतिबद्धता से करते हैं। उनकी सफलता आर्थिक प्रतिफल पर निर्भर नहीं करती। प्रबंधक भी केवल अपने संगठन के हितों का पालन नहीं करते वरन् अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति भी सचेत रहते हैं। समाज के संपदा उपार्जन के सभी संसाधन प्रबंधकों के अधीन हैं, इसलिए प्रबंधकों से उनके सर्व प्रभावी उपयोग की अपेक्षा की जाती है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रबंध को पूर्णरूपेण एक पेशा नहीं कहा जा सकता फिर भी

इसमें पेशे के कुछ गुण अवश्य ही शामिल हैं।

(6) प्रबंध एक सामाजिक दायित्व के रूप में (Management as a Social Responsibility)- प्रबंध केवल अपने स्वामी के लिए ही उत्तरदायी नहीं होता वरन् समूचे समाज के प्रति उसका उत्तरदायित्व होता है। पीटर एफ. ड्रुकर के अनुसार, "प्रबंध का सामाजिक उत्तरदायित्व उपक्रम, जिसका कि वह अंग है और समाज जिसका कि उपक्रम अंग है, दोनों के प्रति है।" समाज के लगभग सभी वर्गों के प्रति प्रबन्ध का उत्तरदायित्व ही सामाजिक उत्तरदायित्व होता है।

अतः प्रबंध एक सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि प्रबन्ध के कार्य मौलिक रूप से मानवीय क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। प्रवन्ध द्वारा ही मानवीय क्रियाओं को नियोजित, संगठित, निर्देशित, समन्वित, अभिप्रेरित एवं नियन्त्रित किया जाता है। ई.एफ.एल. ब्रेच के शब्दों में, "मानवीय तत्व की विद्यमानता ही प्रवन्ध को सामाजिक प्रक्रिया का विशेष लक्षण प्रदान करती है।"

सिद्धान्त केवल व्यवसाय में ही नहीं, बल्कि सभी संयुक्त मानवीय गतिविधियों में उपयोगी होते हैं। परिवार, क्लब, खेलदल, धार्मिक संस्था, श्रम संघ, स्कूल, नगर परिषद्, सरकार, संयुक्त राष्ट्र संघ सभी पर प्रबंध के सामान्य तथा आधारभूत सिद्धान्त लागू होते हैं, क्योंकि उनके सफल संचालन के लिए नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण, समन्वय और नियन्त्रण करने के नियम, तकनीकें, प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि चाहिए।

(7) प्रबन्ध एक प्रणाली है (Management is a System) प्रबन्ध की प्रणालीगत अवधारणा के अनुसार-व्यावसायिक संगठन को एक खुली प्रणाली के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका अपना आन्तरिक ए बाह्य वातावरण होता है। प्रबन्ध की दृष्टि से नियोजन, संगठन-निर्देशन व नियंत्रणरूपी उप-प्रणाली कार्य करती है जिनरं । प्रबन्ध की सम्पूर्ण प्रणाली पूर्ण हो जाती है। प्रबंध एक गतिशील एवं प्रवाही प्रणाली है। जब तक संगठन में लक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न होते हैं प्रबन्ध का चक्र तब तक चलता ही रहेगा।

(8) रचनात्मक अंग (Constructive Part) प्रबंध परिणाम प्रदान कर सह-क्रियात्मक प्रभाव का सर्जन करत है जो सामूहिक सदस्यों के व्यक्तिगत प्रयास के योग से अधिक होता है। यह संक्रियाओं (operations) में अनुक्रम (sequence) प्रदान करता है, कार्य का लक्ष्य से मिलान करता है तथा कार्य को भौतिक और वित्तीय संसाधनों से जोड़ता है। यह सामूहिक प्रयासों को नई कल्पना तथा विचार तथा नई दिशा प्रदान करता है। यह बाह्य वातावरण के अपनाने वाला निष्क्रिय बल नहीं है बल्कि प्रत्येक संगठन में गतिशील जीवन प्रदान करने वाला तत्व है।

(9) प्रबन्ध एक समग्र विचार के रूप में (Management as an Integrated Approach) - आधुनिव व्यावसायिक एवं औद्योगिक युग में प्रबन्ध को नियोजन, संगठन, नियुक्ति, निर्देशन एवं नियंत्रण के कार्यों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। प्रवन्ध में इन कार्यों के अतिरिक्त भी महत्वपूर्ण अन्य बातें हैं जिन्हें प्रबन्ध की प्रकृति को जानने के लिए समझना आवश्यक है। प्रबन्ध संगठन के समस्त स्तरों के लिए आवश्यक है प्रबन्ध सभ्यतापरक (Culturebound) कला एवं विज्ञान है। इसका क्षेत्र काफी विस्तृत है। अतः यह कह सकते हैं कि "प्रबंध एक एकीकृत विचारधारा है जो समझ मानवीय क्रियाओं के निर्देशन, नियन्त्रण एवं उपयोग से सम्बन्ध रखती है और उनको उद्देश्यात्मक। अर्थ प्रदान करती है।"

(10) प्रबन्ध एक प्रावैगिक प्रक्रिया है (Management is a Pro-mobile Process) यह ठीक है कि प्रबन्ध के मुख्य कार्य नियोजन, संगठन, निर्देशन, अभिप्रेरण, समन्वय, नियन्त्रण आदि है लेकिन इनकी तकनीकों में निरन्तर विकास तथा नवीनीकरण हो रहा है। प्रबन्धकीय चिन्तन की प्रगति के साथ मानवीय व्यवहार के नये-नये पहलू उजागर हो रहे हैं, जिनके कारण प्रबन्ध प्रक्रिया सतत् रूप से परिवर्तित हो रही है। प्रबन्ध में कम्प्यूटरों का प्रयोग एक नयी क्रांति लाया है।

(11) प्रबन्ध कला और विज्ञान दोनों है (Management is an Art as well as Science)- प्रबन्य वस्तुतः कला और विज्ञान दोनों है। इसे ठीक तरह से समझने के लिए संक्षेप में 'कला' और 'विज्ञान' शब्दों के अर्थ को समझना चाहिए। किसी काम को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने का नाम कला है। किसी कार्य के सैद्धान्तिक भागों का व्यवस्थित विश्लेषण और अध्ययन विज्ञान है। अति संक्षेप में 'करना' (To Do) कला है और 'जानना' (To Know) विज्ञान है। अतः प्रबन्ध का क्रियात्मक भाग कला है और इसका सैद्धान्तिक पक्ष विज्ञान है।

प्रबंध में विज्ञान और कला दोनों के गुण पाये जाते हैं। प्रबंध के क्षेत्र में ज्ञान की एक विधिवत् विद्या उभरी है। यह सब प्रेक्षण और प्रयोगों के वैज्ञानिक तरीकों से संभव हुआ है। प्रबंध के अपने सिद्धान्त, नियम व तकनीक हैं।

विज्ञान द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं, घटनाओं तथा परिणामों के कारणों और प्रभावों को समझा जा सकता है। विज्ञान द्वारा ही हम विभिन्न चरों (variables) के परस्पर संबंध को जान सकते हैं। विज्ञान की भाँति प्रबंध में भी हम सिद्धान्तों व नियमों के आधार पर मानव व्यवहार व आचरण को समझ सकते हैं। घटनाओं व परिणामों के कारण तथा उनके प्रभाव के अध्ययन से ही प्रबंध की तकनीक का विकास हुआ है। व्यक्तियों और उनके व्यवहार से संबंध रखने के कारण प्रबंध एक सामाजिक विज्ञान है। परन्तु प्रबंध भौतिक या रसायन शास्त्र की भाँति पूर्ण रूप से प्राकृतिक विज्ञान नहीं है क्योंकि मानव स्वभाव को प्रयोगशालाओं में प्रयोग करके नहीं परखा जा सकता जैसा कि हम प्राकृतिक विज्ञान में करते हैं। प्रत्येक अवस्था में मानव व्यवहार का यथार्थ पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं है। व्यापार की परिस्थितियाँ भी निरंतर परिवर्तनशील होती हैं। इसलिये प्रबंध के सिद्धान्त कोई अटल सत्य नहीं हैं परन्तु वे पारिस्थितिक मार्गदर्शन अवश्य करते हैं। प्रबंधकीय सिद्धान्तों के इस व्यापक आधार द्वारा ही प्रबंध का प्रशिक्षण तथा व्यवहार संभव है। प्रबंध के

नियमों के व्यापक प्रयोग से प्रबंधकीय कार्यों को कुशलता से किया जा सकता है। प्रबंधकों की समस्यायें सुलझाने में ये नियम मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार प्रबंधक स्वपरीक्षण के बोझिल कार्य से मुक्ति पाते हैं। ये नियम प्रबंध के क्षेत्र में शोधकर्ताओं के लिये भी उपयोगी हैं। इन नियमों के आधार पर ही नये नियम जन्म लेते हैं, पुराने नियमों का सुधार व समन्वय हो पाता है। वास्तव में प्रबंध के नियमों के प्रयोग से वांछित परिणामों की प्राप्ति को प्रबंध की कला कहते हैं। यह भी अन्य कलाओं की तरह एक उपयोगी कला है। विज्ञान और कला में यही क्रियात्मक अंतर है कि विज्ञान द्वारा विगत घटनाओं की व्याख्या की जा सकती है जबकि कला द्वारा परिणामों को प्रभावी बनाया जाता है। कला के उपयोग के बिना अच्छे परिणाम संभव नहीं हैं। वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणता के प्रयोग से ठोस परिणामों की उपलब्धि निस्संदेह एक कला है। परन्तु प्रबंध की प्रक्रिया अंतर्दृष्टि तथा सही निर्णय की भी बहुत आवश्यकता होती है।

संक्षेप में, हम प्रबंध की क्रिया को एक कला कह सकते हैं जो कि प्रबंध के व्यवस्थित ज्ञान पर आधारित है। प्रबंध के कला एवं विज्ञान के दो रूपों को पूर्ण रूप से अलग नहीं किया जा सकता। वे एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक रूप में सुधार से प्रबंध का दूसरा रूप भी सुधरता है। प्रबंधकीय विज्ञान में सभी नियमों को सिद्ध नहीं किया गया है। कोई भी नियम प्रबंधकों के लिए व्यापक साधन हो सकता है। किसी अवसर पर प्रबंधकों का सामना परस्पर विरोधी नियमों से भी होता है। तब प्रबंधकों को उन नियमों का मध्यमार्ग निकालना चाहिए ताकि न्यूनतम लागत से व्यावहारिक परिणाम की प्राप्ति हो।

(12) प्रबंध अंतर्विषयीन है (Management is Inter-subjective) प्रबंध की जटिल प्रक्रिया के निर्माण में अनेक तत्वों ने योगदान दिया है। प्रबंध विज्ञान अनेक सामाजिक तथा गणनात्मक विज्ञानों का मिश्रण है।

गिलबर्ट फ्रॉस्ट ने प्रबंधक को अर्थशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, सांख्यिकीविद् तथा वित्त एवं लागत नियन्त्रक का समन्वय माना है। वह तर्कशास्त्री तथा इंजीनियर भी होता है। सफल प्रबंधक के लिए बहुमुखी प्रतिभा का धनी होना आवश्यक है।

प्रबंध जैसा नया विज्ञान अनेकानेक नये पुराने विज्ञानों तथा कलाओं का समन्वित संयोग है। इसकी प्रकृति एकांगी न होकर अन्तर्विषयीन है।

(13) प्रबंध एक अधिकार सत्ता प्रणाली है (Management is a System of Authority)- प्रबंध एक अधिकार सत्ता की प्रणाली है जो औपचारिक संगठन से सम्बन्धित है और ऐसे संगठन में अधिकारी-अधीनस्थों में औपचारिक सम्बन्ध होते हैं। प्रत्येक संस्था में दो वर्ग होते हैं प्रथम, प्रबंधक व द्वितीय, प्रबंधित या कर्मचारी वर्ग । प्रवन्धकों को कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं जिनकी सहायता से वे अधीनस्थों से कार्य ले सकें और उन्हें आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान कर सकें। दूसरी ओर अधीनस्थों (प्रबंधित) को अपने अधिकारियों के आदेशों व निर्देशों का पालन करना होता है।

(14) प्रवन्ध सृजनात्मक कार्य है (Management is a Creative Activity)- प्रबन्ध सूवनात्मक कार्य है जो अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करने के लिए साधन जुटाता है, परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाता है, रचनात्मक सम्बन्धों की स्थापना करता है तथा उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करता है। प्रबन्ध की प्रभावशीलता प्रबंधकों व कर्मचारियों के मध्य सृजनात्मक सम्बन्धों की स्थापना पर निर्भर होती है।

(15) प्रवन्ध स्वामित्व से पृथक है (Management is distinct from Ownership)- वर्तमान में जब व्यवसाय बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है तब से स्वामित्व एवं प्रबन्ध में अन्तर उत्पन्न हो गया है। अब स्वामियों को ही प्रबन्धक होना आवश्यक नहीं है। इस अन्तर के कारण प्रबन्ध का तेजी से

विकास हुआ है, साथ ही परिणामों के प्रति प्रबन्धक की जवाबदेयता भी बढ़ी है।

(16) अन्य विशेषताएँ (Other Characteristics)- प्रबन्ध की प्रकृति एवं सार्वभौमिकता को ध्यान में रखते हुए इसकी कई और विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जो इस प्रकार है:

(i) उद्देश्यपूर्ण: संगठन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करना ही प्रबंध का ध्येय है। प्रबंध की सफलता का मापदंड केवल यही है कि उसके द्वारा उद्देश्य की पूर्ति किस सीमा तक होती है। संगठन का उद्देश्य लाभ कमाना हो या न हो, प्रबंधक का कार्य सदैव प्रभावी (अर्थात् संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक) तथा कुशलतापूर्ण (संसाधनों के मितव्ययता से उद्देश्यों की पूर्ति) होना चाहिए।

(ii) सामाजिक अभिक्रिया प्रबंध में आवश्यक रूप से व्यवस्थित व्यक्तियों के सामूहिक कार्यों का प्रबंधन शामिल होता है। प्रबंधन में कार्य के अधीनस्थ व्यक्तियों का प्रशिक्षण विकास तथा अभिप्रेरण शामिल है। साथ ही वह उनकी सामाजिक प्राणी के रूप में संतुष्टि प्रदान करने का भी ध्यान रखता है। इन सब मानवीय संबंधों एवं मानवीय गतिविधियों के कारण प्रबंध को एक सामाजिक अभिक्रिया कहा जाता है।

(iii) संयोजक शक्ति प्रबंध द्वारा परस्पर सम्बन्धित गतिविधियों को व्यवस्थित किया जाता है विससे किसी कार्य की आंशिक या पूर्ण आवृत्ति न हो। इस प्रकार प्रबंध संगठन के सभी वर्गों के कार्यों को संयोजित करता है। प्रबंध संगठन के उद्देश्यों तथा उससे जुड़े व्यक्तियों के उद्देश्यों का समन्वय करता है। प्रबंध द्वारा ही भौतिक तथा मानव संसाधनों का समन्वय किया जाता है।

(iv) अदृश्यता: प्रबंध एक अदृश्य शक्ति है। प्रबंधकीय कार्यों के परिणाम द्वारा इसकी उपस्थिति का अनुभव किया जा सकता है। ये परिणाम व्यवस्था,

समुचित उत्पादन, संतोषजनक वातावरण तथा कार्मिक संतुष्टि द्वारा ज्ञात किये जाते हैं।

(v) निरंतर प्रक्रिया: प्रबंध एक गतिशील एवं प्रवाही प्रक्रिया है। जब तक संगठन में लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयास होता रहेगा प्रबंध का चक्र भी चलता रहेगा।

(vi) संयुक्त प्रक्रिया: प्रबंधकीय कार्य की श्रृंखलायें सह आधारित हैं इसलिए स्वतंत्र रूप से किसी एक कार्य को नहीं किया जा सकता। प्रबंध विशिष्ट अवयवों से मिलकर बनी संयुक्त प्रक्रिया है। प्रबंध की सभी गतिविधियों में अनेक अवयवों को सम्मिलित करना पड़ता है इसलिए यह एक व्यवस्थित संयुक्त प्रक्रिया कहलाती है।

इस प्रकार प्रबंध का अर्थ अत्यन्त व्यापक होने एवं इसके बहुमुखी व्यक्तित्व होने के कारण प्रवन्ध में अनेव विशेषताएँ एवं लक्षण विद्यमान होते हैं।

1.6 प्रबंध-प्रक्रिया (Management-Process)

आशय (Meaning)- प्रबन्ध के सामान्य अर्थ एवं कई विद्वानों की परिभाषाओं के अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि प्रबन्ध एक प्रक्रिया है। प्रक्रिया इस अर्थ में कि निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक कार्यों को एक अनुक्रम (sequence) में किया जाना आवश्यक है। एक प्रक्रिया के अन्तर्गत कुछ कार्यों को उनके क्रमानुसार सम्पादित किया जाता है। इसका प्रारम्भ एवं अन्तिम पड़ाव होता है। प्रक्रिया किसी भी कार्य को व्यवस्थित ढंग से करने का तरीका है। यह कौशल, तकनीकों एवं प्रविधियों के प्रयोग का सूचक है।

प्रबन्ध एक यान्त्रिक प्रक्रिया ही नहीं है बल्कि यह मानवीय और सामाजिक प्रक्रिया भी है। इसके कार्य परस्पर संबंधित हैं। इन्हें प्रबंध के तत्व कहे जा सकते हैं। वे समस्त मिलकर प्रबंध प्रक्रिया की रचना करते हैं। सर हेनरी फेयोल ने सर्वप्रथम प्रबन्ध का एक वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रबंध के पाँच क्रमों का उल्लेख किया नियोजन - संगठन आदेशन समन्वय और

नियंत्रण। इन्हें इसी प्रक्रिया के तहत सम्पादित करना प्रबन्ध की कौशलता का परिचायक है।

न्यूमैन एवं समर के अनुसार "प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया इसलिए है कि लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इसमें विभिन्न कार्य शामिल किये जाते हैं। यह एक सामाजिक प्रक्रिया इसलिए है कि विभिन्न लोगों के सम्बन्धों पर अध्ययन किया जाता है।" अतः प्रबन्ध एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया मानी जाती है। इसी प्रकार प्रसिद्ध प्रवन्धशास्त्री जॉर्ज आर. टैरी के अनुसार प्रबन्ध प्रक्रिया के प्राथमिक क्रम चार हैं:

(अ) आयोजन या नियोजन (Planning)

(ब) संगठन करना (Organizing)

(स) गति देना (Actuating)

(द) नियन्त्रण रखना (Controlling)

इन्हें निम्न प्रकार से भी समझाया जा सकता है:

नियोजन (Planning) विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाना

संगठन करना (Organizing) सभी साधनों को संगठित करना

गति देना (Actuating) अभिप्रेरणा लक्ष्य के प्रति जागरूकता लाकर गति देना

नियन्त्रण करना (Controlling) सभी संसाधनों व संगठन के तत्वों को नियन्त्रित करना

उद्देश्यों की प्राप्ति (Achievement of Objectives)

इस प्रकार उपर्युक्त चारों कार्य प्रबन्ध के प्राथमिक कार्य होते हैं जो उक्त निर्धारित प्रक्रिया के तहत ही सम्पादित किये जाते हैं। ये चारों ही प्रबंध प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

लक्ष्य-प्राप्ति के सम्पूर्ण ढाँचे में प्रबन्ध-प्रक्रिया की स्थिति (Position of the Management-Process in relation to the total Framework of attaining Objects)

लक्ष्य निर्धारण प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक कार्य होता है। इस लक्ष्य प्राप्ति के सम्पूर्ण ढाँचे में भी प्रबंध प्रक्रिया की महती भूमिका होती है। प्रवन्धक लक्ष्य निर्धारण के बाद उत्पादन के साधनों-श्रम, भूमि, पूँजी, मशीनें, सामग्री एवं विधि आदि को प्रबन्ध प्रक्रिया में लगाता है। ये साधन अपना कार्य सुचारु रूप से करें, इसके लिए प्रबन्ध को विशिष्ट प्रयत्न करने पड़ते हैं। इन प्रयत्नों के दौरान बड़ा कठिन वातावरण होता है जो बदलती हुई आर्थिक नीतियों, सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय प्रवृत्तियों, नवीन पद्धतियों, तकनीकी ज्ञान द्वारा प्रभावित होता रहता है। जैसा कि हमने पूर्व में देखा है, प्रबन्ध प्रक्रिया में मात्र चार कार्य ही सम्पादित किये जाते हैं

प्रथम नियाजन या आवाजन करना,

दूसरा उत्पादन के समस्त संसाधनों को संगठित करना,

तीसरा इन संगठित साधनों को विवेकपूर्ण गति प्रदान करना, तथा

चौथा समस्त क्रियाओं एवं गतिविधियों पर अपना नियंत्रण रखना। प्रबंध के प्रकार्यों में प्रवन्ध प्रक्रिया द्वारा मानव 'सही कार्य' (Right work), 'सही स्थान पर' (At the right place), 'सही समय पर' (At the right time) एवं 'सही विधि' (With the right method) से करने में समर्थ होता है। इन कार्यों से जो परिणाम मिलते हैं, उनसे व्यक्ति समूह, समुदाय या कम्पनी को लाभ एवं असीम सन्तोष की प्राप्ति होती है।

अतः 'प्रबंध प्रक्रिया' प्रबंधकीय कार्यों की एक संयोजित श्रृंखला होती है। यह प्रकृति से मानवीय, समाजोन्मुखी तथा गत्यात्मक होती है। यह प्रक्रिया विवेकपूर्ण, विचारात्मक और मानसिक होती है।

1.7 प्रबंध-प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विशेषताएँ (Important Essentials of Management-Process)

प्रबंधन प्रक्रिया के निश्चित कार्य हैं जिनकी कई महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, ये इस प्रकार हैं:

1. लक्ष्य अभिमुख होता है (Goal Oriented) प्रबंध प्रक्रिया तथा इससे संबंधित कार्य लक्ष्यों के प्रति अभिमुख तथा उद्देश्यपूर्ण होते हैं, वे स्वयं में अंत नहीं हैं, वरन् वे उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साधन हैं। उनका मूल्य अथवा उपयोगिता तभी तक है जब तक वे उपक्रम के जीवित रहने तथा उसकी सफलता में प्रभावी योगदान देते हैं। उपक्रम का उद्देश्य ही प्रबंध की प्रक्रिया तथा कार्यों की विद्यमानता का कारण है।

2. कार्य की प्रकृति को बताता है (Show the Nature of the Function) प्रबंधन प्रक्रिया तथा कार्य उचित रूप से प्रबंधन के कार्य की प्रकृति का वर्णन करते हैं। यह प्रक्रिया प्रबंधक के रूप में प्रबंधक के द्वारा किए जाने वाले कार्यों को प्रदर्शित करती है। प्रबंधक पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधनों तथा मानव प्रयासों का नियोजन, संगठन और निर्देशन तथा नियंत्रण करते हैं।

3. कार्य एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं (Function follow one-another)- प्रबंधन प्रक्रिया में सम्मिलित कार्य एक निर्धारित क्रम में एक दूसरे का अनुसरण करते हैं। यह क्रम अव्यवस्थित नहीं होता है। सैद्धान्तिक रूप में तो यह प्रक्रिया नियोजन से प्रारम्भ होकर, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन और नियंत्रण तक जाती है। इस क्रम का अपना औचित्य है। उदाहरण के लिए, नियोजन उपक्रम के उद्देश्यों पर विचार करता है तथा उनको प्राप्त करने के लिए उपयुक्त मार्ग प्रशस्त करता है तथा अन्य कार्यों के लिए आधार बनाता है। नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण तथा निर्देशन के कार्य बेकार हो जाएँगे यदि नियंत्रण के कार्य के द्वारा उक्त कार्यों का अवलोकन न किया जाए, किन्तु व्यवहार में कार्यों का यह क्रम कड़ाई के साथ पालन किया जाना आवश्यक नहीं होता। प्रबंधक सभी कार्यों पर समुचित ध्यान देते हैं। अंतिम कार्य नियंत्रण से पीछे की ओर, अर्थात् नियोजन तक भी चला जा सकता है।

4. निरंतर प्रक्रिया (Continuous Process) प्रबंधन प्रक्रिया सवत् है। यह निरंतर चलती रहती है तथा कभी समाप्त न होने वाली अभिमुख प्रक्रिया है।

5. पारस्परिक संबंध (Mutual Relation) प्रबंधन के कार्य आपस में बहुत अधिक जुड़े रहते हैं। सामूहिक रूप से वे उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग देते हैं। उन्हें समग्र रूप में ही देखना चाहिए। प्रत्येक कार्य का सार्थक महत्व कुल कार्य में होने वाले उसके सहयोग से ही जाना जाता है, क्योंकि वह कार्य का एक भाग है। बदले में प्रबंधन प्रक्रिया उतनी ही बलवती होती है जितना इसके पृथक-पृथक कार्य। प्रत्येक कार्य को गुँथी हुई प्रबंधक प्रक्रिया में उपकार्य के रूप में देखा जा सकता है। इस बात को निम्न चित्र में दिखाया जा रहा है:

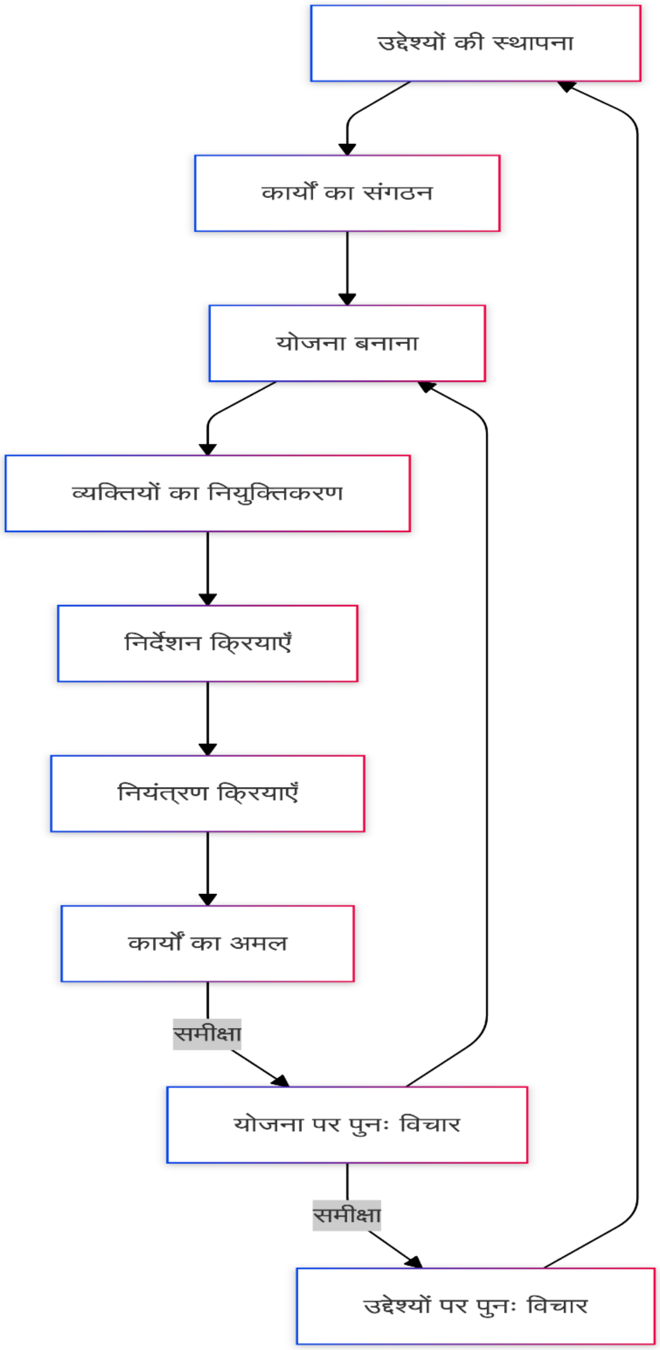

6. आदानों का उपादानों में परिवर्तन (The transformation of inputs into outputs)- प्रबंधन एक क्रिया है जिसके द्वारा मशीन, कुशलता, मूल्य, माल, मुद्रा, ज्ञान, सूचना, तकनीक तथा मानव प्रयासों (इन्हें आदान कहा जाता है) को उत्पाद सेवाएँ आधिक्य (Surplus) तथा संतुष्टि (इन्हें उपादान कहा जाता है) में परिवर्तित किया जा है। प्रबंध कार्यों को परिवर्तन प्रक्रिया के तत्वों के रूप में भी देखा जाता है। इनको कुछ निर्धारित तकनीकों तथा कुशल

से अपनाया जाता है। परिवर्तन प्रक्रिया के रूप में प्रबंध, बाहा वातावरण, (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक टेक्नॉलोजिकल घटकों), जो उपक्रम पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालता है, से एकीकृत होने का प्रयास करता है। इस संबंध को चित्र द्‌वारा प्रदर्शित किया जा रहा है:

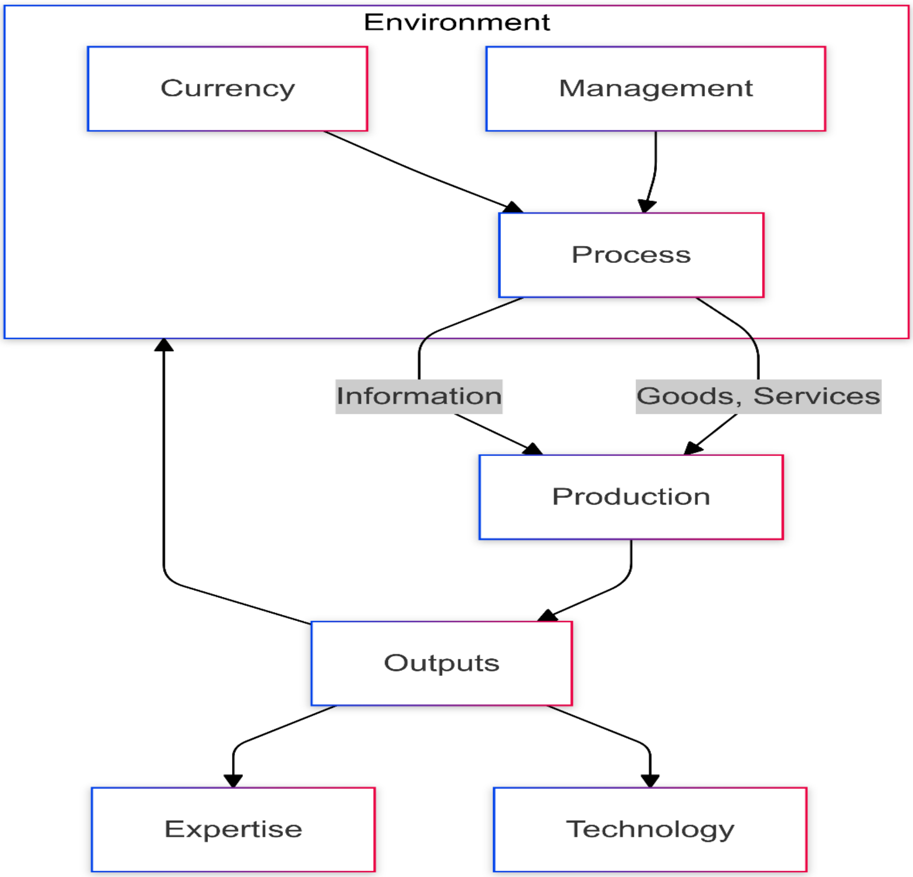

7. कार्य एक दूसरे पर लागू होते हैं (Functions are applied on one-another) - प्रबंध प्रक्रिया में शामिल होने वाले कुछ कार्य एक-दूसरे पर लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, नियोजन का कार्य भली प्रकार से संगठित तथा निर्देशित होना चाहिए, संगठन तथा निर्देशन कार्यों का भली प्रकार से नियोजन आवश्यक है, तथा नियुक्तिकरण वे कार्य पर उचित नियंत्रण करना अनिवार्य है।

8. प्रबंध की सामान्य प्रक्रिया (General Process of Management)- उपक्रम के कार्यों से प्रबंधन वे कार्य भिन्न होते हैं। उपक्रम के कार्य सभी उपक्रमों में एक से नहीं होते, वे भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, एव

व्यावसायिक उपक्रम के मुख्य कार्य उत्पादन तथा विपणन होते हैं। एक विश्वविद्यालय में मुख्य कार्य शिक्षण व शोधका होता है, किन्तु इन उपक्रमों में प्रबंधन कार्य एक से ही होते हैं।

9. विद्यार्थियों तथा पेशेवर व्यक्तियों के लिए मार्गदर्शक (A Guide for Students and Professiona Persons) - प्रबंधन प्रक्रिया सरल किन्तु मूल्यवान ढाँचा बनाती है जो प्रबंध के विद्यार्थियों तथा पेशेवर व्यक्तियों द्वार विश्लेषित होकर इसकी जटिलताओं को समझने में सहायक होती है तथा प्रबंधन की प्रक्रिया तथा कार्यों का मूल्यांकन करने तथा उनमें सुधार करने का अवसर प्रदान करती है।

प्रबंध-प्रक्रिया की सार्वभौमिकता (Universality of the Management-Process)

निःसन्देह प्रबन्ध-प्रक्रिया एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, इसका उपयोग सर्वत्र किया जा सकता है। इसके चार कदमों के आधार पर किसी भी प्रकार के कार्य को अंजाम दिया जा सकता है। कुछ लोगों को यह भ्रम है कि इस प्रबंध-प्रक्रिया का उपयोग केवल व्यवसाय एवं उद्योग या प्रशासनिक क्षेत्रों में ही किया जाता है तथा करना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। इस प्रक्रिया के चरणों का प्रयोग घरेलू समस्याओं के समाधान करने में, कृषि क्षेत्र में, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्रों में तथा समाज कल्याण एवं सुरक्षा आदि मामलों में भी नियोजन, संगठन, गति एवं नियंत्रण द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। जहाँ कहीं भी कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति में अन्य लोगों से काम कराना हो तब इस प्रबन्ध-प्रक्रिया द्वारा उस लक्ष्य को सहज रूप से प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ कहीं भी व्यक्ति सामान्य उद्देश्योंकी पूर्ति हेतु मिल-जुलकर काम करते हैं, वहीं पर प्रबंध प्रक्रिया सार्वभौमिक रूप से विद्यमान रहती है। विकसित राष्ट्रों में राष्ट्र की रक्षा क्षेत्र में, प्रशासनिक कार्यों में तथा सरकारी लक्ष्यों की पूर्ति में प्रबन्ध-प्रक्रियाका सफलतापूर्वक संचालन

किया जा रहा है। हाल ही में अमेरिका द्वारा तालिबान का सफाया किया गया, यदि हमअमेरिका के इस लक्ष्य प्राप्ति के तरीकों पर ध्यान दें तो उसने अपने व्यापार क्षेत्र पर हमले के बाद ही सर्वप्रथम तालिबानको समाप्त करना लक्ष्य निर्धारण किया था। उसके बाद इसे कैसे प्राप्त करें? इसका नियोजन किया था। नियोजन केबाद ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी व अन्य राष्ट्रों को संगठित किया था। संगठित करने के बाद इन्हें क्षेत्र विशेष में अपना लक्ष्य समझाकर कार्य को गति प्रदान की थी तत्पश्चात सभी पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्य की

सफ़लतापूर्वक प्राप्ति कर ला था। अतः प्रबन्ध-प्रक्रिया सम्पूर्ण जगत में व्याप्त रहती है इसीलिए इसे सार्वभौमिक माना गया है।

दुर्भाग्यवश भारत जैसे विकासशील देशों में प्रबन्ध-प्रक्रिया का उपयोग कुछ सीमित व्यावसायिक एवं औद्योगिक संस्थानों में ही किया जाता है। इन देशों में जहाँ की पूर्ण अर्थव्यवस्था कृषि एवं लघु उद्योगों पर निर्भर करती है, लोकतंत्र द्वारा राज एवं प्रशासन किया जाता है अतः भारत सहित इस प्रकार के सभी देशों में राज्य, शासन, प्रशासन एवं प्रवन्ध पर आक्षेप आए दिन लगाये जाते रहे हैं कि ये लोग सही समय पर सही निर्णय नहीं लेकर देश की विकास यात्रा को ठप्प करने में लगे हुए हैं। हमारे देश में यदि प्रबन्ध-अक्रिया का सही एवं पूर्ण परिचालन किया जावे तो निःसंदेह प्रशासन में सफलता मिलेगी, कार्यशैली विकसित होगी तथा सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रहेगी।

1.8 प्रबंध के कार्य/प्रबंध के तत्व (Functions of Management / Elements of Management)

जिस प्रकार से प्रबंध की परिभाषाओं को अलग-अलग दृष्टिकोणों से विद्वानों द्वारा व्यक्त किया गया ठीक उसी प्रकार से प्रबन्ध के कार्यों को भी प्रबंधशास्त्रियों द्वारा पृथक-पृथक तरीकों से अभिव्यक्त किया गया है। कुछ

विद्वानों ने प्रबंध के मुख्य तत्व (नियोजन, संगठन समन्वय, अभिप्रेरण तथा नियन्त्रण) को व्यक्त किया है. जिनमें कुछ और प्रबंधकीय कार्यों को जोड़ दिया जाए तो ये ही तत्व प्रबन्ध के कार्य बन जाते हैं। अतः इस बात में अधिक विवाद करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रवन्ध के कार्य एवं प्रबन्ध के तत्व अलग-अलग हैं। प्रबंन्ध के कार्य ही उसके तत्व है। जो क्रियाएँ प्रवन्धकों द्वारा सम्पादित की जाती हैं उन्हें प्रबन्ध के कार्यों के नाम से पुकारते हैं।

प्रबंध विज्ञान के शीर्षत्व विद्वानों ने जो प्रबन्ध के पृथक-पृथक कार्य बताये हैं वे संक्षेप में निम्न प्रकार से सूचीबद्ध किये जा सकते हैं :

(अ) आधुनिक प्रबन्ध के पिता हेनरी फेयोल ने सर्वप्रथम प्रबन्ध के कार्यों का स्पष्ट विवेचन किया था। उनके अनुसार "श्वन्ध के कार्यों में (1) पूर्वानुमान एवं नियोजन, (ii) संगठन, (iii) आदेश देना, (iv) समन्वय तथा नियन्त्रण प्रमुख हैं।

प्रबन्ध प्रक्रिया का निर्माण भी इन्हीं कार्यों से होता है।"

(ब) हेरोल्ड स्मिडी ने प्रवन्ध के निम्न चार कार्य बताये हैं और उनको स्पष्ट करने के लिए 'POIM' सूत्र का प्रयोग किया है :

नियोजन (Planning);

(ii) संगठन (Organisation);

(iii) एकीकरण (Integration); तथा

(iv) मापन (Measurement);

(स) लूथर गुलिक ने भी प्रबन्ध कार्यों को एक सूत्र 'पोरडक्रोव' (POSDCROB) के रूप में अभिव्यक्त किया है। इस सूत्र के विश्लेषण से प्रबन्ध के निम्न सात कार्यों की जानकारी होती है:

(i) नियोजन (Planning);

(ii) संगठन (Organising);

(iii) स्टाफिंग (Staffing);

(iv) निर्देशन (Directing);

(v) समन्वय (Co-ordinating);

(vi) रिपोर्टिंग (Reporting);

(vii) बटिंग (Budgeting) |

(द) मेरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार प्रबन्ध के निम्न चार कार्य है:

(1) संगठन (Organisation);

(ii) समन्वय (Co-ordinating);

(iii) प्रशासन (Administration) एवं

(iv) नेतृत्व (Leadership)

(इ) अर्नेस्ट डेल ने प्रबन्ध के कार्यों में कुछ नये कार्यों निम्न सात कार्य हैं : का समावेश किया है। डेल के अनुसार प्रबन्ध के

(i) नियोजन (Planning);

(ii) संगठन (Organisation);

(iii) स्टाफिंग (Staffing);

(iv) निर्देशन (Direction);

(v) नियन्त्रण (Control);

(vi) नवाचार (Innovation) एवं

(vii) प्रतिनिधित्व (Representation)

(फ) परविन कॉन के प्रबन्ध कार्यों को 'पोक' (POAC) नामक सूत्र के रूप में बतलाया है। इस सूत्र के अनुसार नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण तथा नियन्त्रण प्रबन्ध के मुख्य कार्य हैं।

यद्यपि इन विद्वानों ने उपर्युक्त कार्यों एवं प्रबन्ध के मूलतत्वों का पृथक-पृथक उल्लेख किया है लेकिन इ समन्वित रूप से समझना ही श्रेयष्कर होगा। अर्थशास्त्री हार्टले विदर्श ने मुद्रा के बारे में कहा था कि "मुद्रा वह है जो मुद्रा का कार्य करे ।" अतः हम प्रबन के बारे में कह सकते हैं कि "प्रबन्ध वह है जो

प्रबन्ध का कार्य करे।" यह प्रवन्धकीय कार्यों का पूर्ण विवरण है लेकि इससे प्रबन्ध के कार्यों को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से प्रबन्ध के समन्वित कार्यों व निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

प्रबन्ध के कार्य (Functions of Management)

प्रमुख कार्य (Primary Functions)

सहायक कार्य (Secondary Functions)

1. नियोजन,
2. संगठन,
1. प्रतिनिधित्व,
2. सामाजिक उतरदायित्व,
3. समन्वय,
3. पर्यावरण संरक्षण,
4. अभिप्रेरण,
5. नियन्त्रण,
6. निर्देशन व नेतृत्व,
7. नियुक्तियाँ,
8. सम्प्रेषण या संदेशवहन,
9. निर्णयन,
10. नवाचार,
4. उत्तरदायित्व लेखांकन,
5. अन्य कार्य।

(1) प्रमुख कार्य (Primary Functions) प्रबंध के मुख्य कार्यों में निम्न शामिल हैं- 1. नियोजन (Planning)- नियोजन प्रबन्ध का प्रथम कार्य माना जाता है जो किसी भी उपक्रम में संतोषप्रद परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। नियोजन एक प्रक्रिया है जिसके द्‌वारा प्रवन्धक भविष्य के बारे

में सोचता है तथा उपक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अनुकूलतम मार्ग का चुनाव करता है। वास्तव में योजना बनाते समय जब प्रबन्धक भावी कार्यक्रम के बारे में गहराई से सोचता है तो उसे भविष्य में उत्पन्न हो सकने वाले विभिन्न खतरों का आभास होता है जो योजना के अभाव में शायद ही होता और इस प्रकार प्रबन्धक उन खतरों व कठिनाइयों से बचने
के लिए आवश्यक कदम उठाने में समर्थ होता है। कूण्ट्ज तथा ओ'डोनेल के शब्दों में, "नियोजन के बिना प्रबन्ध अटकलबाजी बन जाता है तथा निर्णय सारहीन तात्कालिक इच्छाएँ मात्र रह जाते हैं। नियोजन के बगैर प्रबन्ध करना, बिना नक्शे के मकान बनाने तथा बिना लक्ष्य के यात्रा करने के समान है।" अतः व्यवसाय प्रबन्ध में तो नियोजन का महत्व सर्वोपरि है।
इस सम्बन्ध म पहल स हा निणय लना कि क्या करना है, कस करना है, कब करना है तथा किस व्यक्ति द्वारा करना है, से है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए प्रबन्धक को उक्त कार्य के लिए पहले से ही कार्यक्रम तैयार करना होता है तथा उद्देश्य एवं नीतियाँ भी निर्धारित करनी होती हैं। साथ ही विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के तरीकों पर विचार कर लिया जाता है। नियोजन में मुख्यतः निम्न क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं:

(अ) संबंधित व्यावसायिक उपक्रम की पूर्ण योजना तैयार करना;

(ब) एक संगठन संरचना का नियोजना करना;

(स) क्रियात्मक एवं लाइन प्रबंधकों के लिए नियोजन करना;

(द) वैकल्पिक कार्यों की खोज एवं परीक्षा करना;

(3) सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव करना; एवं

(फ) आवश्यक परिमाणात्मक नियोजन करना ।

2. संगठन (Organisation) प्रबन्ध प्रक्रिया में नियोजन के पश्चात् संगठन का स्थान है क्योंकि नियोजन के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए श्रम, पूँजी, मशीन, कच्चा माल आदि जुटाने होते हैं। इनका प्रभावपूर्ण

उपयोग एक अच्छे संगठन या तन्त्र द्वारा ही सम्भव है। किसी भी उपक्रम में सफलता बहुत कुछ इसी तथ्य पर निर्भर करेगी कि उस उपक्रम की संगठन संरचना योजना लक्ष्यों के अनुरूप की गयी है या नहीं।

कोई भी उपक्रम, चाहे कितनी ही आधुनिक तकनीक पर आधारित क्यों न हो, मानव की सहायता के बिना नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए ही कार्यरत व्यक्तियों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों को कार्यशील रूप देने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है। संगठन का प्रबंध को आधारभूत कार्य इसी कारण ही माना जाता है। प्रो. उर्दिक के अनुसार, "संगठन से अर्थ यह निर्धारित करने से है कि उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्या-क्या क्रियाएँ करनी आवश्यक हैं तथा इनको ऐसे समूहों में क्रमबद्ध करने से है जिससे कि उन्हें अलग-अलग व्यक्तियों को सौंपा जा सके।" इस परिभाषा के अनुसार संगठन कार्य में निम्न क्रियाएँ करनी पड़ती हैं-

(अ) कार्यों की पहचान और उनका समूहीकरण;

(ब) समूह के विभागों में इन क्रियाओं को सौंपना;

(स) अधिकार और उत्तरदायित्व की परिभाषा तथा विभाजन; एवं

(द) अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना।

3. समन्वय (Co-ordination) कुछ श्वन्धशास्त्री समन्वय को प्रबन्ध का कार्य मानते हैं तो कुछ अन्य इसे प्रबन्ध का सार (Essence) मानते हैं, परन्तु इसे जो कुछ भी माना जाए, यह अवश्य है कि एक उपक्रम के कुशल संचालन के लिए उपक्रम के विभिन्न विभागों व उप-विभागों के मध्य समन्वय (co-ordination) किया जाना आवश्यक है। अन्यथा परिणाम असन्तोषजनक होंगे और लक्ष्य प्राप्त कर पाना असम्भव होगा।

समन्वय से आशय सामूहिक प्रयासों की ऐसी अचूक व्यवस्था से है जिसमें कार्य की एकजुटता रहती है तथा कार्य निर्बाध रूप से संचालित होता रहता है। इसीलिए समन्वय की समस्या अधिकांशतः वृहत आकार के उपक्रमों में उत्पन्न

होती है, जहाँ उपक्रम के विभाग, उपविभाग व शाखाएँ बड़ी संख्या में पायी जाती हैं और उन सभी के कार्यों में समन्वय स्थापित करना एक जटिल कार्य होता है।

इस प्रकार समन्वय किसी उपक्रम द्वारा निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं में तालमेल बनाये रखता है। समन्वय की अनेक विधियाँ हैं

(अ) संतुलन - इसका अर्थ है कि व्यावसायिक प्रयास में उपयोग किए जाने वाले विभिन्न तत्वों में संतुलन होना।

(ब) समय-निर्धारण - इसका अर्थ है कि विभिन्न कार्यों की प्रगति के समय को इस प्रकार से व्यवस्थित करना

कि वे निश्चित योजना में दी गई समय तालिका के अनुसार एक-दूसरे के कुशल सम्पादन के अनुकूल हो।

(स) विलयन इसका अर्थ यह है कि व्यवसाय में लगे विभिन्न हितों को इस प्रकार एकीकृत करना कि व्यावसायिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

4. अभिप्रेरणा (Motivation)- अभिप्रेरणा प्रबंध का मानवीय पहलू है। यह प्रबंध का एक व्यापक कार्य है जो मानव शक्ति से सम्बन्धित है। अभिप्रेरणा प्रबन्ध का एक प्रमुख कार्य है। यद्यपि अभिप्रेरणा का कार्य निर्देशन या नेतृत्व का ही एक भाग है परन्तु अधिकांश प्रबन्धशास्त्री आधुनिक समय में अभिप्रेरणा के महत्व को स्वीकारते हुए इसको प्रबन्ध पृथक कार्य के रूप में ही प्रदर्शित करते हैं।

प्रत्येक उपक्रम में उत्पादन प्रक्रिया में भौतिक (कच्चा माल, मशीन आदि) तथा मानवीय संसाधनों (श्रम) क उपयोग किया जाता है, परन्तु इन दोनों में भी मानवीय संसाधन ही अधिक महत्वपूर्ण हैं जो वास्तव में भौतिक संसाधनं का प्रयोग सम्भव बनाते हैं। इसीतिए श्रमिकों एवं कर्मचारियों को कार्य के लिए

अभिप्रेरित करना प्रबन्धकों की दृषि से महत्वपूर्ण कार्य बन जाता है। कुशल निर्देशन या नेतृत्व वही माना जाता है जो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों वे मनोबल को ऊँचा रखकर उन्हें उपक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित कर सके।

ब्रेच के अनुसार, "अभिप्रेरणा एक सामान्य प्रेरणा देने वाली प्रक्रिया है, जो अपनी टीम के सदस्यों को अपने समूह के प्रति वफादारी प्रदान करने, स्वीकृत कार्य को नियमित रूप से करने तथा सामान्य रूप में अपने कृत्य में प्रभार्व भाग लेने के लिए प्रभावी ढंग से अपना भाग लगाने के लिए तैयार एवं प्रेरित करती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा प्रबन्ध का वह कार्य है जिसके द्वारा निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक संस्थ में कार्यरत व्यक्तियों को स्वेच्छापूर्वक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस हेतु प्रवन्धक कर्मचारियों को वित्तीय

तथा अवित्तीय प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं।

5. नियन्त्रण (Control)- नियन्त्रण प्रबन्धकीय प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। नियन्त्रण से आशय ऐसी प्रक्रिय से है जिसमें यह सुनिश्चित किया जाता है कि कार्य योजनानुसार हो रहा है या नहीं। यदि परिणाम (Results) योजनः लक्ष्यों से दूर हैं अर्थात् असन्तोषजनक हैं तो सुधारात्मक कदम उठाना भी नियन्त्रण का भाग है। उदाहरण के लिए, यदि किसी कम्पनी में उत्पाद की लागत पूर्व निर्धारित लागत से अधिक आ रही है, तो प्रबन्ध का यह दायित्व है कि वह लागत अधिक आने के कारणों का पता लगाये और सुधारात्मक कदम उठाकर लागत को नियन्त्रित करे। प्रो. थियो हैमेन के अनुसार, "नियन्त्रण छानबीन द्वारा यह मालूम करने की प्रक्रिया है कि कार्य योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उपयुक्त प्रगति हो रही है

या नहीं, और यदि कोई विचलन दिखाई दे तो उसको सुधारने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना।"

इस प्रकार नियन्त्रण प्रक्रिया के तीन प्रमुख तत्व होते हैं:

(अ) कार्यों के प्रमाप निश्चित करना;

(व) व्यक्ति तथा व्यक्तियों के समूह के कार्यों का मूल्यांकन करना; तथा

(स) सुधार के लिए कार्य करना तथा विकास हेतु सामयिक निर्णय लेना।

6. निर्देशन (Direction)- एक उपक्रम में लक्ष्यों के अनुरूप संगठन संरचना व आवश्यक नियुक्तियाँ कर लेने के बाद आवश्यकता होती है, कर्मचारियों को दिशा-निर्देश प्रदान करने की, ताकि ते लक्ष्य की ओर बढ़ सकें। इस प्रकार निर्देशन प्रवन्धकीय प्रक्रिया के महत्वपूर्ण चरण के रूप में प्रबन्ध का एक प्रमुख कार्य है।

निर्देशन में नेतृत्व भी शामिल है। उच्च प्रबन्ध के अन्तर्गत नेतृत्व क्षमता भी होनी चाहिए जिसके द्वारा वह अन्य कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। अच्छा नेतृत्व अपने अधीनस्थों में वफादारी तथा हितों की भावना भर देता है और इस प्रकार उनसे कार्य में पूर्ण सहयोग प्राप्त करता है तथा उद्देश्य प्राप्त करने में सफल होता है। अतः व्यक्तियों से कार्य कराने हेतु यह आवश्यक है कि उनके कार्य को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्धारित दिशाओं में प्रशस्त एवं निर्देशित किया जाये। स्ट्रोंग के अनुसार, "निर्देशन में (अ) अधीनस्थों को कार्य के बारे में निर्देश देना और (ब) उन्हें कार्य करने के लिए आदेश देना सम्मिलित होता है।"

7. नियुक्तियाँ (Staffing)- एक उपक्रम में संगठन संरचना का निर्धारण हो जाने के बाद आवश्यकता होती है उस संगठन में सृजित विभिन्न पदों (प्रबन्धक, संचालक से लेकर सुपरवाइजरों तक) पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्तियाँ हों। नियुक्तियों का यह कार्य भी प्रबन्धकीय कार्य है और इसी प्रक्रिया का भाग है।

कूष्ट्ज तथा ओ'डोनेल ने "नियुक्ति को प्रबन्ध का पृथक कार्य माना है। यह कार्य कर्मचारी प्रशासन से सम्बन्धित है। अन्य शब्दों में, नियुक्ति करना प्रबन्ध का प्रशासनिक कार्य है, जिसका अर्थ है- संगठन की योजना के अनुसार आवश्यक पदाधिकारियों एवं अन्य कर्मचारियों को नियुक्त करना, उनको आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करना, पदोन्नति, सेवामुक्त तथा हस्तान्तरण आदि की व्यवस्था करना। जिस उपक्रम के कर्मचारी जितने अधिक योग्य, प्रशिक्षित तथा अनुभवी होते हैं, उस उपक्रम का प्रबन्ध उतना ही अधिक प्रभावी तथा कुशल होता है, क्योंकि प्रबंध का यह कार्य मानव शक्ति से सम्बन्ध रखता है जो उत्पादन के अन्य साधनों को गति प्रदान करता है। अतः कर्मचारी नियुक्ति के कार्य को साधारण कार्य (general work) मानना गलत है।

8. सम्प्रेषण या संदेशवाहन (Communication) प्रबन्धकीय प्रक्रिया में अभिप्रेरणा के बाद सम्प्रेषण का स्थान है और यह प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कार्य है। साधारण बोलचाल की भाषा में सम्प्रेषण का आशय है विचारों व सूचनाओं का संवहन । वास्तव में अभिप्रेरणा और सम्प्रेषण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उचित सम्प्रेषण के अभाव में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की प्रत्येक योजना निरर्थक ही सिद्ध होगी। यदि अभिप्रेरणा द्वारा योजनाओं को सफल बनाना है तो यह आवश्यक है कि उच्च प्रबन्ध द्वारा बनायी गयी योजनाएँ व उनके विचार सही रूप में और शीघ्रता

के साथ कर्मचारियों तक सम्प्रेषित हों और उनके सम्बन्ध में कर्मचारियों की प्रक्रिया तथा सुझाव उच्व प्रबन्ध तक पहुंचते रहें।

पीटरसन तथा प्लोमैन ने 'सम्प्रेषण' को प्रबन्ध का पृथक कार्य माना है। न्यूमैन तथा समर के अनुसार, "संदेशवाहन दो या दो से अधक व्यक्तियों के मध्य विचारों, तथ्यों, सम्मतियों अथवा भावनाओं का विनिमय है।"

इसी प्रकार सी.जी. ब्राउन के अनुसार, "संदेशवाहन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सूचनाओं का हस्तान्तरण है, चाहे उसके द्वारा विश्वास उत्पन्न हो या

नहीं, या विनिमय हो या नहीं, किंतु हस्तान्तरण की गयी सूचना प्राप्तकर्ता को समझ में आनी चाहिए।"

अतः स्पष्ट है कि संदेशवाहन विचारों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने, जानने व समझाने की कला है। इसका उद्देश्य विचारों का प्रसार करना है, जिसमें शब्दों, पत्रों, संकेतों तथा अन्य उपलब्ध सभी साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

9. निर्णयन (Decision-making)- प्रबन्धक जो भी कार्य करता है, वह निर्णय पर आधारित होता है। किसी भी कार्य को करने के लिए अनेक वैकल्पिक साधन हो सकते हैं किन्तु उनमें से सर्वोत्तम साधन के चुनाव के लिए ही निर्णय लेना पड़ता है। निर्णय जितना अधिक सही होगा व्यवसाय उतनी ही अधिक प्रगति करेगा। अनुभव, विवेक और अन्तर्ज्ञान आदि निर्णय करने की परम्परागत विधियाँ हैं तथा क्रियात्मक अनुसन्धान, सांख्यिकीय प्रणालियों एवं मॉडल निर्माण निर्णय की आधुनिक विधियाँ हैं। प्रबन्ध विशेषज्ञ पीटर एफ. ड्रकर के मतानुसार, "एक प्रबन्ध जो भी क्रिया करता है, वह निर्णय पर आधारित होती है। वास्तव में प्रबन्ध एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसकी पूर्ति निर्णय करने के रूप में होती है। व्यवसाय अथवा उद्योग का आकार चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, सभी में प्रबन्ध को, उसके प्रारम्भ करने से लेकर जब तक कि वह चालू रहता है, अनेक निर्णय करने पड़ते हैं। किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के अनेक वैकल्पिक साधन हो सकते हैं किन्तु उनमें से सर्वोत्तम साधन के चुनाव के लिए ही निर्णय लेना पड़ता है। लिया गया निर्णय जितना अधिक सही बैठेगा, व्यवसाय उतना ही प्रगति करेगा।

10. नवाचार (Innovation)- प्रबन्ध एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें आये दिन परिवर्तन होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में एक प्रबंधक को भी गतिशील होना आवश्यक है। अतः नवाचार का आशय है- नव विकसित तकनीक, उत्पादन का नया प्रारूप या नयी पद्धति। अर्नेस्ट डेल के अनुसार, "नवाचार प्रबन्ध का एक

पृथक एवं आवश्यक कार्य है।" उनके अनुसार, "नवाचार केवल तकनीक खोज या नवीन एवं सुधरे हुए उत्पादों तक ही सीमित नहीं है। इसके अन्तर्गत किसी भी प्रकार की नवीन कार्य-पद्धतियों को सम्मिलित किया जा सकता है जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती हैं।" आधुनिक प्रबन्ध का यह कर्तव्य है कि वह उत्पादन विधि, विपणन विधि, नियंत्रण एवं संचालन के प्रारूप, मानवीय सम्बन्ध, प्रबन्धकीय कला के क्षेत्र में निरंतर नयी पद्धतियाँ लागू करना जारी रखे। ऐसा करने पर ही व्यवसाय समय की गति के साथ टिका रह सकता है।

प्रवन्य के इन मुख्य कार्यों को निम्न प्रकार से भी समझाया जा सकता है:

नियोजन

संगठम

नवाचार Unnovation Planning

प्रबंध के कार्य (Function of Management)

नोट : कई विद्वान प्रवन्ध के सम्प्रेषण, निर्णधन, नवाचार एवं प्रतिनिधित्व वाले कार्यों को प्रबन्ध के सहायक कार्य मानते हैं जबकि सम्प्रेषण, नवाचार एवं निर्णयन प्रबन्ध के अत्यावश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य होते हैं।

(II) सहायक कार्य (Secondary Functions)- प्रबन्ध उपर्युक्त के अतिरिक्त भी कुछ कार्य करना है जं। इसके सहायक कार्य कहे जा सकते हैं। ये निम्न हैं:

1. प्रतिनिधित्व (Representation)- आधुनिक प्रबन्ध विद्वान प्रतिनिधित्व को भी प्रबन्ध का पृथक कार मानते हैं। इनका मानना है कि स्वामित्व तथा प्रबन्ध के पृथक-पृथक होने के कारण एक ओर प्रबन्धकों का दायित अपने स्वामियों के प्रति होता है, दूसरी ओर बाहय पक्षों (जैसे- सरकार, श्रम संघ, ग्राहक, नागरिक संस्थाएँ, आदि) के समक्ष भी अपनी संस्था का प्रतिनिधित्व करना होता है। इन सभी पक्षकारों के साथ अच्छे सम्बन्धों का सूत्रपात करन

तथा उन्हें बनाये रखना प्रवन्धक का एक आवश्यक कर्त्तव्य हो गया है एवं इस कर्तव्य का पालन प्रवन्ध भली प्रकार र करता भी रहा है।

2. सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility)- जिस प्रकार व्यवसाय का उद्देश्य लाभ कमाना होत है ठीक उसी प्रकार से प्रबन्ध का मुख्य कार्य व्यवसाय के लाभों को बढ़ाना होता है लेकिन प्रवन्धक को इस उद्देश्य के पूरा करने के साथ ही समाज के प्रति जवाबदेही का भी पालन करना पड़ता है। समाज को व्यवसाय द्वारा श्रेष्ठ किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध की जावें, न्यूनतम लागत में माल तैयार हो ताकि समाज को उचित मूल्य पर वस्तुएँ प्राप्त हो सकें श्रमिकों को वांछित मजदूरी दथा संगठन के लोगों को उचित पारिश्रमिक मिल सके यही प्रबन्ध का सामाजिक उत्तरदायित्ल कहलाता है।

3. पर्यावरण संरक्षण (Environment Protection)- प्रबन्ध के दायित्वों एवं कार्यों में कुछ समय पूर्व तव। केवल व्यावसायिक एवं औद्योगिक कार्यों को ही गिना जाता था, लेकिन आज समाज के हितों की रक्षा करना तथा मानव को विभिन्न प्रकार की क्षति होने से बचाना जैसे कार्यों को भी प्रबन्ध के सहायक कार्यों में सम्मिलित किया जाने लगा है। उद्यमी का मुख्य लक्ष्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है एवं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रबन्ध उसे पूर्ण सहयोग करता है लेकिन प्रबन्ध को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि इस लक्ष्य पूर्ति में उस क्षेत्र का पर्यावरण प्रदूषित न हो वहाँ की जनता के स्वास्थ्य में कोई खराबी न आवे आदि। पर्यावरण संरक्षण आज की अनिवार्य शर्त हो गयी है।

4. उत्तरदायित्व लेखांकन (Responsibility Accounting)- प्रबन्ध का एक और महत्वपूर्ण किन्तु द्वितीयक कार्य यह होता है कि वह अपने जिन उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर रहा है तथा उद्यमी को इनके निर्वाह के लिए प्रेरित कर रहा है उनका समुचित लेखांकन किया जाए। उत्तरदायित्व लेखांकन वर्तमान समय की माँग है एवं जब लाभार्जन गौण उद्देश्य बन गया है एवं सामाजिक तथा

मानवीय उत्तरदायित्व प्रमुख उद्देश्य तब इन उत्तरदायित्वों का व्यवस्थित लेखांकन कराना पूर्णतः प्रासंगिक जान पड़ता है।

5. अन्य कार्य (Other functions)- इन सबके अतिरिक्त भी प्रबन्ध के कई ऐसे अघोषित कार्य होते हैं जिन्हें विन्दुवार लिखना एवं गिनना उचित नहीं लगता एवं जिनका उल्लेख भी प्रायः नहीं किया जाता है। जैसे- मानव सदैव से साध्य रहा है किन्तु वर्तमान समय में उसे भी संसाधन मानकर उसका मूल्यांकन किया जाने लगा है तथा उसके विकास हेतु योजनाएँ बनायी जाने लगी हैं एवं इन सबके पृष्ठ में प्रबन्ध का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण कार्य करता है। साथ ही प्रबन्ध प्रतियोगिता में बने रहना, माँग में सदा बने रहना तथा पूर्ण नवीन विचारों का समावेश करके मानव मात्र। के कल्याण की परिकल्पना को साकार करना आदि कई सहायक कार्यों में प्रबन्ध संलग्न रहता है।

1.9 सार संक्षेप

प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जो किसी संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संसाधनों का प्रभावी और कुशल उपयोग सुनिश्चित करती है। यह प्रक्रिया योजना, संगठन, निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण के चरणों पर आधारित है। प्रबन्ध के कार्यों में निर्णयनिर्माण-, समस्या समाधान और संसाधनों का प्रबंधन शामिल होता है। यह मानव, भौतिक, और वित्तीय संसाधनों को संतुलित करते हुए संगठनात्मक लक्ष्यों की ओर मार्गदर्शन करता है।

मल्टीपल चॉइस प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. लाभ प्राप्त करना
   B. संसाधनों का कुशल उपयोग
   C. कर्मचारियों का प्रबंधन
   D. संगठन का विस्तार

2. प्रबन्ध प्रक्रिया का पहला चरण क्या है?
   A. निर्देशन
   B. संगठन
   C. योजना बनाना
   D. समन्वय

3. प्रबंधन एक ________ प्रक्रिया है।

4. प्रबन्ध की प्रकृति में ________ और विज्ञान दोनों सम्मिलित हैं।

1.10 मुख्य शब्द

1. **प्रबन्ध (Management)**: संगठन के संसाधनों का प्रभावी उपयोग।
2. **प्रबंध प्रक्रिया (Management Process)**: योजना, संगठन, निर्देशन, और नियंत्रण की प्रक्रिया।
3. **प्रबंध के तत्व (Elements of Management)**: योजना बनाना, संगठन करना, नेतृत्व देना, समन्वय करना।
4. **प्रबन्ध की प्रकृति (Nature of Management)**: कला और विज्ञान का सम्मिश्रण।
5. **प्रबंधन के कार्य (Functions of Management)**: संचालन, समन्वय और नियंत्रण।
6. **संसाधन प्रबंधन (Resource Management)**: मानव, वित्तीय, और भौतिक संसाधनों का कुशल प्रबंधन।

7. **निर्णय-निर्माण (Decision-Making)**: समस्या समाधान के लिए उचित विकल्प चुनना।

1.11 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: C **उत्तर 2**: B **उत्तर 2** : सतत **उत्तर 3**: कला

1.12 संदर्भ ग्रन्थ

Drucker, P. F. (2018). *Management: Tasks, Responsibilities, Practices*. HarperBusiness.

Robbins, S. P., Coulter, M., & DeCenzo, D. A. (2020). *Fundamentals of Management*. Pearson Education.

Fayol, H. (2019). *General and Industrial Management*. Martino Fine Books.

Kotler, P., & Keller, K. L. (2021). *Marketing Management*. Pearson.

Goleman, D. (2017). *Emotional Intelligence in Management*. Bantam.Mintzberg, H. (2022). *Managing the Myths of Management*. Berrett-Koehler Publishers.

1.13 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबन्ध की विभिन्न अवधारणाओं को संक्षेप में समझाइये।

2. प्रबन्ध को परिभाषित कीजिए। क्या यह एक नई अवधारणा है? आधुनिक प्रबन्ध से आपका क्या आशय है?

3."प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है न कि वस्तुओं का निर्देशन। इस कथन की विवेचना कीजिये।

4."प्रबन्ध का अर्थ है पूर्वानुमान करना और योजना बनाना, व्यवस्था करना, आदेश देना, समन्वय करना और

5.नियन्त्रण करना।" हेनरी फेयोल। इस कथन की विवेचना कीजिये और बताइये कि प्रबन्ध एक कला है अथवा विज्ञान ।6."प्रबन्ध का कार्य उपलब्ध साधनों से सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति करना है।" व्याख्या कीजिये ।

8.प्रबन्ध की प्रकृति एवं विशेषताओं की विवेचना कीजिये ।

7. प्रबन्ध को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।

8. प्रबंध की उपयुक्त परिभाषा दीजिए।

9. प्रवन्ध की प्रक्रिया क्या है? इसकी विशेषताएँ चताइये ।

10. प्रबन्ध के प्रमुख एवं सहायक कार्यों को विस्तार से समझाइये।

इकाई - 2

प्रबंध का महत्व एवं क्षेत्र

(IMPORTANCE AND SCOPE OF MANAGEMENT)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारत में प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व

2.4 प्रबंध का क्षेत्र अथवा प्रबंध के क्रियात्मक क्षेत्रों पर दृष्टिपात

2.5 प्रबन्ध विज्ञान की सीमाएँ

2.6 सार संक्षेप

2.7 मुख्य शब्द

2.8 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ सूची

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक अर्थव्यवस्था में प्रबन्ध का महत्व (Importance of Management in Modern Economy) - प्रसिद्ध प्रबन्धविद् पीटर ड्रकर ने कहा है कि 'जो कुछ आधुनिक विश्व है, वही प्रबन्ध है।' (Manage- ment is what the modern work is all about)। वर्तमान विश्व की विशेषताओं में आधुनिक जीवन, उच्च जीवन स्तर, आधुनिकतम उपभोक्ता वस्तुओं के चयन के भारी अवसर, वृहद् उद्योगों की एक लंबी श्रृंखला, आधुनिकतम यंत्र, औजार एवं मशीनें, यातायात के वृहद् संसाधन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आई

आमूलचूल परिवर्तन की बहार, आधुनिक शैक्षणिक पद्धति, वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली तथा द्रुतगति से आर्थिक विकास की ओर बढ़ते कदम-ये सभी सुव्यवस्थित, परिष्कृत और युक्तिसंगत प्रबंध के बिना सम्भव नहीं है।

विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि वे राष्ट्र ही सर्वाधिक शक्तिशाली, समृद्ध एवं खुशहाल हैं जो प्रबन्ध-ज्ञान एवं कौशल में बढ़े-चढ़े हैं। ब्रिटेन जहाँ सबसे पहले औद्योगिक क्रान्ति हुयी थी, आज जापान और पश्चिम जर्मनी की तुलना में विकास की दृष्टि से काफी पीछे है। इसका स्पष्ट कारण जापान और पश्चिम जर्मनी की प्रबन्ध-व्यवस्थाओं का तुलनात्मक रूप से अच्छा होना है। अमेरिका अपने प्रबंध कौशल की उत्कृष्टता के कारण ही विश्व की एकमात्र महाशक्ति बना हुआ है और अफ्रीका व एशिया महाद्वीप के कई राष्ट्र प्रबंध-ज्ञान के अभाव में गरीबी के दुष्चक्र को नहीं तोड़ पा रहे हैं। सच बात तो यह है कि 'पिछड़ी' और 'विकसित' अर्थव्यवस्थाएँ कहीं नहीं है। यदि कहीं कुछ है तो केवल 'सुप्रबन्धित' और 'कुप्रबन्धित' अर्थव्यवस्थाएँ हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश और समाज आज प्रबंध के महत्व को स्वीकार कर रहा है तथा प्रबंध कौशल को उन्नत बनाने में लगा हुआ है।

आधुनिक समय में प्रबंध का महत्व न केवल व्यावसायिक उपक्रमों के लिए है बल्कि व्यक्ति और समाज के लिए भी है। अतीत में देखने से ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे जो इस बात को प्रकट करेंगे कि श्रेष्ठ प्रबन्धन ने छोटे उपक्रमों को भी विस्तार एवं ख्याति की बुलन्दियों पर पहुँचा दिया है। आज विश्व में प्रबन्ध के बढ़ते हुए महत्व को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा भली प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) न्यूनतम प्रयत्नों से अधिकतम परिणामों की प्राप्ति के लिए (To attain Maximum Results with Minimum Efforts) केवल प्रबन्ध के ही द्वारा यह सम्भव है कि किसी भी क्षेत्र में श्रेष्ठतम परिणाम या उपलब्धि प्राप्त करने

के लिए न्यूनतम संसाधन एवं न्यूनतम प्रयास किये जायें। 'प्रबंध' वह कला एवं विज्ञान है जो न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा अधिकतम परिणामों को उत्पन्न करता है। हर संस्था, समाज अथवा राष्ट्र के संसाधन सीमित होते हैं और आवश्यकतायें बहुत अधिक होती हैं। इन सीमित संसाधनों के सदुपयोग द्वारा अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति का लक्ष्य प्रबंध ही प्राप्त करा सकता है। इसलिए प्रबंध का महत्व बढ़ता जा रहा है। उर्विक एवं ब्रेच का कहना है कि "कोई भी विचारधारा, कोई भी वाद, कोई भी राजनीतिक सिद्धान्त उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों के उपयोग से न्यूनतम प्रयलों द्वारा अधिकतम उत्पादन प्राप्त नहीं करा सकता। यह तो केवल अच्छे प्रबंध द्वारा ही संभव है।" यही कारण है कि प्रबंध का महत्व एक समन्वयकारी शक्ति के रूप में लगातार बढ़ता जा रहा है। यह प्रबंध की सभी संसाधनों में परस्पर समन्वय स्थापित करके न्यूनतम प्रयासों द्वारा अधिकतम परिणाम प्राप्त करने की चेष्टा करना है।

(2) उद्देश्य निर्धारित करना तथा उन्हें प्राप्त करना (Determination of objectives and to attain them)- किसी भी उद्यम की सफलता के लिए यह आवश्यक होता है कि उसके उद्देश्य सुनिश्चित एवं स्पष्ट हों। उद्देश्य निर्धारण का यह कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि जिसके लिये प्रबन्धक ही अधिक युक्तिपूर्ण ढंग से कार्य कर सकता है। प्रबन्धक व्यवसाय के लक्ष्यों को निर्धारित करता है, साथ में वह उनके मध्य सामंजस्य बनाए रखने का भी कार्य करता है। इतना ही नहीं, प्रबन्धक ही संस्था की क्रियाओं को इसके लक्ष्यों के अनुरूप बनाते हैं जिससे उनको प्राप्त करना सम्भव हो पाता है। उपक्रम के प्रारम्भिक एवं सामान्य उद्देश्य प्रायः प्रवर्तकों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। प्रबन्धक ही उपक्रम के इन सामान्य उद्देश्यों तथा कर्मचारियों के व्यक्तिगत उद्देश्यों में सामंजस्य स्थापित करते हैं तथा इन्हें प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयास करते हैं।

(3) प्रतिस्पर्धा में विजय पाना (To get victory in Competition) आज औद्योगिक एवं व्यावसायिक जगत में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा पायी जाती है, इस प्रतिस्पर्धा में वे संस्थाएँ ही सफल हो पाती हैं जिनका प्रबन्ध कुशल हो। उदारीकरण के इस दौर में बाजार भी विस्तृत होते जा रहे हैं। ग्राहकों की रुचियाँ भी बदलती जा रही हैं। इन सब दशाओं ने तीव्र प्रतिस्पर्द्धा को उत्पत्र कर दिया है। संस्थाओं के सामने अस्तित्व रक्षा का मुख्य सवाल पैदा हो गया है। इन विषम परिस्थितियों से छुटकारा केवल श्रेष्ठ प्रबन्ध ही दिला सकता है। प्रबन्ध ही एक ऐसी चालक संस्था बचौ है जो प्रतिस्पर्धी अर्थ-व्यवस्था में व्यवसाय और उद्योग की गाड़ी को सफलता की मंजिल तक पहुँचा सकती है। ग्लूयेक लिखते हैं कि "श्रेष्ठ प्रबन्ध ही किसी संस्था की सफलता और असफलता के बीच मुख्य अन्तर हुआ करता है। संस्थायें अपर्याप्त कोषों, अनुपयुक्त विपणन, अक्षम उत्पाद, डिजायन और अन्य कई कारणों से असफल हो सकती हैं। किन्तु बुनियादी प्रबन्ध कार्यों के दुर्वलतापूर्ण निष्पादन या निष्पादन के पूर्ण अभाव में वे अक्सर असफल होती हैं। इसलिए
प्रबंध स्वयं में ही किसी, कम्पनी या समाज के लिए एक तुलनात्मक लाभ हो सकता है।"

(4) कुशल एवं निर्बाध संचालन के लिए (For efficient and unobstructed operation)- कूद्ध एवं ओ. डोनेल के अनुसार "शायद प्रबन्ध से अधिक महत्वपूर्ण मानवीय क्रियाओं का कोई अन्य क्षेत्र नहीं है, क्योंकि इसका कार्य अन्य व्यक्तियों के जरिये कार्य को सम्पन्न करना होता है।" अतः स्पष्ट है कि प्रबन्ध सहयोगपूर्ण कार्य-वातावरण का निर्माण करता है और संस्था के निर्विघ्न संचालन को सम्भव बनाता है। व्यवसाय को बिना किसी बाधा के कुशलतापूर्वक चलाने के लिए 'प्रबन्ध' भविष्य का विश्लेषण करता है, होने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगाता है तथा उनके प्रभावों का मूल्यांकन करता है। योजनाओं का निर्माण करता है, संगठन की संरचना करता है, क्रियाओं का

निर्देशन करता है, नियन्त्रण स्थापित करता है, कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है। परिणामों का मूल्यांकन करता है। और सभी संबद्ध वर्गों के हितों का संवर्धन करता है।

(5) उत्पादन का विशाल एवं जटिल पैमाना (Large and Complicated Scale of Production)– आधुनिक युग में व्यावसायिक उपक्रम विशाल पैमाने के तथा जटिल प्रकृति के हैं। उनके कुशल संचालन हेतु प्रभारी प्रबन्ध की जरूरत होती है। वर्तमान युग के विशाल बहुराष्ट्रीय निगम अद्भुत प्रबन्ध कौशल के प्रतीक हैं। कभी-कभी थोड़ी-सी असावधानी यूनियन कार्बाइड में हुई भोपाल गैस काण्ड जैसा भयानक रूप धारण कर लेती है। प्रवन्ध की कुशलता से इस प्रकार के विशाल एवं जटिलतम उत्पादन के पैमानों का संचालन सहन एवं सफल हो सकता है।

(6) **व्यवसाय को जीवन एवं गति देने के लिए** -'प्रबंध' व्यवसाय को गति देने वाला जीवनदाता तत्व है क्योंकि यह प्रगति के लिए सभी सम्बद्ध वर्षों को प्रोत्साहित करता है। पीटर एफ. ड्रुकर ने लिखा है कि "प्रबन्ध व्यवसाय का गतिशील जीवनदाता तत्व है, जिसके नेतृत्व के अभाव में उत्पत्ति के साधन केवल साधन मात्र ही रह जाते हैं और कभी भी उत्पादक नहीं बन पाते।" प्रवन्ध उत्पादन के साधनों को संयोजित करता है और उनको नेतृत्व प्रदान करता है। इसलिए वर्तमान में व्यवसायरूपी देह के मस्तिष्क और प्राण संचारक शक्ति के रूप में प्रबन्ध का महत्व बढ़ता जा रहा है।

(7) **व्यक्तियों के विकास हेतु (For Development of Persons)** लारेन्स एप्पले का यह कथन यथार्थ ही है कि "प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है।" प्रबन्ध एक मानवीय क्रिया है, यह किसी विशिष्ट समूह के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनकी क्रियाओं का मार्गदर्शन एवं नियन्त्रण करता है। प्रबन्ध यह अच्छी तरह से जानता है कि कर्मचारी ही मशीनें चलाते हैं, वस्तुएँ बेचते हैं, पूँजी का उपयोग करते हैं तथा उत्पादन में सक्रिय सहयोग देते हैं

अतः इनका पूर्णतः कुशल एवं योग्य होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रबंध इनके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रशिक्षण, पदोन्नति, कार्य-विस्तार, कार्य-वृद्धि (Job cnrichment) आदि तरीके अपनाकर कर्मचारियों का विकास करता है जिससे उनको कार्य संतुष्टि मिलती है और मनोबल बढ़ता है और एक स्थायी सन्तुष्ट कर्मचारी शक्ति का निर्माण होता है। ऐसी कर्मचारी शक्ति ही संस्था की महान् शक्ति होती है। इसलिए प्रबंध अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(8) **वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुधारों का लाभ लेने के लिए (For taking benefit of scientific and technical improvements)** विज्ञान और प्रौद्योगिकी का निरन्तर विकास उत्पादन, विपणन और मानवीय सम्बन्धों के लिए नई-नई चुनौतियाँ खड़ी कर देता है, जिनका प्रत्युत्तर कुशल प्रबन्ध द्वारा ही सम्भव है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति ने जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा है। व्यवसाय एवं उद्योग का क्षेत्र भी वैज्ञानिक प्रगति तथा तकनीकी परिवर्तनों के प्रभावों से अपने को नहीं बचा पाया है। आज उत्पादन से लगाकर वस्तुओं के विक्रय तक और उसके पश्चात् भी विक्रयोपरान्त सेवाएँ उपलब्ध करने के क्षेत्र में इन तकनीकी एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने इतना अधिक प्रभाव डाला है कि इन प्रभावों पर काबू पाना काफी कठिन हो गया है। उत्पादन के क्षेत्र में वैज्ञानिक उन्नति एवं तकनीकी आविष्कारों ने उत्पादन की विधियों में आमूलचूल परिवर्तन ला दिये हैं। आज मानव-श्रम का स्थान स्वचालित मशीनें ग्रहण करने लगी हैं, जिन्होंने बेकारी जैसी समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है। विपणन, यातायात, हिसाब लेखन आदि क्षेत्रों में भी वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिवर्तनों ने नियन्त्रण एवं समन्वय की नवीन समस्याओं को जन्म देना प्रारम्भ कर दिया है। व्यवसाय एवं उद्योग के क्षेत्र में अभियान्त्रिक (Engineering) घटकों के प्रवेश ने पुरातन प्रबन्ध व्यवस्थाओं को अनुपयोगी प्रमाणित करना प्रारम्भ कर दिया है। इसलिए इन वैज्ञानिक एवं

तकनीकी परिवर्तनों का लाभ उठाने और उनके साथ व्यवसाय व उद्योग का तालमेल बिठाने के दृष्टिकोण से प्रबन्ध का महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

(9) सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (For Achieving Social Objects)- आज विश्व के सभी राष्ट्र आर्थिक-सामाजिक प्रगति, गुणात्मक-विकास, रोजगार अवसरों की वृद्धि, पूँजी निर्माण, दरिद्रता निवारण, अपराध नियन्त्रण, स्वस्थ प्रशासन आदि के लिए प्रयत्नशील हैं। विकासशील राष्ट्रों का भविष्य तो इन उद्देश्यों की सफलता पर ही निर्भर है। इनकी प्राप्ति हेतु क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर योजनाएँ एवं कार्यक्रम तैयार किये जा रहे हैं तथा संस्थाएँ कार्यशील हैं। योग्य एवं कुशल प्रबन्धकों पर ही इन योजनाओं एवं संस्थाओं की सफलता निर्भर है।

पीटर एफ. ड्रुकर लिखते हैं कि "व्यवसाय हमारे समाज का धन-सृजन करने वाला अंग है। प्रबंध को चाहिए कि वह आर्थक क्रियाओं की जोखिम को दूर करने के लिए पर्याप्त धनार्जन करे और धन उत्पादक साधनों का संरक्षण करे। प्रबंध का यह उत्तरदायित्व है कि वह व्यवसाय को इस तरह संचालित करे जिससे कि सामाजिक मूल्यों एवं संबंधों पर किसी प्रकार की आँच न आये।" अतः प्रबन्ध का महत्व सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए भी अति आवश्यक है।

(10) आधुनिक व्यवसाय का सर्वोपरि तत्व (The best element of modern business) अलग-अलग युगों में अलग-अलग साधनों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गई है। कभी प्राकृतिक साधन, कभी पूँजी और कभी श्रम को सर्वोच्च महत्व दिया गया है। वर्तमान युग में व्यवसाय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व प्रबन्ध है, जिसके अभाव में अन्य सारे साधन अप्रयुक्त ही पड़े रहते हैं। प्रबन्ध उद्योग, व्यापार एवं अन्य आर्थिक तथा गैर-आर्थिक संस्थाओं का प्राणदायक तत्व है। वह अन्य सभी साधनों में समन्वय स्थापित करता है। इस सन्दर्भ में प्रो. रॉबिन्स का यह कथन उल्लेखनीय है कि "कोई भी व्यवसाय स्वयं नहीं

चल सकता, चाहे वह संवेग (momentum) की स्थिति में क्यों न हो। उसके लिए इसे नियमित उद्दीपन (Repeated Stimulus) की आवश्यकता पड़ती है।"

इस उद्दीपन का एकमात्र स्रोत होता है व्यवसाय का मलिस्क अर्थात् कुशल प्रबन्ध ।

(11) श्रम-समस्याओं के सन्तोषजनक ढंग से निवारण हेतु (For satisfactory removal of labour problem) - वर्तमान औद्योगिक एवं व्यावसायिक जगत में श्रम और पूँजी के बीच के संघर्ष अत्यधिक भयावह रूप धारण कर चुके हैं। हिंसा, तोड़फोड़, घेराव, प्रदर्शन, हड़तालें तथा तालाबंदियाँ आम बात हो चुकी हैं। इन सबका दुष्प्रभाव संस्था, समान, कर्मचारी वर्ग और राष्ट्र पर पड़ता है। कोई भी व्यवस्था श्रम अशांति को एक लम्बे समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकती। 'प्रबंध' श्रम एवं पूँजी के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने वाली एक एजेन्सी है। यह एक ऐसी प्रतिनिधि संस्था है जो व्यवसाय एवं उद्योग से सम्बद्ध सभी वर्गों के हितों का संरक्षण करने में सक्षम है। इसलिए प्रबंध की आवश्यकता एवं महत्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

(12) संस्था के बाहय एवं आन्तरिक पक्षों में समन्वय स्थापित करने कि लिए (To establish co-ordination between external and internal parties of any institution)- व्यावहारिक संस्थाओं के आंतरिक पक्षों, श्रभिकों तथा अधिकारियों का बाहय पक्षों से अर्थात् अंशधारियों, श्रम संघों, सरकार तथा समाज में समन्वय स्थापित करने हेतु प्रबन्धकों का मार्गदर्शन तथा नियन्त्रण आवश्यक है। आन्तरिक पक्षों से आशय उन कर्मचारियों एवं अधिकारियों से है जो संस्था के विभिन्न पदों पर आसीन हैं। इन कर्मचारियों एवं अधिकारियों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने में प्रबन्ध का महत्वपूर्ण हाथ होता है। इसके विपरीत, बाहरी पक्षों से आशय अधिकारियों, सरकार, श्रम-संघों एवं समाज के अन्य वर्गों आदि से है। इनमें समन्वय भी

प्रवन्ध द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है। न्यूमैन एवं समर (Newman and Summer) के शब्दों में, "प्रबंधक उपक्रम की आन्तरिक एवं बाहरी क्रियाओं में समन्वय स्थापित करते हैं तथा उपक्रम से सम्बन्धित व्यक्तियों को एक सामान्य उद्देश्य के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित करते हैं।"

(13) निर्णयन, नियन्त्रण एवं नेतृत्व के लिए (For decision-making, control and leadership)- आज का व्यवसाय पहले के व्यवसाय की तरह छोटा और सरल नहीं रहा है। उसका आकार बढ़ता गया है और तकनीकी हो गया है। सरकारी कानूनों एवं नियमों का पालन करना भी जटिल कार्य बन गया है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और लड़ाकू श्रम संघों के सदस्यों से काम लेना चुनौती बनता जा रहा है। देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मान्यतायें तेजी से बदल रही हैं। भविष्य अत्यधिक अनिश्चित एवं अनिर्णायक बनता जा रहा है। इन परिस्थितियों ने प्रबन्ध के महत्व को बढ़ा दिया है क्योंकि 'प्रबंध' जैसी निर्णयन, नियन्त्रक और नेतृत्वकारी शक्ति ही आज की समस्याओं से छुटकारा दिला सकती है। प्रबन्ध ही वह समन्वयात्मक तथा सृजनात्मक शक्ति है जो कार्य करने वाले समूहों को नये विचार, नई कल्पनायें, नई दृष्टि और नये लक्ष्य प्रदान कर सकती है।

(14) कार्य संस्कृति की स्थापना के लिये (To establish the work culture)- 'प्रबंध' कार्य ही पूँजी की पवित्र भावना का विकास करता है। परिणामस्वरूप, संस्थाओं में कार्य-संस्कृति की स्थापना होती है। उत्पादन बढ़ा है। राष्ट्र आत्मनिर्भर और खुशहाल बनता है। किसी आर्गरिस लिखते हैं कि "प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों के बी पारस्परिक समझ और सहयोग की भावना का विकास कर ही सुखी एवं समृद्ध समाज स्थापित किया जा सकता है। किन्तु यह समझ और सहयोग की भावना बिना कार्य-संस्कृति के निर्माण के पैदा नहीं हो सकती। प्रभावी प्रबन् कार्य-संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसलिए वर्तमान में प्रवन्ध का महत्व बढ़ता जा रहा है

(15) औद्योगिक समाज का नेतृत्व (Leadership of Industrial Society)- सामन्तवादी युग में भूस्वाम वर्ग व पूँजीवादी युग में पूँजीपति वर्ग सबसे प्रभावशाली वर्ग बन गया, किन्तु वर्तमान औद्योगिक समाज का नेतृत् निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रबन्धक कर रहे हैं क्योंकि उन्हीं के हाथों में समस्त महत्वपूर्ण शक्तियाँ केन्द्रित हो ग हैं। भारतीय सन्दर्भों में टाटा समूह, बजाज, रिलायंस एवं बिरला समूह के औद्योगिक समाज का नेतृत्व कुशल प्रबन द्वारा ही किया जा रहा है।

(16) राष्ट्र के आर्थिक विकास एवं समृद्धि के लिए (For economic development & progress o Nation)- प्रबन्धकों को आर्थिक विकास का जनक कहा गया है। उत्पादन के साधनों में भूमि, श्रम, पूँजी, साहस, मशी तथा प्रबन्धक को सम्मिलित किया जाता है। इन साधनों में 'प्रबंध' ही एक ऐसा साधन है जो अन्य साधनों को संयोजित करता है और उत्पादक बनाता है। प्रबन्ध ही एक ऐसा घटक है जो इन साधनों की कार्यकुशलता को बढ़ाता है जिर पर राष्ट्र की समृद्धि और खुशहाली निर्भर करती है। विश्व के सर्वाधिक समृद्ध देशों की खुशहाली और प्रगति क रहस्य उनकी प्रबन्ध कुशलता में छिपा हुआ है। समाज के सदस्यों को अधिकाधिक रोजगार देना, जीवन-स्तर ऊँच करना, साहस का सृजन करना, वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करना, उत्तरदायित्व की भावनाओं को विकसित करना, पूँजी निर्माण को बढ़ावा देना, आयातों को कम करना और निर्यातों को बढ़ावा देना, राष्ट्रीय योजनाओं एवं नीतियों में सक्रिय सहयोग करना आदि वे कार्य हैं जो प्रबन्ध द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं और जिनसे राष्ट्र का आर्थिक विकास होता है। इसलिए। प्रबन्ध का महत्व देश एवं समाज स्वीकार कर रहा है।

(17) अन्य क्षेत्रों में महत्व (Importance in other areas)- प्रबन्ध का महत्व उपर्युक्त विन्दुओं के द्वार यद्यपि स्पष्ट हो जाता है लेकिन प्रबन्ध एक व्यापक महत्व वाला विषय है जो उद्योग, राष्ट्र, उपभोक्ता, समाज एवं

विश्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण साबित होता जा रहा है। प्रबन्ध की उपयोगिता रोजगार के सृजन के लिए, पूँजीनिर्माण में वृद्धि के लिए, तीव्र आर्थिक विकास के लिए तथा राष्ट्र के चहुँमुखी विकास के लिए भी होती है। अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'प्रबन्ध' स्थिति का बुद्धिमत्तापूर्ण आकलन करता है, लक्ष्यों का सोच-समझकर चुनाव करता है, इनकी प्राप्ति हेतु व्यूह-रचना तैयार करता है, संसाधन जुटाता है, निश्चित उद्देश्यों के अनुरूप उनका संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण करता है एवं इस हेतु अन्य लोगों को प्रेरित करता है। अतः आधुनिक युग में प्रबन्ध की महत्ता और बढ़ गयी है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारत में प्रबन्ध की आवश्यकता और उसके महत्व को समझ सकें।
2. प्रबन्ध के क्षेत्र और इसके क्रियात्मक क्षेत्रों का विश्लेषण कर सकें।
3. प्रबन्ध विज्ञान की सीमाओं का मूल्यांकन कर सकें।

2.3 भारत में प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of Management in India)

भारत की असंख्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठनात्मक इकाइयों के सभी रोगों का इलाज उनके प्रबन्ध सुधार में निहित है। भारत में सर्वांगीण विकास की शक्तियों को प्रेरित करने हेतु सबसे महत्वपूर्ण घटक प्रबन्ध है। हमारे देश की विशिष्ट परिस्थितियों में प्रवन्ध तथा प्रबन्धकीय शिक्षा का महत्व निम्न प्रकार से स्पष्ट हो जाता है--

1. आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए (To speed up economic development) भारत में प्रबन्ध का महत्व इसलिए भी अत्यधिक है कि इसकी विकासशील अर्थव्यवस्था में अनेकों आर्थिक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है एवं जिसके कारण आर्थिक विकास अवरुद्ध हो रहा है। अतः यदि उपलब्ध साधनों का नियोजित विकास करके श्रेष्ठतम प्रबन्ध व्यवस्था कायम कर दें तो विकास को द्रुत गति दी जा सकती है। कुशल प्रबन्ध के अभाव में लगभग 40% व्यक्ति गरीबी की रेखा के नीचे रह रहे हैं और देश आर्थिक सामाजिक विकास के उच्च स्तरों पर नहीं पहुँच पा रहा है। यदि हम चाहते हैं कि गरीबी शीघ्र हटे तथा बन-जीवन को कुशल सेवायें प्राप्त हों तो हमें अपनी संस्थाओं के प्रबन्ध को कुशल बनाना होगा और प्रबन्ध सिद्धान्तों को अपनाकर कार्य करना सीखना होगा। पीटर एफ. ड्रकर ने विकासमान राष्ट्रों के लिए विकसित राष्ट्रों की तुलना में प्रबन्ध को आर्थिक महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने कहा है कि "प्रबन्ध आर्थिक एवं सामाजिक विकास का प्रामाणिक घटक है।" विकास को बचत एवं विनियोग का कार्य मानने वाला परम्परागत आर्थिक विचार पर्याप्त नहीं है।

2. आधारभूत संरचना के निर्माण हेतु (For the creation of fundamental framework)- भारत में आधारभूत सुविधाओं जैसे औद्योगिक शति, परिवहन एवं संचार, श्रौधोगिक आदि की समुचित व्यवस्था के द्वारा ही उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। कुशल प्रबन्ध के बिना यह सम्भव नहीं है। आज सम्पूर्ण विश्व पूँजीवादी लक्ष्यों के निर्धारण में लगा हुआ है। पूँजीवादी लक्ष्यों की प्राप्ति तभी सम्भव है जबकि देश की आधारभूत सुविधाएँ विकसित हो, अतः कुशल प्रबन्धन के द्वारा बुनियादी सुविधाओं का विकास किया जा सकता है ताकि पूँजीवादी लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

3. राष्ट्रीय संसाधनों के विदोहन के लिए (For exploitation of national resources)- हमारे देश में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता विद्यमान है।

लेकिन इन संसाधनों का पूर्ण विदोहन नहीं हो पा रहा है। देश के साधनों का विदोहन हम पूरी कुशलता के साथ नहीं कर पा रहे हैं। गरीबी और अभावों का दुष्चक्र भी हम नहीं तोड़ पा रहे हैं। यह तभी सम्भव है जबकि प्रबन्ध कौशल एवं ज्ञान को बढ़ाने की दिशा में विकास किया जाये। इसलिए सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रबन्ध के महत्व को समझे, स्वीकारें और पेशेवर प्रबन्ध के हाथों में राष्ट्र के आर्थिक साधनों के विदोहन कार्य को सौंप दें।

4. उत्पादकता में वृद्धि के लिए (For increasing of productivity)- कुशल प्रबन्ध द्वारा उत्पादन के साधनों में उचित समन्वय स्थापित करते हुए माल व मशीनों के दुरुपयोग को रोककर उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है जिसको आज देश में विशेष आवश्यकता है। आज भी भारत में कई ऐसे औधोगिक घराने हैं जो परम्परागत तरीके के न्यूनतम उत्पादन करके अपना काम चला रहे हैं, लेकिन वर्तमान वैश्विक औद्योगिक प्रगति की दौड़ में बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि तीव्र औद्योगिक उत्पादन एवं आधुनिक तकनीक अपनाकर इस प्रगति दौड़ में आगे निकल सकें।श्रेष्ठ प्रबन्धकीय कौशल द्वारा यह सम्भव हो सकता है।

5. पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता के लिए (For success of five year plans)- हमारे देश में नियोजित आर्थिक विकास हेतु सन् 1951 से ही पंचवर्षीय योजना के मार्ग को अपनाया गया है। वर्तमान में ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना लागू है। इन योजनाओं के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में योग्य प्रबन्धकों को आवश्यकता है। प्रबन्ध-क्षेत्र में हुये सर्वेक्षण बतलाते हैं कि इंग्लैण्ड में 12, अमेरिका में 17 तथा भारत में 100 कर्मचारियों के पीछे एक प्रबन्धक है। एस. रामास्वामी ने अपने लेख में बतलाया है कि हमारे देश को विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रतिवर्ष 80 हजार प्रबन्धकों की जरूरत है जबकि देश में केवल 46 हजार प्रबन्धक हो प्रतिवर्ष

तैयार हो पा रहे हैं। कितने खेद की बात है कि अमेरिका को प्रबन्ध एसोसियेशन अकेले हो प्रतिवर्ष डेढ़ लाख प्रबन्धक तैयार करती है और हमारी सरकार व कई संस्थायें मिलकर भी पर्याप्त मात्रा में कुशल प्रबंधक तैयार नहीं कर पा रही हैं।

6. रोजगार के अवसरों में वृद्धि (To increase employment opportunities)- भारत की विशाल एवं मूल्यवान सम्पदा का सदुपयोग कुशल प्रबन्ध द्वारा ही सम्भव है, प्रबन्धकीय क्षमता का पूर्ण उपयोग करके रोजगार के अवसरों में वृद्धि को जा सकती है ताकि देश की बेरोजगारी की समस्या हल हो सके। हमारे देश को जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। परिणामस्वरूप बेकारी की स्थिति भयंकर होती जा रही है। प्रबन्ध बेरोजगारी की समस्या के हल में बहुत सहयोग कर सकता है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक संगठनों के समुचित विकास-विस्तार द्वारा बेरोजगारी को कुछ कम किया जा सकता है। उपक्रमों में नवाचार कार्यक्रमों को लागू करके और श्रम-प्रधान टेक्नोलॉजी का कार्यकुशल उपयोग करके प्रबन्ध रोजगार के अवसरों को बढ़ा सकता है।

7. सार्वजनिक उपक्रमों के कुशल संचालन हेतु (For the skill operation of public enterprises) - देश में सार्वजनिक उपक्रमों का विस्तार तेजी से हो रहा है, लेकिन कुशल प्रबन्ध के अभाव में यह उपक्रम अपने उद्देश्यों की पूर्ति में असफल रहे हैं। इनके घाटे से उबरने एवं इनकी उत्पादकता बढ़ाने की दृष्टि से प्रबन्धकों की सेवाएँ उपयोगो हो सकती हैं। हमारा राष्ट्र मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश है। यहाँ निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र, दोनों को देश के आर्थिक विकास में सहयोग करने का मौका दिया गया है। किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थव्यवस्था में नियन्त्रणकारी स्थिति पर पहुँचाना सरकार का प्रमुख लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रबन्ध को आवश्यकता एवं महत्ता अवर्णनीय है। कुशल एवं योग्य प्रबन्धक ही सार्वजनिक उपक्रमों के सफल संचालन में विशिष्ट भूमिका निभा सकते हैं और सार्वजनिक धन में अभिवृद्धि कर सकते

हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कई सार्वजनिक उपक्रम कुशल प्रवन्धकों के अभाव में घाटे में चल रहे हैं। इन उपक्रमों में सिविल सेवा के अधिकारी उच्च पदों पर कार्य कर रहे हैं। इनके स्थान पर कुशल पेशेवर प्रबन्धकों की नियुक्ति करना अत्यन्त आवश्यक होता जा रहा है।

8. आधुनिक तकनीकों को अपनाने हेतु (For adopting modern technology)- आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी विधियों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए वैज्ञानिक प्रबन्ध आवश्यक है। भारत के परम्परागत औद्योगिक ढाँचे में परिवर्तन प्रबन्ध के माध्यम से ही सम्भव है। देश को वर्तमान सरकार 21 वीं सदी की ओर ले जाना चाहती है। यह लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जबकि विश्व में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान और टेक्नोलॉजी का लाभ वस्तुओं, सेवाओं तथा सुविधाओं के रूप में समाज को उपलब्ध कराया जाये। इस महान दायित्व का निर्वाह करने के लिए प्रबन्ध आवश्य और महत्वपूर्ण है।

9. उपभोक्ताओं के हित संवर्द्धन हेतु (For culturing the interest of consumers)- वर्तमान समय किसी भी उपक्रम का उद्देश्य केवल लाभ कमाना नहीं होता, बल्कि उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना भी उपक्रम व मूख्य लक्ष्य होता है। भारत की अधिकांश जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। ऐसे में यर के उपभोक्ताओं को सस्ती, टिकाऊ एवं श्रेष्ठ किस्म की वस्तुएँ उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना आवश्यक होता है। य तभी सम्भव है जब श्रेष्ठ प्रबन्ध कौशल द्वारा वस्तुओं की लागतों में कमी करके उपभोक्ताओं को श्रेष्ठतम उत्पादन मुहैय कराया जावे।

10. पूँजी निर्माण को बढ़ावा देने के लिए (For encouraging capital forming) - किसी भी देश क आर्थिक विकास तभी हो पाता है जबकि उसके पास पूँजी पर्याप्त मात्रा में हो। इस पूँजी निर्माण के कार्य को प्रबन्ध हं गति दे सकता है। यदि प्रबन्ध संस्था का लाभप्रद संचालन करे, उत्पादन-विक्रय बढ़ाने, कोषों का निर्माण करे औ आकर्षक ब्याज दरें या लाभांश घोषित करें तो पूँजी

निर्माण को बढ़ावा मिलता है। देश में बचत तथा विनियोजन क वातावरण प्रोत्साहित होता है। हमारे देश में पूँजी निर्माण की गति धीमी है। इसे तेज करने के लिए 'प्रबन्ध' आवश्यतक तथा महत्वपूर्ण है।

11. श्रम एवं पूँजी में मधुर सम्बन्ध हेतु (For the sweet mutual relation between labour and capital) - प्रबन्ध, श्रम एवं पूँजी के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सेतु का काम करता है। भारत में श्रम एवं पूँजी के सम्बन्ध मधुर एवं सन्तोषजनक नहीं हैं। इस दिशा में सुधार के लिए प्रबन्ध उपयोगी भूमिका निभा सकत है। किसी भी उपक्रम के कर्मचारियों की कार्यक्षमता एवं कुशलता उसके प्रवन्ध पर निर्भर करती है। यदि भारतीय श्रमिकों को कार्यक्षमता में वृद्धि करनी है तो नई वैज्ञानिक प्रवन्ध व्यवस्था को अपनाना जरूरी है।

12. विदेशी मुद्रा कमाने के लिए (For earning foreign currency) भारत को अपने बहुमुखी विकार के लिए भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा की जरूरत है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक संगठनों का प्रबन्ध कुशल आयात-निर्यात व्यवस्थाओं द्वारा विदेशी मुद्रा की जरूरतों को पूरा कर सकता है। इसलिए कुशल प्रबन्ध हमारी वर्तमान की एक प्रमुख आवश्यकता है। आन उदारीकरण के दौर में भारत के कई प्रबन्ध वर्ग अपनी कुशल नीति निर्धारण करके निर्माण संवर्धन कर रहे हैं तथा परिणामतः भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित कर पाने में सफल हो रहे हैं।

इस प्रकार भारत में प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व इन बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट होता है। परम्परागत उत्पादन प्रणाली को बदलकर नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने के लिए, उत्पादन को भारी लागतों में कमी करके न्यूनतम लागत पर श्रेष्ठतम उत्पादन करने के लिए एवं भारत की तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या को रोजगार के अवसरों की प्राप्ति कराने के लिए निःसन्देश श्रेष्ठ एवं कुशल प्रबन्ध का होना नितान्त आवश्यक है।

2.4 प्रबंध का क्षेत्र (Scope of Management) अथवा प्रबंध केक्रियात्मक क्षेत्रों पर दृष्टिपात (An Overview on Functional Areas of Management)

प्रबन्ध की आवश्यकता सभी प्रकार के व्यावसायिक तथा गैर व्यावसायिक संगठनों में होती है, ज्यों-ज्यों व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्रियाओं का विस्तार होता जा रहा है, प्रबंध का क्षेत्र अधिक व्यापक होता जा रहा है। व्यवसाय के विकास तथा विशिष्टीकरण के कारण प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र उत्पादन, वित्त, विपणन तथा सेविवर्गीय प्रबन्ध तक ही सीमित न रहकर और अधिक विस्तृत हो गया है। टेलर (Taylor) के अनुसार "वैज्ञानिक प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्त समस्त मानवीय क्रियाओं पर लागू होते हैं; चाहे वह कार्य व्यक्तिगत हो अथवा बड़े निगमों का कार्य हो।"

प्रबन्ध के अन्तर्गत सामूहिक गतिविधियों का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए नियोजन, संगठन, निर्देशन, अभिप्रेरण, समन्वय तथा नियन्त्रण किया जाता है। इसमें मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के कुशल उपयोग का भाव भी सम्मिलित है।

प्रबन्ध के क्षेत्र का वर्णन जटिल है फिर भी उसके प्रमुख क्रियात्मक क्षेत्र निम्नानुसार बताये जा सकते हैं..

1. कार्मिक प्रबन्ध (Personnel Management)- प्रबन्ध का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। व्यापक रूप से इसे आजकल मानव संसाधन विकास के नाम से भी पुकारा जाता है। इसके अन्तर्गत किसी संस्था की कार्मिक अथवा श्रम शक्ति से सम्बन्धित बातें सम्मिलित हैं जैसे- पूर्वानुमान, चयन, भर्ती, नियुक्ति, कार्यभार सौंपना, प्रशिक्षण,

पदोन्नति, सेवानिवृत्ति, पदावनति, छंटनी, सेवा समाप्ति, सुरक्षा, कल्याण, भूमि भुगतान, मनोबल उन्नयन, सम्बन्धों में सुधार आदि।

अतः कर्मचारी प्रबन्ध के निम्नलिखित कार्य हैं:

(अ) श्रम शक्ति का अनुमान लगाना,

(ब) आवश्यकतानुसार श्रमिक भर्ती एवं चयन करना,

(स) कर्मचारियों एवं अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करना,

(द) पदोन्नति की विधि का निर्धारण एवं पदोन्नति के प्रभाव की समीक्षा करना,

(इ) श्रम कल्याण सम्बन्धी कार्यों की व्यवस्था करना,

(फ) संस्था में पूँजी व श्रम का सम्बन्ध बनाए रखना एवं उनमें उन्नति करना,

(ह) कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति, छंटनी व अवनति करने के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करना और संस्था पर इसके प्रभाव का अध्ययन करना।

2. वित्तीय प्रबन्ध (Financial Management)- वित्तीय साधनों में अनुकूलतम उपयोग हेतु इसमें इन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है- वित्तीय पूर्वानुमान, वित्तीय नियोजन, बजटिंग धनराशि का एकत्रीकरण, लेखा पालन, लागत नियन्त्रण, आय का प्रबन्ध, बीमा, बैंकिंग, वित्तीय समस्याओं का समाधान आदि। वित्तीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य निम्न हैं:

(अ) संस्था के लेखे रखना और उनका लेखा परीक्षण करना,

(ब) आर्थिक एवं वित्तीय पूर्वानुमान लगाना,

(स) लागत नियन्त्रण करना,

(द) बजट बनाना और नियन्त्रण की विधि का प्रयोग करना,

(इ) आँकड़े एकत्रित करना और उन पर नियन्त्रण करना,

(फ) पूँजी लागत एवं अन्य वित्तीय समस्याओं का अध्ययन एवं उनका समाधान करना ।

3. उत्पादन प्रबन्ध (Production Management)- इसके अन्तर्गत उत्पादन नियोजन एवं नियन्त्रण, कार्य-विश्लेषण, गुण-नियन्त्रण व निरीक्षण, समय व गति अध्ययन, सामग्री का प्रबन्ध आदि बातों को शामिल किया
जाता है। इस क्षेत्र के प्रमुख कार्य निम्न हैं-

(अ) संस्था में किए जाने वाले उत्पादन कार्यों के लिए पूर्वानुमान लगाना,

(ब) उत्पादित माल के लिए आवश्यक व समय पर सामग्री की व्यवस्था करना,

(स) उत्पादित माल के स्तर का निर्धारण करना,

(द) उत्पादन के सम्बन्ध में नियोजन, नियन्त्रण एवं कार्य विश्लेषण करना इत्यादि,

(इ) उत्पादन विभाग से सम्बन्धित कर्मचारियों की आवश्यकता का निर्णय लेना, उनकी भर्ती एवं चयन के सम्बन्ध में योग्यता एवं अनुभव निश्चित करना और उन्हें उनके कार्य पर लगाना,

(फ) गति एवं समय अध्ययन,

(ह) उत्पादन से सम्बन्धित विधि एवं कार्यविधि का निर्धारण।

3. क्रय प्रबन्ध (Purchase Management)- इसके अन्तर्गत स्टोर्स सामग्री, कच्चे माल तथा मशीनों को खरीदने के लिए क्रय नियोजन, टेण्डर मँगवाना, आदेश भेजना, अनुबन्धन करना, सामग्री निर्गमित करना, सामग्री नियन्त्रण आदि का समावेश किया जाता है। बड़ी संस्थाओं में सामग्री प्रबन्ध हेतु पृथक विभाग बना दिया जाता है। क्रय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य निम्न हैं:

(अ) क्या खरीदना है? एवं कैसा क्रय करना है? इसका नियोजन करना।

(ब) माल या सामान क्रय करने के लिए निविदा बुलाना।

(स) श्रेष्ठ किस्म का माल एवं उचित लागत वाले समूह को क्रयादेश देना।

(द) इन क्रय किये गये सामानों का समुचित सामग्री प्रबन्ध करना ।

4. कार्यालय प्रबन्ध (Office Management) इस प्रवन्ध के अन्तर्गत कार्यालय की व्यवस्था, साज-सज्जा, कार्यलय उपकरणों की व्यवस्था, सन्देश वाहन के साधनों का आधुनिकीकरण एवं दस्तावेजों का कम्प्यूटरीकरण आदि सम्मिलित किये जाते हैं। कार्यालय प्रबन्ध सम्बन्धी प्रमुख कार्य निम्न हैं:

(अ) कार्यालयीन स्टॉफ के कार्यालय में आने-जाने का समय नियत करना।

(ब) कार्यालय में ऐसा वातावरण तैयार करना जिससे श्रेष्ठ कार्य-संस्कृति विकसित हो सके।

(स) आधुनिकतम संचार साधनों को प्रति स्थापित करना तथा सभी फाइलों एवं दस्तावेजों का कम्प्यूटरीकरण करने उन्हें अंकेक्षित कराने की व्यवस्था करना।

(द) कार्यालय अधीक्षक सहित सभी कर्मचारियों का मनोबल बढ़ाने हेतु उन्हें आर्थिक एवं अन्य प्रकार से अभिप्रेरित करना।

(इ) कार्यालय के समस्त घटकों में समन्वय स्थापित करके उनसे श्रेष्ठतम कार्य लेना।

(फ) सभी स्टॉफ की कार्यकुशलता बढ़ाना आदि।

5. विकास प्रबन्ध (Development Management) इसके अन्तर्गत संस्था के विकास सम्बन्धी समस्त विषयों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे प्रयोग, शोध आदि। विकास प्रबन्ध के प्रमुख कार्य निम्न हैं:

(अ) नियोजन करना ।

(ब) औद्योगिक एवं तकनीकी क्षेत्र में नए विचार लागू कराना। अतः उत्पादन क्रिया में प्रयोग में आने वाले माल यन्त्र, मशीनरी आदि के विषय में नए आविष्कारों एवं अनुसन्धानों का लाभ उठाना।

(स) अपने उत्पादित माल के विभिन्न विकल्पों पर विचार करना और संस्था में उनके उत्पादन की सभी सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

प्रवन्ध का क्रियात्मक क्षेत्र और भी कई दिशाओं में फैला हुआ है जिनमें निम्न क्षेत्र प्रमुख हैं :

6. वितरण प्रबन्ध (Distribution Management) इसके अन्तर्गत वस्तु विपणन, मूल्य निर्धारण, विपणन की जोखिमें व उनकी रोकथाम, विज्ञापन एवं विक्रय कला, आन्तरिक बाजार एवं निर्यात सम्बर्द्धन एवं विपणन अनुसन्धान आदि को शामिल किया जाता है।

7. परिवहन प्रबन्ध (Transport Management)- परिवहन प्रबंध के अन्तर्गत परिवहन के साधनों की व्यवस्था करना, माल की पैकिंग, गोदाम की व्यवस्था आदि बातों का समावेश किया जाता है।

8. संस्थापन प्रबन्ध (Maintenance Management) इसके अन्तर्गत भवन, संयन्त्र, मशीन उपकरण आदि के रख-रखाव, उनका उचित प्रयोग एवं देखभाल आदि को शामिल किया जाता है।

9. पर्यावरण प्रबन्ध (Environment Management) आधुनिक प्रबन्ध का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है। वर्तमान युग की सबसे भीषण समस्या है पर्यावरण असन्तुलन तथा प्रदूषण। इसके अन्तर्गत मिट्टी, जल, वायु एवं शोर प्रदूषण को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है तथा हरियाली का विकास एवं वातावरण को सन्तुलित किया जाता है। पर्यावरण बहुत ही विस्तृत शब्द है। इसमें देश का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश भी सम्मिलित है। प्रबन्धकों को इन क्षेत्रों की परिस्थितियों के अनुरूप नीतियों का निर्धारण तथा क्रियान्वयन करना पड़ता है। इस प्रकार के प्रयासों को भी पर्यावरण प्रबन्ध में सम्मिलित किया जाता है।

10. समय प्रबन्ध (Time Management) समय सबसे मूल्यवान साधन है। समय की बर्बादी को रोकना तथा उपलब्ध समय का अनुकूलतम उपयोग करना समय प्रबन्ध का सारतत्व है। प्रबन्ध के कार्य क्षेत्रों की कोई सीमा बाँधना असम्भव है। व्यक्तिगत, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय जीवन के वे सभी क्षेत्र जहाँ निर्धारित लक्ष्यों के लिए मानवीय, वित्तीय एवं भौतिक साधनों का उपयुक्त उपयोग करना है वहाँ प्रबन्ध विद्यमान रहता है।

2.5 प्रबन्ध विज्ञान की सीमाएँ (Limitations of Management Science)

प्रवन्ध विज्ञान एक सामाजिक विज्ञान है। उसके मूलभूत नियम सार्वभौमिक होते हुए भी भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र जैसे प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों

की तरह सुदृढ़ परिपक्व नहीं हैं। प्रवन्ध विज्ञान की विषय-सामग्री मानवीय व्यवहार है, जिस पर देश, काल, वातावरण जैसी विविध परिस्थितियों का गहन प्रभाव पड़ता है। प्रबन्ध विज्ञान की प्रमुख सीमाएँ अग्रलिखित हैं -

1. परिस्थितियों के अनुसार समायोजन आवश्यक है प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं तकनीकों में देश, काल, वातावरण आदि परिस्थितियों के अनुसार उचित समायोजन आवश्यक है। यह विज्ञान ऐसे निष्कर्ष देने में असमर्थ है जो सभी परिस्थितियों में समान रूप से लागू होते हैं।

2. प्रावैगिकता - प्रबन्ध एक रूप से विकास करने वाला प्रावैगिक विषय है। अतः राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति के साथ प्रबन्ध तकनीकों में सुधार जरूरी होते हैं।

3. स्वतन्त्र मानवीय व्यवहार प्रबन्ध विज्ञान की तकनीकों द्वारा मानव समूहों की गतिविधियों को नियोजित, संगठित, निर्देशित और नियन्त्रित किया जाता है। परन्तु इन तकनीकों का सभी प्रकार के मनुष्यों या समुदायों पर समान प्रभाव नहीं पड़ता है।

4. सुनिश्चित मापदण्ड का अभाव प्राकृतिक विज्ञानों के पास माप-तौल के शुद्ध साधन हैं परन्तु प्रबन्ध जैसे सामाजिक विज्ञान के पास ऐसे साधनों का अभाव है।

5. नियन्त्रित प्रयोग सम्भव नहीं प्राकृतिक विज्ञानों में एक विशेष घटक का किसी वस्तु पर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी जाँच हेतु नियन्त्रित प्रयोग किये जा सकते हैं। परन्तु प्रबन्ध में मानवीय आचरण बड़ा ही जटिल है। इस विज्ञान में न ऐसी प्रयोगशाला सम्भव है और न अन्य घटकों को पूरी तरह तटस्थ बनाया जा सकता है। मजदूरी वृद्धि का हड़तालों की संख्या पर पूरा प्रभाव देख पाना सम्भव नहीं है।

इन सभी सीमाओं की वजह से प्रवन्ध शास्त्र अटल व सुनिश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों का समूह न होकर कोमल एवं सामान्य प्रवृत्तियों का कथन करने वाला विज्ञान है।

2.6 सार संक्षेप

भारत में प्रबन्ध की आवश्यकता दिनप्रतिदिन बढ़ती जा रही है क्योंकि यह - संगठनात्मक दक्षता, संसाधनों के उचित उपयोग और आर्थिक विकास में योगदान देता है। प्रबन्ध का महत्व आर्थिक विकास, सामाजिक स्थिरता, और संगठनों की दीर्घकालिक सफलता में देखा जाता है। इसके क्षेत्र में वित्त, उत्पादन, विपणन, मानव संसाधन और सूचना प्रौद्योगिकी शामिल हैं। हालांकि, प्रबन्ध विज्ञान की सीमाएँ भी हैं, जैसे मानवीय तत्वों की अनिश्चितता और विश्लेषण के लिए पूर्ण डेटा की अनुपलब्धता।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. भारत में प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
   A. आर्थिक विकास
   B. संगठन का विस्तार
   C. लाभ में वृद्धि
   D. सभी विकल्प सही हैं

2. प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्रों में निम्नलिखित में से कौन शामिल नहीं है?
   A. वित्त
   B. उत्पादन
   C. विपणन
   D. खगोल विज्ञान

3. प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य ________ संसाधनों का उचित उपयोग करना है।
4. प्रबन्ध विज्ञान की एक सीमा ________ व्यवहार की अनिश्चितता है।

2.7 मुख्य शब्द

1. **प्रबन्ध (Management)**: संसाधनों का कुशल और प्रभावी उपयोग।
2. **भारत में प्रबन्ध (Management in India)**: भारत के संगठनों में दक्षता और विकास के लिए प्रबन्ध की भूमिका।
3. **प्रबन्ध का क्षेत्र (Scope of Management)**: वित्त, मानव संसाधन, उत्पादन और विपणन।
4. **प्रबन्ध विज्ञान (Management Science)**: प्रबन्ध के वैज्ञानिक दृष्टिकोण।
5. **सीमाएँ (Limitations)**: मानवीय व्यवहार की अनिश्चितता और डेटा की कमी।
6. **वित्तीय प्रबन्ध (Financial Management)**: संगठन के वित्तीय संसाधनों का प्रबंधन।
7. **मानव संसाधन प्रबन्ध (Human Resource Management)**: कर्मचारियों का चयन, प्रशिक्षण और विकास।
8. **उत्पादन प्रबन्ध (Production Management)**: उत्पादन प्रक्रियाओं का नियंत्रण।

2.8 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: D, **उत्तर 2**: D, **उत्तर 3**: उपलब्ध, **उत्तर 4**: मानवीय

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

Robbins, S. P., Coulter, M., & DeCenzo, D. A. (2020). *Fundamentals of Management*. Pearson Education.

Drucker, P. F. (2018). *Management: Tasks, Responsibilities, Practices*. HarperBusiness.

Gupta, C. B. (2021). *Management: Theory and Practice*. Sultan Chand & Sons.

Mintzberg, H. (2022). *Managing the Myths of Management*. Berrett-Koehler Publishers.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). *Management: Concepts, Practice & Cases*. McGraw Hill Education.

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबन्ध से क्या आशय है? आधुनिक युग में प्रवन्ध के बढ़ते हुए महत्व के कारणों की विवेचना कीजिए।

2. प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके क्षेत्र एवं महत्व की विवेचना कीजिए।

4. प्रबन्ध का क्या महत्व है? इसकी सीमाएँ क्या है?

5. प्रबन्ध की परिभाषा दीजिए। भारतीय सन्दर्भ में प्रवन्ध का महत्व बताइए।

6. प्रबन्ध के क्षेत्र को समझाइये तथा प्रवन्ध के क्रियात्मक क्षेत्रों पर दृष्टिपात कीजिए।

7. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए

(i) कार्मिक प्रबन्ध

(ii) वितीय प्रबन्ध

(iii) कार्यालय प्रबन्ध

(iv) पर्यावरण प्रवन्ध

इकाई -3

प्रबन्ध की विचारधाराएँ

(APPROACHES OF MANAGEMENT)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 प्रबन्ध विचारधारा का विकास

3.4 प्रबन्धकीय क्रान्ति

3.5 वैज्ञानिक प्रबन्ध या टेलर का प्रबन्ध में योगदान

3.6 भारत में वैज्ञानिक प्रबन्ध

3.7 प्रबन्ध एवं प्रशासन में फेयोल का योगदान

3.8 टेलर तथा फेयोल-तुलनात्मक अध्ययन

3.9 अधिकारी तंत्र विचारधारा अथवा नौकरशाही सम्बन्धी सिद्धांत विचारधारा

3.10 हाथोर्न प्रयोग (1924-32) (Hawthorne Experiment 1924-32)

3.11 हाथोर्न प्रयोगों से निकले सिद्धान्त

3.12 प्रबन्ध भी एक प्रणाली है -

3.13 सार संक्षेप

3.14 मुख्य शब्द

3.15 स्वप्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.16 संदर्भ ग्रन्थ

3.17 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रबन्धकीय विचारों का इतिहास (History of Managerial Thoughts)-प्रबन्धकीय विचारधारा का उद्गम (Evolution of Managerial Thought) प्रबन्धकीय विचारों के विकास एवं प्रगति के सन्दर्भ में प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री सी.एन. गेगर का यह कथन उल्लेखनीय है कि "प्रबन्ध के विकास की कहानी आवश्यकीय तौर पर मानव के विकास की कहानी है।"1

सामान्यतः व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करके उनका मार्गदर्शन एवं संचालन करने का कार्य 'प्रबन्ध' कहलाता है। प्रबन्ध के उदय व विकास की कहानी बहुत पुरानी है क्योंकि जबसे मानव इस पृथ्वी पर आया है, तभी से वह समूहों में काम करता चला आ रहा है। चूँकि अकेले काम करने से सफलताएँ अपेक्षाकृत कम होती हैं अतः अपनी व समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसने अन्य लोगों के साथ मिलकर समूहों में काम करना अधिक उचित समझा। यही है प्रबन्धकीय विचार काअभ्युदय या उदय।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. प्रबन्ध विचारधाराओं के विकास और उनके ऐतिहासिक योगदान को समझ सकें।
2. वैज्ञानिक प्रबन्ध में टेलर और प्रशासन में फेयोल के योगदान का विश्लेषण कर सकें।
3. भारत में वैज्ञानिक प्रबन्ध और हाथोर्न प्रयोगों के सिद्धांतों को पहचान सकें।

4. प्रबन्ध को एक प्रणाली के रूप में समझ सकें।

3.3 प्रबन्ध विचारधारा का विकास (Development of Managerial Thought)

प्रबन्ध विचारधारा के विकास के इतिहास को अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से तीन अवधियों में विभक्त किया जा सकता है -

(1) प्राचीनकाल में प्रबन्ध या प्रवन्ध का आदिकाल उत्पादन क्रिया के आरम्भ से लेकर 16वीं शताब्दी तक के औद्योगिक विकास का युग प्रबन्ध का आदिकाल माना जाता है। यह मानव सभ्यता का प्रारम्भिक चरण है और प्रबन्ध मानव सभ्यता के शुरुआत से ही सम्बन्धित रहा है। सुमेरियन सभ्यता, बेबीलोन की सभ्यता, मीस की सभ्यता, सिन्धु घाटी की सभ्यता आदि का इतिहास इस बात का गवाह है कि सभ्यताओं के साथ-साथ प्रबन्ध का भी विकास होता रहा है। आदिकालीन प्रबन्ध अवैज्ञानिक था, उत्पादन के लिए बड़े-बड़े कारखाने व मशीनें नहीं थीं तथा ग्राहक व उत्पादक में सीधा सम्बन्ध भी नहीं था।

भारत की प्राचीन सभ्यता के इतिहास में कई ऐसे दृष्टान्त एवं उदाहरण मिलते हैं जिनसे भारतीय लोगों का प्रबन्धकीय ज्ञान प्राचीनकाल से ही उन्नत होने की पुष्टि होती है। हमारे वेद (The Vedas), 'रामायण' एवं 'महाभारत' जैसे महाकाव्य भी प्रबन्ध कौशल एवं प्रबन्धकीय बारीकियों से भरे पड़े हैं। फिर भी कौटिल्य का अर्थशास्त्र भारत में ऐसा प्रथम ग्रन्थ माना जाता है जिसमें सरकार के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रबन्धकीय सभी पहलुओं की चर्चा की गई है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन सभ्यताओं में प्रबन्धकीय ज्ञान तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप उपलब्ध था। यही 'परम्परागत प्रबन्ध' कहा गया है।

(II) प्रबन्ध का मध्यकाल प्रबन्ध के आदिकाल के पश्चात् से लेकर 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक का समय 'प्रबन्ध का मध्यकाल' माना जाता है।

इस अवधि में औद्योगिक क्रांति का उद्भव हुआ जिससे प्रबन्ध के स्वरूप ने नवीन मोड़ लिया। इस औद्योगिक क्रान्ति के कारण सन् 1830 में अमेरिका में तथा 1850 में इंग्लैंड में उत्पादन में मशीनों का बड़े पैमाने पर प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इन संयन्त्रों ने, जो समय, श्रम व दूरी बचाने वाले थे, उद्योगों के संगठन में क्रांति उत्पन्न कर दी। उद्यमों के स्वामित्व व नियन्त्रण में पृथकता और उद्योगों के स्वामियों तथा सेवकों के अप्रत्यक्ष सम्बन्धों ने 'प्रबन्ध' की आवश्यकता को जन्म दिया। इस तरह यद्यपि आधुनिक प्रबन्ध 20वीं शताब्दी की देन है, किन्तु इसकी नींव 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में ही पड़ चुकी थी।

इस युग में प्रबन्ध आन्दोलन को गति देने वाले मुख्य घटक निम्न हैं -

1. कारखाना प्रणाली का उद्भव जो औद्योगिक व्यवस्था 18वीं शताब्दी के मध्यकाल में प्रारम्भ हुई थी उसे 'कारखाना प्रणाली' कहा जाता है। श्रमिकों का उनके द्वारा किये गये कार्य के अनुसार विभाजन तथा उनसे सामूहिक रूप से काम लेना, मशीनों का उपयोग कर बड़े पैमाने पर उत्पादन करना, उत्पादन प्रक्रियाओं का विशिष्टीकरण तथा समाज में पूँजीपति एवं श्रमजीवी जैसे दो वर्गों का निर्माण इस कारखाना प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। इस प्रकरण के उद्भव ने स्वामी से पृथक 'प्रबन्धकों' के एक नवीन वर्ग की आवश्यकता को जन्म दिया।

2. नवीन प्रौद्योगिकी का प्रभाव नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों तथा तकनीकी अनुसंधानों के कारण प्रबन्ध के क्षेत्र में कई आधारभूत परिवर्तन हुए। प्राचीन और नई उत्पादन विधियों में समन्वय, उपक्रम के लाभों में वृद्धि तथा कई नई वस्तुओं का निर्माण होने लगा।

3. औद्योगिक संगठनों के आकार में वृद्धि इस काल में औद्योगिक उपक्रमों के आकार एवं उनकी उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई। उपक्रम का संगठन जटिल बन गया। इससे प्रबन्धकीय क्रियाओं का विकेन्द्रीयकरण होने लगा।

विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षित एवं कुशल प्रबन्धकों की माँग बढ़ने लगी परिणामस्वरूप प्रबन्ध का व्यवसायीकरण सम्भव हुआ।

4. डार्विन के सामाजिक सिद्धान्त का विकास डार्विन के मतानुसार बलवान अपने से कमजोर का शोषण करता है और शक्तिशाली व सक्षम व्यक्तियों को ही जीने का अधिकार है। इस विचारधारा के प्रभाव के कारण बड़े-बड़े संयोजनों व औद्योगिक संस्थानों की स्थापना होने लगी। इसमें सफलता पाने के लिए कुशल प्रबन्धकों की माँग होने लगी।

5. निजी पूँजीवाद की स्थापना प्रोटेस्टेण्ट ईसाई धर्म के प्रचारकों ने निजी पूँजीवाद का समर्थन किया। परिणामस्वरूप बड़े उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में पूँजी मिलने लगी। इसका सही उपयोग और उद्योगों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए एक नवीन वर्ग 'प्रबन्धकों' की आवश्यकता अनुभव की गई।

6. श्रम संगठनों का विकास औद्योगिक क्रांति के निजी पूँजीवाद की क्रिया की सहज प्रतिक्रिया के रूप में एक संगठित श्रम आन्दोलन का आरम्भ हुआ जिसके परिणामस्वरूप ऐसे मध्यस्थों की आवश्यकता पड़ने लगी जो उद्यम के स्वामियों तथा कर्मचारियों के हितों का समन्वय एवं पोषण कर सकें।

7. वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन की शुरुआत अमेरिका के फ्रेडरिक टेलर तथा यूरोप के हेनरी फेयोल ने अपनी लिखी पुस्तकों के द्वारा प्रबन्ध विज्ञान के लिए आधारभूत साहित्य प्रदान किया। ये वर्तमान में भी प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं। टेलर एवं फेयोल के पश्चात् उनके अनुयायियों तथा अन्य विद्वानों ने इस विषय को समृद्ध एवं प्रशस्त करने में अपना योगदान दिया। इस प्रकार 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधारा का विधिवत प्रारम्भ हुआ।

(III) प्रबन्ध का आधुनिक काल सन् 1920 से लेकर आज तक के समय को प्रवन्ध का आधुनिक काल कहते हैं। इस युग के विद्वानों ने 'प्रबन्ध' का 'विज्ञान' के साथ अभूतपूर्व गठबंधन किया तथा विभिन्न क्षेत्रों में अन्वेषणों,

प्रयोगों एवं अध्ययनों की बहुलता रही। सन् 1920 से 1945 का काल प्रबन्ध शास्त्र एवं प्रबन्ध विज्ञान की प्रगति का चरम काल माना जाता है। आज प्रबन्ध विज्ञान प्रायः सभी क्षेत्रों में तेजी से प्रवेश कर रहा है जैसे- उत्पादन प्रबन्ध, विपणन प्रबन्ध, सेविवर्गीय प्रबन्ध, मानव संसाधन प्रबन्ध, विधीय प्रबन्ध, वातावरण प्रबन्ध, समय प्रबन्ध आदि। स्पष्ट है कि वर्तमान में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जो कि प्रबन्ध विज्ञान से अछूता बचा हो। बढ़ती हुई प्रतियोगिता और बड़े व्यवसाय संगठनों में प्रबंध का जटिलता ने प्रणालीकृत प्रबंध के स्वभाव एवं सिद्धान्तों को विकसित करने के लिए प्रेरित किया। हाल के वर्षों में बाजार-शक्ति बढ़ाने और विकास के लिए विश्व के देश एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन गये। इस प्रतिस्पर्द्धा के बढ़ने के कई कारण थे जैसे-

(अ) प्रौद्योगिकी खोजों एवं व्यवसाय में उनका प्रयोग,

(ब) पूँजी निवेश का बढ़ना,

(स) देश और विदेश के बाजारों में खुली प्रतिस्पर्द्धा, एवं

(द) बाजार में क्रेता के प्रभुत्व का विस्तार।

व्यवसाय में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने के कारण व्यवसाय प्रबंध में निम्नलिखित जटिलताएँ बढ़ीं

(अ) व्यवसाय संगठनों के आकार का विस्तार,

(ब) उच्च स्तर पर श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण,

(स) सरकारी नियम एवं नियंत्रण के कारण व्यवसाय को अधिक सामाजिक उत्तरदायी बनाना,

(द) संगठित श्रम संघों के क्रियाकलापों का प्रबंध पर दबाव, एवं

(३) संगठन से संबंधित विभिन्न हित समूहों का संगठन पर दबाव।

प्रतिस्पर्द्धा का बढ़ना और व्यवसाय संगठन में जटिलता, दोनों कारणों से प्रबंध प्रक्रिया में दक्षता की आवश्यकता महसूस की गयी। इस आवश्यकता को पुराने-एवं-त्रुटि सिद्धान्त द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता था। उसके लिए

प्रबंध के ठोस सिद्धान्तों की आवश्यकता थी। अतः प्रबंध सिद्धान्त का विकास समय की आवश्यकता थी। प्रबंध विचारधार के विकास क्रम को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है:-

प्रबंध विचारधारा का विकास

	प्रबंध विचारधारा	समयावधि
1.	प्रारंभिक योगदान	19वीं शताब्दी तक
2.	वैज्ञानिक प्रबंध	1900-1930
3.	प्रशासनिक प्रबंध	1915-1940
4.	मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण	1930-1950
5.	सामाजिक तंत्र दृष्टिकोण	1940-1950
6.	निर्णय सिद्धान्त दृष्टिकोण	1945-1965
7.	प्रबंध विज्ञान दृष्टिकोण	1950-1960
8.	मानव व्यवहार दृष्टिकोण	1950-1970
9.	तंत्र दृष्टिकोण	1960 के पश्चात्
10.	आकस्मिकता दृष्टिकोण	1970 के पश्चात्

3.4 प्रबन्धकीय क्रान्ति (Managerial Revolution)

प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक प्रबन्धकीय इतिहास में कई परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का समाज, व्यवसाय एवं आम जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। लोगों के रहन-सहन तथा सोचने-समझने के तौर-तरीकों में काफी परिवर्तन हो गया है। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व व्यावसायिक कठिनाइयों का अभाव था। प्रबन्ध एवं स्वामित्व एक ही हाथ में रहता था व प्रबन्ध की विधियाँ अत्यंत सहन थीं किन्तु वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के साथ ही व्यावसायिक कठिनाइयाँ भी बढ़ने लगीं। व्यक्रम के स्वामित्व, श्रम एवं प्रबन्ध पृथक-पृथक हो गये जिससे प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्ता बढ़ गई।

प्रबन्धकीय क्रान्ति का आशय 'क्रान्ति' का शाब्दिक अर्थ पूर्णतः परिवर्तन से है तथा प्रवन्धकीय का अर्थ प्रबन्ध से सम्बन्धित है अर्थात् प्रबन्ध से सम्बन्धित विचारों, प्रविधियों एवं दृष्टिकोणों में आधारभूत एवं बुनियादी परिवर्तनों को ही 'प्रबन्धकीय क्रांति' कहा जाता है। जैसे प्रबन्ध में विज्ञान, नव प्रवर्तन एवं सिद्धान्बों का समावेश इत्यादि।

प्रबन्धकीय क्रान्ति की विशेषताएँ प्रवन्धकीय क्रान्ति का अर्थ जानने के पश्चात् इसकी कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जो निम्न हैं -

1. पारम्परिक प्रबन्ध की जगह वैज्ञानिक प्रक्ध प्रबन्ध में आयी क्रान्ति ने पुरानी एवं रूढिवादी प्रबन्धकीय शैली को पूर्णतः बदल दिया है। आजकल पेशेवर प्रवन्धक पूर्णतः नवीन तकनीक से प्रवन्धकीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन । करते हैं तथा व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता बढ़ाकर व्यावसायिक सफलता के शिखर तक पहुँच पाते हैं।

2. नवीन प्रबन्धकीय प्रणालियों का विकास प्राचीन प्रबन्ध में यह धारणा आम थी कि श्रमिक को उसका न्यूनतम अंशदान ही देना चाहिए क्योंकि ऑधक देने से वह निठल्ला हो जाएगा एवं लाभ में भी कमी हो जाएगी। लेकिन नवीन धारणा इसके ठीक विपरीत है। आज प्रबन्धकों का मानना है कि मानवीय संसाधन को अधिकतम संतुष्टि देना चाहिए ताकि वह मन लगाकर काम करे व पारिश्रमिक से अभिप्रेरित होते रहें।

3. प्रबन्ध के मान्य सिद्धांतों का विकास प्रबन्ध में आई क्रान्ति के कारण इसके मान्य एवं स्थापित सिद्धान्तों में आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं तथा ये सिद्धान्त और भी विकसित हुए हैं। प्रबन्धकीय कार्यों को करते समय इन सिद्धान्तों का पालन करके प्रबन्धक श्रेष्ठतम उत्पादन कर सकते हैं।

4. प्रबन्धकीय कार्य का हस्तांतरण व्यवसाय के स्वामियों के स्थान पर प्रबन्धक लोग प्रबन्धकीय क्रान्ति के कारण प्रबन्धकार्य में संलग्न होने लगे हैं। ये पेशेवर प्रबन्धक लोग पूँजीपतियों की अपेक्षा अधिक ज्ञान व व्यवसायकौशल

रखते हैं। वर्तमान समय में उपक्रम में विशिष्टीकरण हो जाने के कारण प्रत्येक कार्य के लिए एक विशेषज्ञ प्रबन्धक नियुक्त किया जाता है, जो इनकी सेवाओं से समाज के सभी वर्गों को लाभान्वित करते हैं।

5. व्यावसायिक समस्याओं का सहज समाधान - प्रबन्धकीय क्रान्ति ने व्यवसाय में ऐसी नई तकनीकें दी हैं जिसके कारण कई व्यावसायिक समस्याएँ सहज रूप से सुलझा ली जाती हैं। जैसे लेखा गणनाओं में कैल्कुलेटर व कम्प्यूटर तथा लागत क्षेत्र में लाभ मात्रा अनुपात व समविच्छेद बिन्दु इत्यादि। इस प्रकार प्रबंधकीय क्रांति की और भी कई विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वर्तमान प्रबन्धन क्षमता दुगुनी हो गई है तथा इसने उत्पत्ति के सभी साधनों का आपसी तालमेल बैठाकर अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के लिए उपक्रम कों तैयार किया है।

प्रबन्धकीय विचारधारा का विकास (Development of Managerial Thought)I.

I.पारम्परिक विचारधारा या स्कूल (Classical Systems or Schools)

II.नव-पारम्परिक अथवा आधुनिक विचारधारा या स्कूल (Neo Classical or Modern System or School)

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा (Scientific Management School)

1. मानवीय व्यवहार विचारधारा (Human Behaviour School)

2. प्रवन्ध प्रक्रिया विचारधारा (Management Process School)

2. निर्णय सिद्धांत विचारधारा (The Decision Theory School)

3. अधिकारी तन्त्र विचारधारा (Bureaucratic Theory School)

3. प्रबन्ध विज्ञान विचारधारा

4 प्रणाली प्रवन्ध विचारधारा (Systems Management School)

आकस्मिकता या संयोगिक प्रबन्ध विचारधारा(The Contingent Management School) पारम्परिक एवं नव-पारम्परिक प्रवन्धकीय

विचारधाराओं का विस्तृत अध्ययन एवं वर्णन निम्न प्रकार से किया जा रहा है:-

पारम्परिक विचारधाराएँ(Classical Systems)

इस विचारधारा के अन्तर्गत तीन शाखाएँ या अध्ययन सर्वाधिक व्यवस्थित एवं प्रचलित हुए हैं जिनमें से दो 'वैज्ञानिक प्रवन्ध स्कूल' एवं 'प्रबन्ध प्रक्रिया स्कूल' पृथक से विकसित किये गये हैं लेकिन एक ही समयावधि के दौरान वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता फेडरिक डब्ल्यू टेलर माने जाते हैं जिनका लक्ष्य प्रबन्ध को विज्ञान आधारित बनाना तथा स्पष्टतः स्थिर सिद्धांतों की रचना करना रहा था। टेलर के अनुयायियों में गैद, फॉक एवं लिलैन गिलवर्थ, इमर्सन आदि थे।

प्रबन्ध प्रक्रिया स्कूल के जनक हेनरी फेयोल थे। इन्होंने प्रबन्ध प्रक्रिया की व्यवस्थित समझ विकसित करके टेलर के साथ-साथ ही इस स्कूल या विचारधारा को विकसित किया। इनके साथ उर्विक व गुल्लिक आदि विद्वानों ने योगदान किया था। एक अन्य विद्वान मेक्स वेबर ने 'अधिकारी तन्त्र विचारधारा' को प्रतिपादित किया जो पारम्परिक विचारधारा के अन्तर्गत ही समाहित की जाती है। इनमें से प्रथम दो विचारधाराएँ काफी लोकप्रिय एवं प्रचलित रही हैं अतः इनका हम विस्तृत अध्ययन निम्न प्रकार से करेंगे

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा (The Scientific Management School)- इस विचारधारा के जनक चूँकि फ्रेडरिक डब्ल्यू, टेलर ही थे अतः प्रबन्ध में टेलर के योगदान या वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का विकास दोनों एक ही अर्थ में ली जाती है

3.5 वैज्ञानिक प्रबन्ध या टेलर का प्रबन्ध में योगदान (Scientific Management and Taylor's Contribution)

आधुनिक प्रबन्ध विचारधारा के इतिहास में पहला सबसे महत्वपूर्ण समग्र चिन्तन 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' के रूप में जाना जाता है। सामान्यतः फ्रेडरिक

विन्सलो टेलर (Frederick Winslow Taylor 1856-1915) ने इसके जनक के रूप में सारे संसार में अभूतपूर्व प्रतिष्ठा अर्जित की है। टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रवर्तन ही नहीं किया, अपितु उनके प्रचार-प्रसार में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। उसका जीवन उद्देश्य था, उत्पादन की कार कुशलता में वृद्धि करना, जिससे न केवल लागतें कम हों और लाभ में वृद्धि हो सके, बल्कि उच्च उत्पादकता के जरि श्रमिकों के पारिश्रमिक में भी उल्लेखनीय बढ़ोत्री की जा सके।

एफ. डब्ल्यू, टेलर: संक्षिप्त जीवन परिचय

टेलर का जन्म 1856 में फिलाडेलफिया (यू.एस.ए) में हुआ। सन् 1878 में उन्होंने अमेरिका की मिडवैल स्टीव् वर्क्स में एक प्रशिक्षणार्थी मैकेनिक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। बचपन से ही जिज्ञासु तथा मेहनती होने के कारण वे शनैःशनैः उसी कम्पनी में समय लिपिक, गैंगबॉस, फोरमैन, मास्टर मैकेनिक और अन्ततोगत्वा 1884 में चीफ इंजीनिय बन गये। कार्य करते-करते उन्होंने स्टीवेंस इन्स्टीट्यूट से सायंकालीन अध्ययन द्वारा इंजीनियरिंग की डिग्री भी प्राप् की। मिडवैल फैक्टरी के पश्चात् टेलर 1898 में बेथलहेम स्टील कम्पनी में चले गये, परन्तु वहाँ के कर्मचारियों तथ अधीनस्थ प्रबन्धकों द्वारा उनके वैज्ञानिक प्रवन्ध के सिद्धान्तों का विरोध किये जाने के कारण उन्होंने 1901 में वह कम्पन छोड़ दी और निःशुल्क परामर्शदाता के रूप में कार्य करने लगे। टेलर की सन् 1903 में 'शॉप मैनेजमेंट' तथा 1911 में 'वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त' (Principles of Scientific Management) पुस्तकें प्रकाशित हुई जिन्होंने जनत का ध्यान वैज्ञानिक प्रबन्ध की ओर आकर्षित किया। टेलर की 1915 में फिलाडेलफिया में ही मृत्यु हो गयी।

वैज्ञानिक प्रबन्ध का आशय (Meaning of Scientific Management)

'वैज्ञानिक प्रवन्ध' का आशय किसी एक नियत लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी भी कार्य को विशिष्ट ज्ञान की सहायता से सुव्यवस्थित ढंग से सम्पन्न करने

से है। पीटर एफ. ड्रकर के शब्दों में "वैज्ञानिक प्रबन्ध कार्य का संगठित अध्ययन है, कार्यों के सरलतम भागो का विश्लेषण है तथा कार्य के प्रत्येक भाग में कर्मचारियों के कार्य-निष्पादन का व्यवस्थित सुधार है।" वैज्ञानिक प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Scientific Management) - वैज्ञानिक प्रवन्ध की विभिन्न विद्वानों ने परिभाषाएँ दी हैं वे इस प्रकार है-

(1) "वैज्ञानिक प्रबन्ध यह जानने की पद्धति है कि तुम व्यक्तियों से क्या कराना चाहते हो तथा यह देखना कि वे सबसे उचित व सस्ते ढंग से कार्य करते हैं, प्रबन्ध कहलाता है।" एफ.डब्ल्यू. टेलर

(2) "वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रशासन सम्बन्धी नियमों का समूह है, ताकि संगठन में नवीन अनुशासन का समन्वय नियंत्रण तथा उत्पादन पद्धति से कराया जा सके।" - श्री जोन्स

(3) "वैज्ञानिक प्रबन्य किसी उद्योग में उसके प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित योजना को इस प्रकार चलाना है, जिससे सुविधापूर्वक उसके उद्देश्य की पूर्ति की जा सके।" प्रो. शेल्डन

वैज्ञानिक प्रबन्ध की इन परिभाषाओं के आधार पर एक उपयुक्त परिभाषा दी जा सकती है जो निम्न है-

(4) "वैज्ञानिक प्रवन्य से आशय ऐसी पद्धतियों से है जिनके अन्तर्गत कार्य करने को पद्धतियों के सम्बन्ध में व्यापक अन्वेषण, अनुसन्धान एवं परीक्षण किया जाता है तथा प्रत्येक कार्य का तर्कपूर्ण मूल्यांकन करके उपयुक्त कार्यमार्ग निर्धारित किया जाता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध श्रमिकों तथा नियोक्ताओं दोनों के हित में है।" आदर्श परिभावा वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रमुख सिद्धान्तु, तत्व, विशेषताएँ आदि

(Scientific Management: Main principles, factors, essentials etc.)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रमुख सिद्धांत जिन्हें प्रबन्ध के तत्व अथवा विशेषताएँ भी माना जा सकता है, निम्न हैं- 1. उद्देश्य (Objects) - टेलर ने वैज्ञानिक

प्रबन्ध के सर्वोपरि उद्देश्य तीन बताए हैं (अ) उन्नत कार्य कुशलता, (ब) लागत में कमी एवं लाभ में वृद्धि तथा (स) श्रमिकों के पारिश्रमिक में वृद्धि और उनका विकास ।

2. मानसिक क्रान्ति (Mental Revolution) वैज्ञानिक प्रबन्ध तभी लागू किया जा सकता है जबकि प्रवन्धकों एवं श्रमिकों के बीच संघर्ष के स्थान पर गहन सहयोग एवं समरसता की भावना हो। ऐसा पारस्परिक सद्विश्वास क्रान्तिपूर्ण नई मानसिकता पर ही आधारित हो सकता है। इस हेतु यह जरूरी है कि दोनों वर्ग यह समझ लें कि विवादों से दोनों की हानि है और सहयोग से दोनों की पारस्परिक समृद्धि अधिकतम सीमा तक पहुँचाई जा सकती है। मानसिक क्रान्ति को दीर्घजीवी बनाने के लिए यह जरूरी है कि श्रमिकों का चयन सही ढंग से हो। उनके प्रशिक्षण का पूरा ध्यान दिया जाए। भृति भुगतान की प्रेरणात्मक विधियाँ अपनाई जाएँ और कारखाने में कार्य करने का स्वास्थ्यप्रद, सुन्दर और आनन्दमय वातावरण प्रदान किया जाए।

3. समय, गति एवं थकान अध्ययन (Time, motion and fatigue study) श्रमिकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि करने के लिए टेलर ने कारखानों में तरह-तरह के प्रयोग एवं अध्ययन किये। समय, गति एवं थकान सम्बन्धी उसके निष्कर्ष वैज्ञानिक प्रबन्ध की आत्मा हैं। उन्हें संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है -

(अ) समय अध्ययन किसी कार्य विशेष को करने में लगने वाले समय का आँकड़ों द्वारा बारीकी से अध्ययन किया गया। टेलर ने इस हेतु 'स्टॉप वाच' का उपयोग किया। उसने अपने प्रयोग इस प्रकार किये कि वह श्रमिकों को देख सकता था परन्तु श्रमिक उसे नहीं देख सकते थे। उसने एक कार्य को अनेक छोटी-छोटी क्रियाओं में विभाजित किया; जैसे कच्चे लोहे को गाड़ी में लादने का कार्य इसे चार क्रियाओं में बाँटा जा सकता है- (i) लोहे को जमीन से उठाना, (ii) लोहे को लेकर गाड़ी तक जाना, (iii) लोहे को गाड़ी में बत्येक क्रिया में

लगने वाले प्रमापित समय के आधार पर उस कार्य का प्रमापित समय निर्धारित किया गया। प्रत्येक बमिक के लिए इस प्रमापित समय में कार्य पूर्ति को आवश्यक बनाया गया। मजदूरी इसी के आधार पर तय की गई। श्रमिक प्रमापित से अधिक समय लगाते, उनको कम मजदूरी दी जानी चाहिए। किया गया। टेलर ने इस हेतु 'स्टॉप वाच' का उपयोग किया। उसने अपने प्रयोग इस प्रकार किये कि वह श्रमिकों को देख सकता था परन्तु श्रमिक उसे नहीं देख सकते थे। उसने एक कार्य को अनेक छोटी-छोटी क्रियाओं में विभाजित किया; जैसे कच्चे लोहे को गाड़ी में लादने का कार्य इसे चार क्रियाओं में बाँटा जा सकता है- (i) लोहे को जमीन से प्रत्येक क्रिया में लगने वाले प्रमापित समय के आधार पर उस कार्य का प्रमापित समय निर्धारित किया गया। प्रत्येक श्रमिक के लिए इस प्रमापित समय में कार्य पूर्ति को आवश्यक बनाया गया। मजदूरी इसी के आधार पर तय की गई। जो श्रमिक प्रमापित से अधिक समय लगाते, उनको कम मजदूरी दी जानी चाहिए।

(ब) गति अध्ययन प्रत्येक कार्य में श्रमिक को हाथ-पैर हिलाने पड़ते हैं। यदि काम करने का ऐसा वैज्ञानिक तरीका अपनाया जाए कि अनावश्यक, अनिर्देशित एवं अकुशल गतियों को रोका जा सके तो समय की क्षति नहीं होगी और श्रमिक बेकार में थकेगा नहीं।

परम्परागत पद्धतियों में श्रमिक गैर जरूरी रूप से हाथ-पैर को हरकत में लाते हैं जिससे वे जल्दी थक जाते हैं और भी काम कम कर पाते हैं। टेलर ने अनावश्यक हाथ-पैर हिलाने-डुलाने को मना किया। उसने कुछ मानवीय गतियों के लिए साधारण से यन्त्रों एवं उपकरणों के उपयोग की सिफारिश की तथा श्रमिकों के समुचित प्रशिक्षण पर जोर दिया। उसने प्रत्येक कार्य के लिए आदर्श गतियों एवं प्रतिमान निर्धारण की आवश्यकता पर जोर दिया। एक सामान्य कारीगर दीवार बनाने के लिए एक ईंट जोड़ने में अठारह बार गति चेष्टाएँ करता है जबकि आसानी से इन्हें पाँच से भी कम में किया जा सकता है।

(स) थकान अध्ययन टेलर ने इन बातों का विशद् अध्ययन किया कि थकान, क्या, कब, क्यों और कैसे होती है ? उसके दुष्परिणामों की व्याख्या करके उसने अनेक उपयोगी सुझाव दिये ताकि श्रमिक कम से कम थकते हुए अधिक से अधिक कार्य कर सकें। टेलर ने काम और विश्राम के समन्वय के सूत्र खोजे ताकि श्रमिकों की कुशलता एवं मनोबल का रक्षण किया जा सके और दुर्घटनाएँ ही नहीं हों। प्रेरणात्मक मजदूरी, कार्य युक्तिकरण, उचित विश्राम प्रावधान, दोहराव पर रोक, भारी कार्यों के लिए यन्त्रों का उपयोग, सर्वोत्तम कार्य विधि, पौष्टिक आहार, विविधीकरण आदि उपाय थकान को न्यूनतम करने हेतु उसने सुझावे।

4. नियोजन - टेलर ने सुचारु कार्य हेतु कारखाना, विभाग, समूह एवं श्रमिक स्तरों पर योजनाएँ तैयार करने का आग्रह किया और तदनुरूप सामग्री और यन्त्रों की व्यवस्था करने को कहा। उसने आवधिक और दैनिक कार्यक्रम तैयार करने के सुझाव दिये। टेलर के अनुसार, प्रत्येक कारखाने में एक पृथक योजना विभाग आवश्यक है। नियोजन वैज्ञानिक प्रवन्ध का केन्द्र बिन्दु है।

5. योग्य श्रमिकों का चयन एवं प्रशिक्षण प्रत्येक कार्य के लिए विशिष्ट मानसिक एवं शारीरिक योग्यता की आवश्यकता होती है। टेलर ने कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप श्रेष्ठ व्यक्तियों के चयन पर बल दिया। कारखाने के श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों को सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर उपयुक्त प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

6. प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति - श्रमिकों से अधिक एवं अच्छा कार्य लेने के लिए यह जरूरी है कि उन्हें प्रलोभन दिया जाए। इस हेतु टेलर ने विभेदात्मक कार्यानुसार मजदूरी पद्धति का सुझाव दिया। जो श्रमिक निर्धारित समय में प्रमापित कार्य समाप्त करते हैं उन्हें ऊँची दर से और अन्य को नीची दर से मनदूरी दी जाए। काम बिगाड़ने वाले श्रमिकों के लिए दण्ड की व्यवस्था हो।

7. प्रमापीकरण प्रमापीकरण से आशय है कि निर्धारित किस्म, रूप, रंग, आकार-प्रकार एवं विशेषताओं वाला उत्पादन। इस हेतु कच्चे माल, यन्त्र सामग्री एवं उत्पादन विधियों के प्रमापों का निर्धारण भी जरूरी है।

प्रमापीकरण से उत्पादन, नियोजन, नियन्त्रण एवं विपणन कार्य आसान हो जाते हैं तथा उपभोक्ताओं को बड़ी सहूलियतें मिलती हैं। वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रमापीकरण को विशेष महत्व दिया गया है।

8. कुशल लागत लेखांकन वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक अत्यन्त आवश्यक अंग है, कुशल लागत लेखांकन, जिसके द्वारा अपव्यय को न्यूनतम किया जा सकता है तथा कच्चे माल, यन्त्र, समय तथा सामग्रियों का श्रेष्ठतम उपयोग सम्भव बनाया जाता है।

प्रभावपूर्ण एवं नियन्त्रित उत्पादन विधियों के क्रियान्वयन में लागत लेखांकन से बहुत सहायता प्राप्त होती है।

9. कार्यात्मक संगठन - विशिष्टीकरण पर आधारित टेलर की इस संगठन पद्धति का सार यह है कि पदाधिकारी विभागों के आधार पर नियुक्त न किये जाएँ, बल्कि उन्हें कार्यों के आधार पर श्रमिकों पर अधिकार प्रदान किए जाएँ। इस संगठन प्रणाली में एक श्रमिक को अलग-अलग कार्यों के मामले में अलग-अलग विशेषज्ञ फोरमेनों से आदेश प्राप् करने पड़ते हैं।

10. श्रम बचत यन्त्रों एवं सरल कार्य विधियों का प्रयोग टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत श्रम बच यन्त्रों तथा सरलीकृत एवं युक्तियुक्तपूर्ण कार्यविधियों पर बहुत जोर दिया है। पहले उद्योगपति मनम्माने ढंग से अफं उपक्रमों को चलाया करते थे, टेलर ने प्रबन्ध के वैज्ञानिकीकरण पर बल दिया। उसने विभिन्न प्रकार के अध्ययन करने प्रेरणात्मक मजदूरी प्रविधियों का सुझाव दिया। टेलर ने जिस प्रबन्धकीय क्रान्ति का प्रवर्तन किया वह आज तक जारं है। वह विवेकपूर्ण सुधारों का महान् समर्थक था।

11. अपवाद का सिद्धान्त टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को एक अपवाद का सिद्धान्त निरूपित किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामान्य परिस्थितियों में ही प्रबन्धकों को दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करना चाहिए ।

12. श्रम संगठन पद्धति कारखाने में मितव्ययिता तभी मिल सकती है जबकि कारखाने में उचित संगठन हे तथा विभिन्न कार्यों का निरीक्षण सुचारु रूप से होता रहे। बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण कारखानों में बड़ संख्या में श्रमिक कार्य करते हैं, जिसके कारण मालिक और श्रमिक के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता अत श्रमिकों को संगठित करना अर्थात् श्रम संगठन तैयार करके इस समस्या को हल करना चाहिए।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के गुण/लाभ (Advantages of Scientific Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य उद्योगों का प्रबन्ध इस प्रकार से करना है कि उससे सम्बन्धित प्रत्येक तत्व पूर्ण रूपेण सफलता पा सकें। इस प्रकार चाहे श्रम हो या निर्माता अथवा राष्ट्र सभी को इससे लाभ पहुँचता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के लाभ इस प्रकार समझाये जा सकते हैं-

(1) निर्माता अथवा विनियोक्ता को वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू करने से उत्पादक (निर्माता) को कई लाभ होते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं -

1. लागत में कमी वैज्ञानिक प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य अपव्ययों को रोककर उत्पादन व्यय अथवा लागत में कमी करना होता है। इससे उपक्रम में मितव्ययिता आती है जो कि औद्योगिक सफलता की कुन्जी है।

2. श्रम-विभाजन के लाभ निर्माताओं या उत्पादकों को श्रम विभाजन से कई प्रकार के लाभ होते हैं। श्रम विभाजन की न्यूनतम क्रियाओं में होने वाले प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा ही उत्पादकों को मिलते हैं।

3. माल की किस्म में सुधार वैज्ञानिक प्रबन्ध की उचित निरीक्षण पद्धति तथा प्रमापीकरण की योजना लागू होने से माल की किस्म में अत्यधिक सुधार

होता है तथा प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन होने लगता है जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ विनियोक्ताओं को मिलता है।

4. श्रम-पूँजी विवाद का अन्त श्री टेलर ने कहा है कि "वैज्ञानिक प्रबन्ध से श्रम एवं पूँजी के झगड़े एवं अनबन के समस्त कारण समाप्त हो जाएँगे।" श्रम एवं प्रबन्ध के मध्य परस्पर सहकारितापूर्ण सम्बन्ध होने से औद्योगिक शान्ति कायम होती है इससे निर्माता को यह निश्चितता रहती है कि एक निश्चित समयावधि में कितना उत्पादन हो सकेगा।

5. श्रमिकों से अधिकतम कार्य लेना सम्भव वैज्ञानिक प्रबन्ध के तहत ऐसी नवीन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, जिससे कि श्रमिकों से अधिकतम कार्य लेना सम्भव हो जाता है।

6. न्यूनतम श्रम-परिव्यय - श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाने से कार्य अधिक होने लगता है तथा वस्तुओं का अपव्यय भी कम हो जाता है। वे कम समय में अधिक कार्य करने लगते हैं अतः प्रति इकाई श्रम व्यय कम हो जाता है।

7. पूर्व निरीक्षण इनके द्वारा निर्माता उद्योग के समस्त सूक्ष्म-से-सूक्ष्म 'तत्वों का पूर्ण का पूर्ण नियन्त्रण' करने में सफल हो जाता है अतः किसी भी कार्य में किसी प्रकार की असुविधा या अड़चन नहीं रहती है।

(II) श्रमिकों को वैज्ञानिक प्रबन्ध से श्रमिकों को निम्न लाभ होते हैं-

1. वेतन में वृद्धि श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ जाने के कारण उनके वेतन में भी वृद्धि होती है। यही नहीं, समय-समय पर श्रमिकों को बोनस भी दिया जाता है। अनुसन्धान द्वारा प्राप्त आँकड़ों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि किसी भी औद्योगिक इकाई में वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू कर देने पर सामान्यतः वेतन में 30% से लेकर 80% तक वृद्धि हो जाती है।

2.. शान्तिपूर्ण वातावरण - वज्ञानिक प्रवन्ध स श्रामका का मानासक शान्ति मिलती है और वे अधिक कुशलता से कार्य करने लगते हैं।

3. कार्यक्षमता में वृद्धि - श्रमिकों में कार्य का समुचित एवं रुचि के अनुसार वितरण करने से और एक ही कार्य करते-करते उनकी कार्यक्षमता में दूनी वृद्धि हो जाती है। श्रमिकों को मशीनों के साथ कार्य करने में आराम मिल जाता है ताकि अधिक कार्यक्षमता से कार्य कर सकें।

4. समय की बचत कार्य का समय कम हो जाता है, क्योंकि वैज्ञानिक विधियों से कार्य करने में श्रमिक कम-से-कम समय में अत्यधिक कार्य कर सकता है।

5. उच्च जीवन-स्तर - श्रमिकों के जीवन-स्तर में उन्नति हो जाती है। शराब-खोरी, जुआ इत्यादि बुरी आदतों का विनाश हो जाता है। कारखानों के अन्दर तथा बाहर अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। उनकी संख्या अधिक होने से वे अपने लिए न्यायोचित अधिकारों की माँग कर सकते हैं। उनमें स्वयं के प्रति स्वाभिमान की भावना जायत होती है।

6. कार्य का युक्तिपूर्ण वितरण वैज्ञानिक प्रबन्ध में कार्य का युक्तिपूर्ण वितरण होता है, क्योंकि प्रत्येक श्रमक को उसकी शारीरिक शक्ति, मानसिक प्रवृत्ति एवं रुचि के अनुसार कार्य दिया जाता है, जिससे कार्य करने में उसे आनन्द का अनुभव होता है।

7. औद्योगिक प्रशिक्षण की व्यवस्था चूँकि वैज्ञानिक प्रबन्ध में औद्योगिक प्रशिक्षण का दायित्व निर्माता अपने कन्धों पर लेता है, अतः श्रमिकों को इससे लाभ पहुँचता है। उन्हें निःशुल्क प्रशिक्षण मिलता है।

8. मानसिक क्रान्ति - श्रम और पूँजी के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि वे परस्पर सहयोग से कार्य करते हैं। प्रत्येक श्रमिक को इस बात का गर्व होता है कि निर्माता उसका विशेष ध्यान रखता है। निर्माता उनके लिए अधिक-से-अधिक सुविधाएँ उपलब्ध करने का प्रयत्न करता है।

III) राष्ट्र को वैज्ञानिक प्रबन्ध से सम्पूर्ण राष्ट्र लाभान्वित होता है। मुख्यता ये लाभ निम्न होते हैं-

1. राष्ट्र की आय में वृद्धि - बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से देश के उद्योगों एवं व्यवसाय का तीव्रता से विकास होता है परिणामस्वरूप राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से समृद्धिशाली बन जाता है।

2. उपभोक्ताओं को लाभ - वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू हो जाने से उपभोक्ताओं को अनेक लाभ पहुँचते हैं, जैसे- माल की किस्म में सुधार होना तथा सस्ता, सुन्दर एवं टिकाऊ माल मिलना। इससे उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता है।

3. पूर्ण औद्योगिक शान्ति जिस देश में श्रम एवं पूँजी का संघर्ष होता है वह देश कभी भी प्रगति नहीं कर सकता। वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू हो जाने से पूर्ण औद्योगिक शान्ति स्थापित हो जाती है, क्योंकि इससे श्रमिकों, निर्माताओं और उपभोक्ताओं अर्थात् सभी वर्गों को लाभ पहुँचता है। इस प्रकार शान्ति स्थापित हो जाने से समाज एवं राष्ट्र का संगठन मनमाने ढंग पर न होकर वैज्ञानिक ढंग पर होगा।

4. सामाजिक स्तर में वृद्धि जैसे-जैसे उत्पादन का आकार बढ़ता जाता है, देश की आय भी बढ़ती जाती है, क्योंकि एक ओर तो उद्योग एवं व्यवसाय का विस्तार हो जाने से अधिक कर प्राप्त होगा तथा दूसरी ओर जनता का जीवन-स्तर ऊँचा हो जाने के कारण उसकी कर देने की सामर्थ्य भी अधिक हो जायेगी।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के दोष/हानि (Disadvantages of Scientific Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के लाभों को देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि वैज्ञानिक प्रबन्ध दोषरहित है अथवा यह एक ऐसी रामबाण औषधि है जिसको प्रयोग में लाने से समस्त समस्याओं का सदैव के लिए समाधान हो जाता है। वास्तविकता यह है कि टेलरवाद को कभी भी सफलता नहीं मिली। चाहे श्रमिक

हो अथवा निर्माता, सभी के द्वारा टेलरवाद की तीव्र आलोचना की गई। आलोचनाओं के मुख्य आधार इस प्रकार हैं-

(1) श्रमिकों द्वारा विरोध

वैज्ञानिक प्रबन्ध का श्रमिकों द्वारा निम्न बिन्दुओं के आधार पर विरोध किया गया -

1. अधिक परिश्रम - वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाने के फलस्वरूप श्रमिकों से अधिक कार्य करवाया जाता है, जिससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

2. कठोर नियन्त्रण- वैज्ञानिक प्रबन्ध में श्रमिकों को बड़े ही कठोर नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। वे कार्य के प्रति किसी प्रकार की आवाज तक नहीं उठा सकते हैं।

3. प्रमापीकरण तथा विशिष्टीकरण का प्रभाव उत्पादन क्रियाओं का अत्यधिक प्रनापीकरण एवं विशिष्टीकरण होने से श्रमिक केवल उसी क्रिया विशेष को कार्यक्षमता से कर सकता है तथा उसे अन्य क्रियाओं का तनिक भी ज्ञान नहीं रहता। इस प्रकार एक ही मशीन पर सदैव कार्य किये जाने से उसमें उस कार्य के प्रति दिलचस्पी नहीं रहती तथ वह अन्य कार्यों के लिए भी अनुपयुक्त हो जाता है, क्योंकि उसका कार्य संकीर्ण होता है।

4. वेतन का प्रश्न - श्रमिक वर्ग का कहना है कि उनको उस अनुपात में वेतन नहीं मिलता जिस अनुपात में। उत्पादन में वृद्धि होती है। अधिकांश भाग निर्माताओं की जेबों में जाता है।

5. स्वतंत्रता का हनन - प्रत्येक श्रमिक स्वाभाविक रूप से ही स्वतन्त्रतापूर्वक स्वतन्त्रतापूर्व कार्य करना चाहता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध में इसके लिए कोई स्थान नहीं है। उसमें हर कार्य, हर क्रिया नियंत्रित रहती है। 'ऐसे काम करो', 'ऐसे खड़े हो' 'अब काम करो', 'अब आराम करो' इत्यादि आदेश सुनते-सुनते श्रमिक ऊब जाता है। टेलर ने स्वयं ही स्वीकार किय है कि इस प्रकार के

प्रबन्ध से श्रमिक आरम्भ से उसी प्रकार भड़कते हैं जिस प्रकार लाल कपड़ा देखकर बैल।

6. कार्य के प्रति रुचि का अभाव वैज्ञानिक प्रबन्ध में श्रमिकों की स्वतन्त्रता का हनन होने के कारण उन्हें एक मशीन की तरह कार्य करना पड़ता है। निरन्तर एक ही प्रकार का कार्य करते रहने के कारण उन्हें कार्य में कोई नवीनता नहीं दिखाई पड़ती। इसके परिणामस्वरूप उनमें कार्य के प्रति अरुचि उत्पन्न होने लगती है। इसका उन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

7. आरम्भ में बेकारी वैज्ञानिक प्रवन्ध लागू करने से श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है, जिसके कारणपहले के मुकाबले से उस कारखाने में कम श्रमिकों की आवश्यकता रहती है। परिणामस्वरूप, जिस कारखाने में यह योजना लागू की जाती है, वहाँ पर बहुत से कर्मचारियों को अयोग्य कहकर निकाल दिया जाता है। इससे श्रमिकों में प्रारम्भ से ही भयंकर बेकारी फैल जाने का भय उत्पन्न हो जाता है।

8. शोषण की नई तरकीब इस प्रणाली के द्वारा श्रमिकों का अनेक प्रकार से शोषण किया जाता है। निर्माताओं की मनमानी, पक्षपात, तालाबन्दी, 'मतभेद पैदा करो और राज्य करो' आदि का बोलबाला हो जाता है।

9. श्रम-संघों का विरोध - श्रम-संघों (Labour Unions) की दृष्टि से यह प्रणाली हानिकारक है, क्योंकि यह श्रमिकों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करती है तथा उनके (श्रेणियों) नाम भी अलग-अलग रख दिये जाते हैं। इससे श्रमिकों की एकता की भावना नष्ट हो जाती है। इससे श्रम-संघों का अस्तित्व ही खंतरे में पड़ जाता है।

10. श्रमिकों पर विश्वास नहीं- यह प्रणाली श्रमिकों की निजी योग्यता तथा गुणों पर कोई विश्वास नहीं करती। कौन-सा कार्य अधिक सुविधापूर्वक हो सकता है, इसकी जानकारी कार्य करने वाले को किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा

अधिक हो सकती है, परन्तु वैज्ञानिक प्रबन्ध यह मान्यता लेकर चलता है कि श्रमिक कार्य करने की विधि स्वयं नहीं निकाल सकते ।

(II) निर्माताओं अथवा विनियोक्ताओं द्वारा विरोध

वैज्ञानिक प्रवन्ध का विरोध निर्माताओं एवं विनियोक्ताओं द्वारा निम्न प्रकार से किया गया है -

1. अत्यन्त खर्वोली पद्धति यह प्रणाली अत्यन्त खर्चीली है, क्योंकि इसमें पग-पग पर निरीक्षण की आवश्यकता पड़ती है, एक पृथक् योजना विभाग खोला जाता है, अनेक विशेषज्ञ रखने पड़ते हैं तथा नित्य नये-नये सुधार होते हैं, जिनको उपयोग में लाना एक खर्चीली व्यवस्था का स्वागत करना है।

2. स्वतन्त्रता का हनन निर्माताओं की स्वतन्त्रता का हनन हो जाता है। वे विशेषज्ञों के हाथ की 'कठपुतली' हो जाते हैं और वे जिधर घुमाते हैं, उधर घूमना पड़ता है। अतः बहुत से निर्माता वैज्ञानिक प्रबन्ध को लागू करने में हिचकते हैं।

3. स्थिरता का अन्त कारखाना एक कारखाना न रहकर एक प्रयोगशाला बन जाता है। नित्य नये-नये परिवर्तन होते रहते हैं, अतः स्थिरता का अन्त हो जाता है। इससे निर्माता को क्षति पहुँचती है।

4. पूर्ण प्रमापीकरण सम्भव नहीं सिद्धान्त रूप में चाहे जो कुछ कहा जा सकता है, किन्तु व्यावहारिक रूप में पूर्ण प्रमापीकरण प्राप्त करना कोई आसान कार्य नहीं है, जबकि वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रमापीकरण का होना नितान्त आवश्यक है।

5. आर्थिक मन्दी में भारस्वरूप आर्थिक मन्दी के समय जब उत्पादन शिथिल हो जाता है और लाभ कम हो जाते हैं तो उस समय वैज्ञानिक प्रबन्ध के अनुसार योजना एवं विकास विभाग तथा उसके अधिकारियों पर होने वाला व्यय भारस्वरूप हो जाता है।

6. प्रशिक्षित कर्मचारियों को प्राप्त करना सहज नहीं वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। इन्हें प्राप्त करना कोई सहज नहीं है।

7. समन्वय की समस्या करना कठिन हो जाता है। संस्था में अनेक निरीक्षकों तथा विशेषज्ञों के कारण उनके कार्यों में समन्वय स्थापित

आलोचनाओं का औचित्य

जहाँ भी वैज्ञानिक प्रवन्ध के प्रयन असफल हुए, वहाँ पद्धति का कोई दोष नहीं, यदि गलती है तो कार्यान्वित करने वालों की अर्थात् निर्माताओं की क्योंकि अच्छी से अच्छी पद्धति भी खराब निर्माताओं के हाथ में पड़कर बेकार हो जाती है। अतः इन आलोचनाओं के प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है कि -

1. श्रमिकों पर कार्य का बोझ बढ़ जाने की धारणा अत्यन्त भ्रमपूर्ण है। टेलर के मतानुसार औजारों तथा कार्य करने की विधियों में सुधार करने के परिणामस्वरूप वे उतने ही परिश्रम और समय में पहले के मुकाबले में कहीं अधिक कार्य कर सकते हैं, अतः अधिक कार्य लेने का प्रश्न ही नहीं उठता।

2. निर्माताओं का मनमानी करने का तर्क ठीक प्रतीत होता है किन्तु टेलर ने पहले ही कह दिया है कि अच्छी-से-अच्छी पद्धति भी अयोग्य प्रबन्धकों के हाथ में पड़कर बेकार हो जाती है। जिस प्रकार मनुष्य को खड़े होने के लिए दोनों पैरों की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही सफलता के लिए उत्तम प्रणाली तथा उत्तम व्यक्ति दोनों की समान रूप से आवश्यकता होती है।

3. यह कहा जाता है कि श्रमिकों को बढ़े हुए उत्पादन के अनुपात में वेतन नहीं मिलता है। इसके प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है कि उत्पादन में वृद्धि केवल श्रमिकों के कारण नहीं होती, अपितु उसमें नवीनतम मशीनों के प्रयोग का भी बहुत बड़ा भाग होता है। अतः बढ़े हुए उत्पादन के अनुपात में वेतन देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

4. कुछ विरोधियों का यह भी कहना है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू होने से बहुत से श्रमिक बेकार हो जाते हैं, किन्तु यह आरोप भी विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि जो व्यक्ति परिश्रमी तथा कार्य में रुचि लेने वाले होते हैं, उनको हटाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अकुशल तथा अयोग्य कर्मचारी किसी भी आर्थिक औद्योगिक इकाई को अनार्थिक बना देते हैं अतः उनको कुछ-न-कुछ दण्ड तो मिलना ही चाहिए। फिर भी यदि प्रारम्भिक अवस्था में कुछ बेकारी फैलती है तो वह स्थायी न होकर अस्थायी होती है।

5. जहाँ तक श्रमिक संघों के विरोध का प्रश्न है तो उसके प्रत्युत्तर में केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि श्रमिक संघों की भाँति वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य भी श्रम-पूँजी संघर्षों के स्थान पर उन दोनों में सामुदायिक भावना पैदा करना है। दोनों को यह दिखलाना है कि बिना आपसी सहयोग के सफल उत्पादन सम्भव नहीं अतः इसके द्वारा श्रमिकों तथा निर्माताओं की सारी समस्याएँ हल हो जाती हैं। फिर विरोध क्यों और कैसे ?...

6. जहाँ तक प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव का प्रश्न है तो उसके प्रत्युत्तर में यही पर्याप्त है कि उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था स्वयं निर्माता द्वारा की जा सकती है। भारत में कई उद्योगपतियों ने अपने-अपने यहाँ कर्मचारियों के आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था कर रखी है।

3.6 भारत में वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management in India)

हमारा राष्ट्र अपनी विकास यात्रा पर निरन्तर द्रुत गति से बढ़ता जा रहा है और एक सुखी-सम्पन्न भारत के स्वप्न को साकार करने की भरसक चेष्टा कर रहा है। किन्तु हमारे राष्ट्र के सामने अनेक समस्यायें विकास की राह में रोड़े अटका रही हैं। हमारे उद्योगों की कार्य-कुशलता एवं उत्पादकता के स्तरों में वांछनीय वृद्धि नहीं हो पायी है। हमारे उद्योग कम उत्पादकता, उत्पाद की घटिया किस्म तथा अधिक उत्पादन लागत जैसी बीमारियों से ग्रसित हैं। श्रम

प्रबन्ध सम्बन्ध भी काफी बिगड़े हुए हैं। अभी पेशेवर प्रबन्धकों का वर्ग भी अपना उचित स्थान ग्रहण नहीं कर सका है। भारतीय स्वामी-प्रबन्धक अभी भी परम्परागत प्रबन्ध-दृष्टिकोणों एवं परिपाटियों को अपने सीने से चिपकाये हुए है। हमारी अर्थव्यवस्था में भी विक्रेता बाजारों की प्रधानता है। माँग पूर्ति की तुलना में अधिक है, परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य ऊँचे हैं। किस्म सुधार की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सका है। स्वस्थ प्रतियोगिता का अभाव है। उभर भारत द्वारा वर्तमान में उदार आर्थिक एवं औद्योगिक नीतियों के अपनाये जाने के कारण विदेशी उद्योगपति अपने आधुनिकतम तकनीकी ज्ञान तथा विशाल वित्तीय एवं अन्य साधनों से लैस होकर बड़ी संख्या में तेजी के साथ हमारे देश के आर्थिक औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। भारत सरकार उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ देने के लिए वचनबद्ध है। अतः निश्चित रूप में हमारे देश के उद्योगपतियों को बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। उनके सामने कुछ ठोस कार्य करने अथवा मर मिटने का समय आने वाला है। ऐसी स्थितियों में भारत में वैज्ञानिक प्रबन्ध की प्रयुक्ति एक अनिवार्यता बनती जा रही है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा परम्परागत प्रबन्ध में अन्तर(Distinguish between Scientific and Traditional Management)

व्यवसाय की सामान्य समझ उत्पन्न होने से लेकर 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लो प्रबन्ध व्यवस्था थी उसे परम्परागत प्रवन्ध के नाम से जाना जाता है। जबकि प्रबन्ध में विशिष्टीकरण एवं वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा तब यह वैज्ञानिक प्रबन्ध कहा जाने लगा। यद्यपि दोनों का लक्ष्य उपक्रम की सफलता हेतु कार्य करना होता है लेकिन बुनियादी तौर पर दोनों में कई अन्तर विद्यमान हैं जो निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किये जा सकते हैं-

1. हित परम्परागत प्रबन्ध में श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के इसमें प्रबन्धक एवं श्रमिकों के हित समान होते हित अलग-अलग होते हैं। हैं।

2.मजदूरी परम्परागत प्रबन्ध में श्रमकों को न्यूनतम मजदूरी इसमें प्रेरणात्मक मजदूरी पन्द्धति का उपयोग दी जाती है जो कि उनके जीवित रहने एवं किया जाता है। इसके अतिरिक्त मजदूरी का न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य की मात्रा से भी सम्बन्ध होता है। आवश्यक है।

3. सुझाव परम्परागत प्रबन्ध में कर्मचारियों को सुझाव देने का अधिकार नहीं होता। ऐसा करने पर उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। इसमें कर्मचारियों को सुझाव देने के लिए प्रेरित किया जाता है एवं उनके सुझावों को पर्याप्त महत्व भी दिया जाता है।

4. प्रवन्ध दर्शन परम्परागत प्रबन्ध दर्शन संकीर्ण होता है। इसका प्रबन्ध दर्शन पर्याप्त व्यापक है। परम्परागत प्रबन्ध में प्रमापीकरण का कोई भी प्रमापीकरण वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक आवश्यक स्थान नहीं है।

5. सामयिक प्रयोग परम्परागत प्रबन्ध में सामयिक प्रयोगों (जैसे इसमें अनेक सामयिक प्रयोगों पर बल दिया समय अध्ययन, गति अध्ययन, थकान अध्ययन आदि) पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

6. लागत विधियाँ परम्परागत प्रबन्ध में लागत विधियों का कोई इसमें लागत विधियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

7. नियोजन परम्परागत प्रबन्ध में नियोजन का कोई भी इसमें पूर्व नियोजन के आधार पर ही प्रबन्ध स्थान नहीं है। किया जाता है।

8. कर्मचारियों के परम्परागत प्रबन्ध में कर्मचारियों के बारे में इसमें कर्मचारियों के विस्तृत अभिलेख रखे चारे में अभिलेख अभिलेख नहीं रखे जाते हैं। जाते हैं एवं उन्हीं के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

9. आधार इसका आधार परम्परागत रीति-रिवाजे हैं। वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधार परीक्षण, प्रयोग अन्तर्ज्ञान एवं अनुभव इसमें विशिष्ट हैं। तथा शोध है।

10. मानवीय पहलू परम्परागत प्रबन्ध में मानवीय पहलू का सर्वथा अभाव होता है। इसमें मानवीय पहलू का पूर्णदः ध्यान रखा जाता है।

11. कार्य-विधियाँ परम्परागत प्रबन्ध में पुरातन काल से चली आ रही कार्य-विधियों का उपयोग किया जाता है। यह 'लकीर का फकीर' है। इसमें वैज्ञानिक और नवीन कार्य-विधियों का उपयोग किया जाता है।

12. निर्णयन इसमें रीति-रिवाज, अन्तर्ज्ञान एवं अनुभव के इसमें वैज्ञानिक रीतियों, सिद्धान्तों एवं आधार पर निर्णयन लिये जाते हैं। अनुसन्धान के आधार पर निर्णय लिये जाते हैं।

13. अभिप्रेरण परम्परागत प्रबन्ध में श्रमिकों को अभिप्रेरण नहीं इसमें अभिप्रेरण पर बल दिया जाता है। दिया जाता है।

14. कार्यकाल परम्परागत प्रवन्ध में श्रमिकों को लम्बे समय तक (13 से 14 घण्टों तक) कार्य करना पड़ता इसमें कार्य के घण्टे सीमित (6 से 9 घण्टों तक) होते हैं। इसके अतिरिक्त साप्ताहिक अवकाश है। साप्ताहिक छुट्टी आदि का कोई भी प्रावधान नहीं होता। इस प्रकार परम्परागत प्रबन्ध एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध दोनों में उपरोक्त विभेद हैं तथा दोनों की उपयोगिता में भी पर्याप्त अन्तर विद्यमान है।

2. प्रबन्ध प्रक्रिया विचारधारा (Management Process School) - प्रक्रिया विचारधारा प्रबन्ध को एक प्रक्रिया मानती है जो विभिन्न उप-क्रियाओं अथवा कार्यों में बँटी होती है। इस विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध "कुछ प्रक्रियाओं का समूह (A Set of Processes) अथवा "कुछ कार्यों की श्रृंखला" (A Sequence of Functions) है। यह विचारधारा मानती है कि प्रबन्ध सार्वभौमिक प्रक्रिया है जिसके सिद्धान्तों को सर्वत्र लागू किया जा सकता है। इसलिए कुछ विद्वान इसे "प्रबन्ध की सार्वभौमिक विचारधारा" (Universal Approach) भी कहते हैं।

यह विचारधारा प्रबन्ध के आधारभूत कार्यों का निर्धारण करती है। इसलिए इसे "कार्यात्मक विचारधारा"(Functional Approach) भी कहा जाता है। प्राचीन

तथा अधिक प्रचलित होने के कारण इसे "परम्परागत विचारधारा" (Classical or Traditional School) के नाम से भी पुकारा जाता है।

प्रबन्ध प्रक्रिया विचारधारा के जनक हेनरी फेयोल (Henry Fayol) माने जाते हैं। अतः प्रबन्ध में फेयोल के योगदान का अध्ययन करना आवश्यक है।

3.7 प्रबन्ध एवं प्रशासन में फेयोल का योगदान (Fayol's Contribution to Management and Administration)

जिस प्रकार टेलर वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता कहे जाते हैं उसी प्रकार प्रशासनिक प्रबन्ध या कार्यात्मक प्रबन्ध के विकास का श्रेय हेनरी फेयोल को जाता है। फेयोल के अतिरिक्त कार्यात्मक प्रबन्ध (Functional Management) के विकास में योगदान देने वाले अन्य लोगों में ओलिवर शेल्डन, मूने और रेले, एच. साइमन, एल. उर्विक तथा सी बर्नार्ड प्रमुख हैं।

हेनरी फेयोल (1841-1925) एक संक्षिप्त परिचय

फेयोल का जन्म सन् 1841 में फ्रांस में कॉस्टेटीनोपल में हुआ। सन् 1860 में इंजीनियरी ग्रेजुएट हो जाने पर इन्हें फ्रांस की एक बड़ी कोयला खान कम्पनी में इंजीनियर नियुक्त किया गया। 1872 में वे इसी कम्पनी में प्रवन्धक तथा 1888 में प्रबन्ध संचालक बन गये और अगले 30 वर्ष तक वे इसी पद पर कार्य करते रहे। इस सर्वोच्च पद पर आसीन होने के कारण फेयोल ने उच्च स्तर पर प्रबन्ध की समस्याओं का गूढ़ अध्ययन किया और उन्होंने 1916 में फ्रेंच भाषा में 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेण्ट' पुस्तक प्रकाशित की जिसका 1929 में अंग्रेजी अनुवाद किया गया। सन् 1918 में अवकाश प्राप्त करने के बाद फेयोल ने अपने प्रबन्ध सिद्धान्तों का समुचित प्रचार किया। सन् 1925 में फेयोल की मृत्यु हो गयी और उस समय वे फ्रांसीसी तम्बाकू उद्योग पर संगठन सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य कर रहे थे।

फेयोल का प्रबन्ध दर्शन

(1) प्रबन्ध का महत्व (Importance of Management)

आधुनिक प्रबन्ध सिद्धान्त के वास्तविक जन्मदाता हेनरी फेयोल ही कहे जा सकते हैं। उन्होंने औद्योगिक प्रतिष्ठानों की समस्त क्रियाओं को निम्नांकित छः वर्गों में बाँटा है -

1. तकनीकी (Technical) उत्पादन, निर्माण, यन्त्र, प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित;
2. वाणिज्यिक (Commercial) सामग्रियों एवं माल के क्रय-विक्रय से सम्बन्धित;
3. वित्तीय (Financial) - कोषों की प्राप्ति और उसके कुशल उपयोग से सम्बन्धितः
4. सुरक्षात्मक (Security) मनुष्यों तथा सम्पत्तियों की सुरक्षा से सम्बन्धितः
5. लेखाकर्षीय (Accounting) स्टॉक, बहीखातों, लागतों, अन्तिम परिणामों, आँकड़ों एवं अंकेक्षण से सम्बन्धितः तथा
6. प्रबन्धकीय (Managerial) प्रतिष्ठान की सम्पूर्ण क्रियाओं के नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय एवं नियन्त्रण से सम्बन्धित ।

उस समय तकनीकी योग्यता को प्रतिष्ठान में सर्वोच्च महत्व दिया जाता था। फेयोल ने स्पष्ट रूप से कहा कि तकनीकी योग्यता का बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों में निचले स्तर पर और छोटे प्रतिष्ठानों में ऊँचे स्तर पर निःसन्देह बहुत महत्व है। परन्तु जैसे-जैसे प्रतिष्ठान के आकार में वृद्धि होती है, तकनीकी योग्यता की तुलना में प्रबन्धकीय योग्यता का महत्व बढ़ता चला जाता है। फेयोल ने अनेक उदाहरणों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि उच्च तकनीकी योग्यता एवं अन्य सामग्रियों के बावजूद बड़े-बड़े प्रतिष्ठान प्रबन्धकीय क्षमता के अभाव में असफल हो जाते हैं। इस आधार पर उसने प्रशासनिक योग्यता वाले व्यक्तियों को उद्योगों एवं अन्य संस्थानों में सर्वोच्च पद देने की सिफारिश की। फेयोल ने प्रबन्धकीय योग्यता को अधिकतम महत्व प्रदान किया।

(II) प्रबन्ध के सिद्धान्त (Principles of Management)

प्रत्येक आवश्यक परिस्थिति में उचित लोच के साथ लागू किये जाने योग्य निम्नांकित 14 अत्यन्त महत्वपू प्रबन्धकीय सिद्धान्त हेनरी फेयोल द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं-

1. श्रम विभाजन का सिद्धान्त जब कारखाने में बड़ी संख्या में श्रमिक होते हैं तो उनके बीच आसानी से श्र विभाजन और विशिष्टीकरण अपनाया जा सकता है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण कार्य अनेक भागों में बाँट दिया जाता और योग्यता तथा रुचि के आधार पर अलग-अलग कार्मिक समूहों से अलग-अलग कार्य सम्पन्न करवाए जाते हैं।

2. अधिकार एवं उत्तरदायित्व का सिद्धान्त ये दोनों एक-दूसरे से बुड़े हुए हैं तथा इनके बीच संतुलन आवश्य है। प्राधिकार का आशय है आदेश देने की राशियाँ और अधिकार। उत्तरदायित्व के अन्तर्गत समस्त कर्त्तव्यों के निर्वा की जिम्मेदारी आती है। प्रत्येक पदाधिकारी को उसके उत्तरदायित्वों के अनुरूप ही प्राधिकार दिया जाना चाहिए। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

3. अनुशासन का सिद्धान्त अनुशासन का अर्थ आदर के साथ नियमों तथा समझौतों का पालन करना है इसकी अवहेलना करने पर दण्ड की व्यवस्था आवश्यक है। दूषित नेतृत्व दुर्बल अनुशासन को जन्म देता है वो संस्थ के पतन का रास्ता खोज देता है।

4. आदेश की एकता का सिद्धान्त एक कर्मचारी को एक ही वरिष्ठ व्यक्ति से आदेश मिलने चाहिए जिससे संघर्ष और भ्रम उत्पन्न न हो सके।

5. निर्देश की एकता का सिद्धान्त समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए नियोजन तथा समस्त क्रियाओं का संचालन एक ही पदाधिकारी को सुपुर्द किया जाना चाहिए।

6. व्यक्तिगत हित का सामान्य हित के अधीन होना संस्था के हितों के अधीन व्यक्तिगत कर्मचारियों के हितें का सामंजस्य किया जाना चाहिए।

7. पारिश्रमिक संस्था के हितों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित प्रेरणात्मक एवं उचित पारिश्रमिक दरें कर्मचारियों को अधिक एवं बेहतर कार्य की ओर मोड़ती हैं।
8. केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त साधनों के सदुपयोग और निर्देशन के लिए यह जरूरी है कि आवश्यक बिन्दुओं पर अधिकारों तथा शक्तियों का उचित संकेन्द्रण हो। एक निश्चित सीमा के पश्चात् विकेन्द्रीकरण भी जरूरी है।
9. श्रेणी श्रृंखला का सिद्धान्त - उच्चतम
से लेकर निम्नतम वरिष्ठों के बीच श्रेणी एवं अधिकार के आधार पर श्रृंखला निर्धारित कर देनी चाहिए, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि कौन व्यक्ति किसे आदेश देगा और कौन किससे आदेश महण करेगा। इस प्रकार ऊपर से नीचे तक पदों का क्रम सुस्पष्ट होना चाहिए। केवल अपरिहार्य होने पर ही इस श्रृंखला के उल्लंघन की अनुमति दी जा सकती है।
माना कि प्रबन्ध विभाग का अध्यक्ष
कुलपति
अधिष्ठाता (वाणिज्य संकाय)
अधिष्ठाता (कला संकाय)
अध्यक्ष (राजनीति विज्ञान)
प्रोफेसर (राजनीति)
अध्यक्ष (प्रबंध विभाग)
प्रोफेसर (प्रबंध)
विद्यार्थी
एक काल्पनिक विश्वविद्यालय के लिए फेयोल का क्रम)
10. व्यवस्था का सिद्धान्त फेयोल के अनुसार एक संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए वहाँ वस्तुओं तथा कर्मचारियों की नियोजित तथा विवेकपूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। कच्चा व निर्मित माल सभी उचित स्थान पर

व्यवस्थित ढंग से लगा होना चाहिए तथा प्रत्येक कर्मचारी को उसकी योग्यता व अभिरुचि (Apptitude) के अनुसार पद व कार्य मिलना चाहिए। संक्षेप में, इस सिद्धान्त का आशय है।

11. समता का सिद्धान्त - समता से आशय प्रबन्धकों की ओर से कर्मचारियों के प्रति प्रदर्शित दयालुता, मैत्री भाव तथा न्यायपूर्ण व्यवहार से है जो कर्मचारियों को संस्था या संगठन के प्रति पूर्ण निष्ठवान बनाता है। यद्यपि कभी-कभी फेयोल के अनुसार, समता स्थापित करने के लिए प्रबन्धकों को कुछ कर्मचारियों के साथ कठोर व्यवहार भी करना पड़ सकता है।

12. स्थायित्व का सिद्धान्त फेयोल के अनुसार सभी कर्मचारियों और विशेषकर प्रबन्धकीय कर्मचारियों की बार-बार अदला-बदली संस्था के हित में नहीं रहती। फेयोल ने यहाँ तक कहा है कि संस्था को शीघ्र ही छोड़कर चले जाने वाले उत्तम कोटि के प्रबन्धक की तुलना में संस्था में स्थायी रूप से टिके रह सकने वाले मध्यम कोटि के प्रबन्धक की नियुक्ति संस्था के लिए अधिक हितकर सिद्ध होती है। संस्था में कर्मचारी स्थायित्व की दृष्टि से कर्मचारी नियोजन आवश्यक है। 13. पहल-शक्ति का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से सोचने की शक्ति तथा अपने विचार के अनुसार कार्य करने की क्षमता होती है। इसे पहल-शक्ति कहते हैं। यह संस्था के हित में है कि प्रबन्धकों तथा अन्य कर्मचारियों को विचार तथा विचारों के क्रियान्वयन की स्वतन्त्रता प्रदान कर उनकी पहल-शक्ति को प्रोत्साहन दें।

14. एकता की भावना का सिद्धान्त फेयोल के अनुसार प्रशासनिक प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए जो समस्त कर्मचारियों में एकता की भावना (Team Spirit) तथा संस्था के प्रति वफादारी (Loyalty) पैदा करे। इस सम्बन्ध में फेयोल ने प्रबन्धकों को निम्न दो बातों को ध्यान में रखने का परामर्श दिया है प्रथम, उन्हें 'विभाजित करो और शासन करो' (Divide and Rule) की नीति का लेशमात्र भी अनुसरण नहीं करना चाहिए और द्वितीय, गलत कार्य करने वाले

कर्मचारियों से लिखित स्पष्टीकरण के बजाय मौखिक रूप से बात करके उन्हें सही मार्ग पर लाना चाहिए।

फेयोल के ये चौदह सिद्धान्त प्रत्येक प्रकार की संस्था के प्रबन्ध में लागू होते हैं और प्रतिनिधि सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, परन्तु इनमें से किन सिद्धान्तों को किस समय और किन परिस्थितियों में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है, यह बहुत कुछ प्रबन्धकों की कुशाग्रता, अनुभव व निर्णयन शक्ति पर निर्भर करता है।

(III) प्रबन्धकीय योग्यताएँ एवं प्रशिक्षण श्री हेनरी फेयोल ने प्रबन्धकीय योग्यताओं एवं उन्हें प्रशिक्षण दिये जाने पर बल दिया। उनके अनुसार एक प्रवन्धक में निम्न योग्यताएँ होनी चाहिए -

(अ) शारीरिक स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति।

(ब) विवेक शक्ति एवं सतर्कता।

(स) उत्तरदायित्व स्वीकारने की क्षमता एवं स्वामिभक्ति ।

(द) सामान्य ज्ञान ।

(इ) विशिष्ट ज्ञान एवं अनुभव।

फेयोल के अनुसार प्रवन्धकीय योग्यता प्रबन्धकों में जन्मजात नहीं होती वरन् शिक्षण व प्रशिक्षण से प्राप्त एवं विकसित की जा सकती है।

(IV) नियत्रण का विस्तार एक शीर्ष अधिकारी के अधीन कितने अधीनस्थ हों, इस बात का निर्णयन करने से पूर्व संस्था में विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए इस बात पर श्री फेयोल ने पृथक से दिशा निर्देश दिये थे। उनके अनुसार सामान्यतः एक उच्च अधिकारी के नियन्त्रण में चार या पाँच अधीनस्थ ही होने चाहिए।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध के क्षेत्र में फेयोल के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। उनके द्वारा प्रदत्त विचारों की गहनता एवं अनुभव का मिश्रण निश्चित रूप से अविस्मरणीय है।

3.8 टेलर तथा फेयोल-तुलनात्मक अध्ययन (Taylor and Fayol A Comparative Study)

दोनों में समानताएँ (Points of Similarity)

टेलर तथा फेयोल दोनों ही उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक प्रबन्ध विशेषज्ञ थे, अतः उनके कार्यों में पर्याप्त समानताएँ विद्यमान हैं, जोकि निम्न हैं-

(1) टेलर तथा फेयोल दोनों ही प्रबन्ध की दशाओं को सुधारना चाहते थे। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दोनों ने ही कार्य किया।

(2) दोनों ही प्रबन्ध को विवेकपूर्ण तथा व्यवस्थित आधार प्रदान करना चाहते थे। इसके लिए टेलर ने 'वैज्ञानिक प्रवन्ध' का आधार प्रदान किया तथा फेयोल ने 'प्रशासन के सामान्य सिद्धान्त' का उद्गम एवं विकास किया। प्रबन्ध का आधुनिक विज्ञान दोनों से ही प्रेरणा लेता है।

(3) दोनों ही अपने जीवन में प्रबन्धक के पदों पर कार्य कर चुके थे तथा अपने अनुभवों की छाप प्रबन्ध के क्षेत्र में लगाई। दोनों ने ही अपने व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर वैज्ञानिक प्रबन्ध के विकास में अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

(4) दोनों ने ही प्रबन्ध के क्षेत्र में मानव तत्व के महत्व को पहचाना। उन दोनों का यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक मानव के साथ विभिन्न स्तरों पर मानवीय व्यवहार नहीं किया जाएगा, तब तक औद्योगिक अथवा व्यावसायिक सफलता की कामना करना सर्वथा निरर्थक होगा।

(5) दोनों ने ही कुशल प्रबन्ध हेतु 'प्रबन्ध के सिद्धान्तों' का प्रतिपादन किया तथा उनके पालन करने एवं उनका विकास करने पर बल दिया।

(6) दोनों ने ही प्रबन्धक के तकनीकी व पेशा पहलू पर बल दिया।

(7) दोनों ने ही प्रबन्ध के क्षेत्र में नियोजन पर बल दिया।

(8) दोनों की ही यह धारणा थी कि एक प्रबन्ध 'अर्जित प्रतिभा' है 'जन्मजात' नहीं। अतएव इसे विकसित किया जाना चाहिए।

दोनों में असमानताएँ (Points of Dissimilarity or Difference)

इन दोनों विशेषज्ञों में उपर्युक्त समानताओं के होते हुए भी कई असमानताएँ विद्यमान हैं, जोकि निम्न हैं-

(1) टेलर ने अपना कार्य प्रबन्ध के स्तर की निम्नतम श्रेणी से शुरू किया। इसके कारण उसके अध्ययन का

केन्द्र-बिन्दु 'श्रमिक' था। इसके विपरीत फेयोल ने अपना कार्य प्रबन्ध के स्तर की उच्चतम श्रेणी से प्रारम्भ किया। इसके कारण उसके अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु 'प्रवन्धक' था। उन्होंने 'समन्वय', 'निर्देशन की एकता' तथा 'सहयोग' जैसे प्रबन्ध के सिद्धान्तों पर विशेष रूप से बल दिया।

(2) टेलर ने श्रमिकों की कार्य-कुशलता के बढ़ाने पर बल दिया तथा इसी क्षेत्र में अपने विभिन्न प्रयोग (जैसे- समय अध्ययन, गति अध्ययन तथा थकान अध्ययन) किए। इसके विपरीत, फेयोल का दृष्टिकोण काफी विस्तृत होने के कारण उन्होंने प्रबन्ध के ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन्हें प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सरलता से लागू किया जा सकता है। अधिकांश विद्वानों की सम्मति में टेलर 'कुशलता विशेषज्ञ' थे तथा फेयोल 'प्रशासन विशेषज्ञ' थे।

(3) टेलर ने कारखाने के प्रबन्ध तथा उत्पादन के इन्जीनियरिंग पक्ष (जैसे यन्त्रों एवं औजारों का प्रमापीकरण) की ओर विशेष रूप में ध्यान दिया। इसके विपरीत फेयोल ने प्रबन्ध के कार्यों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया।

(4) टेलर की विचारधारा सैद्धान्तिक है, जबकि फेयोल की विचारधारा व्यावहारिक है।

(5) टेलर वैज्ञानिक प्रबन्ध स्कूल के समर्थक थे, जबकि फेयोल व्यवहारवादी स्कूल के।

(6) टेलर ने क्रियात्मक संगठन द्वारा श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ाने पर बल दिया, जबकि फेयोल ने प्रशासन सिद्धान्तों द्वारा प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाने पर बल दिया।

(7) टेलर ने व्यक्ति विशेष पर बल दिया, जबकि फेयोल ने व्यक्तियों के समूह पर बल दिया ।

(8) नई परिस्थितियों के प्रभाव में टेलरवाद में बहुत परिवर्तन हो गया है, किन्तु फेयोल के सिद्धान्त आज भी उतने ही उपयोगी एवं उपयुक्त हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) प्रबन्ध विज्ञान विशेषज्ञ प्रो. उर्विक ने टेलर तथा फेयोल इन दोनों विद्वानों के योगदान का तुलनात्मक विवरण इन शब्दों में प्रस्तुत किया "टेलर तथा फेयोल दोनों के ही कार्य एक-दूसरे के पूरक थे। इन दोनों ने ही यह अनुभव किया कि प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों एवं उनके प्रबन्ध की समस्या औद्योगिक सफलता की कुन्जी है। दोनों ने ही इस समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किया है। यद्यपि टेलर ने गुख्यतः औद्योगिक प्रबन्ध के क्रम में नीचे से ऊपर की ओर क्रियात्मक स्तर पर कार्य किया, जबकि फेयोल ने जनरल मैनेजर के पद पर ध्यान केन्द्रित करके ऊपर से नीचे की ओर कार्य करने पर जोर दिया। अन्ततः यह अन्तर उनके बहुत भिन्न व्यवसाय क्रमों का प्रतिबिम्ब मात्र था।"

3.9 अधिकारी तंत्र विचारधारा अथवा नौकरशाही सम्बन्धी सिद्धांत विचारधारा (The Bureaucratic Principle School)

मेक्स वेबर ने संगठन एवं प्रबन्ध के नौकरशाही सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिपादन किया था जिसमें प्रबंधकीय क्षेत्र में आधुनिक विचारों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया। जर्मन के मनोवैज्ञानिक तथा टेलर एवं फेयोल के समकालीन वेबर ने संगठन के 'ब्यूरोक्रेटिक मॉडल' को विकसित किया जो कि प्रभावी संगठनों का एक आवश्यक मॉडल है। नौकरशाही का आशय संगठनात्मक ढाँचे की एक विशेषता से लगाया जाता है। वेवर के अनुसार ब्यूरोक्रेसी सर्वाधिक प्रभावी रूप है। जिसे सबसे प्रभावी तरीके से जटिल संगठनों, व्यापार, सरकार तथा रक्षा सम्बन्धी कार्यों में उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिये आधुनिक संगठनात्मक ढाँचे में व्यक्ति को एक

निश्चित जिम्मेदारी देकर उसकी योग्यतानुसार कार्य सौंपा जाता है एवं उस कार्य के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उसकी जवाबदेही निश्चित की जाती है।

विशेषताएँ (Essentials)- इस विचारधारा के मुख्य लक्षण या विशेषताएँ निम्न हैं:-

1 .इसमें एक निश्चित जिम्मेदारी के रूप में व्यक्तियों को कार्यों का विभाजन किया जाता है।

2. इस विचारधारा के अन्तर्गत वे संगठन में अधिकारों की क्रमबद्धता एवं आदेश की श्रृंखला अपील की नियमित प्रणाली के साथ।

3. परिभाषित नियमों के साथ प्रशासन।

4. तर्कसंगत एवं वास्तविक मापदण्ड पर आधारित निर्णय जिससे की सभी निर्णय अवैयक्तिक हो।

5. प्रदर्शित योग्यता पर आधारित रोजगार एवं पदोन्नति, निरंकुश सेवा समाप्ति के विरुद्ध सुरक्षा और स्टॉक का प्रशिक्षण।

6. कार्य की अपेक्षा रेंक या पद के आधार पर निर्धारित पारिश्रमिक एवं सेवानिवृत्ति पर वृद्धावस्था में सुरक्षा के रूप में निश्चित पेंशन ।

इस प्रकार नौकरशाही सम्बन्धी सिद्धांत विचारधारा का दूसरा लाभ है काम में गति, स्पष्टता, फाइलों का ज्ञान, निरंतरता या लय, विवेक, एकता, कठोर अधीनता, मतभेदों में कमी, सामग्री एवं व्यक्तिगत सम्बन्ध, लागत को लाभदायक बिन्दु तक पहुंचाना आदि। इसी प्रकार इस विचारधारा का हानिप्रद बिन्दु है भाई-भतीजावाद, कठोरता एवं मानवीय तत्व ।

परम्परागत विचारधाराओं की सीमाएँ (Limitations of Classical School)

परम्परागत विचारधारा संगठन को एक ऐसी विशाल मशीन माने हैं जो ढाँचे एवं प्रबन्ध में अपरिवर्तित नियमों पर आधारित है। इस विचारधारा के समर्थकों ने यह कल्पना की थी कि कर्मचारियों को आर्थिक सुविधाओं से प्रेरित किया

जा सकता है एवं इस तथ्य को नजर अन्दाज कर दिया जाता है कि लोग प्रतिभाशाली एवं अद्वितीय होते हैं। ये लोग संगठन की सदस्यता से अपनी कई सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उन्होंने इस मान्यता पर कार्य किया कि कर्मचारी सदैव विवेक से कार्य करते हैं, जबकि कुछ हद तक अविवेकपूर्ण कार्य करना मानव व्यवहार की एक सहज विशेषता होती है। इनकी यह भी कल्पना थी कि संगठनात्मक दक्षता का पैमाना उत्पादकता है और संगठनात्मक उद्देश्यों की विविधता की उपेक्षा की जा है यहाँ तक की उन्होंने मानवीय व्यवहार पर अनौपचारिक समूहों के प्रभाव को भी नजर अन्दाज कर दिया।

यह सम्पूर्ण दृष्टिकोण कारीगरीय है स्वयं वे प्रबन्ध के परिणाम जैसे नेतृत्व, अभिप्रेरण, सम्प्रेषण एवं अनौपचारिक सम्बन्ध को ठीक ढंग से व्यक्त नहीं करते है। ये विचारक संगठन समूह की भूमिका एवं आधार समूह व्यवहार को ध्यान में रखने में भी असफल रहे है। बाद में मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण ने संगठन एवं प्रबन्ध के इन परिणामों पर ध्यान केन्द्रित किया।

II.नव-पारम्परिक अथवा आधुनिक विचारधारा या स्कूल (Neo-classical or modern system or school)

प्रबन्ध की पारम्परिक विचारधाराएँ यद्यपि तात्कालिक परिस्थितियों एवं प्रबन्धकीय प्रकृति के अनुसार पूर्ण रूप से प्रासंगिक थीं, लेकिन शनैः शनैः उद्यमिता विकास से प्रबन्धकीय प्रकृति एवं कौशल की आवश्यकता के स्वरूप में परिवर्तन हुआ तथा इन्हीं कारणों से प्रबन्ध की नव-पारम्परिक विचारधारा का प्रस्फुटन हुआ। पारम्परिक विचारधारा या स्कूल में उत्पादन के साधन तथा उनके संगठन समन्वय को शीर्ष पर रखा गया था दूसरे शब्दों में 'साधनों' को अधिक महत्व दिया गया था जबकि 'साध्य' अर्थात् 'मानव' को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इसीलिए जार्ज एल्टन मेयों तथा उनके साथियों ने एक

नवीन विचारधारा को जन्म दिया एवं नये-नये प्रयोगों द्वारा इनके महत्वपूर्ण एवं आधुनिकतम होने की पुष्टि की।

3.10 हाथोर्न प्रयोग(1924-32)Hawthorne Experiment 1924-32)

हाथोर्न प्रयोग ने प्रबन्धकीय विचारों में नाटकीय परिवर्तन ला दिये हैं। प्रबन्ध के इतिहास में उन्हें कभी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा। इन प्रयोगों ने प्रबन्ध के इतिहास में 'मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन' की सुदृढ़ आधारशिला रखी। संयुक्त राज्य अमेरिका की सुप्रसिद्ध 'वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी' के हाथोर्न स्थित कारखाने में किये जाने से सम्पूर्ण विश्व
में ये प्रयोग 'हाथोर्न प्रयोग' के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये प्रयोग अनुसंधानकर्ताओं की पूरी एक टीम के द्वारा किये गये थे। इस टीम का नेतृत्व हार्वर्ड विश्वविद्यालय के सुविख्यात विद्वान एलटन मेयो ने किया।

जार्ज एल्टन मेयो-एक परिचय

प्रो. एल्टन मेयो का जन्म 1880 में आस्ट्रेलिया में हुआ जहाँ उन्होंने तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र व दर्शनशास्त्र क अध्ययन किया। 1926 में मेयो हार्वर्ड (यू.एस.ए) के बिजनेस स्कूल में प्रोफेसर हो गये। यहाँ उन्होंने मानवीय व्यवहा का अध्ययन किया तथा श्रमिकों की सामाजिक तथा आर्थिक प्रकृति को पहचानने में योगदान दिया ।

हाथोर्न प्रयोगों का संक्षिप्त विवरण 1924 से 1932 के मध्य हाथोर्न प्लाण्ट में किये गये प्रयोगों को मुख्य रूप से निम्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है -

1. रोशनी प्रयोग इस प्रयोग का मूलभूत उद्देश्य यह पता लगाना था कि रोशनी का श्रमिकों की क्षमता एवं उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसके अन्तर्गत उन्होंने श्रमिकों में से दो समूहों का चयन किया। इन दो समूहों में से एक समूह के श्रमिकों को ऐसे स्थान पर कार्य करने दिया गया जहाँ पर प्रकाश व्यवस्था पहले के समान पूर्ववत रखी गयी थी। दूसरे समूह को ऐसे स्थान पर

कार्य करने दिया गया जहाँ प्रकाश की मात्रा में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता था। इस योजना के परिणाम अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं चौंका देने वाले थे, क्योंकि उत्पादन केवल वही नहीं बढ़ा जहाँ पर प्रकाश व्यवस्था स्थिर रही बल्कि उस समूह का भी उत्पादन बढ़ा जहाँ पर प्रकाश व्यवस्था परिवर्तनशील थी। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि कर्मचारियों की क्षमता एवं उत्पादकता पर प्रकाश का प्रभाव बहुत नगण्य है।

2. प्रसारण संयोजन जाँच कक्ष प्रयोग यह प्रयोग पहले के प्रयोग की विसंगतियों को दूर करने के लिए किया गया जिसका उद्देश्य उत्पादन पर थकान अथवा विश्राम के पड़ने वाले प्रभाव का मापन करना था। इस प्रयोग में दो-दो लड़कियों के दो समूहों का चयन किया गया और बाद में प्रत्येक समूह से कहा गया कि वह अपने-अपने समूहों में चार-चार लड़कियों का और चयन कर लें, जिससे समूह में छन्छः लड़कियाँ हो गयीं। इन दोनों समूहों की लड़कियों को टेलीफोन रिले मशीनों को इकट्ठा करने में लगाया गया। इस प्रयोग का पर्यवेक्षण करने पर निम्न तथ्य सामने आये-

(1) सामान्य दशाओं में जब 48 घण्टे का आराम दिया गया तथा शनिवार के दिन भी कार्य कराया जाता था तो

सप्ताह में 2,400 मशीनों का उत्पादन हुआ।

(2) जब उनसे अलग-अलग कार्य कराया गया, तो उत्पादन और भी बढ़ा।

(3) बब उन्हें सुबह-शाम पाँच-पाँच मिनट का आराम दिया गया, तब भी उत्पादन में वृद्धि हुई।

(4) जब आराम का समय दुगुना कर दिया गया, तब भी उत्पादन में वृद्धि हुई।

(5) जब दिन में छः बार आराम दिया गया, तो उत्पादन घट गया। इस बार लड़कियों ने शिकायत की कि अधिक आराम से कार्य-गति में अवरोध पैदा हो जाता है।

(6) फिर उन्हें दो-दो मिनट आराम दिया जाने लगा। सुबह के आराम में कम्पनी की ओर से गर्म खाना दिया जाने लगा। इसके फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि परिलक्षित हुई।

(7) लड़कियों को पाँच बजे कार्य से छुट्टी देने की बजाय साढ़े चार बजे छुट्टी दी गई तब भी उत्पादन में वृद्धि हुई।

(8) जब उन्हें साढ़े चार बजे के बजाय चार बजे ही छोड़ दिया गया तब भी उत्पादन में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ा।

(9) अन्त में उपर्युक्त परिणामों को देखकर परीक्षण प्रारम्भ करने के लिए पुनः पहली वाली (1, 2, 3, 4) अवस्थायें लाई गयीं।

(10) प्रति सप्ताह दो दिन की छुट्टी दी गई। किसी प्रकार का बीच में आराम नहीं दिया गया। निःशुल्क भोजन बन्द कर दिया। इन दशाओं में 11 सप्ताह तक कार्य कराया गया। इस अवस्था में उत्पादन सबसे अधिक हुआ, अर्थात् एक सप्ताह में दोनों समूह की लड़कियों ने 30,000 रिले मशीनों का उत्पादन किया।

निष्कर्ष - इस प्रयोग के परिणामों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कर्मचारी की कार्य-कुशलता अथवा उत्पादन की मात्रा को केवल भौतिक वातावरण ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि कार्य के लिए प्रेरणा का होना भी नितान्त आवश्यक है। उपरोक्त अन्वेषण में दोनों समूह की लड़कियों की प्रेरणा बढ़ा दी गई थी। इस खोज से एक और महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया कि कार्य-काल में कभी भी थकान, अरोचकता और अनुशासनहीनता जैसी स्थितियाँ पैदा नहीं हुई। यह प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि कर्मचारी के सामाजिक जीवन में सुधार होना अति आवश्यक है।

3. साक्षात्कार - मेयो ने तरह-तरह के कर्मचारियों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार लिये। अध्ययन का यह ढंग मनोविज्ञान पर आधारित था। मेयो ने इन कर्मचारियों को निर्भीकतापूर्वक कारखाने की समस्याओं, वातावरण, कार्यदशाओं, कार्यों,

अनुभवों एवं सुझावों के बारे में अपने विचार रखने हेतु प्रोत्साहित किया। इन साक्षात्कारों के समन्वित एवं प्रमुख निष्कर्ष निम्नानुसार हैं -

(1) यदि कर्मचारियों को अपनी समस्याओं तथा सुझावों को रखने का अवसर दिया जाये तो उनका मनोबल बढ़ता (2) कारखाने की आन्तरिक तथा बाहरी दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों का प्रभाव कर्मचारियों के व्यवहार तथाअपेक्षाओं पर पड़ता है।

(3) कर्मचारियों की अनेक शिकायतें मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित होती हैं। उनकी माँगे सदैव ठोस तत्वों पर आधारित न होकर अन्तर्मन की गुप्त भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

(4) कर्मचारी सन्तोष का प्रत्यक्ष माप कठिन है।

4. अवलोकन - मेयो और उसके सहयोगियों ने कर्मचारियों के अनेक समूहों तथा उनके पर्यवेक्षकों के व्यवहारों का गहन अवलोकन किया। इस अध्ययन प्रणाली से कर्मचारियों को प्रभावित करने वाले घटकों का पता चल सका। अथम अध्ययन और इस अध्ययन में एक अन्तर है। प्रथम अध्ययन में नियन्त्रित परिवर्तनों के अन्तर्गत उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्वों की जाँच की गई। इस अध्ययन में विद्यमान परिस्थितियों में कर्मचारी व्यवहार को प्रभावित करने वाले सामाजिक घटकों का विश्लेषण किया गया।

मेयो ने इस अध्ययन के आधार पर निम्न प्रमुख निष्कर्ष निकाले -

(1) अनौपचारिक संगठनों, सिद्धान्तों एवं विधियों का कर्मचारियों के कार्य निष्पादन पर गहरा असर पड़ता है।

(2) प्रत्येक कर्मचारी समूह कार्य का एक प्रमाप सोच लेता है और कोई भी सदस्य सामान्यतः उससे ज्यादा कार्य करना पसन्द नहीं करता। अगर कोई सदस्य इससे अधिक कार्य हेतु प्रयत्न करता है तो उसे अपने अन्य साथियों को आलोचना एवं निन्दा का पात्र बनना पड़ता है।

(3) कर्मचारीगण कार्य की भौतिक दशाओं एवं वित्तीय पारिश्रमिक के अतिरिक्त सामूहिक मान्यताओं को बहुत महत्व प्रदान करते हैं।

3.11 हाथोर्न प्रयोगों से निकले सिद्धान्त

हाथोर्न कारखाने में किये गये प्रयोगों और अध्ययनों के निम्नलिखित सैद्धान्तिक निष्कर्ष बहुत महत्वपूर्ण हैं-

(1) मनुष्य आर्थिक प्राणी नहीं है मनुष्य केवल धन प्रयोजनों से ही प्रेरित नहीं होता, उसकी मानसिक एवं सामाजिक जरूरतें भी बहुत महत्वपूर्ण है। प्रबन्धकों को चाहिए कि वे कर्मचारियों को प्रेरित करने हेतु मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक घटकों को भी प्राथमिकता दें।

(2) उत्पादकता वृद्धि में मान्यता, सुरक्षा और मनोवल का निर्णायक योगदान होता है केवल भौतिक एवं आर्थिक दशाओं में परिवर्तन कर देने मात्र से उत्पादकता वृद्धि नहीं होती। इस हेतु श्रमिकों के अहं को तुष्टि भी की जानी चाहिए। उनको सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए और उनके मनोबल को उन्नत करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

(3) अनौपचारिक समूहों का विशिष्ट महत्व है औद्योगिक कर्मचारियों के कारखाने एवं कारखाने के बाहर अनेक अनौपचारिक समूह बन जाते हैं। इन समूहों को मान्यताओं एवं गतिविधियों से कर्मचारियों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। अनौपचारिक समूहों से वार्तालाप लाभदायक सिद्ध होता है।

(4) शिकायतें असन्तोष की प्रतीक है- शिकायतें अनेक बार ठोस तथ्यों पर आधारित नहीं होती हैं, परन्तु उनसे यह जरूर प्रकट होता है कि शिकायत करने वाले लोगों में असन्तोष सुलग रहा है।

(5) श्रेष्ठतम परिणामों के लिए कुल कार्य स्थिति का अनुकूल होना आवश्यक है अच्छे परिणाम तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि भौतिक वातावरण, आर्थिक पारिश्रमिक, प्रबन्धकों का व्यवहार तथा अनौपचारिक समूहों एवं समाज की

मान्यताएँ आदि सभी अनुकूल स्थिति में हों। (6) समस्याओं के समाधान हेतु मानवीय दृष्टिकोण आवश्यक है अनेक समस्याएँ एवं मतभेद चाहे वे ठोस घटकों पर आधारित हों या मानसिक हों, मानवीय दृष्टिकोण अपनाने तथा आपसी विचार-विमर्श का सहारा लेने से सुलझ जाते हैं।

कुल मिलाकर हाथोर्न प्रयोगों ने प्रबन्ध में मधुर मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा को जन्म देकर गतिशील एवं रचनात्मक नेतृत्व का मार्ग प्रशस्त किया है। मेयो की 'मानवीय सम्बन्ध विचारधारा' आधुनिक युग की एक क्रान्तिकारी उपलब्धि है। उसने एक महत्वपूर्ण रिक्तता को पूरा किया है। आजकल तो औद्योगिक तथा प्रत्येक दूसरी सामूहिक गतिविधि, मानवीय सम्बन्धों की सफलता पर ही निर्भर है।

(2) निर्णय सिद्धान्त विवारधारा (The Decision Theory School)

निर्णय सिद्धान्त विचारधारा के अंतर्गत प्रबंधकीय समस्याओं का निर्णयन प्रक्रिया के सम्बन्ध में खोजा जात है। निर्णयन प्रक्रिया में विभिन्न विकल्पों को ज्ञात करना, उन विकल्पों का आकलन करना तथा उपयुक्त विकल्प को चुनना सम्मिलित है। निर्णय सिद्धान्त दृष्टिकोण में प्रमुख योगदान हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon), विन्हें अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार दिया जा चुका है, का है।

विशेषताएँ (Characteristics) प्रबंध में निर्णय सिद्धान्त विचारधारा की विशेषताएँ निम्न हैं:

1. प्रक्रिया (Process) प्रबंध मुख्यतः निर्णयन प्रक्रिया है।
2. कारक (Factor) - संगठन के सदस्य मुख्यतः निर्णयकर्ता एवं समस्याओं के समाधान के कारक होते हैं।
3. आधार (Base) - संगठन को विभिन्न निर्णय केन्द्रों के संसर्ग के रूप में देखा जाना चाहिए जिनमें विभिन्न सदस्यों का महत्व उनके द्वारा लिए गए निर्णयों के आधार पर निर्धारित होता है।

4. प्रभावशीलता (Effectivity) निर्णय की गुणवत्ता संगठन की प्रभावशीलता को प्रभावित करती है।

5. विषय-वस्तु (Subject Matter) वे सभी कारक जो निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, प्रबंध के अध्ययन की विषय-वस्तु है।

मूल्यांकन (Evaluation) निर्णय सिद्धान्त दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए हर्बर्ट साइमन ने यह सिद्ध किया है कि प्रबंधक निर्णय में आर्थिक व्यक्ति (Economic Man) के स्थान पर प्रशासनिक व्यक्ति (Administrative Man) की अवधारणा का प्रयोग करते हैं। आर्थिक व्यक्ति दृष्टिकोण के अनुसार निर्णयकर्ता निर्णय लेते समय सभी विकल्पों को खोजने का प्रयास करता है जिसके द्वारा किसी समस्या का समाधान हो सकता है। इस प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लग जाता है और बहुत से ऐसे विकल्पों पर ध्यान देना पड़ता है जो लाभदायक नहीं होते हैं। इसके विपरीत प्रशासनिक व्यक्ति दृष्टिकोण में सीमित एवं महत्वपूर्ण विकल्पों पर ध्यान दिया जाता है और निर्णय प्रक्रिया में आसानी होती है। इसलिए विभिन्न परिस्थितियों में निर्णय पूर्णतः तर्कयुक्त नहीं होते हैं, बल्कि संतोषप्रद होते हैं। साइमन ने इसे सीमित तर्कयुक्तता (Bounded Rationality) का सिद्धान्त कहा है।

(3) प्रबंध विज्ञान विचारधारा (The Management Science School)

प्रबंध विज्ञान विचारधारा जिसे गणितीय या सांख्यिकीय विचारधारा भी कहा जाता है प्रबंध को एक तार्किक अस्तित्व के रूप में लेता है जिसमें विभिन्न क्रियाओं को गणितीय सूत्र एवं सम्बन्ध के रूप में प्रकट किया जाता है। इस दृष्टिकोण में गणितीय प्रतिरूप के विकास पर जोर दिया गया है। प्रबंध की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु इन प्रतिरूपों का प्रयोग किया जाता है जिससे निर्णय तर्कसंगत हो प्रबंध विज्ञान विचारधारा की विशेषताएँ निम्नलिखित

विशेषताएँ (Characteristics)

1. तकनीकों (Technicians) प्रबंध को गणितीय प्रतिरूपों एवं तकनीकों द्वारा समस्या समाधान की प्रक्रिया के रूप में लिया जाता है।
2. सूत्रों द्वारा (By formulas) प्रबंधकीय समस्याओं को गणितीय चिह्नों एवं सूत्रों में व्यक्त किया जाता है। इसके अनुसार प्रबंध की प्रत्येक क्रिया को संख्यात्मक रूप में व्यक्त किया जा सकता है।
3. मानव व्यवहार (Human Behaviour) इस दृष्टिकोण में निर्णयन प्रक्रिया, तंत्र विश्लेषण एवं मानव व्यवहार के कुछ पक्ष सम्मिलित हैं।
4. क्रियात्मक (Functional) क्रियात्मक अनुसंधान, गणितीय सूत्र, प्रतिरूप, इत्यादि का प्रयोग प्रबंधकीय समस्याओं के समाधान में किया जाता है।
इस प्रकार प्रबंध विज्ञान विचारधारा का प्रबंध में तेजी से प्रयोग होने लगा है। विशेष रूप से ऐसे निर्णयों में जिनके विकल्पों को सूचनाओं के आधार पर निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है; उनमें गणितीय प्रतिरूप का प्रयोग किया जाता है।
4) प्रणाली या तन्त्र विचारधारा (System School) - (
प्रबन्ध विचारधारा की तीव्र गतिशीलता आधुनिक युग की एक बड़ी विशेषता है। विद्वानों ने प्रबन्ध को बेहतर और व्यापक रूप में समझने तथा अपनाने हेतु नये-नये रास्ते चुने हैं। प्रणाली या तन्त्र विचारधारा इसी प्रकार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रास्ता है। यह विचारधारा थोड़ी जटिल है। इसका प्रतिपादन किसी एक विद्वान विशेष ने नहीं किया
अपितु अनेक विद्वानों के वैचारिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप इसका विकास हुआ है। प्रणाली दृष्टिकोण का विकास मुख्यतया 1950 के उपरान्त हुआ ।
आशय (Meaning)- प्रणाली विचारधारा एक संस्था के बाह्य वातावरण एवं आन्तरिक तत्वों का सामंजस्य करके प्रबन्ध निर्णय लेने का तरीका है। वास्तव में प्रत्येक संस्था सम्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक प्रणाली का एक भाग है और सम्पूर्ण प्रणाली को ध्यान में रखकर ही सही प्रबन्धकीय निर्णय लिये जा सकते

हैं। प्रणाली का सामान्य अर्थ किसी कार्य को करने के तरीके या ढंग से लगाया जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions) प्रणाली या तन्त्र के बारे में कुछ विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जो इस प्रकार है -

1. "प्रणाली किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न क्रियाओं का संकलन है जिसमें परस्पर सम्बन्ध होता है।" - ए. मैस्लो

2. "तन्त्र या प्रणाली विभिन्न विशिष्ट अंगों का परस्पर संकलन है जो एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं।" जे.ए. मोर्टन

3. "प्रणाली या तन्त्र परस्पर रूप से सम्बन्धित अनेक उप-प्रणालियों से बनती है जिनके प्रत्येक के विशेष उद्देश्य होते हैं, किसी एक में किये या हुए परिवर्तन से सम्पूर्ण प्रणाली परिवर्तित होती है एवं ये सभी मिलकर व्यवसाय की सुदृढ़ प्रबन्धकीय क्षमता बनती है।"

आदर्श परिभाषा

प्रणाली विचारधारा के लक्षण या विशेषताएँ (Essentials of System School) प्रणाली शब्द की परिभाषाओं के आधार पर उसके निम्न प्रमुख लक्षणों को पहचाना जा सकता है -

1.प्रत्येक प्रणाली के अनेक हिस्से या भाग (Components) होते हैं।

2.ये हिस्से एक-दूसरे पर निर्भर तथा क्रियाशील होकर प्रणाली का निर्माण करते हैं। प्रणाली बहुत जटिल होती है।

3. एक हिस्से में किया जाने वाला परिवर्तन अन्य हिस्सों को भी प्रभावित करता है।

4. प्रत्येक प्रणाली का एक निश्चित उद्देश्य होता है, जिसकी पूर्ति के लिए वह कार्य करती रहती है।

5.प्रणाली में संतुलन के लिए यह जरूरी है कि उसके हिस्सों में संतुलन रखा जाए।

6. एक बड़ी प्रणाली की अपनी उप-प्रणालियाँ होती हैं।

7. कई समकक्ष प्रणालियाँ मिलकर और भी बड़ी प्रणाली का निर्माण करती हैं। इन समकक्ष प्रणालियों को सह-प्रणालियाँ कह सकते हैं।

8.प्रणाली और उप-प्रणालियों के बीच तथा विभिन्न सह-प्रणालियों के बीच सन्देशों का आदान-प्रदान चलता रहता है। प्रणाली की सफलता के लिए जरूरी है कि सन्देश वहन अर्थात् सम्प्रेषण कुशल तथा द्विमार्गी हो।

9. प्रत्येक प्रणाली अपनी सीमाओं में कार्य करती रहती है, परन्तु ये सीमाएँ निरपेक्ष नहीं रहती हैं

विभिन्न प्रणालियों के बीच आदान-प्रदान चलता रहता है। ये एक-दूसरे पर निर्भर हैं। प्रणाली के उपरोक्त लक्षणों को मनुष्य शरीर केउदाहरण द्वारा भली-भाँति समझाया जा सकता है। मनुष्य शरीर एक प्रणाली है, जिसमें नाड़ी, श्वसन, पाचन जैसी अनेक उप-प्रणालियाँ सहयोग करती हुई एक निश्चित उद्देश्य के लिए कार्य करती हैं। एक उप-प्रणाली अन्य सहयोगी उप-प्रणालियों को प्रभावित करती हुई सम्पूर्ण प्रणाली पर अपना असर डालती है। स्वयं मानव जीवन प्रणाली अन्य वनस्पति एवं प्राणी जीवन प्रणालियों से सम्बन्धित एवं प्रभावित है।

3.12 प्रबन्ध भी एक प्रणाली है

प्रबन्ध विचारधारा में प्रणाली दृष्टिकोण के प्रवर्तकों की यह मान्यता है कि प्रवन्ध भी एक प्रणाली है। प्रबन्ध प्रणाली के अन्तर्गत नियोजन प्रणाली, संगठन प्रणाली, नियन्त्रण प्रणाली आदि शामिल हैं। इसमें से प्रत्येक छोटी प्रणाली की अनेक उप-प्रणालियाँ हैं।

दूसरी ओर व्यावसायिक उपक्रम जो स्वयं एक प्रणाली है, औद्योगिक प्रणाली का भाग होता है। औद्योगिक प्रणाली आर्थिक प्रणाली का हिस्सा है। आर्थिक प्रणाली का एक अंग है।

प्रणाली विचार का महत्व (Importance of System School) प्रबन्ध के अध्ययन को सबसे अधि वैज्ञानिक एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए प्रणाली दृष्टिकोण आधुनिक युग की अति महत्वपूर्ण तकनीक है। यह विशेषज्ञ की व्यापक समझ का नतीजा है तथा संकुचित दृष्टिकोण पर एक प्रहार है। जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक सम्पू शारीरिक प्रणाली को ध्यान में रखकर ही रोगग्रस्त अंग का ठीक इलाज कर सकता है, उसी प्रकार एक प्रबन्धक के चाहिए कि वह अपने संगठन या उपक्रम की सम्पूर्ण प्रणाली को ध्यान में रखकर समस्याओं तथा चुनौतियों के समाधान ढूँढ़े। इससे निम्न अनेक लाभ होते हैं-

1. संगठन की प्रकृति को बेहतर रूप में समझने और उचित दिशा में उसका विकास करने में सहायता मिलती है

2. साधनों का सन्तुलित एवं न्यायपूर्ण बँटवारा किया जा सकता है।

3. उपक्रम के विभिन्न अंगों में परस्पर गहन सहयोग, एकता और समन्वय उत्पन्न किया जा सकता है।

4. सभी कार्यकर्ताओं का ध्यान केन्द्रित लक्ष्य की ओर आकर्षित कर उनमें सद्भावना और संघर्षहीन की स्थिति कायम की जा सकती है। उन्हें बेहतर ढंग से अभिप्रेरित भी किया जा सकता है।

5.उन महत्वपूर्ण केन्द्रों को पहचाना जा सकता है, जिन पर नियन्त्रण स्थापित करने से सम्पूर्ण उपक्रम पर कारगर नियन्त्रण स्थापित हो जाता है।

6.संगठन के विभिन्न हिस्सों पर उनके महत्व के अनुपात में न्यायपूर्ण रूप से ध्यान दिया जा सकता है।

7. नये परिवर्तनों को लागू करते समय पर्याप्त सावधानी बरतने की दृष्टि प्राप्त होती है।

8.संगठन एवं बाहय वातावरण में समायोजन स्थापित किया जा सकता है।

निष्कर्ष - प्रबन्ध के प्रति प्रणाली दृष्टिकोण अपनाने से पूरी प्रबन्ध विचारणा में एक उपयोगी और क्रान्तिकायै परिवर्तन आ गया है। प्रणाली विचारधारा किसी अंग विशेष पर ही ध्यान केन्द्रित करने की बजाय सम्पूर्ण को समझने का प्रयास करती है। यह विचारधारा व्यावसायिक उपक्रम या अन्य किसी संगठन की सभी क्रियाओं-उपक्रियाओं के समन्वयपूर्ण एकीकरण पर बल प्रदान करती हुई विभिन्न उपप्रणालियों के विकास की ओर ध्यान देती है। यह संघर्षों को समझने और उन्हें टालने की दृष्टि प्रदान करती है। दर्शनशास्त्र में जो महत्व अद्वैत विचारधारा का है, वही महत्व प्रबन्धशास्त्र में प्रणाली विचारधारा का है।

(5) आकस्मिकता या सांयोगिक विचारधारा (Contingency School)

सांयोगिक अथवा आकस्मिकता अथवा आनुषंगिक विचारधारा का विकास सन् 1980 के बाद ही हुआ। इस विचारधारा के प्रतिपादन का मूल आधार यह अनुभव करना था कि समस्त स्थितियों का उत्तर न तो प्रबन्ध विज्ञान दे सकता है और न व्यवहार विज्ञान। सांयोगिक विचारधारा उन प्रबन्धकों, सलाहकारों और शोधकर्ताओं के लम्बे अनुसंधान का परिणाम है जो प्रबन्ध की प्रमुख विचारधाराओं को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में लागू करने का प्रयत्न करते रहे हैं और इस बात का उत्तर ढूँढ़ते रहे हैं कि कोई तकनीक या सिद्धांत एक परिस्थिति में प्रभावी रहता है तथा वही अन्य परिस्थितियों में प्रभावी क्यों नहीं रह पाता है। इस विचारधारा के प्रतिपादकों ने काफी खोज के बाद बताया कि जहाँ एक ओर प्रणाली दृष्टिकोण संगठन तथा पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को स्पष्ट करने में पूर्णतः असमर्थ है वहीं दूसरी ओर सांयोगिक विचारधारा काफी सीमा तक इस कमी की पूर्ति करने में समर्थ है।

आशय (Meaning)- सांयोगिक विचारधारा का बुनियादी आधार यह है कि प्रवन्ध का कार्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कब, कैसे तथा कौनसी समस्या उत्पन्न हो जायेगी इसका पहले से अनुमान लगाना कठिन है। ऐसी

स्थिति में प्रबन्धक का कार्य यह पता लगाना है कि कौनसी तकनीक, विधि, प्रक्रिया अथवा सिद्धांत, किस परिस्थिति, पर्यावरण दशा एवं समय विशेष में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान करेगी। यही दृष्टिकोण आकस्मिकता दृष्टिकोण कहा जाता है।

सांयोगिक विचारधारा के आवश्यक तत्व (Main elements of contingency school) इस विचारधारा के प्रमुख तत्व निम्न हैं -

1. प्रबन्धकीय परिस्थितियों में भिन्नता के कारण परिणाम भी भिन्न होते हैं।
2. संगठन का नेतृत्व प्रत्येक पृथक इकाई का कार्य पृथक विशेष परिस्थितियों में ही करता है।
3. परिस्थितिजन्य तत्व उचित संगठन संरचना व उपयुक्त प्रबन्ध शैली के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।
4.ऐसी कोई तकनीक, प्रक्रिया या सिद्धांत नहीं है जो संगठन से सम्बन्धित प्रत्येक समस्या का निदान कर सके।
5. आकस्मिकता की धारणा प्रबन्ध की अन्य विचारधाराओं एवं सिद्धांतों की महत्ता से इन्कार नहीं करती बल्कि उन्हें और अधिक व्यावहारिक बनाती है।
6. संगठन का आधार एवं प्रबन्ध की गतिविधियाँ दोनों विद्यमान परिस्थितियों के अनुकूल होनी चाहिए।
7. यह दृष्टिकोण यह बताता है कि प्रबन्ध अवधारणाओं एवं तकनीकें तथा उनके मध्य सांयोगिक सम्बन्ध हैं।
8. नेतृत्व शैली की प्रभावशीलता परिस्थितियों के अनुसार पृथक-पृथक होती है।

सांयोगिक विचारधारा तथा नेतृत्व की शैली सांयोगिक विचारधारा इस बात पर बल देती है कि नेतृत्व की कोई भी एक शैली सभी परिस्थितियों में कदापि उपयुक्त नहीं हो सकती है। नेतृत्व शैली की प्रभावशीलता परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग होगी। उदाहरण के लिए, भागिता नेतृत्व शैली ऐसे संगठन में सर्वाधिक प्रभावी होगी जहाँ पर तकनीकी दृष्टि से उच्च कुशल

कर्मचारी कार्य करते हैं एवं विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता विद्‌यमान है। इसके विपरीत, तानाशाही नेतृत्व शैली वहाँ पर सर्वाधिक प्रभावी होगी जहाँ पर अकुशल कर्मचारीगण सामान्य प्रकृति का कार्य करते हैं तथा सत्ता के प्रति पूर्ण भक्ति विद्‌यमान है। कोई भी व्यक्ति आदेशों के उल्लंघन करने की हिम्मत नहीं कर सकता।

प्रणाली विचारधारा बनाम् सांयोगिक विचारधारा- प्रणाली विचारधारा के विकसित एवं लोकप्रिय होने के पश्चात् ही सांयोगिक विचारधारा का उद्‌गम एवं विकास हुआ। इस दृष्टि से सांयोगिक विचारधारा एक प्रकार से प्रणाली विचारधारा में सुधार है। प्रणालीबद्‌ध विचारधारा संगठन के विभिन्न भागों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों पर बल देती है जबकि सांयोगिक विचारधारा उन अन्तर्सम्बन्धों की प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करती है। प्रणालीबद्‌ध विचारधारा संगठनात्मक चरों का व्यापक रूप धारण करती है तथा मानव का विस्तृत मॉडल प्रयुक्त करती है। यह सभी मानवीय आवश्यकताओं एवं प्रेरणाओं को ध्यान में रखती है। इसके विपरीत, सांयोगिक विचारधारा मुख्य रूप से संगठन-ढाँचे के अनुकूल एवं कार्य पर्यावरण से सम्बन्धित है। लेकिन इन दोनों विचारधाराओं को एक-दूसरे से बिल्कुल अलग करना सम्भव नहीं है। इन्हें एक-दूसरे का सहायक समझा जाना चाहिए। अतः प्रबन्ध को सांयोगिक विचारधारा के ढाँचे के अन्तर्गत ही प्रणालीबद्‌ध तथा अन्य सम्बन्धित विचारधाराओं का उपयोग करना चाहिए।

सांयोगिक विचारधारा की उपयोगिता अथवा महत्व प्रबन्ध के सैद्‌धान्तिक एवं व्यावहारिक भावी विकास के क्षेत्र में निश्चयात्मक रूप से सांयोगिक विचारधारा की महत्वपूर्ण भूमिका विद्‌यमान है। प्रबन्ध की अन्य सभी विचारधाराओं का समामेलन सांयोगिक ढाँचे के अन्तर्गत किया जा सकता है। इस विचारधारा का उपयोग मोर्चाबन्दी करने, प्रभावी संगठन की संरचना करने, सूचना पद्‌धति का नियोजन करने, सन्देशवाहन एवं नियन्त्रण पद्‌धतियों की स्थापना करने,

अभिप्रेरण तथा नेतृत्व विचारधाराओं का प्रारूप निर्धारित करने, मतभेदों का निपटारा करने तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में परिवर्तन आदि करने के लिए किया जा सकता है। यह विचारधारा संगठनों की विविधात्मक पद्धतियों को उजागर करती है तथा यह समझाती है कि संगठन विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार कार्य करते हैं। इसकी सहायता से प्रबन्धक ऐसी क्रियायें तैयार कर सकते हैं जो कि सम्बन्धित परिस्थितियों में सर्वाधिक उपयुक्त हों।

सांयोगिक विचारधारा के दोष अथवा सीमाएँ सांयोगिक विचारधारा की विभिन्न उपयोगिताओं के होने तथा उज्जवल भविष्य के होते हुए भी इसमें निम्न दो महत्वपूर्ण कमियाँ अथवा सीमाएँ दिखाई देती हैं -

1. सांयोगिक विचारधारा पर उपलब्ध वर्तमान साहित्य सर्वथा अपर्याप्त है।
2. यह विचारधारा पर्यावरण पर प्रबन्ध अवधारणाओं एवं तकनीकों के प्रभाव को मान्यता प्रदान नहीं करती है। इस विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सांयोगिक विचारधारा प्रबन्ध के क्षेत्र में आधुनिक

विचारधारा है एवं इसका भविष्य निश्चयात्मक रूप में उज्ज्वल है। हों, आवश्यकता इस बात की है कि खोज एवं अनुसन्धान करके इस पर अधिकाधिक साहित्य का सूजन किया जाये।

3.13 सार संक्षेप

प्रबन्ध की विचारधाराएँ समय के साथ विकसित हुई हैं और उन्होंने संगठनों को आधुनिक दृष्टिकोण अपनाने में सहायता की है। टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध ने कार्य कुशलता और उत्पादकता को बढ़ाने पर जोर दिया, जबकि फेयोल के प्रशासनिक सिद्धांतों ने संगठनात्मक संरचना और प्रबंधन के कार्यों की समझ को सुदृढ़ किया। हाथोर्न प्रयोगों ने मानव संबंधों और कर्मचारियों की संतुष्टि को संगठनों की सफलता के लिए महत्वपूर्ण माना। भारत में वैज्ञानिक प्रबन्ध ने औद्योगिक उत्पादन और प्रबंधन में सुधार के लिए मार्गदर्शन प्रदान किया।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. संगठन का विस्तार
   B. कार्य कुशलता और उत्पादकता बढ़ाना
   C. कर्मचारियों का प्रशिक्षण
   D. संगठनात्मक संरचना को सुधारना

2. हाथोर्न प्रयोगों के दौरान प्रमुख ध्यान किस पर केंद्रित था?
   A. कर्मचारियों की उत्पादकता
   B. उपकरण की गुणवत्ता
   C. प्रबन्धकीय संरचना
   D. तकनीकी सुधार

3. टेलर के ________ प्रबन्ध ने उत्पादकता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया।

4. हाथोर्न प्रयोगों का मुख्य निष्कर्ष था कि ________ कारक कर्मचारियों की उत्पादकता पर प्रभाव डालते हैं।

3.14 मुख्य शब्द

---

1. **प्रबन्ध विचारधारा)Management Approach)**: प्रबन्ध के विभिन्न सिद्धांत और उनके विकास।

2. **वैज्ञानिक प्रबन्ध)Scientific Management)**: टेलर द्वारा विकसित कार्य कुशलता पर आधारित दृष्टिकोण।

3. **प्रबन्धकीय क्रान्ति)Managerial Revolution)**: प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रमुख बदलाव।

4. **प्रबन्ध एवं प्रशासन)Management and Administration)**: संगठनात्मक संरचना और इसके संचालन का अध्ययन।

5. **हाथोर्न प्रयोग)Hawthorne Experiment)**: कर्मचारियों की उत्पादकता और संतोष पर सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रभाव।

6. **फेयोल का योगदान)Fayol's Contribution)**: प्रशासनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन।

7. **नौकरशाही)Bureaucracy)**: संगठनात्मक संरचना के लिए मैक्स वेबर का सिद्धांत।

8. **प्रबन्ध एक प्रणाली)Management as a System)**: संगठन को एकीकृत प्रणाली के रूप में देखना।

स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर : 1 B, **उत्तर**: 2 A, **उत्तर**: 3 वैज्ञानिक, **उत्तर**: 4 सामाजिक और मनोवैज्ञानिक

3.15 संदर्भ ग्रन्थ

Drucker, P. F. (2018). *Management: Tasks, Responsibilities, Practices*. HarperBusiness.

Gupta, C. B. (2021). *Management: Theory and Practice*. Sultan Chand & Sons.

Robbins, S. P., Coulter, M., & DeCenzo, D. A. (2020). *Fundamentals of Management*. Pearson Education.

Wren, D. A., & Bedeian, A. G. (2020). *The Evolution of Management Thought*. Wiley.

Mintzberg, H. (2022). *Managing the Myths of Management*. Berrett-Koehler Publishers.

Sharma, R. K. (2019). *Principles and Practices of Management*. Kalyani Publishers.

3.16 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबन्ध के 'पारम्परिक' एवं 'नव-पारम्परिक' विचारों को संक्षेप में समझाइये.
2. प्रबन्धकीय विचारधारां के इतिहास पर संक्षिप्त नोट लिखिये।
3. प्रबन्ध विचारधारा के विभिन्न स्कूलों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। उनके योगदान और विशेषताओं को लिखिए।
4. प्रबन्ध दर्शन के उद्‌गम एवं विकास पर एक निबन्ध लिखिये।
5. प्रबन्धकीय विचारधारा के विकास के इतिहास का संक्षेप में विवेचन कीजिए।
6. प्रवन्ध विचार के विकास में हेनरी फेयोल के योगदान का वर्णन कीजिये।
7. फेयोल के प्रबन्ध के सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
8. प्रबन्ध के विषय में हेनरी फेयोल के योगदान की विस्तृत समीक्षा कीजिए।
9. हेनरी फेयोल को प्रशासन का जनक क्यों कहते हैं?
10. "टेलर तथा फेयोल का कार्य एक दूसरे का पूरक था।" प्रवन्ध विज्ञान के क्षेत्र में दोनों के योगदान का तुलनात्मक अध्ययन कीजिये ।

इकाई -4

नियोजन (PLANNING)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 नियोजन की अवधारणाएँ

4.4 नियोजन की परिभाषाएँ

4.5 नियोजन के उद्देश्य

4.6 नियोजन के तत्व या संघटक या क्षेत्र

4.7 नियोजन की प्रक्रिया अथवा तकनीक अथवा नियोजन प्रक्रिया के कदम

4.8 नियोजन का महत्व या लाभ अथवा नियोजन की आवश्यकता व महता

4.9 नियोजन की कठिनाइयाँ अथवा आलोचनाएँ अथवा नियोजन की सीमाएँ

4.10 सार संक्षेप

4.11 मुख्य शब्द

4.12 संदर्भ

4.13 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

नियोजन मुख्य रूप से एक क्रिया होती है जिसके द्वारा उन कार्यों को निर्धारित किया जाता है जिनके निष्पादन करने से उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। नियोजन योजना से एकदम अलग है। नियोजन वह क्रिया है जिसके द्वारा भावी कार्यों की रूपरेखा, निष्पादन की समयावधि इत्यादि निर्धारित की जाती है। जबकि योजना नियोजन प्रक्रिया के परिणाम के रूप में परिभाषित होती है।

नियोजन भावी कार्यों का निर्धारण करता है जिसके द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि कार्य की आवश्यकता क्या है, कौन से कार्य किए जाएँ, काम को कैसे किया जाए एवं किस समयावधि में ये कार्य पूर्ण किये जाए? इन सभी . प्रश्नों के उत्तर देना नियोजन की क्रियाविधि में सम्मिलित किया जाता है। प्रसिद्ध प्रबंधशारवी जार्ज टेरी के अनुसार, "नियोजन भविष्य के सम्बन्ध में प्रस्तावित क्रियाओं के दृष्टिकोण तथा निर्माण में, जिन्हें कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझा जाता है, तथ्यों का चयन एवं उन्हें सम्बद्ध करना तथा धारणाओं को बनाना एवं उपयोग करना है।"

इस प्रकार नियोजन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भावी क्रियाकलापों के विषय में वैकल्पिक क्रियाओं में से सर्वोत्तम के चयन हेतु निर्णय लेना होता है। अपने लक्ष्यों की प्राप्त के लिए समय स्थल, क्रियाविधि एवं निष्पादन के तरीकों को तय करना ही नियोजन है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. नियोजन की अवधारणाओं और परिभाषाओं को समझ सकें।

2. नियोजन के उद्देश्य, तत्व और प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकें।

3. नियोजन के लाभ, सीमाएँ और कठिनाइयों का आकलन कर सकें।

4. नियोजन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों और तकनीकों को पहचान सकें।

4.3 नियोजन की अवधारणाएँ (Concepts)

'नियोजन' प्रबंधकीय कार्यों में शीर्ष पर आने वाला मूल या प्राथमिक कार्य माना जाता है एवं नियोजन द्वारा ही अन्य कार्यों को करने के ढंग एवं प्रक्रिया का निर्धारण होता है अतः नियोजन की विभिन्न अवधारणाओं को भली प्रकार से समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

नियोजन की प्रमुख अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं-

1. बौद्धिक प्रक्रिया की अवधारणा (Concept of Intellectual Process) नियोजन मूलतः एक बौद्धिक प्रक्रिया होती है। प्रबन्ध अपने बुद्धि कौशल द्वारा ही उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाता है एवं उन पर अमल के तरीके ढूंढ़ते हैं। कई प्रबन्धशास्त्री जैसे जेम्स लुण्डी, कूण्ट्ज ओडोनेल, हेन्स एवं मैसी आदि के अनुसार नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत आरम्भ से लेकर अन्त तक मानसिक चिन्तन की जरूरत होती है। कार्य का प्रकार, करने का समय, प्रक्रिया, करने वाले घटकों का निर्धारण आदि सब नियोजन की बौद्धिक प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं।

2. चयन की अवधारणा (Concept of Selection)- जब कोई प्रबंधक अपने उपक्रम के लक्ष्यों का निर्धारण कर लेता है तब उसके समक्ष कई विकल्प उपलब्ध होते हैं। इन विकल्पों में से उसे ऐसा विकल्प चुनना है जो निर्धारित लक्ष्यों को श्रेष्ठतम निष्पादन द्वारा पूर्ण कर सकें। विकल्पों का चयन नियोजन का प्रमुख आधार होता है। प्रो. हॉज के अनुसार "नियोजन मूल रूप

से चयन प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना पड़ता है।"

अतः विकल्पों के तुलनात्मक, सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं को अपनी बौद्धिक क्षमता द्वारा परखना तथा उनमें से श्रेष्ठतम का चयन करके भविष्य की रूपरेखा तय करने को ही चयन की अवधारणा कहा जाता है।

3. पूर्वानुमान की अवधारणा (Concept of Forecasting) हेनरी फेयोल ने लिखा है कि "नियोजन विभिन्न प्रकार के पूर्वानुमानों का चाहे वे अल्पकालीन हों या दीर्घकालीन, सामान्य हो या विशिष्ट प्रकार का संश्लेषण है।" अतः स्पष्ट है कि भविष्य के पूर्वानुमान की संकल्पना ही नियोजन की मूल अवधारणा होती है। इसके अन्तर्गत उपक्रम की श्रेष्ठतम सफलता के लिए भावी कार्यों, योजनाओं एवं नीतियों का सफल पूर्वानुमान लगाया जाता है। अतः पूर्वानुमान की अवधारणा नियोजन की मुख्य अवधारणा कही जाती है।

4. सतत् प्रक्रिया की अवधारणा (Concept of Continuous Process) नियोजन का अर्थ कई लोगों द्वारा केवल प्रारम्भिक प्रक्रिया के रूप में जाना एवं समझा जाता है लेकिन जेम्स लुण्डी एवं मेयर्स आदि इसे निरन्तर चालू रहने वाली प्रक्रिया मानते हैं। यह सर्वथा उपयुक्त भी है क्योंकि कोई काम कैसे करना, कब करना, कहाँ करना आदि तय करने के बाद भी यह नियोजन करना पड़ता है कि इस काम को किया जाने वाला स्टॉफ कैसा हो, वह निर्धारित प्रक्रियानुसार कार्य कर रहा है अथवा नहीं, उपक्रम के लक्ष्यों के अनुरूप कार्य पद्धति है अथवा नहीं एवं अब तक कार्य निष्पादन उपयुक्त है या नहीं आदि। अतः नियोजन की यह सतत् प्रक्रिया की अवधारणा नितान्द प्रासंगिक है।

5. उद्देश्यों की अवधारणा (Concept of Objectives) एक सामान्य व्यक्ति द्वारा भी कोई कार्य बिना उद्देश्य के नहीं किया जाता है तो 'प्रबंध' द्वारा तो निरुद्देश्य कार्य करना सर्वथा अनुचित ही होगा। इस मूल मान्यता के आधार

पर ही प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री मेरी कुशिंग नाइल्स तथा कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार उद्देश्यात्मक अवधारणा को मान्यता दी गई। इनके अनुसार नियोजन किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। उपक्रम के लक्ष्यों को न्यूनतम लागत एवं न्यूनतम परिश्रम के द्वारा अधिकतम सफलता के साथ प्राप्त करना उद्देश्यों की अवधारणा में शामिल किया जाता है।

6. दूरदर्शिता की अवधारणा (Concept of Far Sightedness) - दूरदर्शिता प्रबन्ध का महत्वपूर्ण एवं सावधानी वाला कार्य होता है। इस अवधारणा के अनुसार नियोजन के प्रत्येक स्तर एवं चरण तथा क्षेत्र में दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है। प्रत्येक घटक को चौकन्ना एवं क्रियाशील रखना तथा उनकी कार्यक्षमता को बनाये रखना एवं बढ़ाना प्रबन्ध की दूरदर्शिता पर निर्भर करता है। यही दूरदर्शिता नियोजन का प्रमुख आधार होती है। यदि नियोजन से दूरदर्शिता को निकाल दिया जाए तो वह शक्तिहीन हो जाएगा एवं इसका महत्व ही समाप्त हो जाएगा।

7. सार्वभौमिकता की अवधारणा (Concept of Universality) जिस प्रकार प्रवन्ध एक सार्वभौमिक तत्व माना जाता है ठीक उसी प्रकार नियोजन भी उपक्रम के प्रत्येक स्तर एवं प्रत्येक घटक हेतु आवश्यक होता है। सार्वभौमिकता की अवधारणा के अनुसार नियोजन की आवश्यकता संस्था के प्रत्येक स्तर पर होती है। जहाँ पर भी कार्यों का निष्पादन होता है वहाँ पर नियोजन की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार से नियोजन की इन अवधारणाओं के आधार पर हम नियोजन के वास्तविक अर्थ को समझने में सफल हो सकते हैं। इसके अलावा भी उपक्रम के समान साधनों की परस्पर निर्भरता की अवधारणा तथा अपनी आवश्यकतानुसार इन धारणाओं में बदलाव अर्थात् सोच की अवधारणा भी नियोजन के सही अर्थ को स्पष्ट करती है।

5. *4 नियोजन की परिभाषाएँ (Definitions of Planning)*

यद्यपि नियोजन एक चिरपरिचित शब्द एवं विषय है अतः इसे पृथक से परिभाषित करना आवश्यक नहीं है लेकिन इस महत्वपूर्ण तथ्य एवं विषय को विभिन्न विद्वानों ने किस रूप में लिया है तथा कैसे समझाया है यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। वैसे तो कई प्रबन्धशास्त्रियों द्वारा नियोजन को परिभाषित किया गया है लेकिन उनमें से निम्न परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं:

1. जॉर्ज आर. टेरी के अनुसार, "नियोजन भविष्य के सम्बन्ध में प्रस्तावित क्रियाओं के दृष्टिकोण तथा निर्माण में जिन्हें कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक समझा जाता है तथ्यों का चयन एवं उन्हें सम्बद्ध करना तथा धारणाओं को बनाना एवं उपयोग करना है।"

टिप्पणी : जॉर्ज टेरी के अनुसार "नियोजन भविष्य में देखने की विधि है। भविष्य में देखने का आशय भावी परिस्थितियों का अनुमान लगाने से है। उनके अनुसार वर्तमान क्रियाओं का समायोजन नियोजन द्वारा किया जाता है। नियोजन समुचित कार्यक्रम का निर्माण करता है।"]

2. मेरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार, "नियोजन एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रेष्ठ कार्यविधि का चयन एवं विकास करने की जागरूक प्रक्रिया है।"

[टिप्पणी : नाइल्स ने भी नियोजन को सर्वोत्तम कार्य पथ का चयन करने और उस पथ का विकास करने की प्रक्रिया ही माना है। उनके अनुसार नियोजन एक ऐसा आधार है जिस पर प्रवन्ध द्वारा भविष्य में किये जाने वाले सभी कार्य निर्भर करते हैं ।।

3. न्यूमैन के अनुसार, "भविष्य में क्या करना है, इसका पूर्व-निर्धारण ही नियोजन है। इस दृष्टि से यह अति व्यापक मानवीय व्यवहार है।"

[टिप्पणी: न्यूमैन की परिभाषा बतलाती है कि भविष्य में किये जाने वाले सभी कार्यों को करने से पहले ही निर्धारित कर लेने का प्रबन्ध कार्य 'नियोजन' कहलाता है। नियोजन का क्षेत्र बहुत व्यापक है क्योंकि व्यावसायिक और गैर व्यावसायिक सभी तरह की क्रियाओं के लिए योजनायें बनानी होती हैं।

4. कूष्ट्ज तथा ओ 'डोनेल' के अनुसार, "क्या करना है, इसे कैसे करना है, इसे कब करना है और इसे किसे करना है? का पूर्ण निर्धारण ही नियोजन है।"

[टिप्पणी : ओडोनेल के अनुसार नियोजन प्रबन्धकों द्वारा कया जाने वाला कार्य है। नियोजन में वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों, पद्धतियों और कार्यक्रमों में से सर्वोत्तम का चयन किया जाता है एवं क्या, कब, किसे व कैसे का उत्तर दिया जाता है।]

5. क्लॉड एस. जार्ज के अनुसार, "नियोजन वर्तमान में भविष्य को प्रभावित करने वाले निर्णयों को लेने का एक विवेकपूर्ण, आर्थिक सुव्यवस्थित तरीका है।"

[टिष्पणी : क्लाड की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि नियोजन निर्णय लेने का तरीका है। नियोजन द्वारा लिये गये निर्णय भविष्य को प्रभावित करते हैं एवं नियोजन निर्णय लेने का विवेकपूर्ण, सुव्यवस्थित और आर्थिक तरीका है। इसे "आर्थिक तरीका" इसलिए कहा गया है क्योंकि लिये जाने वाले निर्णय लाभप्रद होने चाहिए ।]

6. हॉज एवं जॉनसन के अनुसार, "नियोजन भविष्य का पूर्वानुमान लगाने का प्रयास है ताकि श्रेष्ठ निष्पादन प्राप्त हो सके।"

[टिप्पणी : हॉज एवं जॉनसन के विचारों में नियोजन अच्छे परिणामों की प्राप्ति हेतु भावी परिस्थितियों का पूर्वानुमान लगाने का प्रबन्ध कार्य है। उनके अनुसार कार्य के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए अच्छे पूर्वानुमान लगाना ही नियोजन

7. बिल्ली ई. गोत्ज के अनुसार, "नियोजन मूलतः चयन करना है और नियोजन की समस्या उस समय उत्पन्न होती है, जबकि किसी वैकल्पिक कार्य-पथ का पता चलता है"

[टिप्पणी : गोत्ज की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि नियोजन मूलतः चयन कार्य है तथा यह वैकल्पिक कार्य-पथों की जानकारी के साथ उत्पन्न होता है। यह परिभाषा 'नियोजन की प्रक्रिया' को बतलाती है ।]

8. एम.ई. हर्ले के अनुसार, "क्या करना है, इसका पूर्व-निर्धारण नियोजन है। इसमें विभिन्न वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों, पद्धतियों एवं कार्यक्रमों में से चयन करना निहित है।"

[टिप्पणी : एमई. हर्ले की यह परिभाषा किसी कार्य को करने के लिए पूर्व निर्धारण करना तथा इसके लिए विभिन्न प्रकार के विकल्पों, नीतियों एवं पद्धतियों में से सही एवं श्रेष्ठ का चयन करने को प्रेरित करता है ।]

9. हेन्स तथा मेसी के अनुसार, "नियोजन प्रबन्धक का एक वह कार्य है जिसके अन्तर्गत वह 'क्या' करेगा, के सम्बन्ध में पूर्व निर्णय लेता है। यह एक विशेष प्रकार की निर्णयन-प्रक्रिया है जिसका सार तत्व इसकी भविष्यता है। यह एक बौद्धिक क्रिया है जिसके लिए सृजनात्मक चिन्तन एवं कल्पना की आवश्यकता होती है।"

[टिप्पणी : हेन्स एवं मेसी ने नियोजन को एक ऐसी चिन्तनशील एवं सृजनात्मक प्रक्रिया बनाया है जिसमें यह निर्णय लिया जाता है कि प्रबन्ध जो कार्य करेगा उसका स्वरूप क्या होगा? वह किस प्रकार अपने लक्ष्य तक पहुँचेगा आदि ।]

कुछ अन्य सूक्ष्म परिभाषाएँ (Some other short definitions)

10. एलन के अनुसार, "योजना भविष्य को पकड़ने के लिए बनाया हुआ पिंजरा है।"

11. हार्ट के अनुसार, "कुछ निश्चित परिणामों को प्राप्त करने के लिए कार्यों की श्रृंखला का अग्रिम निर्धारण ही नियोजन है।"

12. हैमन के अनुसार, "क्या किया जाना है, का पूर्व निर्धारण ही नियोजन है।"

[टिप्पणी : इन सूक्ष्म परिभाषाओं में नियोजन के किसी भी एक पक्ष को इंगित किया गया है जबकि नियोजन तो अति व्यापक अर्थ वाला विषय है। इन परिभाषाओं में नियोजन की पूर्णता की कमी है अतः एक सर्वसम्मत एवं परिपूर्ण परिभाषा की आवश्यकता होती है ।]

13. श्रेष्ठ या आदर्श परिभाषा उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के बाद हम नियोजन को आदर्श शब्दों में निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं:

"नियोजन प्रबन्ध का वह मुख्य कार्य है जो इस बात का पूर्व निर्धारण करता है कि संस्था के उद्देश्यों की पूर्त हेतु भविष्य में क्या कार्य एवं किस प्रकार किये जाने हैं। इसका आशय भावी परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं का अनुमान लगाकर पूर्व निर्धारित लक्ष्यों या परिणामों की प्राप्ति हेतु सर्वोत्तम वैकल्पिक कार्य पथ का चुनाव करने से है।"

नियोजन की प्रकृति एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Planning)

कई बार प्रकृति एवं लक्षणों में भेद करना कठिन होता है लेकिन नियोजन की विशेषताएँ ही इसकी प्रकृति को जानने में सहायता करती हैं अतः यहाँ पर नियोजन की प्रकृतिमूलक विशेषताएँ दी जा रही हैं: प्रचंध अवधारणाएँ

1. नियोजन प्रक्रिया के रूप में (Planning as a Process)- नियोजन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा भविश्र में किए जाने वाले क्रियाकलापों को निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार नियोजन प्रक्रिया के अंतर्गत लिया गया निर्णय का प्रभाव किसी संस्था पर निर्णय के समय नहीं पड़ता, बल्कि निर्णय के क्रियान्वयन के समय पड़ता है। भविष्य के क्या अवधि होगी यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि किसी संस्था में नियोजन प्रक्रिया में कितनी अवधि का आधार माना जाता है। नियोजन की यह प्रक्रिया दीर्घावधि के लिए वो 5 वर्ष या इससे अधिक भी हो सकती है या अल्पावधि के लिए एक वर्ष या इससे कम समय के लिए हो सकती है।

2. नियोजन भविष्य से सम्बन्धित होता है (Planning is concerned with Future)- नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें क्या करना है, के सम्बन्ध में निर्धारण किया जाता है अर्थात् नियोजन भावी कार्यवाहियों से सम्बन्धित होती

है। नियोजन के द्वारा एक प्रवन्धक भविष्य की ओर झाँक कर देखता है। नियोजन एक बौद्धिक क्रिया है जो भविष्य से सम्बन्धित होती है।

3. नियोजन सतत् प्रक्रिया के रूप में (Planning as a Continuous Process) - नियोजन प्रबंध की एक सतत् प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत नियोजन से संबंधित कुछ न कुछ क्रियाएँ निरन्तर चलती रहती हैं, यद्यपि इन क्रियाओं के आधार पर महत्वपूर्ण निर्णय कभी-कभी लिए जाते हैं। उदाहरणार्थ, योजनाएँ वातावरण में घटित होने वाली घटनाओं के आधार पर तैयार की जाती हैं। इस प्रक्रिया में वातावरण की घटनाओं का अध्ययन निरन्तर चलता रहता है जिसके आधार पर उचित अवसर पर निर्णय लिया जाता है।

4. नियोजन लोचयुक्त प्रक्रिया के रूप में (Planning as a Flexible Process) नियोजन एक लोचयुक्त प्रक्रिया है। योजनाओं को तैयार करते समय उपयुक्त लोच की आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि योजनाओं को तैयार करने एवं उनके क्रियान्वयन के समय में अन्तर होता है। इस समयावधि में वातावरण में कुछ परिवर्तन भी हो सकता है जिसके आधार पर योजनाओं में उचित परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। लचीली योजनाओं के स्थान पर यदि इनमें कठोरता (Rigidity) होगी तो वातावरण में हुए परिवर्तन के अनुसार इन्हें ढालने में अनावश्यक कठिनाई होगी।

5. बौद्धिक एवं मानसिक प्रक्रिया (Intellectual and Mental Process)- नियोजन एक बौद्धिक एवं मानसिक प्रक्रिया है क्योंकि योजना बनाने वालों को भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के संदर्भ में निर्णय लेना पड़ता है। इन्हें तय करते समय कई विकल्पों में से उस विकल्प का चयन करना पड़ता है जो उपक्रम के सर्वोतम हित में हो।

अतः इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए योजना बनाने वालों में पर्याप्त दूरदर्शिता, विवेक तथा अवधारणात्मक दक्षता (Conceptual skills) का होना आवश्यक है।

6. अनिश्चितताओं को दूर करने से सम्बन्धित है (It Removes Uncertainties)- हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि नियोजन भविष्य से सम्बन्धित होता है। भविष्य सदैव अनिश्चित होता है। नियोजन द्वारा इन भावी अनिश्चितताओं पर वर्तमान में गहन चिन्तन किया जाता है तथा इन्हें दूर करने अथवा उनके प्रतिकूल प्रभावों पर नियंत्रण करने के लिए यथा सम्भव प्रयल किये जाते हैं। इस तरह नियोजन उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं को निश्चितता प्रदान करता है।

7. नियोजन प्रबंध का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है (It is the first and the most important function of management)- नियोजन प्रबन्ध का सर्वप्रथम सम्पादित किया जाने वाला कार्य है एवं यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण भी है। इस कार्य की आवश्यकता प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यों, संगठन बनाना निर्देशन करना, अभिप्रेरण एवं समन्वय करने के लिए पड़ती है। अतः निःसन्देह नियोजन प्रवन्ध का प्राथमिक कार्य होता है।

8. नियोजन निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है (It is formulated for the achievement of pre-determined objectives) किसी भी उपक्रम में योजना पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए बनायी जाती है। उद्देश्यों के बगैर योजना का निर्माण एवं क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता है। अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही संगठन के विभिन्न स्तरों पर पूरे किये जाने वाले कार्यों की योजना बनायी जाती है। निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही संगठन की विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित किया जाता है।

9. नियोजन मूलतः चयनात्मक होता है (Planning is Fundamentally Choosing)- नियोजन की एक प्रमुख विशेषता चुनाव करना होता है। नियोजन प्रक्रिया के अन्तर्गत निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध वैकल्पिक

नीतियों, कार्यविधियों, कार्यक्रमों आदि में से सर्वश्रेष्ठ का चुनाव किया जाता है। इसलिए नियोजन को चयनात्मक प्रक्रिया कहा जाता है।

10. नियोजन सर्वव्यापक होता है (Planning is Pervasive)-- नियोजन की एक विशेषता इसकी सर्वव्यापकता है। नियोजन की आवश्यकता छोटे-बड़े सभी प्रकार के उपक्रमों में होती है। नियोजन की आवश्यकता सभी प्रकार के व्यावसायिक उपक्रमों में ही नहीं बल्कि गैर-व्यावसायिक उपक्रमों में भी होती है। एक उपक्रम के प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी कार्यों में भी नियोजन की आवश्यकता होती है। नियोजन की आवश्यकता उपक्रम संगठन के सभी स्तरों पर होती है। उपक्रम के उच्च अधिकारी से लेकर निम्न अधिकारी तक सभी को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नियोजन क्रिया करनी पड़ती है। इसीलिए कहा जाता है कि नियोजन सर्वव्यापक होता है।

11. पूर्वानुमानों पर आधारित (Based on Forecasting)- एक प्रसिद्ध चीनी कहावत है: "अपनी वार्षिक योजनाएँ बसंत के मौसम में तैयार कीजिए तथा दैनिक योजनाएँ प्रातःकाल उठते ही तैयार कीजिए।" नियोजन प्रक्रिया भविष्य में किए जाने वाले कार्यों के संबंध में, वर्तमान में निर्णय लेना है। अतः नियोजन प्रक्रिया के अंतर्गत भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान लगाया जाता है। ये पूर्वानुमान भविष्य की घटनाओं को जितना सटीक इंगित करेंगे, नियोजन प्रक्रिया उतनी ही प्रभावशाली होगी। पूर्वानुमान लम्बी अवधि के संदर्भ में हो सकता है या अल्पावधि के लिए हो सकता है। इसलिए योजनाएँ दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन होती हैं।

12. योजनाओं की एकता पर बल (Emphasis on Unity of Plans)- चूँकि किसी संस्था में विभिन्न प्रकार की योजनाएँ तैयार की जाती हैं जैसे समय के अनुसार दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन, संस्था के विभिन्न स्तरों के अनुसार जैसे सामूहिक योजनाएँ एवं विभागीय योजनाएँ इत्यादि। इस प्रकार संस्था की

विभिन्न प्रकार की योजनाएँ होती हैं। चूँकि योजनाओं का उद्देश्य संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति होता है इसलिए उनमें एकीकरण होना आवश्यक है।

13. विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम का चयन (Selection of the Best among Different Alternatives)- किसी संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अनेकों विकल्प होते हैं तथा प्रत्येक विकल्प में निहित लाभदायकता, जोखिम आदि अलग-अलग होते हैं। इसलिए नियोजन प्रक्रिया द्वारा उन सभी कारकों के अध्ययन के आधार पर जो उद्देश्य प्राप्ति को प्रभावित करते हैं, सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव किया जाता है। विकल्पों का यह चुनाव जितना ही प्रभावशाली होगा, संस्था के उद्देश्य की प्राप्ति में उतनी ही सुगमता होगी ।

14. प्रबंध के सभी स्तरों पर नियोजन (Planning at all Levels of Management)- जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है कि प्रबंध के पाँचों कार्य सभी स्तर के प्रबंधकों द्वारा किये जाते हैं केवल उनके सापेक्षिक महत्व में विभिन्न स्तरों पर अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार नियोजन का कार्य सभी प्रबंधक करते हैं। प्रबंध के उच्च स्तर पर यह अधिक व्यापक एवं दीर्घकालीन होता है और ज्यों-ज्यों प्रबंध के निचले स्तर पर आते हैं त्यों-त्यों यह संकुचित एवं अल्पकालीन होता जाता है।

15. प्रबंधकीय कुशलता का आधार (Basis of Managerial Efficiency)- नियोजन को प्रबंधकीय कुशलता का आधार माना जाता है। किसी प्रबन्धक द्वारा जितनी अच्छी योजना बनायी जाती है उसे उतनी ही अधिक सफलता अपने कार्यों में प्राप्त होती है। प्रबन्धक अपने द्वारा बनायी गयी योजना के द्वारा अपने अधीनस्थों को निश्चित कार्य करने के लिए जिम्मेदारी सौंप सकता है तथा कार्य पूरा होने पर यह देख सकता है कि सम्बन्धित कार्य कुशलतापूर्वक किया गया अथवा नहीं। नियोजन एक ओर प्रबंधकीय कुशलता का आधार होता है तथा दूसरी ओर अभिप्रेरित करने एवं नियन्त्रित करने की विधि।

4.5 नियोजन के उद्देश्य (Objects of Planning)

वैसे तो नियोजन का प्रमुख उद्देश्य उपक्रम की सफलता हेतु भाषी योजना का निर्धारण करना होता है, लेकिन इसके साथ ही कुछ लक्ष्य और जुड़े होते हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. प्रबंध में मितव्ययिता (Economy in Management)- नियोजन का प्रमुख लक्ष्य भविष्य के कार्यक्रमों एवं कार्यविधियों को न्यूनतम लागत पर निष्पादित करना है। उद्यम की भावी गतिविधियों की योजना का पहले से निर्माण कर लेने पर प्रबंध के प्रत्येक स्तर का ध्यान अपने कार्यों को उसी के अनुरूप कार्यान्वित करने पर केन्द्रित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप क्रियाओं के निष्पादन पर अपव्यय न होकर मितव्ययिता आती है।

2. कार्यों में निश्चितता (Certainties in Activities)- नियोजन के अन्तर्गत इकाई के उद्देश्यों को निर्धारित करके उन्हें प्राप्त करने हेतु नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। इस तरह नियोजन के माध्यम से इकाई या उपक्रम की भावी गतिविधियों में कब, क्या, कैसे करना है? आदि प्रश्नों के हल होते हैं एवं एक निश्चितता का आभास होता है।

3. पूर्वानुमान लगाना (Forecasting) नियोजन मूलतः संस्था के भावी उद्देश्यों को पूर्ण करने की सुदृढ़ परिकल्पना होती है। इसका लक्ष्य संस्था के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु भविष्य के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाना भी होता है। पूर्वानुमान पर आधारित बातें उद्यमी एवं प्रबंधकों को सही राह दिखाती हैं।

4. विशिष्ट दिशा प्रदान करना (To Provide Specific Directions)- नियोजन का उद्देश्य यह भी होर है कि किसी कार्य की भावी रूपरेखा बनाकर उसको ऐसी दिशा या मार्गदर्शन प्रदान करता है, जिसके अभाव में उ कार्य को सम्पादित करना लगभग असम्भव सा होता। इस तरह नियोजन उपक्रम के विशिष्ट उद्देश्यों को निर्धारित करें उन्हें एक ऐसी दिशा प्रदान करता है जो इन उद्देश्यों को निर्धारित तरीकों से पूर्ण कर सके।

5. समन्वय करना (To Co-ordinate) नियोजन ही एक ऐसा आधार होता है जो उपक्रम के लिए जुटा गये विभिन्न संसाधनों संगठनों एवं व्यक्तियों के बीच परस्पर समन्वय स्थापित करता है एवं इस सम्मन्वय के द्वारा है निश्चित लक्ष्य पूरा किया जा सकता है।

6. निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति करना (To attain Determined Goals)- नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना है। नियोजन का आधार ही इकाई को निर्धारित लक्ष्यं को प्राप्त करना होता है।

7. प्रतिस्पर्द्ध पर विजय पाना (To Winning the Compitions)- दाँवपेच पूर्ण नियोजन प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र में विजय पाने में सहायक सिद्ध होता है। कार्यकुशलता एवं मितव्ययिता से किए जाने के कारण प्रतिस्पर्द्धा का सामन किया जा सकता है।

8. कुशलता में वृद्धि करना (To Increase Efficiency)- नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य उपक्रम र्क कुशलता में वृद्धि करना है। सर्वोत्तम विकल्प के चयन और व्यवस्थित ढंग से कार्य किए जाने के कारण उपक्रम की कार्य-कुशलता में वृद्धि स्वाभाविक ही है।

9. जानकारी प्रदान करना (To Provide Informations)- नियोजन का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य उपक्रम के श्रेष्ठ वर्ग को उपक्रम की भावी योजनाओं, उनके समुचित क्रियान्वयन एवं सम्पादन से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करना होता है। संस्था ने जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं इन उद्देश्यों के लिए जो क्रिया विधि, नीति आदि निर्धारित की है इसकी सूचना प्रदान करना नियोजन का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

10. स्वस्थ मोर्चाबन्दी (Healthy Strategies)- नियोजन का उद्देश्य स्वस्थ मोर्चाबन्दी को विकसित करके उसी अनुरूप सभी घटकों को कार्यों हेतु तैयार करना भी होता है। पूर्वानुमानों व सर्वोत्तम विकल्प के चयन द्वारा सही

मोर्चाबन्दी या व्यूह रचना तैयार की जा सकती है।

नियोजन के सिद्धान्त (Principles of Planning)

किसी भी प्रकार के तथ्य को क्रियान्वित करने तथा उसके उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए कुछ आधारभूत सिद्धान्तों का होना आवश्यक होता है। एक प्रभावी नियोजन के लिए भी कुछ बुनियादी बातें अनिवार्यतः पालन करनी होती है जो नियोजन के सिद्धान्त के रूप में प्रचलित हुए हैं। यहाँ ऐसे कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को समझाया जा रहा है:

1. उद्देश्यों के योगदान का सिद्धान्त (Principle of Contribution of Objectives)- प्रत्येक संगठन का आविर्भाव कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए होता है, जिनकी प्राप्ति के लिए प्रबंध के विभिन्न कार्यों को आधार बनाया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार नियोजन इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आधार का निर्माण करता है। वास्तव में देखा जाए तो नियोजन प्रक्रिया संगठन के सामान्य एवं विस्तृत उद्देश्यों को आधार मानकार विभिन्न क्रियाओं को निष्पादित्त करती है। यह सिद्धान्त इस बात की ओर संकेत करता है कि किसी भी नियोजन को जब तक उद्देश्योन्मुख नहीं किया जाता तब तक परिणाम अनुकूल नहीं आते हैं।

2. नियोजन की मान्यताओं का सिद्धान्त (Principle of Planning Premises)- नियोजन कुछ मान्यताओं पर आधारित होता है। ये मान्यताएँ उन कारकों के आधार पर तैयार की जाती हैं जो नियोजन प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। ये मान्यताएँ वातावरण में होने वाली घटनाओं एवं संगठन के अंतर्गत आने वाले कारकों एवं उनकी प्रकृति पर निर्भर होती है। ये सभी मान्यताएँ तथ्यों के जितने पास होंगी नियोजन प्रक्रिया उतनी ही प्रभावशाली होती है।

3. कार्यकुशलता का सिद्धान्त (Principle of Efficiency)- नियोजन कार्यकुशलता के सिद्धान्त पर आधारित होता है जिसमें इस बात पर बल

दिया जाता है कि सीमित साधनों का विकल्पों में किस प्रकार प्रयोग किया जाए कि कम से कम साधनों के प्रयोग से अधिक से अधिक परिणाम प्राप्त किए जाएँ। यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि सीमित साधनों एवं न्यूनतम प्रयलों द्वारा श्रेष्ठत्तम परिणाम कैसे प्राप्त किये जाएँ।

4. व्यापकता का सिद्धान्त (Principle of Pervasiveness) नियोजन प्रक्रिया व्यापकता के सिद्धान्त पर आधारित होता है बिसका अर्थ यह है कि नियोजन प्रक्रिया प्रबंध के सभी स्तरों पर लागू होती है। चूँकि प्रबंध के विभिन्न स्तरों की योजनाएँ संगठन की समय योजना का अंश होती हैं, अतः उनमें समन्वय होना आवश्यक है। नियोजन प्रबंध के सभी स्तरों के अनुरूप होना चाहिए।

5. लोपशीलता का सिद्धन (Principle of Flexibility)- चूंकि विभिन्न कारकों, जिनसे नियोजन प्रक्रिया सरिवर्तन के आधार पर योजनाओं में उचित परिवर्तन किया जा सके। लोपशीलता के कारण कई सम्मान है जिस से बचा जा सकता है।

6 समय का सिद्धान्त (Principle of Timing)- नियोजन में समय तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। बोक्साई दौर्यकालीन एवं अल्पकालीन हो सकती हैं। एक अल्पकालीन योजना मूलतः दीर्घकालीन योजना के ह की बात में योगदान करती है। अतः नियोजन का कार्य करते समय, समय के निर्धारण में पर्याप्त सतर्कता रिणामों चाहिए।

7. परिवर्तन का सिद्धान्न (Principle of Change)- समय के साथ-साथ परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता रहता है। परिस्थितियों में इन परिवर्तनों के कारण योजनाओं में भी परिवर्तन होना चाहिए। अतः नियोजन प्रक्रियाता सहचालकता के आधार पर लेना चाहिए न कि स्थिरता के आधार पर। यह सिद्धान्त बतलाता है कि प्रबन्धक को सतत् रूर ने अपने कार्यों की जाँच करते रहना चाहिए तथा आवस्यकतानुसार उसमें परिवर्तन कर देना चाहिए।

8 नीति निर्धारण का सिद्धान्त (Principle of Policy Formulation)- नियोजन एवं नीतियों परस्पर सम्बन्धित होती हैं। एक ओर जहाँ नियोजन द्वारा विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है, दूसरी ओर वही नीतियाँ निचले स्तर की नियोजन प्रक्रिया हेतु मार्गदर्शन का कार्य करती हैं। इसलिए किसी संगठन में नियोजन प्रक्रिया को प्रभावों बनाने के लिए यह आवश्यक है कि विभित्र क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से नीतियों का निर्धारण किया जाए

9. विकल्पों का सिद्धान्त (Principle of Alternatives)- नियोजन एवं उससे सम्बंधित निर्णय इस मान्यता पर आधारित है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति विभिन्न विकल्पों द्वारा हो सकती है, किन्तु प्रत्येक विकल्प समान रूप से लाभदायक नहीं होते। अतः नियोजन प्रक्रिया के अंतर्गत ऐसे विकल्पों का चुनाव करना चाहिए जिनके द्वारा उदेश्यों की अधिकाम प्राप्ति हो।

10. प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यूहरचनाओं का सिद्धान्त (Principle of Competitive Strategies)- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन को बाजार में प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। इसमें सफल होने के लिए आवश्यक है कि संगउन संचित प्रतिस्पर्धात्मक ब्यूहरचनाओं को तैयार करें ताकि प्रतिस्पद्धियों के मुकाबले अच्छा परिणाम प्राप्त हो। ऐसा करने से प्रतिस्पर्धा में व्यवसाय को सफलता मिल जाती है।

11. वचनबद्धता का सिद्धान्त (Principle of Commitment) इस सिद्धान्त के अनुसार किसी योजना में संगठन के विभिन्न साधनों को एक परियोजना में वचनबद्ध किया जाता है। यदि परियोजना ठीक समय से पूरी हुई एवं ठोक प्रकार से कार्य कर रही है तो संसाधनों का उपयुक्त उपयोग हो पाएगा एवं उद्देश्यों की प्राप्ति होगी। अतः संसाधनों की बबनबद्धता करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि संसाधनों का उचित विकल्पों में प्रयोग हो।

12. न्यायोचितता का सिद्धान्त (Principle of जो भी योजनाएँ बनाई जाएँ वे न्यायोचित हो ताकि उन्हें प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित किया जा सके। परियोजनाएँ बहुत अच्छी हैं किन्तु संगठन के सामर्थ्य से परे हैं तो ऐसो योजनाओं का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि संगठन के दृष्टिकोण से ये योजनाएँ न्यायोचित नहीं है। 13. सौमित करने वाले घटकों का सिद्धान्त (Principle of Limiting Factors)- नियोजन प्रक्रिया के अन्तर्गव उन सभी घटकों की पहचान अग्रिम रूप से कर ली जानी चाहिए जो किसी योजना के क्रियान्वयन में बाधा पहुंचा सकते हैं। यदि उन बाधाओं को समुचित रूप से दूर करने के लिए साधन उपलब्ध नहीं हैं तो योजना इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए जिससे इन घटकों की विद्यमानता के बावजूद भी इसे प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जा सके।

14. सहयोग का सिद्धान्त (Principle of Cooperation)- यह सिद्धान्त इस बात की तरफ इंगित करता है कि नियोजन प्रकिया में सभी व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक है। योजना बनाने में सभी व्यक्तियों का सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है जब उनमें आवश्यक विचार-विमर्श हो, निर्णयों में आवश्यक भागीदारी हो एवं संगठन में उन्हें उचित महत्व दिया जाए।

4.6 नियोजन के तत्व या संघटक या क्षेत्र (Elements or Components or Scope of Planning)

कूद्ध एवं ओडोनेल, थियो हेमन, टेरी आदि विद्वानों ने नियोजन के तत्वों या संघटकों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया है:

1. उद्देश्य (Objectives)- 'उद्देश्य' वे वांछित परिणाम हैं जिनकी ओर समस्त क्रियाएं निर्देशित की जाती हैं। उद्देश्यों के अभाव में संस्था की वही स्थिति होती है जो कि पतवार के अभाव में एक नाव की होती है। उद्देश्य अथवा लक्ष्य के प्राप्ति योग्य अन्तिम बिन्दु हैं जिनकी ओर सम्पूर्ण संस्था

अपने प्रयासों और साधनों को निर्देशित करती है। उद्देश्यों के अभाव में नियोजन करना सम्भव नहीं होता है।

उद्देश्यों के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बातें इस प्रकार हैं :

(अ) उद्देश्यों का उल्लेख यथा सम्भव स्पष्ट और सरल होना चाहिए।

(ब) उद्देश्य सौपानिक होते हैं अर्थात् हर प्रबन्ध के अपने उद्देश्य होते हैं।

(स) उद्देश्य एक से ज्यादा होते हैं और वे परस्पर संबंधित होते हैं।

(द) लाभार्जन व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य नहीं होता है।

(इ)उद्देश्य दीर्घकालीन, मध्यकालीन या अल्पकालीन हो सकते हैं तथा उद्देश्य सामान्य अथवा विशिष्ट भी है

(फ) उद्देश्य कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों को क्रियाओं का प्रवन्ध करते हैं तथा योजनाओं को आधार प्रदान क

(ग) उद्देश्य कार्य निषादन के मूल्यांकन का आधार बनते हैं एवं कार्यों की प्राथमिकताओं का क्रम निर्माण

(ह) उद्देश्य दीर्घकालीन योजनाओं एवं प्रबंधकीय नीतियों के विकास में नींव का काम करते हैं।

(य) उद्देश्य कर्मचारियों को प्रेरित करने में सहयोग करते हैं।

2. नीतियों (Policies)- उद्देश्य या तक्ष्य बतलाते हैं कि कहाँ पहुंचना है और क्या करना है, जबकि बहलाती है कि उन्हें कैसे प्राप्त करना है। 'नीतियों' सामान्यतः लक्ष्य प्राप्ति में प्रवन्धकों का मार्गदर्शन क सैद्धांतिक कचन होती हैं। कून्ट्ज़ एवं ओडोनेल के शब्दों में नीतियाँ वे सामान्य विवरण हैं जो निर्णयन में कि मार्गदर्शन करते हैं।

नौतियों को कुछ विशिष्ट बातें इस प्रकार हैं-

(अ) नीतियों का सम्बन्ध प्रत्येक विभाग से होता है। इनको विभागीय नौतियाँ कढ़ते हैं, जैसे- क्रय नीति, किय या उत्पादन नीति आदि।

(ब) नीतियों पूर्व-दृष्टांतों का कार्य करती हैं, और व्यक्तिगत निर्णयन में लगने वाले समय को बचाती है।

(स) स्वस्य, स्पष्ट एवं सरल रूप से उल्लेखित नीतियाँ निर्णयन में भारार्पण को प्रोत्साहित करती हैं, संग स्थायित्व प्रदान करती हैं।

(द) कुछ नौतियों उच्चाधिकारी स्वतः ही बनाते हैं और कुछ नीतियाँ कर्मचारियों की प्रार्थना पर बनायी जाते।

(इ)नौतियाँ लिखित या अलिखित, स्पष्ट या गर्मित, याचित या आरोपित हो सकती हैं।

(फ) नीतियाँ संयोग से पैदा नहीं होतीं। वे प्रवन्धकों तथा कई बार बाहरी शक्तियों के कारण पैदा होती है।

(ग) नीतियाँ चिन्तन को व्यापक मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

(ह) नीतियाँ लोवपूर्ण होती हैं।

3. कार्य पद्धतियों (Procedures)- कार्य पद्धतियाँ भी नियोजन का आवश्यक अंग हैं। पद्धतियों एवं कर्मचारियों को लक्ष्यों की पूर्ति की विधि बतलाती हैं। पद्धतियाँ अधिक विशिष्ट एवं निश्चित होती हैं। ए क्रियापय की निर्देशक होती हैं, न कि चिन्तन को। नौतियों वस्तुतः उस व्यापक क्षेत्र की स्थापना करती हैं जिसका निया उद्देश्यों एवं सीमाओं द्वारा होता है। किन्तु पद्धतियाँ निश्चित क्रियाओं के क्रम को दर्शाती हैं और किसी कार्य के का निश्चित तरीका बतलाती हैं। उदाहरणार्थ, संस्था में कार्यरत व्यक्ति को चिकित्सा-लाभ प्राप्त करने का अधिका तो यह संस्था की नीति मानी जायेगी। किन्तु ऐसा चिकित्सा-लाभ प्राप्त कराने के लिए डॉक्टर की दवा को ि बल आदि नियत ढंग से प्रस्तुत करना पद्धति कहलायेगी। इसी प्रकार कर्मचारियों को अवकाश कितना मिलेग पद्धति बतलाती है। 'ग्राहक सदैव सही है' यह नीति की बात होगी, किन्तु प्राहक के शिकायत करने पर उसके निया हेतु क्या तरीका अपनाया जायेगा, इसे पद्धति निश्चित करेगी।

उचित कार्य-विधियों को मुख्य बातें निम्न हैं:

(अ) प्रत्येक कार्यविधि तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए, अनुमानों पर नहीं।

(ब) ये पद्धतियाँ स्थायी होने के लचीली भी होनी चाहिए।

(स) इनमें तर्कपूर्ण सामंजस्य एवं क्रम होना चाहिए।

(द) कार्य पद्धतियों को तो कुशलता या नियंत्रण पर आधारित होना चाहिए।

(इ) कार्य पद्धतियों ऐसी होनी चाहिए कि उत्तरदायित्व की नीति सुविधापूर्वक कार्यान्वित की जा सके तथा कार्य निर्धारित किया जा सके।

4. विधियों (Methods)- जॉर्ज टैसे के अनुसार, "विधि उद्देश्यों, उपलब्ध सुविधाओं, समय, धन एवं प्रयलों के कुल व्ययों पर पर्याप्त ध्यान देते हुये किसी कार्य के निषादन का निर्धारित तरीका है। पद्धति एवं विधि में अन्तर होता है। विधि अधिक विस्तृत तरीका होती है। चियो हैमन लिखते हैं कि पद्धति लिये जाने वाले कदमों को श्रृंखला को बतलाती है जबकि विधि किसी एक क्रिया से सम्बन्ध रखती है। 'विधि' वस्तुतः किसी कार्य को करने का सर्वोचम तरोका होती है। इसको विशेष उल्लेखनीय बातें कार्य पद्धतियों जैसी ही हैं।

5. कार्यक्रम (Programme)- कार्यक्रम भी नियोजन के आवश्यक तत्व होते है। कार्यक्रम संस्था में किये जाने वाले कार्यों के क्रम का निर्धारण करते हैं। कार्यक्रम संधिप्त एवं सही रूप से निर्धारित कार्य की योजना होते हैं ओ लक्ष्यों के अनुरूप कार्यों के सम्पादन का क्रम निर्धारित करते हैं। इसलिए संस्था द्वारा निर्धारित लक्ष्यों एवं स्थापित नौतियों की क्रियान्विति के लिए तय किए गए कार्य-पथ कार्यक्रम कहलाते हैं। पुनरात्मक एवं अपुनरात्मक क्रियाओं के लिए कार्यक्रम को आवश्यक समझ गया। कार्यक्रम प्रमुख एवं सामान्य हो सकते हैं। जैसे- कम्प्यूटर संस्थापन प्रमुख कार्यक्रम है तथा प्रशिक्षण सामान्य कार्यक्रम

कार्यक्रम' से सम्बद्ध कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार है-

(अ) कार्यक्रम नीतियों का जटिल समूह है।
(ब) कार्यक्रम में विभिन्न प्रकार नौतियाँ, पद्धतियों, बजट, विधियाँ आदि सम्मिलित होती हैं।
(स) कार्यक्रम के पूरा हो जाने पर सम्बद्ध योजनाएँ भी समाप्त हो जाती है। उसका पुनर्प्रयोग नहीं होता।
6. बजट (Budget)- व्यवसाय के प्रत्येक कार्य को मितव्ययी व उपयुक्त ढंग से करने के लिए बजट तैयार किये जाते हैं जो कि आय-व्यय एवं भौतिक साधनों आदि के प्रत्याशित अनुमान होते हैं। ये अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे- मास्टर बजट, वैयक्तिक विभागीय बजट, क्रय बजट, विक्रय बजट, श्रम बजट, वेतन बजट आदि। बजट नियन्त्रण के साधन होते हैं और कार्यों एवं प्रयासों को मौद्रिक एवं भौतिक रूप प्रदान करते हैं। कून्ट्ज एवं ओडोनल ने लिखा है कि "नियोजन के रूप में बजट भावी परिणामों को संख्यात्मक रूप में स्पष्ट करने का विवरण है। इसे 'संख्यात्मक कार्यक्रम' भी कहा जा सकता है। 'बजट' नियन्त्रण करने के उपाय के रूप में काम आते हैं, किन्तु, बजट बनाना नियोजन का एक अंग है।" बजट, व्यवहार में न केवल प्रबन्धकों को नियोजन करना सिखाते हैं, बल्कि नियोजन में निश्चितता उत्पन्न करते हैं और संस्था की योजनाओं का समेकित (Consolidate) भी करते हैं।
7. रीति-नीति या मोर्चाबन्दी (Strategy)- मोर्चाबंदी, व्यूह-रचना आदि शब्द रणनीति एवं रण-कौशल से संबंध रखते हैं। ये रण की वे युक्तियाँ होती हैं जिनका उपयोग प्रतिपक्षी को हराने के लिए किया जाता है। व्यवसाय भी रण-क्षेत्र ही होता है। यहाँ पर भी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला होता है। अतः इस क्षेत्र में भी एक सुदृढ़ मोर्चाबंदी की दरकार होती है।
अतः रीति-नीतियाँ या मोर्चाबन्दी एक विशिष्ट नौति मानी गयी है जो स्वभाव में विवेचनात्मक होती है। कून्ज एवं ने एक जगह पर लिखा है कि "रोति-नीतियों कार्य विधि के एक सामान्य कार्यक्रम का ज्ञान कराती हैं जिसमें

उद्देश्य प्राप्ति के प्रयोग का मोटे रूप में निर्धारण किया जाता है। इनका उद्देश्य मोटे-मोट उद्देश्यों और नीतियोंके द्वारा यह तय करना तथा बतलाना है कि कम्पनी को क्या काम करना है।"

8. नियम (Rules)- नियम भी लक्ष्यों, नौतियों एवं पद्धतियों की भाँति नियोजन का एक अंग होते हैं। नियम पद्धतियों का मार्गदर्शन करते हैं और योजनाओं के सूक्ष्म, स्पष्ट तथा सरल रूप होते हैं। कुछ लोग नौतियों, नियमों एवं पद्धतियों को एक मान बैठते हैं जो कि दोषपूर्ण है। नियम पद्धतियों का मार्गदर्शन करते हैं। नियम पद्धतियों का भाग हो भी सकते हैं और अनेक दशाओं में नहीं भी। उदाहरणार्थ, सिनेमा हाल में सिगरेट न पीना या राष्ट्रीय गान के समय खड़े हो जाना एक नियम है, पद्धति नहीं। इसी प्रकार नियमों एवं नौतियों में भी अन्तर होता है, नीतियों में प्रबन्धकीय विवेक की प्रयुक्ति के लिए स्थान होता है किन्तु नियमों में इसके लिए कोई गुंजाइश नहीं होती है।

नियमों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(अ) नियम न तो नीति है और न पद्धति ही क्योंकि न तो यह चिन्तन को दिशा देता है और न हो 'स्व-विवेक' के प्रयोग हेतु कोई मार्ग हो।

(ब)नियम पद्धतियों से जुड़े होते हैं क्योंकि क्या करना अथवा नहीं करना चाहिए, यह नियम बतलाते हैं।

9. समय-चक्र (Schedule)- व्यवसाय में समय को 'धन' कहा गया है। यदि समय पर निर्णय न लिये जाएँ तो लाभ के अवसर हाथ से निकल जाते हैं। समय समस्त प्रबन्ध-कार्यों को प्रभावित करने वाला मुख्य घटक है जिसको उपेक्षा से असफलता का मुंह देखना पड़ता है। अतएव संस्था में समय-चक्र बनाये जाते हैं। नियोजन में पर्ट तथा सी.पी.एम. (P.E.R.T. and C.P.M.) जैसे तकनीकों के महत्वपूर्ण योगदान हैं।

10. प्रपाप (Standards)- प्रमाप भी नियोजन का एक तत्व है। व्यवसाय में अनेक तरह के प्रमाप, के परिणाम प्रमाप, किस्त प्रमाप, समय प्रमाप, व्यय प्रमाप आदि निश्चित किये जाते हैं। वस्तुतः ये प्रमाप आवश्यक से अल्पकालीन होते हैं। इन प्रमाषों में स्थिरता, शुद्धता एवं मापन-योग्यता के गुण होने चाहिये। आज लागत लेखार तथा लेखांकन की नवीन प्रवृत्तियों जैसे- मानव संसाधन लेखांकन, सामाजिक दायित्व लेखांकन एवं उत्तरदायित्व लेखाच का आधार ही प्रमाप माने गये हैं।

4.7 नियोजन की प्रक्रिया अथवा तकनीक (Planning Process or Technique)

नियोजन चूंकि एक प्रक्रिया है इसलिए इसके विभिन्न कदम (steps) होते हैं, जिन्हें नियोजन तक (Planning technique) भी कहा जाता है। यद्यपि आयोजना को प्रकृति के अनुसार इन कदमों में मामूली परिक कोई मुख्य योजना बनाते समय अधिक कदमों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु इस मुक योजना पर आधारित योजना में कम कदमों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर हम उन कदमों का उल्लेख कर है। जो एक सामान्य नियोजन के लिए अधिकांशतः उचित एवं प्रासंगिक हो सकते हैं:

1. अवसर का बोध (Perception of Opportunity)- यह नियोजन प्रक्रिया का यद्यपि कोई कदम नहीं। लेकिन नियोजन की सफलता के लिए अवसरों विकल्पों का ज्ञान होना आवश्यक है। नियोजन प्रक्रिया द्वारा संगठा अपने आपको वातावरण के अनुसार डालते हैं। वातावरण के विभिन्न कारक किसी संगठन के लिए अवसर भी उपस्थि कराते हैं, किन्तु साथ ही साथ विघ्न भी पैदा करते हैं। नियोजन द्वारा संगठन उपयुक्त अवसरों का लाभ उठाने का प्रयास करता है, साथ ही इन विघ्नों के प्रभावों को दूर करने का भी प्रयत्न करता है। अतः नियोजन प्रक्रिया के प्रथम चरण३ उद्यमी या प्रबन्धक को अवसर का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

2. उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of Objectives)- उद्देश्य निर्धारण व्यावसायिक नियोजन प्रथम कदम है। नियोजन प्रक्रिया का श्रीगणेश संस्था के निर्धारण से होता है। सबसे पहले संस्था के सामान्य लक्ष्य र उद्देश्य निश्चित किये जाते हैं और तत्पश्चात् उन उद्देश्यों को विभागीय या वैयक्तिक इकाइयों में विभक्त किया जात है। निर्धारित नियोजन प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होते हैं। उद्देश्यों के निर्धारण से निर्मित योजनाओं का कार्यान्नस सुगम हो जाता है। इन उद्देश्यों की जानकारी संस्था के समान सम्बन्धित व्यक्तियों एवं अधिकारियों को दे दी जाने चाहए।

सूचनाओं का संकलन एवं विश्लेषण (Collection and Analysis of Information)- नियोजन प्रक्रिय का महत्वपूर्ण कदम नियोजन से सम्बन्धित क्रियाओं के सम्बन्ध में आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं का संकतर करना होता है तथा इन सूचनाओं एवं आँकड़ों का निर्धारित नियमानुसार विश्लेषण भी किया जाता है। ये सूचनाएं आन्तरिक एवं बाह्य स्रोतों से प्राप्त की जा सकती हैं। इसके बारे में पुराने अभिलेख, फाइलें, अनुभव, प्रतिस्पर्द्धा संस्थाने की क्रियाओं का अवलोकन आदि सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

4. नियोजन का आधार (Planning Premises)- संगठन के लक्ष्य निर्धारण के बाद नियोजन आधारों के तैयार किया जाता है। । नियोजन के आधार में उन सभी बाह्य एवं आन्तरिक दशाओं को सम्मिलित किया जाता है ये नियोजन प्रक्रिया को तथा योजना के क्रियान्वयन को प्रभावित कर सकते हैं। नियोजन के बाहरी आधार वातावरण के विभिन्न घटकों- आर्थिक, राजनैतिक, प्रावधिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक स्वरूप के होते हैं। आन्तरिक आधारों में संगठन के संसाधन, कार्यप्रणाली, संगठन संरचना इत्यादि को शामिल करते हैं। इन आन्तरिक एवं बा आधारों में सामंजस्य को ध्यान में रखते हुए योजना का निर्धारण किया जाता है।

5. विकल्पों की पहचान (Identification of Alternatives) - उपक्रम के लक्ष्यों एवं नियोजन आधारों के ध्यान में रखकर विभिन्न विकल्पों की पहचान की जाती है। विभिन्न विकल्पों को पहचान इसलिए आवश्यक है कि किसी के उद्देश्यों की प्राप्ति एक से अधिक विकल्पों द्वारा हो सकती है। यद्यपि प्रत्येक विकल्प में जोखिम के मात्रा भिन्न हो सकती है। प्रवन्धशास्त्री कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार "शायद ही ऐसी कोई योजना हो जिसके लिए विभिन्न युक्तिपूर्ण विकल्प न हो।" अतः इन विकल्पों की तलाश करने, पहचानने तथा उपयोगिता के पर उनकी संख्या सीमित करने के उपरान्त उनका परीक्षण करना चाहिए।

विकल्पों का मूल्यांकन (Evaluation of Alternatives)- प्रत्येक कार्य को करने के अनेक तरीके होते हैं। कोई भी कार्य ऐसा नहीं होता जिसे करने के लिये न्यायोचित वैकल्पिक कार्यपथ उपलब्ध न हो। अतएव प्रभावे नियोजन हेतु वैकल्पिक कार्यपथों की खोज करना जरूरी होता है। हम यह जानते हैं कि नियोजन की समस्या का उदर तो वैकल्पिक कार्यपों की खोज के साथ ही होता है। इसलिये, पूर्वानुमानों के आधार पर तथा अनुभव एवं कल्पन शक्ति की सहायता से वैकल्पिक कार्यपों का हुये उनका मूल्यांकन किया जाना चाहिये। निर्धारण किया जाना चाहिये और और प्रत्येक के लाभ-दोषों को ध्यान में रखते हुये उनका मूल्यांकन किया जाना चाहिये ।

7. सर्वोत्तम विकल्प का चयन (Choice of Best Alternative) नियाजन प्रक्रिया का भी अगला कदम होता है जहाँ सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है। सर्वोत्तम विकल्प के चयन का कार्य अत्यन्त कठिन कार्य होता है, इसलिये सावधानी के साथ किया जाना चाहिये। यह चरण नियोजन प्रक्रिया में निर्णय का चरण होता है। इसके बाद योजना निर्माण का कार्य प्रारम्भ होता है। अनेक बार सर्वोत्तम विकल्प का चयन करते समय यह प्रतीत होता है कि कार्य के के लिये एक ही पक्ष पर्याप्त नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में एक से अधिक

विकल्पों का चयन करके संयुक्त विधि का निर्माण किया जाना चाहिये या विकल्पों के संयोग निश्चित कर लिये जाने चाहिये।

8. योजना का विकास (Development of Plan)- नियोजन के इस चरण पर योजना को तैयार किया जाता है। योजना के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जाता है। सम्पूर्ण योजना को उत्पादन या विभाग के अनुसार विभाजित किया जाता है। इस चरण पर योजना को अन्तिम रूप देने के लिये उसकी क्रमिक अवस्थाओं का निर्धारण किया जाता है। इस कदम अन्तर्गत योजना के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जाता है, क्रमानुसार आगे के कदम निर्धारित किये जाते हैं तथा योजना का विस्तार करके उसे अन्तिम रूप दिया जाता है।

9. सहायक योजनाओं का निर्धारण (Formulation of Supporting Plans)- नियोजन प्रक्रिया के इस चरण में मूल योजना को कार्य रुप देने के लिये सहायक या उपयोजनाओं का निर्माण किया जाता है। ये योजनाएँ विभिन्न इकाइयों, विभागों या उत्पादों के लिये पृथक-पृथक रूप से तैयार की जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी संगठन ने मूल योजना के रूप में नए उत्पाद के लिए परियोजना तैयार की है तो इस परियोजना को लागू करने के लिए भूमि, भवन, मशीन की प्राप्ति नए उत्पाद हेतु व्यक्तियों (स्टाफ) को नियुक्ति, उत्पादों के विक्रय इत्यादि के लिए सहायक योजनाएँ बनाई जाती हैं। इस प्रकार में सभी योजनाएँ मूल योजना की सहायक एवं उपयोजनाएँ कही जाती हैं।

10. क्रियाओं का अनुक्रम स्थापित करना (Establishing Sequence of Activities)- मूल एवं सहायक योजनाओं के निर्धारण के पश्चात् विभिन्न क्रियाओं, जिनके द्वारा इन योजनाओं को कार्य रूप में परिणत किया जाता है, को क्रमबद्ध रूप में रखा जाता है। नियोजन प्रक्रिया में इस चरण पर निश्चित की गई योजनाओं एवं कार्यक्रमों को ठोस रूप देने के लिये उनके क्रियान्वयन

का समय तथा क्रम निर्धारित किया जाता है। इस चरण पर नियोजन में व्यावहारिकता का गुण उत्पन्न हो जाता है।

11. कर्मचारियों की भागिता प्राप्त करना (Securing Participation of Employees)- अच्छा नियोजन करने मात्र से हो वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो जाते हैं। यह तभी सम्भव है, जबकि उसके क्रियान्वयन में उक्त संस्था के प्रत्येक कर्मचारी का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो एवं उसमें उसकी भागिता हो। इस हेतु संस्था में कार्यरत प्रत्येक कर्मचारी को नियोजन से अवगत कराना चाहिए, उसे समझाया जाना चाहिए तथा उससे परामर्श भी किया जाना चाहिए। ऐसा करने से जहाँ एक ओर नियोजन की किस्म में सुधार होगा, वहीं दूसरी ओर कर्मचारियों में नियोजन के प्रति रुचि एवं भागिता जागृत होगी।

12. सहयोग, क्रियान्वयन एवं अनुगमन (Co-operation, Implementation and Follow-up)- यह नियोजन प्रक्रिया का अन्तिम चरण है जहाँ सभी के सहयोग के साथ योजनाओं एवं कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाता है और उनका अनुगमन किया जाता है। अनुगमन करना इसलिये जरूरी होता है ताकि बदलती हुई परिस्थितियों में योजनाओं और कार्यक्रमों में आवश्यक सुधार किया जा सके। नियोजन प्रक्रिया का यह अन्तिम चरण इस प्रक्रिया को निरन्तरता प्रदान करता है।

नियोजन के प्रकार (Types of Planning)

प्रबन्धकीय नियोजन में इस बात का बहुत महत्व है कि योजना किस प्रकार की है? क्योंकि प्रत्येक व्यवत्ताय के उद्‌देश्य व परिस्थितियाँ अलग-अलग होती हैं। अतएव इन्हें ध्यान में रखकर योजनाएँ भी अलग-अलग प्रकार को बनाई जाती हैं। योजनाएँ निम्न प्रकार को हो सकती हैं-

प्रो. टेरी के अनुसार एक नियोजन के निम्न प्रकार हो सकते हैं

1. भौतिक नियोजन (Physical Planning)- इसमें लक्ष्यों का निर्धारण एवं साधनों का विभाजन मुद्रा के रूप में नहीं बल्कि वस्तुओं एवं सामग्री के रूप में

किया जाता है। भवनों एवं उपकरणों आदि से सम्बन्धित उपक्रमों में नियोजन इसी प्रकार से किया जाता है।

2. कार्यात्मक नियोजन (Functional Planning) प्रबन्ध के विशिष्ट कार्यात्मक क्षेत्र जैसे उत्पादन, वित्त, विपणन आदि के सम्बन्ध में जिस आयोजन का निर्धारण किया जाये वह कार्यात्मक नियोजन कहलाता है।

3. विस्तृत नियोजन (Extensive Planning) यदि सम्पूर्ण उपक्रम की समस्याओं से सम्बन्धित नियोजन हो तो तब वह विस्तृत नियोजन कहा जाता है।

4. सामान्य मिश्रित नियोजन (General Mixed Planning)- इसमें उपरोक्त तीनों प्रकार के नियोजन प्रमुख तत्वों का समावेश होता है।

प्रो. टेरी के इस वर्गीकरण से सभी प्रकार की योजनाएँ स्पष्ट नहीं होती हैं। अतः हम निम्नलिखित आध योजनाओं के प्रकार संक्षेप में समझा रहे हैं-

(अ) समय के आधार पर (On Time Premise)

समय के आधार पर योजनाओं को इन चार भागों में बाँटा जा सकता है-

1. अल्पकालीन योजनाएँ - इस प्रकार की योजनाएँ दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक अथवा वार्षिक और समस्याओं के लिए बनाई जाती है।

2. मध्यकालीन योजनाएँ - इनकी अवधि दो से पाँच वर्षों की होती है।

3. दीर्घकालीन योजनाएँ इनकी अवधि पाँच से अधिक वर्षों की होती है।

4. परिप्रेक्ष्य योजना - इस प्रकार की योजना सुदीर्घकाल के लिए तैयार की जाती है। निश्चित ही ऐसी से में सूक्ष्म बातों का समावेश नहीं होता, बल्कि पन्द्रह से पच्चीस वर्षों के लिए मोटे तौर पर लक्ष्य और रास्ता नि किया जाता है।

(ब) प्रबन्ध के स्तर के आधार पर (On the Basis of Management Level or Standard)

प्रबन्ध के स्तर की दृष्टि से योजनाएँ इस प्रकार की हो सकती हैं-

1. उब्वस्तरीय योजनाएँ - इस प्रकार की योजनाओं का सम्बन्ध सर्वोच्च प्रबन्धकों से होता है। उनमें स उपक्रम से सम्बन्धित उद्देश्य, लक्ष्य, नीति, प्रविधि, बजट आदि शामिल हैं।

2. मध्यस्तरीय योजनाएँ - ये योजनाएँ मध्य प्रबन्धकों द्वारा अपने विभागीय लक्ष्यों और युक्तियों के सम्बन तैयार की जाती हैं।

3. निम्नस्तरीय योजनाएँ - इन योजनाओं का सम्बन्ध पर्यवेक्षकों से होता है। इनमें कर्मचारियों से लिए वाले कार्य और साममियों से सम्बन्धित आँकड़े होते हैं।

(स) सीमाओं के आधार पर (On the Basis of Limitations)

कार्यक्षेत्र की सीमाओं के आधार पर योजनाओं को इन दो भागों में बाँटा जा सकता है-

1. आन्तरिक योजनाएँ - इसका सम्बन्ध उपक्रम की आन्तरिक क्रियाओं जैसे संगठन प्रारूप, उत्पादन की म एवं किस्म आदि से होता है।

2. बाह्य योजनाएँ - उपक्रम को वे क्रियाएँ जो बाहरी लोगों से सम्बन्धित होती है जैसे परिवहन, विसर शासकीय विभागों और जनता से सम्बन्धित बातें इस प्रकार की योजनाओं को विषय सामग्री होती है।

(द) उपयोग के आधार पर (On the Basis of Utilization) उपयोग के आधार पर योजनाएँ दो प्रकार की होती हैं-

1. एकल उपयोग योजना- इस प्रकार की योजना केवल एक बार काम आकर समयातीत हो जाती है, से विशेष कार्यक्रम या प्रोजेक्ट आदि

2. पुन्न उपयोग योजना- नीतियाँ, प्रविधियाँ, नियम आदि बार-बार काम आते रहते हैं। अतः ये पुनः उपपेन योजना के अन्तर्गत आते हैं।

(इ) अन्य प्रकार की योजनाएँ (Other Kinds of Planning)

समय के साथ तरह-तरह और योजनाएँ सामने आ रही हैं, जैसे-

1. थोपी हुई योजना- इस प्रकार की योजना स्वैच्छिक न होकर किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा थोपी जाती है।

2. अनुरोध आधारित योजना वह योजना जो किसी के अनुरोध पर तैयार की जाती है।

3. नवीनीकरण योजना - उत्पादन, विपणन आदि तकनीकों में नवीनीकरण सम्बन्धी योजना इसमें आती है।

4. सुधार योजना - इसका सम्बन्ध किसी जटिल समस्या के सुधारात्मक समाधान से होता है।

5. विकास योजना - यह उपक्रम के किसी क्षेत्र या सम्पूर्ण प्रगति से सम्बन्धित होती है।

4.8 नियोजन का महत्व या लाभ (Importance or Advantages of Planning)

आधुनिक युग में नियोजन का महल सभी प्रकार के संगठनों, व्यावसायिक या गैर व्यावसायिक, निजी या वेनिक क्षेत्र, छोटे या बड़े में सपान है। प्रबंध का दृष्टिकोण यह बताता है कि संगठन एवं कार में निर वान होना चाहिए। यह सामंजस्य नियोजन प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। कई व्याधिक संगठन जैसे साइयास्ट्रोन, टाटा स्टील, विन्दुस्तान लीवर इत्यादि का विकास उच्चकोटि की नियोजन प्रक्रिया के कारण सम्पन हुआ है। नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न विन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. प्रतिस्पर्धी स्थिति में सुधार लाना (Improvement in Competitive Situation)- विजन उन संस्थाओं को प्रविस्सों स्थिति में सुधार लाता है जो पूर्वानुमानों का सहारा लेती हैं और योजनायें बराकर पलती हैं। आज व्यवसाय के भविष्य की अनिश्चितता एवं उसकी बदलती हुई प्रवृतियों को देखते हुए प्रत्येक संस्था के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह योजनाबद्ध तरीके से

काम करें। बिना नियोजन के संस्था अपना विकास-विस्तार स्थायी रूप से नहीं कर सकेगी और प्रतिस्पर्धा उसके अस्तित्व को धीरे-धीरे समाप्त कर देगी।

2. अनिश्वितताओं को कम करने में सहायक (Helpful in Lessening the Uncertainties)- नावसायिक उपक्रमों को भावी अनिश्चितताओं के सन्दर्भ में कार्य करना पड़ता है। नियोजन के द्वारा प्रवन्गक इन अनिश्चितताओं पर विचार करते हैं तथा पूर्वानुमान लगाकर कार्य करते हैं। इससे भावी अनिश्चितताएँ विल्कुल समाप्त हो नहीं होती है किन्तु ये कम अवश्य हो जाती हैं तथा उनका मुकाबला करने के लिए संगठन तैयार करता है।

3. सागत में कमी लाना (Decrease in Cost) नियोजन लागत में कभी लाता है। यह कार्य के निष्पादन की लागढ़ को कम करता है और सर्वोतम कार्यपथ के चुनाव को संभव बनाकर संस्था की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाता है। नियोजन कार्य के प्रवाह में समानता उत्पन्न करता है, मतभेदों को दूर करता है, अनावश्यक कार्यवाहियों को समाप्त करता है, दोहराव को रोकता है, विभिन्न क्रियाओं एवं विभागों में समन्वय स्थापित करता है, भौतिक एवं मानवीय साधनों में सन्तुलन स्थापित करता है, अपव्ययों को दूर करता है, विलम्ब की समाप्ति करता है और अच्छे व शीघ्र निर्णय प्रस्तुत करता है। इन सबसे प्रबन्ध व्यय में कमी आती है व प्रबन्ध कार्य मितव्ययी बनता है। कून्ज एवं ओडोनेल ने लिखा है कि "नियोजन लागत को न्यूनतम करता है, क्योंकि यह कुशल संचालन और सामंजस्य पर बल देता है।"

4. उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम प्रयोग (Optimum Utilization of Available Resources)- नियोजन प्रक्रिया में एक व्यावसायिक उपक्रम उपलब्ध अवसरों तथा चुनौतियों का विश्लेषण करता है तथा उन्हें अपने उपलब्ध संसाधनों के सन्दर्भ में देखता है तथा ऐसे कार्यक्रमों का चुनाव करता है जिससे उपलब्ध विभिन्न साधनों का प्रयोग उपक्रम के लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किया जा सके। नियोजन प्रक्रिया में एक उपक्रम की धगताओं एवं कमजोरियों

को परखा जाता है। इससे योजनाएँ संस्था की थमतानुसार बनायी जाती है तथा उन पर संस्था की कमजोरियों का प्रभाव कम से कम पड़ने दिया जाता है। इससे संस्था के उपलब्ध साधनों का श्रेष्ठतम एवं अनुकूलतम प्रयोग सम्भव होता है।

5. नियंत्रण को आधार प्रदान करना (To providee a base or premise to Controlling)- नियोजन नियन्त्रन को आधार प्रदान करता है, इसलिये इसे आवश्यक समझा गया है। नियोजन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की स्थापना करता है जो कि वास्तव में किये गये कार्य के मूल्यांकन का मापदण्ड होते हैं। नियोजन प्रमाप निश्चित करता है जिनकी सहायता से विचलन मालूम किये जा सकते हैं। नियोजन बजट तैयार करता है जो कि वित्तीय नियंत्रण का साधन होते हैं। नियोजन सुधारात्मक उपाय भी बताता है जिससे कार्य निषादन में सुधार सम्भव होता है। स्पष्ट है कि नियोजन नियन्त्रण के लिये आधार प्रदान करता है और बिना नियोजन के वास्तविक नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सकता।

6. प्रबंधकीय क्षमता में वृद्धि (Increase in Managerial Efficiency)- यदि किसी संगठन के प्रबंधकों द्वारा कुशल योजना का निर्माण एवं कार्यान्वयन किया जाता है तो इससे प्रबन्धकीय क्षमता बढ़ती है। प्रवन्धकीय क्षमता पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को कम से कम लागत में अल्प समय अवधि में प्राप्त करने पर निर्भर करती है। नियोजन द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति होती है। प्रबन्ध के सभी आधारभूत कार्यों में नियोजन सहायक होता है। प्रबन्ध अपने संगठन बनाने, नियुक्तियों करने, निर्देशित एवं अभिप्रेरित करने तथा नियन्त्रण करने के कार्यों में नियोजन के द्वारा अधिक सफलता शप्त करते हैं।

7. संगठन को प्रभावी बनाना (To make the Organization Effective)- नियोजन संगठन बनाता है औरों की प्राप्ति में लगने वाली अनावश्यक देरी को समाप्त करके प्रबन्धकीय काले प्रदान करता है। नियोजन संगठन में अचानक और अव्यवस्थित क्रियाओं के स्थान पर सुव्यवस्थित एवं अर्थपूर्ण को जन्म

देता है। नियोजन संगठन का मार्गदर्शन करता है और अपने लक्ष्यों की प्रदान करता है। पूर्ति हेतु सीधी एवं कम लम्बी रहा प्रदान करता हैं।

8. विकास एवं सुधार होना। (To Development and Improvement) - नियोजन इसलिए एवं महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रमापों की स्थापना करता है जो कि किये जाने वाले कार्यों और अपनायी को विधियों के मूल्यांकन की कसौटी होते हैं। परिणामस्वरूप संस्था की कार्य-प्रणाली में उत्तरोत्तर सुधार होता अनावश्यक क्रियायें स्वतः ही समाप्त होने लगती हैं।

9. संकटों का पूर्वानुमान एवं प्रबन्ध कर पाना (Forecasting of Calamity or Crisis and to Mas नियोजन का महत्व इसलिये भी बढ़ रहा है क्योंकि यह संकटों का पहले से ही अनुमान लगाने और उनका नियोजन कर धमकी सलियता करता है। नियोजन से अनिश्चितता का वातावरण भी समाप्त होता है। के ओडोनेल लिखते हैं कि "अनिश्चितता और परिवर्तन नियोजन को आवश्यक बनाते हैं। जिस प्रकार नाविक अपना लक्ष्य तय करके आराम से नहीं बैठ जाता, उसी प्रकार ब्यवसाय प्रबंधक लक्ष्य तय कर चुपचाप नहीं बैठ भविष्य सदैव ही बहुत अनिश्चित रहता है और किसी निर्णय के भविष्य में परिणामों के बारे में जितना अधिव किया जाता है, अनिश्चितता को उतना ही कम किया जा सकता है।"

10. परिवर्तनों के अनुसार सुधार सम्भव (Improvement According to Changes)- एक फर्म प्रक्रिया में सदैव अपने क्रियाकलापों की जाँच करती रहती है। परिवर्तनों के अनुसार सुधार करते रहने से अवसरों का लाभ उठाती है तथा आगे बढ़ती है।

11. समय संगठन शक्ति पर विचार का अवसर (An Opportunity of evaluating the Efficie the Overall Organisation)- नियोजन के अभाव में प्रबन्धक कभी भी संगठन शक्ति को समग्र रूप से पाते हैं, परन्तु नियोजन प्रक्रिया में अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगठन की सभी सम्भव

क्षमताओं तथा ब को देखा जाता है। इससे संगठन के कमजोर पक्षों को समय पर जानकारी हो जाती है अतः उन्हें दूर करके संगठन को सुदृढ़ किया जाता है।

12. अन्य प्रवन्ध कार्यों को आधार प्रदान करना (To provide a base to the Other Manag Functions) - नियोजन प्रबन्ध के अन्य कार्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है और उनके सफल निष्पादन में सहयोग है। इसका सीधा सा कारण यह है कि बिना नियोजन के प्रबन्धक न तो क्रियाओं का निर्देशन कर सकते हैं : नियन्त्रण। 'नियोजन' समन्वय और नियन्त्रण को सुविधाजनक बनाता है, इसलिये महत्वपूर्ण है। जार्ज आर लिखा है कि "नियोजन प्रवन्ध के अन्य कार्यों, जैसे- संगठन, उत्प्रेरण और नियन्त्रण का आधार है। नियोस क्रियाओं का निर्धारण किये बिना कोई ऐसी क्रिया नहीं होगी जिसका संगठन किया जाये, उत्प्रेरण किया जो नियन्त्रण किया जाये।" स्पष्ट है कि नियोजन सम्पूर्ण प्रवन्ध क्रिया का आधार है।

13. राष्ट्र को समृद्ध बनाना (To give Prosperity to प्रशस्त करता है। यह देश the Nation)- नियोजन राष्ट्रीय समृद्धि के मां के साधनों को समुचित उपयोग को सम्भव बनाता है। रोजगार उपलब्ध करके का चक्रों को रोकथाम करके व उत्पादन एवं उपभोग में सन्तुलन स्थापित करके, आर्थिक विषमताओं को दूर करने क्षेत्रों का सन्तुलित विकास करके, देश को समृद्धशाली बनाया जा सकता है। भारत की पंचवर्षीय योजनायें नि की आवश्यकता एवं महत्व का जीता-जागता प्रमाण प्रस्तुत करती है। नियोजन ने हमारे राष्ट्र का स्वरूप ही बदल है। इसलिए विकासमान तथा विकसित दोनों प्रकार के राष्ट्रों के लिये नियोजन का महत्व विवाद से परे है।

14. संचार को प्रभावी बनाना (To make Communication Effective)- नियोजन सम्पूर्ण संग संचार व्यवस्था को प्रभावी बनाने ने में सहयोग करता है क्योंकि योजनायें, उद्देश्य, नोतियाँ आदि के निर्मा निर्माण में ि विभागों और

कर्मचारियों से सूचनायें, परामर्श व सम्मतियाँ माँगी जाती हैं तथा नियोजन के विभिन्न संघटकों के में पुनः पुनः उन सभी को संस्था के कार्यों की जानकारी दी जानी है। कोई भी कार्य तीर या तुक्के पर आधारित होगा जिससे जी.डी.एच. कोल ने लिखा है कि "बिना योस भ्रम, शंकायें और अव्यवस्था उत्पन्न होगी।" नियोजन को प्रभावी बनाकर स्पष्टता का वातावरण बनाता है जो कि उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक होता है।

15.उतावले निर्णयों पर रोक लगाना (Check on rash Decisions or Hosty Decisions)- सिय लिये जाने वाले निर्णयों के लिये मार्गदर्शन करता है और उतावलेपन अर्थात् जल्दीबाजी में निर्णय लेने को रोकत कारण कि नियोजन की प्रक्रिया में विभिन्न विकल्पों पर पहले विचार किया जाता और फिर सर्वोत्तम विकत चयन किया जाता है। ऐलन ने भी लिखा है कि "नियोजन उतावले निर्णयों तथा अटकलबाजी से कार्य करने को को समाप्त करता है।"

16. प्रबन्ध में दूरदर्शी प्रवृति को उत्पन करता (To Grow Farsightedness Tendency in Management) नियोजन प्रवन्धकों को भविष्य पर चिन्तन करने का अवसर देता है जिससे उनके प्रवन्ध व्यवहार दूरदर्शी और प्रगतिशील बनने लगते है। इसलिये भी नियोजन आवश्यक और महत्वपूर्ण है। हेमिल्टन चर्च ने लिखा है कि "सार रूप में, नियोजन दूरदर्शिता का प्रदास है।"

17. नवीन एवं सृजनात्मक विचारों को प्रोतााहित करना (To Inspire New and Creative Thoughts) - नियोजन का कार्य संस्था के उच्चाधिकारियों का होता है किन्तु ने इस कार्य को करते समय अभीनस्य कर्मचारियों में परामर्श लेते है जिससे संस्था में नये तथा सृजनात्मक विचारों को प्रोत्साहन मिलता है। प्रो. हुगे ने लिखा है कि "एक उत्तम नियोजन प्रक्रिया व्यक्तिगत भागीदार का मार्ग प्रशस्त करती है, संस्था तथा उसके वातावरण के बारे में दिवारों को जन्म देती है, स्वतन्त्रता तथा स्व-मूल्यांकन के वातावरण प्रोत्साहित करती है और प्रबन्धकों को और अधिक श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरित करती है।"

इस प्रकार प्रबन्ध के कार्यों में प्रत्येक कदम पर नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व का आभास होता है। नियोजन प्रवन्धकीय कौशल एवं क्षमता के पूर्ण विदोहन का आधार होता है।

4.9 नियोजन की कठिनाइयाँ अथवा आलोचनाएँ (Difficulties or Criticisms of Planning)

व्यावसायिक सफलता के लिये नियोजन आवश्यक होता है, परन्तु इसकी भी कुछ सीमायें या दोष होते हैं जिनके कारण नियोजन की तीव्र अलोचनाएँ की जाती हैं। कुछ लोगों का कहना है कि नियोजन पर धन खर्च करना अपव्ययही है। नियोजन की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं

1. अमितव्ययो (Diseconomy) अनेक प्रबन्धकों द्वारा यह कहा जाता है कि योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन में अत्यधिक समय, श्रम एवं धन लगता है जबकि इससे संस्था को बहुत कम लाभ प्राप्त होते हैं। जब नियोजन की लागत इससे प्राप्त बचतों अथवा लाभों की तुलना में अधिक हो जाती है; तब यह संस्था के लिए भार हो जाता है। छोटी तथा मध्यम आकार की व्यावसायिक फर्मे इस व्यय भार को बहन नहीं कर सकती हैं।

2. विनाशकारी (Cause of Destruction)- व्यावसायिक फर्मों की योजनाएँ विभिन्न आर्थिक पूर्वानुमानों पर आधारित होती हैं। पूर्वानुमानों में त्रुटि होने पर संस्था की योजनाएँ संस्था के लिए आर्थिक दृष्टि से विनाशकारी सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए, एक संस्था ने अपने विस्तार की वृहत योजना तैयार की तथा उसमें नये संयंत्रों की स्थापना पर, इस अनुमान के आधार पर, कि निकट भविष्य में क्रांतिकारी तकनीकी परिवर्तन नहीं होंगे, करोड़ों रुपये व्यय कर दिये, परन्तु जैसे ही विस्तार की योजना पूरी हुई तब पता चला कि फर्म द्वारा स्थापित संयन्त्रों की तकनीक पुरानी पड़ चुकी है। ऐसी स्थिति में संस्था को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

4. भागीदारी का अभाव (Lack of Participation) कुछ आलोचकों की मान्यता है कि नियोजन में सभी कर्मचारियों को हिस्सेदार बनाना सम्भव नहीं होता है। योजनाओं का निर्माण तो उच्च अधिकारियों द्‌वारा किया जाता है तथा उनके अनुरूप कार्य उच्च अधिकारियों को करना होता है। अतः कर्मचारी वर्ग योजना को सही अर्थ में लागू नहीं करता है। इस प्रकार वे योजनाओं को असफल करने का प्रयास करते हैं।

5. वाहा तत्व (External Element)- नियोजन की सफलता को समाज, सरकार आदि बाह्य तत्व भी प्रभावित करते हैं। प्रबन्धक अपनी संस्था के आन्तरिक तत्वों का अनुमान आसानी से लगा लेता है किन्तु उक्त बाह्य तत्वों के बारे में पूर्वानुमान लगाना लगभग असम्भव होता है। फलस्वरूप बाह्य तत्व नियोजन के महत्व को सीमित कर देते हैं।

6. पर्याप्त लोच का अभाव (Lack of Sufficient Flexibility) नियोजन के कार्य में एक अन्य कठिनाई पर्याप्त लोच का अभाव है। विलियम न्यूमेन के अनुसार, "नियोजन जितना अधिक विस्तृत होगा उसमें उतनी ही ज्यादा लोचहीनता होगी।" लोच के अभाव में प्रबन्धक उत्साहविहीन हो जाते हैं तथा वे उपक्रम के कार्यों में पूर्ण रुचि नहीं ले पाते, प्रबंधक पूर्व निर्धारित नीतियों, पद्‌धतियों तथा कार्यक्रमों के अनुसार कार्य करने को बाध्य होते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप उसमें संशोधन की आवश्यकता होने पर भी वे ऐसा नहीं कर सकते। इस प्रकार लोचहीनता के कारण नियोजन के संचालन में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

7. पहल-शक्ति का अन्त (End of Initiative)- नियोजन के द्‌वारा एक संगठन के विभिन्न स्तर पर किये जाने वाले कार्य, उनका क्रम, उनकी क्रिया-विधि आदि सभी बातें निश्चित कर दी जाती ही हैं। इससे लोचशीलता समाप्त हो जाती है। लोचशीलता के अभाव के कारण व्यक्तियों की पहल-शक्ति समाप्त हो जाती है, क्योंकि उन्हें निश्चित क्रम जिनके कारण नियोजन की

तीव्र अलोचनाएँ की जाती हैं। कुछ लोगों का कहना है कि नियोजन पर धन खर्च करना अपव्यय ही है। नियोजन की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं

1. अमितव्ययी (Diseconomy)- अनेक प्रबन्धकों द्वारा यह कहा जाता है कि योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन में अत्यधिक समय, श्रम एवं घन लगता है जबकि इससे संस्था को बहुत कम लाभ प्राप्त होते हैं। जब नियोजन की लागत इससे प्राप्त बचतों अथवा लाभों की तुलना में अधिक हो जाती है; तब यह संस्था के लिए भार हो जाता है। छोटी तथा मध्यम आकार की व्यावसायिक फर्मे इस व्यय भार को बहन नहीं कर सकती है।

2. विनाशकारी (Cause of Destruction)- ब्यावसायिक फर्मों की योजनाएँ विभिन्न आर्थिक पूर्वानुमानों पर आधारित होती हैं। पूर्वानुमानों में त्रुटि होने पर संस्था की योजनाएँ संस्था के लिए आर्थिक दृष्टि से विनाशकारी सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए, एक संस्था ने अपने विस्तार की वृइत योजना तैयार की तथा उसमें नये संयंत्रों की स्थापना पर, इस अनुमान के आधार पर, कि निकट भविष्य में क्रांतिकारी तकनीकी परिवर्तन नहीं होंगे, करोड़ों रुपये व्यय कर दिये, परन्तु जैसे ही विस्तार की योजना पूरी हुई तब पता चला कि फर्म द्वारा स्थापित संयन्त्रों की तकनीक पुरानी पड़ चुकी है। ऐसी स्थिति में संस्था को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

4. भागीदारी का अभाव (Lack of Participation) कुछ आलोचकों की मान्यता है कि नियोजन में सभी कर्मचारियों को हिस्सेदार बनाना सम्भव नहीं होता है। योजनाओं का निर्माण वो उच्च अधिकारियों द्वारा किया जाता है तथा उनके अनुरूप कार्य उच्च अधिकारियों को करना होता है। अतः कर्मचारी वर्ग योजना को सही अर्थ में लागू नहीं करता है। इस प्रकार वे योजनाओं को असफल करने का प्रयास करते हैं।

5. बाह्य तत्व (External Element) नियोजन की सफलता को समाज, सरकार आदि बाह्य तत्व भी प्रभावित करते हैं। प्रबन्धक अपनी संस्था के

आन्तरिक तत्वों का अनुमान आसानी से लगा लेता है किन्तु उक्त बाह्य तत्वों के बारे में पूर्वानुमान लगाना लगभग असम्भव होता है। फलस्वरूप बाह्य तत्व नियोजन के महत्व को सीमित कर देते हैं।

6. पर्याप्त लोच का अभाव (Lack of Sufficient Flexibility) नियोजन के कार्य में एक अन्य कठिनाई पर्याप्त लोच का अभाव है। विलियम न्यूमेन के अनुसार, "नियोजन जितना अधिक विस्तृत होगा उसमें उतनी ही ज्यादा लोचहीनता होगी।" लोच के अभाव में प्रबन्धक उत्साहविहीन हो जाते हैं तथा वे उपक्रम के कार्यों में पूर्ण रुचि नहीं ले पाते, प्रबंधक पूर्व निर्धारित नीतियों, पद्धतियों तथा कार्यक्रमों के अनुसार कार्य करने को बाध्य होते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप उसमें संशोधन की आवश्यकता होने पर भी वे ऐसा नहीं कर सकते। इस प्रकार लोचहीनता के कारण

नियोजन के संचालन में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

7. पहल-शक्ति का अन्त (End of Initiative) नियोजन के द्वारा एक संगठन के विभिन्न स्तर पर किये जाने वाले कार्य, उनका क्रम, उनकी क्रिया-विधि आदि सभी बातें निश्चित कर दी जाती ही हैं। इससे लोचशीलता समाप्त हो जाती है। लोचशीलता के अभाव के कारण व्यक्तियों की पहल-शक्ति समाप्त हो जाती है, क्योंकि उन्हें निश्चित क्रम

6. स्थायित्व (Stability)- एक श्रेष्ठ योजना वह है जिसमें एक लम्बे समय तक बार-बार परिवर्तन न करना पड़े। छोटे परिवर्तन आसानी से किये जा सकते हैं, किन्तु, मोटे परिवर्तनों में योजना का स्वरूप ही बदल जाता है। अतः लोचना के बाद भी स्थायित्व होना चाहिए।

7. सहभागिता (Participation) - एक श्रेष्ठ योजना वह है जो प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों द्वारा मिलकर बनायी गयी हो। सहभागी योजना क्रियान्वयन के समय कोई कठिनाई प्रस्तुत नहीं करती है और वांछित परिणाम भी आसानी से उपलब्ध कराती है।

8. सन्तुलन (Balance)- एक श्रेष्ठ योजना वह है जिसमें सन्तुलन का गुण हो। यदि कोई योजना उद्देश्यों की प्राप्ति एवं साधनों के समुचित उपयोग के बीच सन्तुलन कायम नहीं कर पाती हो तो उसकी सफलता पर सन्देह होता है। अतः श्रेष्ठ योजना वही हो सकती है जिसमें उपक्रम के सभी घटकों के मध्य परस्पर सन्तुलन स्थापित हो सके।

9. स्पष्ट निर्धारित उद्देश्य (Well-Defined Objectives)- एक श्रेष्ठ योजना वह है जो स्पष्टतः निर्धारित उद्देश्यों पर आधारित हो। उद्देश्यों का निर्धारण निष्पक्ष रूप से ठोस आधारों एवं तथ्यों को ध्यान में रखकर किया गया हो, तभी कहा जा सकेगा कि योजना श्रेष्ठ है।

10. सरलता (Simplicity)- वह योजना श्रेष्ठ मानी जाती है जिसमें सरलता का गुण हो। योजना यदि आसानी से सबके समझ में आ जाती है तो माना जाना चाहिये कि सरलता का लक्षण मौजूद है। आर.सी. डेविस ने लिखा है कि- "मानवीय क्रियाओं के सभी क्षेत्रों में जहाँ व्यापक संगठित क्रियाओं की आवश्यकता होती है, वहाँ योजना का सरल होना अत्यन्त आवश्यक है।"

11. मितव्ययी (Economical)- एक श्रेष्ठ योजना में मितव्ययिता का गुण होना भी आवश्यक है। यदि योजना कम व्ययों पर अधिक अच्छी तरह से उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग कर सकती है तो माना जाना चाहिये कि उसमें मितव्ययिता का लक्षण मौजूद है।

12. विस्तृत (Comprehensive)- एक श्रेष्ठ योजना में व्यापकता का गुण होता है। योजना में यदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक समस्त मानवीय और अमानवीय क्रियाओं को समाविष्ट कर लिया गया हो तो माना जाना चाहिये कि उसमें 'व्यापकता 'का लक्षण मौजूद है।

13. अन्य लक्षण (Other Characteristics)- उपर्युक्त महत्वपूर्ण लक्षणों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी बातें हैं जो श्रेष्ठ नियोजन में होनी चाहिए जैसे

अनुकूलता का होना, लाभार्जन का दृष्टिकोण होना, उत्तरदायित्वों का निर्धारण होना, विश्वसनीयता का होना आदि।

इस प्रकार नियोजन यदि उपर्युक्त घटकों, लक्षणों एवं तत्त्वों को ध्यान में रखकर किया जाए तथा इन विन्दुओं का पूर्णतः परिपालन किया जाए तो निःसंदेह वह पूर्णतः सार्थक एवं अपने लक्ष्यों को पूर्ण करने वाला नियोजन ही होगा।

4.10 सार संक्षेप

नियोजन एक बुनियादी प्रबन्धकीय क्रिया है, जिसमें संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित करना और उन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक संसाधनों और क्रियाकलापों की योजना बनाना शामिल है। यह भविष्य के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दिशा और रणनीति प्रदान करता है। नियोजन प्रक्रिया में उद्देश्यों का निर्धारण, वैकल्पिक योजनाओं का विकास, उनका मूल्यांकन, और सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन शामिल होता है। यह संगठन के समय, प्रयास और संसाधनों को कुशलतापूर्वक उपयोग में लाने में सहायक है। हालांकि, नियोजन में समय और लागत की बाधाएँ होती हैं, और कभीकभी यह परिवर्तनशील - वातावरण में कठोर हो सकता है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. नियोजन प्र.या का पहला चरण क्या है?
   A. लक्ष्य निर्धारण
   B. वैकल्पिक योजनाओं का चयन
   C. क्रियान्वयन
   D. मूल्यांकन

2. नियोजन का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. संगठन का विस्तार

B. समय और संसाधनों की बचत

C. कार्य कुशलता बढ़ाना

D. सभी विकल्प सही हैं

3. नियोजन ________ प्रबंधन का पहला चरण है।

4. नियोजन का उद्देश्य संगठन के ________ को प्राप्त करना है।

4.11 मुख्य शब्द

1. **नियोजन (Planning)**: संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दिशानिर्देशन।-
2. **अवधारणा (Concept)**: नियोजन की परिभाषा और प्रक्रिया।
3. **उद्देश्य (Objective)**: लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योजना का निर्धारण।
4. **प्रक्रिया (Process)**: नियोजन के विभिन्न चरण।
5. **तत्व (Elements)**: नियोजन के क्षेत्र और संघटक।
6. **महत्व (Importance)**: नियोजन से समय, संसाधन और प्रयासों की बचत।
7. **सीमाएँ (Limitations)**: नियोजन की आलोचनाएँ और कठिनाइयाँ।
8. **तकनीक (Technique)**: नियोजन के लिए अपनाई जाने वाली विधियाँ।

उत्तर 1: A, **उत्तर 2**: D, **उत्तर 3**: बुनियादी, **उत्तर**: लक्ष्यों

4.12 संदर्भ

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). Management. *Pearson Education.*

Mintzberg, H. (2022). The Rise And Fall Of Strategic Planning. *Berrett-Koehler Publishers.*

Drucker, P. F. (2018). Management: Tasks, Responsibilities, *Practices. HarperBusiness.*

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). Management: Concepts, Practice & Cases. *McGraw Hill Education.*

Sharma, R. K. (2021). Principles Of Management. *Kalyani Publishers.*

Gupta, C. B. (2021). Management: Theory And Practice. *Sultan Chand & Sons.*

4.13 अभ्यास प्रश्न

1.नियोजन को परिभाषित कीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताएँ दीजिए।

2. "नियोजन मूल रूप से एक चयन क्रिया है तथा नियोजन समस्या का उदय कार्य के वैकल्पिक तरीकों की खोज के साथ ही होता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

3."नियोजन एक उद्देश्य के सम्पादन के लिए उत्तम क्रिया विधि के चुनाव और विकास की चेतना युक्त प्रक्रिया है।" (मेरी कुशिंग नाइल्स) इस कथन को स्पष्ट कीजिए तथा वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में नियोजन का महत्व स्पष्ट कीजिए।

4. नियोजन से आप क्या समझते हैं? इसके क्षेत्र एवं प्रकृति की विवेचना कीजिए।

5. नियोजन की परिभाषा दीजिए। व्यवसाय प्रबन्ध में इसकी प्रकृति, उद्देश्य एवं महत्व की विवेचना कीजिए।

6. नियोजन से क्या आशय है? इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए।

7. नियोजन के उद्देश्य, नीतियों तथा कार्यविधियों को समझाइए। नीतियों तथा कार्यविधियों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

8. नियोजन के क्या उद्देश्य हैं? नियोजन की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

9. नियोजन की परिभाषा दीजिए। आधुनिक युग में नियोजन के महत्व की विवेचना कीजिए।

ब्लॉक - II

इकाई -5

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध (MANAGEMENT BY OBJECTIVES)

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की परिभाषाएँ

5.4 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के लक्षण अथवा विशेषताएँ

5.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रकिया

5.6 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की सीमाएँ (समस्याएँ)

5.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को प्रभावी बनाने के लिए सुझाव

5.8 अपवाद द्वारा प्रबन्ध

5.9 सार संक्षेप

5.10 मुख्य शब्द

5.11 संदर्भ

5.12 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछले दो दशकों में प्रबन्ध के सिद्धान्तों या तकनीकों में शायद ही कोई दूसरा ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ हो जिसे "उद्देश्यों द्वारा प्रबंध" से अधिक लोकप्रियता मिली हो और उसका उद्योगों में प्रयोग हुआ हो। सामान्यतया यह माना जाता है कि 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' (Management by Objectives or M.B.O.) तकनीक का विकास पीटर एफ ड्रकर द्वारा किया गया, बाद में जार्ज एस. ओडिओनें ने इसको विकसित करने में सहयोग दिया। ड्रकर महोदय ने सर्वप्रथम सन् 1954 में अपनी पुस्तक 'दी प्रेक्टिस ऑफ मैनेजमेंट' में 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' पर विस्तृत विचार व्यक्त किये थे।

इसके बाद 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' (M.B.O.) की अवधारणा बलवती होती गई और एक औद्योगिक आन्दोलन के रूप में फैलती चली गई।

अवधारणा एवं आशय (Concept and Meaning)- पीटर ड्रकर ने अपनी पुस्तक 'Practice of Management' में 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की मूल भावना स्पष्ट करते हुए लिखा है कि --

प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम को एक सही समूह का गठन करना चाहिए और वैयक्तिक प्रयासों को सामूहिक प्रयासों से जोड़ देना चाहिए। उपक्रम के प्रत्येक सदस्य का योगदान भिन्न-भिन्न हो सकता है, परन्तु उन सभी का योगदान सामान्य लक्ष्य प्राप्त करने की ओर होना चाहिए। इस सम्बन्ध में ड्रकर द्वारा वर्णित तीन पत्थर काटने वालों की कहानी बड़ी ही सटीक प्रतीत होती है "एक गिरजाघर के निर्माण कार्य में एक स्थान पर तीन पत्थर काटने वाले कार्य कर रहे थे। रहे थे। जब उनसे पूछा गया कि वे क्या कार्य कर रहे हैं तो पहले ने उत्तर दिया कि मैं रोजी रोटी कमा रहा हूँ, दूसरे ने उत्तर दिया कि मैं पत्थर काटने का सर्वोत्तम कार्य कर रहा हूँ तथा तीसरे ने उत्तर दिया कि मैं गिरजाघर का निर्माण कर रहा हूँ।" वास्तव में यहाँ तीसरा व्यक्ति उद्देश्यों द्वारा प्रबन्य की मूल भावना का प्रतीक है जो अपने कार्य में संस्था के सामान्य लक्ष्य को देखता है।

अतः उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ जितना सरल एवं सहज है उसका विस्तृत अर्थ उतना ही गहनता लिये हुए है। साधारण शब्दों में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध से आशय उद्देश्यों का निर्धारण करके उसके आधार पर प्रवन्धकीय कार्य करने से है, किन्तु विस्तृत रूप में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का आशय संगठन में किसी व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्यों का लक्ष्य क्या है? वह अपना कार्य कैसे करता है? इस कार्य में उस व्यक्ति की भूमिका क्या है? इन लक्ष्यों को पूरा करने हेतु क्या शीर्ष प्रबन्ध ने कर्मचारियों को

अभिप्रेरित किया है? इन प्रश्नों के सन्दर्भ में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का विस्तृत अर्थ समझा जा सकता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की परिभाषा और विशेषताओं को समझ सकें।
2. 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की प्रक्रिया का अध्ययन और विश्लेषण कर सकें।
3. 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की सीमाओं और इन्हें प्रभावी बनाने के सुझावों को जान सकें।
4. अपवाद द्वारा प्रबन्ध की अवधारणा को समझ सकें।

5.3 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की परिभाषाएँ (Definitions of M.B.O.)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध वह तकनीक है जो संगठन के सभी प्रयासों को लक्ष्य प्राप्ति की ओर निर्देशित करती है, जैसा कि विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं से स्पष्ट होता है:-

1. "यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो वैयक्तिक दृढ़ता और दायित्व को पूर्ण क्षेत्र प्रदान करता है और उसके साथ ही दृष्टिकोण और प्रयास सम्बन्धी सामान्य निर्देशन प्रदान करता है, समूह कार्य की स्थापना करता है तथा वैयक्तिक लक्ष्यों का सामान्य समृद्धि से सामंजस्य स्थापित करता है।" पीटर एफ. ड्रुकर
2. "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध साधारण रूप में ऐसा सामान्य विवेक है जो स्वयं को प्रबन्धित करने के उद्देश्य के रूप में प्रतिविम्बित होता है।" हेराल्ड कूण्ट्ज

[टिप्पणी: इन परिभाषाओं में विशेष कर ड्रुकर महोदय की परिभाषा में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की प्रारम्भिक अवधारणात्मक जानकारी दी गई है जबकि हेराल्ड

कूण्ट्ज ने इसे स्वयं को प्रबन्धित करने के लक्ष्य के रूप में माना है। ये परिभाषाएँ M.B.O. को विस्तृत अर्थ नहीं दे पायी हैं।।

3. हैण्डरसन एवं सुओजानिन के अनुसार, "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध वह प्रवन्धकीय व्यवहार है जो विशिष्ट लक्ष्यों *की प्राप्ति पर बल देता है।"

4. हिक्स एवं गुलेट के अनुसार, "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध अभिप्रेरण समस्या का हल है। यह कर्मचारी और उसके अधिकारी को कर्मचारी के भावी निष्पादन के लक्ष्य निर्धारण की स्वीकृति देता है।"

[टिप्पणी : हैण्डरसन व सुओजानिन ने उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को एक प्रबन्धकीय व्यवहार माना है जो संस्था विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति पर जोर देता है। वहीं हिक्स एवं गुलेट इसे अभिप्रेरण समस्या का हल मानते हैं जो कर्मच के भावी कार्य निष्पादन हेतु लक्ष्य निर्धारण करने में सहयोग करना है ।

5. जार्ज एस. ऑडियोर्न के अनुसार, "उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसमें एक संगठन के वरिष्ठ ए अधीनस्थ प्रवन्धक सम्मिलित रूप से सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के प्रमुख क्षेत्रों की व्याख्य उसमें वांछित परिणामों के सन्दर्भ में करते हैं और इन्हीं मापदण्डों का इकाई के संचालन एवं प्रत्येक सदस्य के योगदा का मूल्यांकन करने के लिए मार्गदर्शक के रूप में उपयोग किया जाता है।"

[टिप्पणी : यह परिभाषा पर्याप्त विस्तार लिये हुए है तथा इसमें उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के सम्पूर्ण अर्थ को स्पष् किया गया है, लेकिन इस परिभाष में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की भावी दिशा निर्धारित नहीं की गई है।]

6. तोषी एवं केरोल के शब्दों में, "उद्देश्यों द्वारा प्रबंध एक प्रक्रिया है जिसमें प्रबंधक एवं उसके अधीनस्थ दोनं मिलकर ऐसी निर्धारित क्रियाओं, लक्ष्यों, विधियों एवं उद्देश्यों के बारे में सहमत होते हैं जिनका उपयोग अधीनस्थों वे निष्पादन एवं उसके मूल्यांकन के आधार के रुप में उपयोग किया जाएगा।"

7. जॉर्ज ऑडियोर्न के अनुसार, "उद्देश्यों द्वारा प्रबंध एक प्रक्रिया है जिसमें एक संगठन के वरिष्ठ एवं अधीनस्थ प्रबंधक सम्मिलित रूप से सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के प्रमुख क्षेत्रों की व्याख्या उसमें वांछित परिणामों के संदर्भ में करते हैं और इन्हीं मापदण्डों का इकाई के संचालन एवं प्रत्येक सदस्य के योगदान का मूल्यांकन करने के लिए मार्गदर्शन के रूप में उपयोग किया जाता है।"

[टिप्पणी : तोषी एवं केरोल तथा जॉर्ज ऑडियोर्न ने उक्त परिभाषाएँ उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को परिपूर्णता प्रदान करने के लिए ही दी हैं। इन परिभाषाओं में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध को स्पष्ट रूप से एवं विस्तृत व्याख्या दी गई है ।। उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के आशय एवं उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर एक उत्कृष्ट परिभाषा इस प्रकार दी ज सकती है

8. "यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत सर्वोच्च तथा अधीनस्थ प्रबन्धक मिलकर संस्था के सामान्य

उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं और उनके प्रकाश में प्रत्येक स्तर और विभाग, उप-विभाग के प्रबन्धक तथ कार्यकर्ता के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं।"

5.4 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के लक्षण अथवा विशेषताएँ (Essentials or Characteristics of M.B.O.)

'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' के अर्थ एवं उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के बाद इसके कुछ लक्षण या विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जो निम्न हैं:-

1. **इच्छित उद्देश्य या परिणाम** (Desired Objectives or Results) उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में सर्वप्रथम संस्था तथा उसके कर्मचारियों के उद्देश्य सुस्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिये जाते हैं तथा इन लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित भी कर दिया जाता है। उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध उन उद्देश्यों एवं उनकी प्राप्ति पर अधिक बल देता है जिनके द्वारा समय संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति

होती है। इस प्रक्रिया में न केवल उद्देश्यों पर ही बल दिया जाता है बल्कि यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है कि उनके लिए आवश्यक संसाधन जुटाए जाएँ और उन संसाधनों का समुचित उपयोग किया जाए।

2. **संस्था के उद्देश्यों की सर्वोपरिता** (Top Priority to Objects of Institutions)- विभिन्न विभागों और सदस्यों के उद्देश्य संस्था के सामान्य उद्देश्यों के अधीनस्थ होते हैं। संपूर्ण संगठन के उद्देश्य हर दशा में सर्वोपरि ही माने जाते हैं।

3. **उद्देश्यों के निर्धारण में सहयोग एवं समन्वय** (Co-operation & Co-ordination in the Determination of Goals)- संस्था के सामान्य उद्देश्यों तथा विभिन्न विभागों और सदस्यों के उद्देश्यों के निर्धारण में मिल-जुलकर कार्य किया जाता है, ताकि आगे भी टीम-भावना से कार्य हो सके और सभी के बीच श्रेष्ठ समन्वय स्थापित हो सके।

4. **विकेन्द्रित संगठनात्मक ढाँचा** (Decentralised Organisational Structure) उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में ऐसा संगठनात्मक ढाँचा तैयार किया जाता है, जिससे प्रत्येक स्तर का प्रबन्धक अपने निश्चित क्षेत्र में निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र होता है।

5. **नियतकालीन कार्य-निष्पादन मूल्यांकन** (Periodic Performance Appraisal)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध समय-समय पर प्रबंधकों के कार्य-निष्पादन मूल्यांकन पर बल देता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निर्धारित अवधि में अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है; इसका विश्लेषण किया जाता है और उन बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है जिनके कारण अपेक्षित परिणामों के मानकों में भी परिवर्तन किया जा सकता है।

6. **विभिन्न प्रणालियों का विकास** (Development of Different Systems)- उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध किसी संगठन में विभिन्न प्रणालियों के विकास का आधार प्रस्तुत करता है जिसमें संसाधनों का आवंटन, अधिकारों का भारार्पण,

पारितोषिक तथा दण्ड व्यवस्था इत्यादि को उद्देश्यों द्वारा प्रबंध प्रक्रिया के साथ जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार ये प्रणालियों अधिक तर्क हो जाती है।

7. **विभिन्न तकनीकों का संसर्ग** (Combination of Different Techniques) - उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध अपने आप में कोई तकनीक नहीं है बल्कि दृष्टिकोण है जिसके कारण दूसरे क्षेत्र की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध नई तकनीकों में उचित परिमार्जन करता है ताकि ये नई प्रणाली के अनुसार अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध इन तकनीकों में समन्वय भी स्थापित करता है।

8. विभिन्न अभिप्रेरक तथा विकास तत्वों का समुचित मिश्रण (Resumable Mixture of Different Motivative and Development Factors)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में कर्मचारियों को समुचित मौद्रिक एवं गैर-मौद्रिक प्रेरणाएँ दी जाती हैं। उनको श्रेष्ठ कार्य वातावरण प्रदान किया जाता है तथा प्रशिक्षण, विकास और प्रयोगों के सभी सम्भव अवसर प्रदान किये जाते हैं। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में प्रत्येक व्यक्ति को ऊपर के आदेशों की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है, बल्कि वह स्वयं जानता है कि उसे क्या कार्य करना है और किस प्रकार से करना है।

9. नियत अवधि (Decided Period)- इस प्रबन्ध में संगठन एक निश्चित अवधि के लिए नियोजन करता है। यह अवधि दीर्घकालीन या अल्पकालीन दोनों हो सकती है।

10. अधिकारों का प्रत्यायोजन (भारार्पण) (Delegation of Authority)- उद्देश्य विहित प्रवन्ध में अधिकारीगण अपने मातहतों को एक सीमा तक अधिकारों एवं दायित्वों का भारार्पण कर सकते हैं।

11. प्रशिक्षण (Training)- इसमें सभी स्तरों पर प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जाती है जिससे संगठन के उद्देश्यों को सहजता से हासिल किया जा सके। अतः इन लक्ष्यों से 'उद्देश्यों द्वारा प्रबंध' पहचाना जाता है।

5.5 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रकिया (Process of M.B.O.)

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रक्रिया के अंतर्गत विभिन्न तत्वों के विश्लेषण पर अधिक बल दिया जाता है जिनके द्वारा उद्देश्यों में स्पष्टता, प्रबंधकों की भागीदारी एवं परिणामों के लिए उत्तरदायित्व का निर्धारण होता है। अतः यह प्रक्रिया देखने में सरल प्रतीत होती है लेकिन व्यवहार में उतनी ही कठिन होती है। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रक्रिया को इस प्रकार से दर्शाया जा सकता है: संगठन का उद्देश्य नियोजन आधार मुख्य परिणाम क्षेत्र उच्चस्थ द्वारा अधीनस्थ के उद्देश्यों की संस्तुति अधीनस्थ द्वारा अपने उद्देश्यों की व्याख्या उपयुक्त संसाधनों की व्यवस्था अधीनस्थों के उद्देश्यों का निर्धारणअधीनस्थों द्वारा कार्य निष्पादन कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन,

1. संगठनात्मक उद्देश्यों का निर्धारण (Setting of Organisational Objective)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध ला करने हेतु सर्वप्रथम उद्देश्यों का निर्धारण एवं विकास किया जाता है। यह कार्य उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की आधारशिल् होता है। उद्देश्यों के निर्धारण की प्रक्रिया संगठन के 'सर्वोच्च स्तर' से प्रारम्भ की जाती है। उसके बाद संगठन में ऊप से नीचे की ओर 'उद्देश्यों की सोपानिकता' का विकास किया जाता है। उपक्रम के प्रत्येक खण्ड, विंग एवं अनुभाग है संगठनात्मक उद्देश्यों के साथ-साथ प्रत्येक प्रबन्धक एवं कर्मचारी के वैयक्तिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इ उद्देश्यों का निर्धारण करते समय वैयक्तिक उद्देश्यों के विभिन्न स्तरीय संगठनात्मक उद्देश्यों एवं उन सब उद्देश्यों के उपक्रम-उद्देश्यों के साथ 'अन्तर्गठबन्धन' (Interlocking) को अनिवार्यता को ध्यान में रखा जाता है। उद्देश्यों के अर्थपूर्ण, वास्तविक एवं सत्यापनीय बनाने हेतु रचनात्मक प्रयास किये जाते हैं, क्योंकि इसके अभाव में उद्देश्यों द्वार प्रबंध की सफलता मृगतृष्णा के समान हो जाती है।

2. मुख्य परिणाम क्षेत्र (Key Result Arcas)- संगठन के दीर्घकालीन उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् उन् क्षेत्रों में उद्देश्य निर्धारण की आवश्यकता पड़ती है

जिनकी प्राप्ति संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित करती है विभिन्न संगठनों में समय-समय पर ये क्षेत्र, वृद्धि दर, लाभदायकता, बाजार में संगठन की हिस्सेदारी, उत्पादकता, मानवीय संसाधन का विकास, सामाजिक कार्य-निष्पादन इत्यादि के रूप में हो सकते हैं।

3. अधीनस्थों के उद्देश्यों का निर्धारण (Setting of Subordinates Objectives)- संस्था के लक्ष्यों क निर्धारण करने तथा उन्हें विभिन्न मुख्य परिणाम क्षेत्रों के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है तो इसी आधार पर विभिन्न प्रबन्धकों के लक्ष्यों का निर्धारण होता है। इसी प्रक्रिया में एक शीर्ष प्रबन्ध को जो उद्देश्य निर्धारित होता है उसे प्राप्त करने हेतु अधीनस्थों के मध्य कार्य विभाजन होता है तथा प्रत्येक अधीनस्थ से यह उम्मीद की जाती है कि वह निश्चित समय में निश्चित परिणाम प्राप्त करेगा। उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध में परिणामों के स्तर को निश्चित करने के लिए साझेदारी व्यवस्था को आधार बनाया जाता है, जिसमें एक शीर्ष प्रबन्ध अपने अधीनस्थों के लक्ष्यों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर वे अपने लक्ष्यों का विवरण तैयार करते हैं। इस विवरण के आधार पर आपस में विचार-विमर्श द्वारा एक अधीनस्थ के उद्देश्यों का निर्धारण होता है।

4. उद्देश्यों के अनुसार संसाधनों का आवंटन (Allocating Resources According to Objectives)

जब अधीनस्थों के उद्देश्य निर्धारित हो जाते हैं तो शीर्ष प्रबन्ध उन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक संसाधनों का आवंटन करता है। संसाधनों के आवंटन में भी शीर्ष प्रबन्ध एवं अधीनस्थों के बीच परस्पर विचार-विमर्श एवं सहमति को आधार बनाया जाता है। संसाधनों का आवंटन उद्देश्यों के आधार पर करने के कारण शीर्ष प्रबंध निश्चिन्त हो जाता है कि अधीनस्थ आवंटित सापनों का उचित प्रयोग करके निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करेंगे।

5. उद्देश्यों का क्रियान्वयन (Execution of Objectives)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रयुक्ति में दूसरा महत्वपूर्ण सोपान फरस्परिक रूप से सहमत उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उनको कार्य रूप में परिणत करने से सम्बन्धित है। इसके लिए 'कार्य योजनाएँ' तैयार की जाती हैं और उनको मूर्त रूप प्रदान करने के लिए संचार, भारार्पण तथा पथ-प्रदर्शन का कार्प किया जाता है।

6. परिणामों का मूल्यांकन या निष्पादन का मूल्यांकन (Appraisal of Results or Evaluation of Performance) उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को लागू करने की प्रक्रिया में यह भी एक महत्वपूर्ण सोपान है जो अधीनस्थ द्वारा किये गये कार्य का उसकी उपस्थिति में उसके अधिकारी द्वारा मूल्यांकन करने से सम्बन्धित है। इस कार्य को पूरा करने हेतु निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती हैं:

(अ) प्रगति मालूम करना ('To Find out Progress) सर्व प्रथम अधिकारी अपने अधीनस्थ से उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में की गई प्रगति को जानकारी प्राप्त करता है। अधीनस्थ द्वारा प्राप्त परिणामों पर अधिकारी और अधीनस्थ दोनों मिलकर विचार-विमर्श करते हैं और अधिकारी प्रगति का मापन करता है।

(ब) सामयिक पुनर्विचार (Social Review or Thinking) उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में की गई प्रगति का मापन करने के पश्चात् अधिकारी और अधीनस्थ दोनों संयुक्त रूप से सफलता अथवा असफलता के कारणों पर गम्भीर परिचर्चा करते हैं। असफलता के कारणों को दूर करने और सुधारने पर विचार-विमर्श किया जाता है और इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाये जाते हैं।

7. अन्तिम उपलब्धि (Final Achievement)-उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का प्रयोग करने की प्रक्रिया का अगल महत्वपूर्ण सौपान अधीनस्थों द्वारा उद्देश्य प्राप्ति की सफलता से सम्बन्धित है। इसमें निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती है:

(अ) वार्षिक पुनर्विचार (Annual Review)- इस स्तर पर अधिकारी और अधीनस्थ दोनों के द्वारा मिलकर अधीनस्थ की पूरे वर्ष भर की उपलब्धियों

को ध्यान में रखकर उसके कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन और उसके आधार पर दीर्घकालीन उद्देश्यों पर पुनर्विवार किया जाता है।

8. मान्यता एवं प्रचार (Recognition and Publicity)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रक्रिया का अन्तिम महत्वपूर्ण सोपान अधीनस्थों की सफलताओं एवं उपलब्धियों को मान्यता प्रदान करने और उसका व्यापक आन्तरिक प्रचार करने से सम्बन्धित है। जब कभी अधीनस्थ अथवा विभाग या अनुभाग अपने उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लेता है तो सम्पूर्ण संगठन में उसका व्यापक प्रचार किया जाता है, सफल व्यक्तियों का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा सकता है। उसको पुरस्कृत किया जा सकता है अथवा किसी अन्य विधि से उनका सम्मान किया जा सकता है। यह कार्य व्यक्तियों को मान्यता प्रदान करता है। उनकी अपेक्षाएँ एवं आशाएँ पूरी होती हैं। वे स्वयं को गौरवान्वित एवं अभिप्रेरित अनुभव करते हैं।

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के लाभ अथवा महत्व (Advantages or Importance of M.B.O.)

विभिन्न संगठनों में उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का प्रयोग बहुत हितकर रहा है। बेक एवं हिलिमर ने विभिन्न शोध परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि 35 ऐसे कारक हैं जो इस प्रणाली को प्रबंध की अन्य पद्धतियों की तुलना में अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। अतः इनका प्रयोग प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों में हो सकता है और उनके परिणाम अपेक्षाओं पर खरे उतरते हैं। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध अतिमहत्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

(1) टीम भावना (Team Spirit)- उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध पद्धति में शीर्ष प्रबन्ध एवं निम्न प्रबन्ध के मध्य निर्णय में भागीदारी पर अधिक जोर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप किसी इकाई या विभाग के विभिन्न घटकों एवं

व्यक्तियों में टीम भावना का विकास होता है जो व्यक्तियों की कार्यकुशलता के लिए आवश्यक है।

(2) कुशल कार्य निष्पादन (Effective Performance)- उद्देश्यों द्वारा प्रवन्ध में चूँकि उद्देश्यों का निर्धारण कर्मचारियों द्वारा अपने अधिकारियों के साथ मिलकर किया जाता है और उनको निर्णयन की भी पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। अतः कर्मचारीगण उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु वचनबद्ध होकर कार्य करते हैं। इसमें निर्धारित समयावधि में उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव होती है।

(3) अधिक स्व-प्रेरणा (More Self-Motivation)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में उद्देश्यों के निर्धारण में कर्मचारियों की भागीदारी, निर्णयन की स्वतन्त्रता और प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्पादन के मूल्यांकन के कारण कर्मचारी सर्वाधिक रूप से स्व-प्रेरित होते हैं और अधिकाधिक कार्य करते हैं।

(4) नैराश्य का अभाव (Lack of Frustration)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में चूंकि प्रत्येक कर्मचारी एवं प्रबन्धक को उससे अपेक्षित परिणामों का पूर्व ज्ञान होता है, फलतः वह उसी को प्राप्त करने हेतु प्रयास करता है। अपेक्षित परिणामों का निर्धारण भी यह स्वयं करता है। अतः कर्मचारियों में कार्य-निष्पादन स कार्य सन्तुष्टि की भावना का विकास होता है और नैराश्य भावना समाप्त होती है।

(5) श्रेष्ठतर प्रबन्ध (Better Management)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध श्रेष्ठतम प्रवन्ध को जन्म देता है। परिचालनात्मक वास्तविक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर आवश्यक भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की व्यवस्था की जाती है। इन्हीं प्राप्त परिणामों की प्राप्ति हेतु प्रयास किये जाते हैं। स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य तथा उद्देश्यानुसार कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन 'नियन्त्रण' एवं 'अभिप्रेरण' को आधार प्रदान करते हैं।

(6) उच्च मनोबल (High Morale) उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के अन्तर्गत व्यक्तियों का मनोबल ऊँचा रहता है। उच्च मनोबल के विभिन्न कारण हो

सकते हैं जैसे कार्यसंतुष्टि, व्यक्ति का महत्व, कार्य का महत्व एवं टीम भावना इस पद्धति में विद्यमान होते हैं।

(7) स्पष्ट संगठन (Clarified Organisation) - उद्देश्यों द्वारा प्रबंध संगठन की भी स्पष्ट व्याख्या करता है। संगठन में आधारभूत परिणाम क्षेत्रों (Key Results Areas) को परिचालनात्मक उद्देश्यों और उनको पूरा करने हेतु विभिन्न उत्तरदायी पद-स्थितियों (Work Positions) में परिवर्तित किया जाता है। कार्यभार अर्थात् अधिकार सत्ता का भारार्पण एवं विकेन्द्रीकरण किया जाता है। इस प्रकार यह प्रणाली प्रभावी संगठन को जन्म देती है।

(8) नियन्त्रण (Control) - उद्देश्यों द्वारा प्रबंध विधि के अन्तर्गत वास्तविक निष्पादन की तुलना पूर्व निर्धारित उद्देश्यों से की जाती है, जिसके परिणामस्वरूप नियन्त्रण का कार्य सरल हो जाता है। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध बाहरी नियन्त्रण की तुलना में स्वतः नियन्त्रण को अधिक महत्व प्रदान करता है। श्री ड्रकर के मतानुसार, "स्वतः नियन्त्रण (Self control) उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का एक अनिवार्य अंग है।"

(9) **वैयक्तिक प्रयास** (Personal Efforts)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में चूँकि कर्मचारियों को निर्धारित सीमाओं में समस्याओं को स्वयं हल करने तथा आवश्यक निर्णय लेने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है, अतः उनके वैयक्तिक प्रयास बढ़ जाते हैं। यह पहल शक्ति कर्मचारियों के निष्पादन और उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति को समुन्नत करने में सहायक होती है।

(10) **स्पष्ट परिणाम** (Clarified Results) उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में प्रबन्ध परिणामोन्मुखी होता है। प्रत्येक कर्मचारी एवं प्रबन्धक को उसके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले परिणामों का स्पष्ट ज्ञान होता है। प्राप्त परिणामों के आधार पर ही उनके निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है। फलतः वे अधिक निष्ठा भाव से कार्य करते हैं।

(11) **उचित समन्यय** (Better Co-ordination)- इस पद्धति में संगठन के समग्र उद्देश्यों को ध्यान में रखकर अन्य स्तरों पर उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। अतः इस प्रक्रिया में विभिन्न स्तर के उद्देश्यों में समुचित समन्वय स्वयं स्थापित हो जाता है। इसी प्रकार संसाधनों के आवंटन एवं क्रियाओं के निष्पादन में भी परस्पर समन्वय स्थापित हो जाता है।

(12) **व्यवस्थित प्रवन्ध विकास** (Orderly Management Development) उद्देश्यों द्वारा प्रबंध व्यवस्थित प्रबन्ध-विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रबन्ध में भागीदारी व्यवस्था निम्न स्तरीय कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों की समस्याओं के निराकरण एवं निर्णयन की प्रक्रिया का प्रशिक्षण एवं अनुभव उपलब्ध कराते हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर उच्च पदों पर पदोन्नत किये जा सकते हैं।

(13) **क्षतिपूर्ति का श्रेष्ठतर मापदण्ड** (Better Yardstick of Compensation)- यह पद्धति कर्मचारियों को उनके द्वारा किये गये कार्यों के प्रतिफल के रूप में क्षतिपूर्ति अर्थात् पारिश्रमिक चुकाने का अधिक न्यायोचित एवं तर्कसंगत आधार है। इसमें प्राप्त परिणामों अर्थात् उद्देश्यों की मात्रा के अनुसार क्षतिपूर्ति की जाती है। जो कर्मचारी नियमित रूप से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर लेते हैं। उनको अधिक ऊँची दर से पारिश्रमिक दिया जाता है।

(14) **साहचर्य-प्रभाव** (Synergetic-Effect) साहचर्य प्रभाव से तात्पर्य किसी समूह की शक्ति अथवा ऊर्जा के कुल योग (Sum total of the energy which a group can command) से है। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध पारस्परिक रूप से सहमत उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अधिकारियों एवं कर्मचारियों में 'संयुक्त प्रयास' की भावना को विकसित करता है। इस प्रकार उसके द्वारा उपक्रम में साहचर्य प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

5.6 उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की सीमाएँ (Limitations of M.B.O.)

जन भी कोई विचार आगे बढ़ता है, तो उसका विरोध भी होता है। अनेक विद्वानों ने उद्देश्यों द्वारा प्रबंध विधि का निम्नलिखित आधारों पर विरोध किया है-

1. दबाव प्रेरित विधि - रेन्सिस लिकर्ट जैसे प्रबन्धविद् के अनुसार, "उद्देश्यों द्वारा प्रबंध दबाव प्रेरित (Pressure Oriented) प्रबन्ध तकनीक है। उससे तत्कालीन रूप से उत्पादन में वृद्धि भले ही हो जाए किन्तु दीर्घकालीन उत्पादकता में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। उत्पादकता में वृद्धि सुदृढ़ मानवीय सम्बन्धों तथा श्रेष्ठ नेतृत्व की देन है।"

2. अत्यधिक समय खर्च यह विधि समय और शक्ति का अपव्यय करती है। इस विधि में निहित कदम अनावश्यक रूप से प्रबन्ध प्रक्रिया को लम्बी करने वाले हैं। इन उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में निहित कदम अनावश्यक रूप से प्रबन्ध प्रक्रिया को लग्बी करने वाले हैं। क्योंकि पहले संस्था के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं, फिर कर्मचारियों के तथा बाद में इनमें तालमेल बिठाया जाता है। यह अधिकतम समय व्यर्थ में खर्च करा देते हैं।

3. प्रशिक्षण अपरिहार्य यह एक ऐसी उच्च प्रबन्ध विधि है, जिसे यदि अप्रशिक्षित कर्मचारियों के मध्य लागू करने का प्रयास किया जाये, तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है। प्रशिक्षण के अभाव में कर्मचारियों में सहयोग की बजाय टकराव वथा आत्मनियन्त्रण की बजाय अनुशासनहीनता की प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगती हैं।

4. उद्देश्यों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में कठिनाइयाँ प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर उद्देश्यों का निर्धारण अत्यन्त कठिन हो जाता है। उद्देश्यों के निर्धारण में प्रारम्भ में तो व्यक्ति पहल करते हैं, परन्तु बाद में यह भावना लुप्त हो जाती है।

उद्देश्यों का निर्धारण यदि हो भी जाए तो उनके क्रियान्वयन में अनेक व्यावहारिक बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के अन्तर्गत अनेक बार अराजकता का वातावरण फैलने का भी डर रहता है।

5. अलग-अलग क्षमता तथा भावना वाले कार्यकर्ता किसी संगठन के कार्यकर्ताओं की क्षमताएँ और भावनाएँ अलग-अलग होती हैं। उन सभी को एक समान प्रबन्ध विधि के अन्तर्गत पिरोया नहीं जा सकता।

6. लोच का अभाव - उद्देश्यों का पूर्ण निर्धारण आवश्यक है, परन्तु परिस्थितियों के अनुरूप उनमें समायोजन की आवश्यकता होती है। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि लोच को कार्य रूप में कैसे परिणत किया जाएगा।

7. भारार्पण में कठिनाइयाँ उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के अन्तर्गत सत्ता और अधिकारों का भारार्पण अपरिहार्य है, जिसमें व्यावहारिक तौर पर अनेक कठिनाइयाँ आती है।

8. गुणात्मकता की उपेक्षा उद्देश्यों द्वारा प्रबंध लागू होने पर प्रत्येक स्तर पर मात्रात्मक रूप से उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास किये जाते हैं तथा गुणात्मकता की उपेक्षा की दी जाती है।

9. साधनों पर ध्यान नहीं- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध में साध्य ही सब कुछ मान लिए जाते हैं और साधनों की श्रेष्ठता एवं पवित्रता पर ध्यान नहीं दिया जाता है। साध्यों की प्राप्ति हेतु अच्छे-बुरे सभी साधन बिना हिचकिचाहट के अपनाये जाते हैं।

जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में लोकतान्त्रिक व्यवस्था का संचालन अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य है, उसी प्रकार उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का संचालन प्रबन्ध के क्षेत्र में अत्यन्त जटिल है। बिना समुचित प्रशिक्षण, तैयारी और साधनों के उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को लागू करना एक आकर्षक स्वप्न की अनिष्टकारी समाप्ति के समान है।

5.7 उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को प्रभावी बनाने के लिए सुझाव (Suggestion for making M.B.O. Effective)

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध एक महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा संगठन की उत्पादकता एवं लाभदायकता में वृद्धि होने के काफी अवसर होते हैं, किन्तु इसके उचित प्रयोग नहीं होने के कारण इसमें कई समस्याएँ पैदा हो जाती हैं, जिसके कारण यह उतना प्रभावशाली नहीं रह पाता। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को प्रभावशाली बनाने के लिए किसी संगठन द्वारा निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं:

1. **उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का लक्ष्य** (Purpose of MBO)- इसके द्वारा प्रबंधकीय विकास, प्रबंधकीय कार्यों का मूल्यांकन, उत्पादकता एवं लाभप्रदता में वृद्धि एवं दीर्घकालीन नियोजन जैसे लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में उद्देश्ों द्वारा प्रबंध के विभिन्न तत्वों पर अलग-अलग बल दिया जाता है। अतः संगंठन के लिए यह आवश्यक है कि पहले वह निर्धारित करे कि उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का प्रयोग किन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जा रहा है, ताकि उसी के अनुरूप इसके विभिन्न तत्वों को अपनाया जा सके।

2. **उच्च प्रबंध का सहयोग** (Top Management Support)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसे उच्च प्रबंध का सहयोग प्राप्त हो ताकि अधीनस्थ प्रबंधकों में यह संदेश जाए कि उच्च प्रबंध इसे लागू करने के प्रति गम्भीर है। इस प्रकार उनमें उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के प्रति उचित भावना का संचार होगा जो इसकी सफलता के लिए आवश्यक है। अतः उच्च प्रबंध को चाहिए कि उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का प्रयोग संगठन के उच्च स्तर से प्रारम्भ होकर निचले स्तर की ओर बढ़े।

3. **उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को निचले स्तर पर भी लागू करना** (Implementing M.B.O. at Lower Level) प्रायः यह देखा गया है कि विभिन्न संगठन

उद्देश्यों द्वारा प्रबंध को केवल उच्च या मध्य प्रबंध स्तरों पर ही लागू करते हैं और निचले स्तरों के लिए आवश्यक नहीं समझते। इस भावना के कारण उद्देश्यों द्वारा प्रबंध का प्रयास अधूरा रह जाता है और इसकी प्रभावशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः इस प्रणाली को निचले स्तर पर भी लागू करना चाहिए ताकि वे प्रबन्ध में अपनी भागीदारी से प्रसन्न होकर स्फूर्ति से कार्य कर सकें।

4. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध एवं वेतन सम्बन्धित निर्णय (M.B.O. and Salary Decision)- प्रायः वेतन वृद्धि से सम्बन्धित निर्णय को उद्देश्यों द्वारा प्रबंध से जोड़ दिया जाता है, जिसके अंतर्गत वेतन वृद्धि, कार्य-निष्पादन पर आधारित होती है। इस संदर्भ में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि उन कारकों को संज्ञान में नहीं लिया जाता है जिनके कारण कार्य-निष्पादन प्रभावित होता है। यदि ये कारक किसी प्रबंधक के नियंत्रण से बाहर हैं तो उसकी दक्षता के पूर्णतम उपयोग के बाद भी कार्य निष्पादन अधिक प्रभावशाली नहीं होता। ऐसी स्थिति में यदि प्रबंधक के वेतन वृद्धि को उसके कार्य-निष्पादन जोड़ा जाएगा तो यह उचित नहीं होगा। अतः वेतन वृद्धि के निर्णय में कार्य-निष्पादन के साथ-साथ उन कारकों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। इस समस्या के निदान के लिए बहुत से संगठनों ने उद्देश्यों द्वारा प्रबंध एवं वेतन सम्बन्धी निर्णय को अलग-अलग कर दिया है।

5. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के लिए प्रशिक्षण (Training for M.B.O.)- चूंकि उद्देश्यों द्वारा प्रबंध केवल एक तकनीक नहीं है, बल्कि एक दृष्टिकोण है, अतः इसे प्रभावी बनाने के लिए प्रबंधकों को उसी के अनुसार प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण के समय दो तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है प्रथम, उद्देश्यों द्वारा प्रबंध लागू करने में प्रयोग होने वाली दक्षता का विकास करना; एवं द्वितीय, प्रबंधकों की मनोदशा में उचित परिवर्तन करना जिससे वे निर्णयों

में अपने अधीनस्थों की भागीदारी स्वीकार कर सकें एवं अधीनस्थों को उचित अधिकार भारार्पित कर सकें।

6. निर्णयन में भागीदारी (Participation in Decision-making)- निर्णयन में भागीदारी उद्देश्यों द्वारा प्रबंध प्रणाली का मूल तत्व है क्योंकि इसी के आधार पर निर्धारित किया हुआ उद्देश्य अधीनस्थों को उनकी प्राप्ति के लिए प्रेरणा देता है। भागीदारी की यह प्रक्रिया संगठन के सभी स्तरों पर होना आवश्यक है। इसके लिए संगठन की सम्पूर्ण कार्य संस्कृति में उचित परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

स्व-निर्देशन एवं स्व-नियंत्रण के लिए पुनर्संदेश (Feedback tor Self-Direction and Self-Control)- उद्देश्यों द्वारा प्रबंध प्रणाली की प्रभावशीलता के लिए यह आवश्यक है कि संगठन के सभी स्तरं पर, स्व-निर्देशन एवं स्व-नियंत्रण के लिए उचित पुनर्संदेश की व्यवस्था हो। इस प्रणाली में केवल कार्य निष्पादन व | मूल्यांकन महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इस मूल्यांकन के परिणामों की जानकारी अधीनस्थों को होना आवश्यक है, ताकि । अपने आप मूल्यांकन कर सकें कि वे कार्य-निष्पादन के संदर्भ में सही दिशा में जा रहे हैं या नहीं। इस प्रकार के। पुनर्संदेश के साथ-साथ अधीनस्थों को उचित सम्मति एवं परामर्श की भी आवश्यकता होती है जिसके आधार पर अपने कार्यों में अधिक कुशलता ला सकते हैं।

इस प्रकार उद्देश्यों द्वारा प्रबंध वर्तमान युग की अनिवार्य प्रबन्ध पद्धति हो गई है। इसमें यदि उपर्युक्त सुझावं को अमल में ले आया जावे तो निःसन्देह यह एक क्रांतिकारी पद्धति है।

5.8 अपवाद द्वारा प्रबन्ध (Management by Exception)

अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition)

वर्तमान युग में व्यावसायिक प्रबन्ध व प्रशासन अत्यन्त जटिल कार्य हो गया है। गलाकाट प्रतिस्पर्धा प्रबन्धके को विवश कर रही है कि अपना अधिकतम समय व ध्यान लागतों को कम करने व लाभार्जन की ओर केन्द्रित करें प्रबन्धन की संगठित एवं व्यवस्थित योजना के अभाव में आज प्रबन्धक सूचनाओं के ढेर में दब सकता है और प्रबन्ध कार्य उसकी क्षमता से परे हो सकता है भले ही वह 24 घण्टे कार्य करता रहे। ऐसी परिस्थिति में अपवाद द्वारा प्रबन्ध की तकनीक ही समस्या का एकमात्र समाधान हो सकती है। यह तकनीक उच्च प्रवन्धकों के समक्ष केवल जानकारी प्रस्तुत करने पर बल देती है जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है तथा उनका ध्यान भी विशिष्ट समस्याओं व परिस्थितियों के पैदा होने पर ही आकृष्ट करने की व्यवस्था करती है। इस प्रबन्धकीय तकनीक को व्यवसाय के सभी क्षेत्रों में सुविधापूर्वक अपनाया जा सकता है। लेस्टर आर. बिटेल (Lester R. Bittel) के मतानुसार, "अपवाद द्वारा प्रबन्ध पहचान एवं संचार की वह प्रणाली है जो प्रवन्ध को उस समय संकेत देती है जबकि उसका ध्यानाकर्षण जरूरी होता है। इसके विपरीत यह प्रणाली उस समय तक शान्त रहती है जब तक कि प्रबन्ध का ध्यानाकर्षण आवश्यक न हो। इस प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य प्रबन्ध प्रक्रिया को सरल बनाना है जिससे कि समस्या क्षेत्र पर यथाशीघ्र ध्यान दिया जा सके एवं व्यक्तियों व मामलों पर शीर्ष प्रबन्ध को समय व्यय न करना पड़े जिन पर उनके अधीनस्थ भली प्रकार घ्यान दे रहे हैं। इस प्रकार यह नियन्त्रण की तकनीक ही नहीं वरन् अवसरों की खोज की विधि है।

प्रक्रिया (Procedure)-

अपवाद निहित प्रबन्ध व्यवस्था में प्रबन्धक सर्वप्रथम सम्पूर्ण कार्यों को वर्गों में बाँट देता है। प्रथम, वे कार्य जिनके लिए प्रबन्धकों को ही प्रत्यक्ष रूप से कार्यवाही करनी पड़ती है। द्वितीय, वे कार्य जिन्हें प्रत्यायोजित (Delegate) किया जा सकता है। ऐसे कार्य दैनिक कार्यों की प्रकृति (Routine nature) के

होते हैं तथा जिन्हें बार-बार करना पड़ता है। दैनिक प्रकृति के कार्यों के लिए मापन योग्य प्रमाप निर्धारित किये जाते हैं जो निष्पादन स्तर की गहनता को प्रकट करते हैं। अधीनस्थों को इन्हीं प्रमापों के अनुसार कार्य करने हेतु अधिकार दे दिये जाते हैं जिनके आधार पर वे स्वतन्त्रतापूर्वक इन कार्यों को पूरा करते हैं। अधीनस्थों को अपने कार्यों के परिणामों की ओर प्रबन्धकों का ध्यान तभी आकर्षित करना होता है जबकि वे परिणाम प्रमापों की तुलना में काफी भिन्न हों एवं उनमें विचलन/भिन्नता (Deviation) सहनीय सीमा से अधिक हो। प्रबन्धक ऐसी अपवादजनक परिस्थिति में ही अधीनस्थ के कार्यों में हस्तक्षेप करता है तथा वास्तविक परिणामों को प्रमाणों के भीतर लाने के उपाय करता है।

महत्व (Importance)

(1)इस प्रणाली से प्रबन्धकों के व्यक्तिगत समय में बचत होती है। (2) अधिवासी प्रयासों को वांछित समयव स्थान पर केन्द्रित किया जा सकता है। (3) जटिल प्रकरण व समस्याएँ उच्च अधिकारियों की निगाह से नहीं बचसकते। (4)प्रबन्धकीय कवरेज को व्यापकता प्रदान करना सरल हो जाता है। (5) निर्णयन की बारम्बारता में कमीलाई जा सकती है। (6) उपलब्ध समंकों व जानकारी का श्रेष्ठतम उपयोग संभव होता है। (7) अधिक वेतन पाने वालेकर्मचारियों को उच्च प्रत्याय वाले कार्यों पर लगाया जा सकता है। (8) संकट की स्थिति में समस्या का निदान प्राप्तकरना सरल होता है। (9) परिस्थितियों एवं व्यक्तियों के मूल्यांकन हेतु गुणात्मक तथा परिमाणात्मक मापदण्ड होते हैं।(10) व्यावसायिक क्रियाओं के समस्त पहलुओं की व्यापक जानकारी तथा संस्था के विभिन्न अंगों के बीच प्रभावीसम्प्रेषण को इससे प्रोत्साहन मिलता है

तत्व

अपवाद द्वारा प्रबन्ध के तत्व निम्नलिखित हैं (1) विगत एवं वर्तमान निष्पादनों की माप करना,(2) संगठनात्मकउद्देश्यों की प्रगति को बताने वाले आधारों का चयन करना, (3) चालू निष्पादन का अवलोकन व मूल्यांकन करना, (4)वास्तविक निष्पादन की तुलना अपेक्षित निष्पादन से करना और (5) अन्त में आवश्यक कार्यवाही करना।

अपवाद द्वारा प्रबंध के सिद्धान्त निम्नांकित हैं (1) स्व-नियन्त्रण (Self-control) के सिद्धान्तानुसार स्वयं को भी नियन्त्रित करना चाहिए न कि केवल दूसरों के ही दोष निकालना व उन्हें दण्डित करना। (2) पूर्ण-धारणाओं व । पूर्वाग्रहों को अस्वीकार करके स्वच्छ स्लेट पर काम करना चाहिए। (3) प्रबन्धकों को अपना कार्य करते समय संस्था की नीति को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। (4) लेखापालों के साथ रहकर सीखने का सिद्धान्त प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण पर बल देता है। (5) भारार्पण परिणामों की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए। (6) उच्च अधिकारियों को अपनी अवलोकनात्मक शक्तियों को बढ़ाना चाहिए और संस्था में क्या रहा है इसकी पूर्ण जानकारी रखनी चाहिए? (7) इस प्रणाली के उपयोग द्वारा अधीनस्थों का विकास किया जाना चाहिए। (9) अपेक्षा करो कि कुछ लोग तुम्हें फालतू करें - इसकी चिन्ता न करके प्रवन्धकीय चिन्तन व नियोजन करना चाहिए। (10) बड़े एवं छोटे कार्यों के बीच अन्तर रख़िए- यह प्रणाली का सार तत्व है। (11) इस प्रणाली को अपनाने वाले प्रबन्धकों को अति निकट पर्यवेक्षक नहीं बनना चाहिए। (12) गतिशील प्रवन्धक होने चाहिए न कि संगठन-व्यक्ति जो हां में हां मिलाने वाले होते हैं। (13) अपवादों की जानकारी सक्रियता से करनी चाहिए। (14) कठोर परिश्रम न कि आराम का सिद्धान्त अपनाना चाहिए।

सीमाएँ (Limitations)

अपवाद द्वारा प्रबन्ध की सीमाएँ इस प्रकार हैं (1) यह संगठन व्यक्ति के विचार को प्रोत्साहित करती है। (2) यह प्रायः अविश्वसनीय समंकों पर

आधारित रहती है। (3) यह कागजी कार्यवाही को बढ़ाती है। (4) व्यापक अवलोकन व रिपोटिंग सदैव संभव नहीं होता। (5) यह अस्वाभाविक अस्थिरता को प्रेरित करती है। (6) इससे प्रवन्ध को झूठी सुरक्षा प्राप्त होती है। (7) यह मानवीय व्यवहार जैसे घटकों को महत्व नहीं देतीं। (7) यह अव्यावहारिक है।

उद्देश्य निहित प्रवन्ध एवं अपवाद निहित प्रबन्ध में अन्तर (Distinction)- उद्देश्य निहित प्रबन्ध एवं अपवाद निहित प्रबन्ध में अन्तर निम्नानुसार हैं-

1. उद्देश्य निहित प्रबन्ध अधिकारों के विकेन्द्रीकरण तथा प्रबन्ध में सहभागिता की एक विधि है जबकि अपवाद
निहित प्रबन्ध प्रवन्धकीय नियन्त्रण भी एक विधि है।

2. उद्देश्य निहित प्रबन्ध में अधीनस्थ प्रवन्धकों के सहयोग से अपने उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं जबकि अपवाद निहित प्रबन्ध में प्रबन्धक अधीनस्थों के लिए कार्य-प्रमाप निर्धारित करते हैं जिनके अनुसार उन्हें कार्य करना होता है।

3. उद्देश्य निहित प्रबन्ध में वास्तविक कार्य-परिणामों की तुलना उद्देश्यों से की जाती है और परिणामों में यदि कोई अन्तर होता है तो प्रबन्धक उस अन्तर को दूर करने हेतु अधीनस्थों को परामर्श देते हैं। दूसरी ओर अपवाद निहित प्रबन्ध में वास्तविक कार्य-परिणामों में उत्पन्न हुए अन्तर/विचलन की जानकारी प्रबन्धकों को दी जाती
है और वे उन विचलनों को दूर करने हेतु आवश्यक आदेश-निर्देश देते हैं या अन्य उपाय करते हैं।

4. उद्देश्य निहित प्रबन्ध में कार्य-परिणामों के विचलनों को तत्काल दूर करना कठिन होता है, जबकि अपवाद निहित प्रवन्ध में प्रबन्धक विचलनों को तत्काल दूर कर सकते हैं।

5.9 सार संक्षेप

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध (Management by Objectives) एक आधुनिक प्रबंधन दृष्टिकोण है, जो संगठन के सभी स्तरों पर लक्ष्य निर्धारण और उनके

मूल्यांकन पर आधारित है। यह प्रबन्धकीय प्रक्रियाओं को संरचित और उद्देश्यपूर्ण बनाता है। इसके मुख्य लक्षण हैंस्पष्ट उद्देश्यों का निर्धारण :, संगठन के सभी स्तरों में भागीदारी, और परिणामों का मूल्यांकन। हालांकि, इस दृष्टिकोण में कई सीमाएँ हैं, जैसे व्यक्तिगत लक्ष्यों और संगठनात्मक उद्देश्यों का असंगत होना। इसे प्रभावी बनाने के लिए स्पष्ट संचार, उपयुक्त प्रशिक्षण, और मापने योग्य लक्ष्यों का निर्धारण आवश्यक है। अपवाद द्वारा प्रबन्ध (Management by Exception) एक पूरक दृष्टिकोण है, जो केवल असामान्य स्थितियों पर ध्यान केंद्रित करता है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. लक्ष्यों का निर्धारण
   B. संसाधनों का प्रबंधन
   C. कार्य निष्पादन का मूल्यांकन
   D. उपरोक्त सभी

2. अपवाद द्वारा प्रबन्ध का मुख्य ध्यान किस पर होता है?
   A. सामान्य कार्य
   B. असामान्य स्थितियाँ
   C. लक्ष्य निर्धारण
   D. प्रबंधन प्रक्रिया

3. 'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' की प्रक्रिया में ________ का निर्धारण आवश्यक है।

4. अपवाद द्वारा प्रबन्ध में केवल ________ स्थितियों पर ध्यान दिया जाता है।

5.10 मुख्य शब्द

1. **उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध (Management by Objectives)**: प्रबंधन का एक दृष्टिकोण जिसमें लक्ष्य निर्धारण और मूल्यांकन पर ध्यान दिया जाता है।

2. **लक्ष्य (Goals)**: संगठनात्मक और व्यक्तिगत उद्देश्यों का निर्धारण।

3. **प्रकिया (Process)**: लक्ष्य निर्धारण, योजना, निष्पादन और मूल्यांकन।

4. **सीमाएँ (Limitations)**: उद्देश्यों और साधनों के बीच असंगति।

5. **अपवाद द्वारा प्रबन्ध (Management by Exception)**: केवल असामान्य स्थितियों पर ध्यान केंद्रित करना।

6. **भागीदारी (Participation)**: सभी स्तरों के प्रबन्धकों की सहभागिता।

7. **मूल्यांकन (Evaluation)**: लक्ष्य प्राप्ति का नियमित मूल्यांकन।

8. **प्रभावशीलता (Effectiveness)**: संगठन के प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए सुझाव।

9.11 स्वप्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: D,

उत्तर 2: B,

उत्तर 3: स्पष्ट लक्ष्य,

उत्तर 4: असामान्य

5.12 संदर्भ

Drucker, P. F. (2018). Management By Objectives And Self-Control. *HarperBusiness.*

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). MANAGEMENT. *Pearson Education.*

Gupta, C. B. (2021). Management: Theory And Practice. *Sultan Chand & Sons.*

Mintzberg, H. (2022). Managing The Myths Of Management. *Berrett-Koehler Publishers.*

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). Management: Concepts, Practice & Cases. *McGraw Hill Education.*

Sharma, R. K. (2021). Principles And Practices Of Management. *Kalyani Publishers.*

5.12 अभ्यास प्रश्न

1. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की अवधारणा से आपका क्या आशय है? इसकी प्रमुख विशेषताओं को समझाइए।

2. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध पर एक टिप्पणी लिखिए।

3. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की विवेचना कीजिए।

4. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध क्या है? इसको प्रभावी बनाने के लिए आपके क्या सुझाव है?

5. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध क्या है? इसकी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

6.उद्देश्यों द्वारा प्रबंध क्या है? इसके लाभ एवं सीमाएँ बताइर तथा आवश्यक सुझाव दीजिए।

7. एम.बी.ओ. (उद्देश्य निहित प्रबन्ध) क्या है? एक प्रबन्धक द्वारा किसी संगठन में इसका कैसे प्रयोग किया जाता है?

8. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध क्या है? इसके लाभ एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई -6

निर्णयन : अवधारणा एवं प्रक्रिया

(DECISION-MAKING: CONCEPT AND PROCESS)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 निर्णयन की अवधारणाएँ
6.4 निर्णयन की परिभाषाएँ
6.5 निर्णयन के लक्षण या विशेषताएँ
6.6 निर्णयन की प्रकृति
6.7 निर्णयन के तत्व/घटक
6.8 निर्णयन के सिद्धान्त
6.9 निर्णयन का महत्व
6.10 निर्णयन की तकनीकें अथवा विधियाँ
6.11 सार संक्षेप
6.12 मुख्य शब्द
6.13 संदर्भ
6.14 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

निर्णयन प्रबन्ध का हृदय होता है, एक प्रबन्धक अपनी समस्त गतिविधियाँ एवं कार्य निर्णयन के द्वारा ही करत है। वह सतत् निर्णयन प्रक्रिया के साथ संलग्न रहता है। चाहे वह लक्ष्यों का निर्धारण करता है, योजना तैयार करता।

व्यूह रचना जमाता है, नीति निर्धारण एवं प्रक्रिया का निर्धारण करता है अथवा कर्मचारियों की भर्ती, चयन एवं नियुत्ि करता है वह केवल निर्णयन द्वारा ही ये सभी कार्य का पाता है। इस प्रकार निर्णयन समस्त प्रवन्धकीय क्रियाओं क आधार है। प्रसिद्ध प्रबन्ध शास्त्री पीटर एफ. ड्रकर ने कहा है कि "एक प्रवन्धक जो कुछ भी करता है वह निर्णयन वे द्वारा ही करता है।"

निर्णयन का आशय (Meaning of Decision-making)- निर्णयन के विभिन्न पक्षों की व्याख्या करने वे पूर्व निर्णय शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। निर्णय (Decision) शब्द की उत्पत्ति लेटिन शब्द 'decides' से हु है, जिसका शाब्दिक अर्थ काटना होता है। इस प्रकार निर्णय उन विकल्पों जो वांछित होते हैं एवं उन विकल्पों जे अवांछित होते हैं, के मध्य काटने का काम करता है। व्यावहारिक रूप में निर्णय विभिन्न विकल्पों में से सर्वाधिक उपयुत्त विकल्प का चयन करना है। किसी भी व्यवसाय अथवा उद्योग में आरम्भ से लेकर अन्त तक अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं, यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने प्रबन्ध को निर्णय लेने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। ड्रुकर ने कहा है कि "निर्णय विभिन्न विकल्पों के मध्य चयन करता है।"

अतः अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना निर्णय होता है एवं इस प्रकार की चिन्तन अवस्था व मस्तिष्क में पनप रही निर्णय पूर्व को प्रक्रिया को ही 'निर्णयन' (Decision Making) कहा जाता है। निर्णयन कई बार प्रत्युत्पन्नमति के द्वारा भी विकसित होता है एवं निर्णयन के दौरान हो सकता है कि आपको अपने मूल उद्देश्य को स्थगित करके द्वितीयक लक्ष्य को प्राथमिकता देनी पड़े। इस प्राथमिकता बदल क्रिया के कारण भविष्य की योजना प्रभावित होती है एवं भावी सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है। इस सन्दर्भ में हमारे महान् ग्रंथ "रामायण" का यह प्रसंग उल्लेखनीय है- "दृश्य है, सीताहरण के बाद श्रीराम-लक्ष्मण, सुग्रीव एवं उनकी वानर सेना से मिलकर बाली को मारते हैं तथा सुभीव को राजपाट सौंपने के बाद सीताजी को खोजने

की प्राथमिक जिम्मेदारी हनुमान जी सहित कई लोगों को दी जाती है। अपनी यही जिम्मेदारी निभाने हनुमान जी अशोक वाटिका पहुँच जाते हैं तथा सीताजी को देख लेते हैं अर्थात् 'सीता का पता लगाने का प्रथम एवं मूल लक्ष्य पूरा कर लेते हैं, लेकिन जब वे सीताजी को देखते हैं तब सीताजी अपनी देहत्याग की व्यवस्था में लगी होती हैं। इसी स्थिति में हनुमानजी अपने मूल लक्ष्य को स्थगित करते हैं अर्थात् सीता की खोज की जानकारी देने जाना रोकते हैं क्योंकि यदि वे चले जाते व श्रीराम को सूचना देते तब तक हो सकता था कि सीताजी अपनी देहत्याग देतीं। हनुमान जी उस पेड़ पर बैठे-बैठे ही दूसरा (द्वितीयक) किन्तु अति महत्वपूर्ण लक्ष्य (सीता को बचाना) पर चिन्तन शुरू करते हैं- बस यहीं से निर्णयन प्रक्रिया (Decision-Making) आरम्भ होती है। उनके सामने कई विकल्प होते हैं

● प्रथम वे पेड़ पर से कूद जाएँ व बता दें कि वे श्रीराम के दूत हैं व आपको खोजने श्रीरामजी के कहने पर यहाँ आये हैं, लेकिन इस पर वे भरोसा कैसे करेंगी?

• दूसरा - अपना भेष बदलकर साधु-सन्त के रूप में उनके व उन्हें श्रीराम के आने का विश्वास दिलायें, लेकिन इस पर तो और भी अधिक अविश्वास होगा क्योंकि इसी भेष के द्वारा वे पूर्व में रावण द्वारा ठगी गई हैं?

• तीसरा - वे अपनी वास्तविक शक्ति का प्रदर्शन करके उन्हें सीधे रामजी के पास ही ले जाएँ, लेकिन इससे उनके स्वामी श्रीराम का मुख्य लक्ष्य ही अधूरा रह जाएगा?

• चौथा - अति सूक्ष्म वानररूप में प्रकट हों तथा अयोध्या के आसपास की बोली (भाषा) में श्रीराम का गुणगान करें जिससे सीताजी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो तथा वे अपने रामभक्त होने का प्रमाण दे सकें।

80

ऐसे और कई विकल्प हनुमानजी के मस्तिष्क में बन रहे थे, लेकिन उन्होंने इस चौथे विकल्प को श्रेष्ठ माना तथा अपनी प्रत्युत्पन्नमति से इसका त्वरित

चयन किया व इस दूसरे महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न किया, बस यही विकल्पों की खोज, चयन एवं सर्वश्रेष्ठ विकल्प पर आधारित निर्णय लेना निर्णयन' कहा जाता है।"

इस प्रकार निर्णयन, प्रवन्ध के मस्तिष्क में उपजने वाले निर्णय जिसे वह उस समय श्रेष्ठ समझता हो, को ही माना जाता है, चाहे भले ही बाद में वह यदाकदा गलत साबित हो जाए।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

निर्णय लेने की अवधारणाओं और परिभाषाओं को समझ सकें।

निर्णय लेने की प्रक्रिया और तकनीकों का विश्लेषण कर सकें।

निर्णय लेने के सिद्धांतों और तत्वों का अध्ययन कर उनके महत्व को समझ सकें।

निर्णय लेने की विधियों को व्यावहारिक दृष्टिकोण से समझ सकें।

6.3 निर्णयन की अवधारणाएँ (Concepts of Decision-making)

निर्णयन कोई तथ्य या विषयवस्तु न होकर एक प्रक्रिया के रूप में जाना एवं माना जाता है। अतः इसे प्रक्रिया के रूप में ही सहज मान्यता मिली है लेकिन प्रवन्धशास्त्र के नियंताओं ने अपनी पृथक-पृथक राय इसके बारे में कायम की थी जो विभिन्न अवधारणाओं के रूप में परिलक्षित हुई। इनमें से कुछ प्रमुख अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं:

1. **मानसिक प्रक्रिया अवधारणा** (Mental Process Concept)- इस विचार के जनक प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री प्रो. जी.एल.एस. शेकल थे। उनके अनुसार 'निर्णयन' एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें निर्णय लेने वाला अपने मस्तिष्क

का उपयोग करके विवेकपूर्ण एवं तर्कसंगत निर्णय लेता है। यह सर्वथा उचित एवं प्रासंगिक विचार है क्योंकि विकल्पों की खोज, चयन एवं त्वरित निष्कर्ष निकालना जैसी समस्त क्रियाएँ मस्तिष्क से ही संचालित की जाती हैं।

2. **चयन अवधारणा** (Selection Concept)- आरम्भिक तौर पर कूण्ट्ज एवं ओडोनेल, मैकफारलैण्ड आदि
विद्वानों ने निर्णयन को केवल चयन प्रक्रिया तक ही सीमित किया था। उनके अनुसार जब निर्णयन प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो उसकी प्रथम एवं मुख्य कड़ी विभिन्न विकल्पों के मध्य तुलना करके श्रेष्ठ विकल्प का चयन करना होती है। अतः समस्याओं के समाधान हेतु प्रबन्धक वर्ग इस चयन के द्वारा ही अपने लक्ष्यों को पूर्ण करते हैं।

3. **समस्या निवारण अवधारणा** (Problem Solving Concept)- यह एक स्वाभाविक सत्य है कि कोई भी निर्णय किया क्यों जाता है, क्योंकि कोई समस्या होती है एवं इसका समाधान करने के लिए निर्णयन प्रक्रिया का उपयोग - ही श्रेष्ठ हल हो सकता है। अतः समस्या निवारण अवधारणा भी मुख्य रूप से निर्णयन के लक्ष्यों को उभारती है। यदि कोई समस्या नहीं है तो निर्णयन का प्रश्न ही नहीं उठता है।

4. **सतत् प्रक्रिया अवधारणा** (Continuity Process Concept)- निर्णयन कोई इस प्रकार का कार्य नहीं
होता कि काम पूरा हुआ एवं निर्णयन पूरा हुआ, यह तो एक सतत् चलने वाले प्रक्रिया होती है। बहुधा यह समझ लिया जाता है कि श्रेष्ठ विकल्प का चयन करके निर्णयन समाप्त हो जाता है। यह समझना भ्रांति है क्योंकि श्रेष्ठ का चयन करके अपने संगठन को कार्य पर लगा देता है, पूँजी की व्यवस्था करता है, श्रम को अभिप्रेरित करता है, लाभार्जन यद्यपि मुख्य लक्ष्य है फिर भी सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है, मानव संसाधनों का विकास एवं पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दों पर भी चिन्तन मनन करना प्रबन्धकीय निर्णयन

प्रक्रिया में समाहित किये जाते हैं। अतः निर्णयन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होती है।

5. **उद्देश्यात्मक अवधारणा** (Objective Concept)- कोई व्यक्ति किसी भी कार्य को हमेशा किसी उद्देश्य के लिए ही करता है तो प्रबन्ध तो कोई कार्य निरुद्देश्य कर ही नहीं सकता। निर्णयन प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य लक्ष्य निर्धारण को ध्यान में रखकर उस तक पहुँचने के उपाय ढूँढ़ना, विकल्प प्रस्तुत करना आदि होता है। सामान्यतया निर्णयन का उद्देश्य सकारात्मक होता है लेकिन कभी-कभी उद्देश्य नकारात्मक भी हो सकते हैं।

6. **चैतन्य मानवीय क्रिया अवधारणा** (Conscious Human Activity Concept)- नियोजन करके लक्ष्य तक पहुँचना है तो एक बार उस लक्ष्य प्राप्ति का नियोजन जड़ हो सकता है लेकिन निर्णयन तो व्यक्ति, उद्यमी एवं प्रबन्धक की मानसिक क्रिया से किया जाता है अतः इसमें उन्हें सदैव चैतन्य अवस्था में ही रहना होता है। यदि ये जड़ हुए तो व्यवसाय भी जड़ हो जायेगा एवं निर्णयन दिशाहीन हो जाएगा। अतः निर्णयन एक चैतन्य क्रिया होती है।

7. **वचनबद्धता की अवधारणा** (Commitment Concept)- जब भी प्रबन्ध या प्रशासन कोई निर्णय लेता है तब वह उस निर्णयानुसार कार्य सम्पन्न करने के लिए वचनबद्ध होता है अर्थात् यह वचनबद्धता उसे लक्ष्य पूर्ण होने तक निभानी होती है। निर्णयन के पश्चात् निर्णय लेने वाला वचनबद्ध हो जाता है जिसे वह पूर्ण करने या कराने हेतु बाध्य होता है। यह अवधारणा निर्णयकर्ता को उत्तरदायित्व की भावना से बद्ध करती है।

8. **सर्वव्यापकता की अवधारणा** (Universality Concept)- प्रबन्ध किसी भी स्तर का हो चाहे वह शीर्ष प्रबन्ध हो या मध्य अथवा निम्न प्रबन्ध उसे कोई न निर्णय अवश्य लेना पड़ता है अतः निर्णयन प्रबन्ध की मूल आधारशिला है। यह न केवल उद्योग, प्रबन्ध एवं प्रशासन तक बल्कि प्रत्येक व्यक्ति, समाज

एवं हर एक घटक निर्णयन से प्रभावित होता है अतः निर्णयन एक सर्वव्याप्त विचार एवं अवधारणा है।

6.4 निर्णयन की परिभाषाएँ (Definitions of Decision-making)

यह निःसन्देह सत्य है कि निर्णयन कोई तथ्य या विषयवस्तु न होकर एक मानसिक प्रक्रिया एवं सतत् गतिर्वाि होती है इसलिए इसे परिभाषित करना भी अत्यन्त जटिल कार्य है लेकिन कुछ विद्वानों ने निर्णयन को अपने तरीके परिभाषित किया है जो निम्न प्रकार से है:

1. **वेव्सटर शब्द** कोष के अनुसार "निर्णयन का अर्थ किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क में किसी सम्मति अथव कार्यवाही के तरीके के निर्धारण से लगाया जाता है।"

2. **कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के अनुसार, "निर्णयन किसी क्रिया को करने के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का वास्तविक चयन नियोजन का अन्तर्भाग होता है।"

3. अर्नेस्ट डेल के अनुसार, "प्रबंधकीय निर्णय वे निर्णय होते हैं जो सदैव सही प्रबन्धकीय क्रियाओं यथ नियोजन, संगठन, कर्मचारियों की भर्ती, निर्देशन, नियन्त्रण, नव-प्रवर्तन और प्रतिनिधित्व में से किसी एक के दौरान लिये जाते हैं।"

4. **जार्ज आर. टैरी** के अनुसार, "निर्णयन किसी मापदण्ड के आधार पर दो अथवा दो से अधिक सम्भावित विकल्पों में से किसी एक का चुनाव करना होता है।"

5. **मैक-फारलैण्ड** के अनुसार, "निर्णयन एक चयन प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक अधिशाषी दी हुई परिस्थिति में, क्या किया जाना है, के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। निर्णय किसी व्यवहार का प्रतिनिधित्व करता है जिसका चयन अनेक सम्भावित विकल्पों में से किया जाता है।"

6. **प्रो. जी.एल.एस. शेकल** के अनुसार, "निर्णयन रचनात्मक मानसिक क्रिया का वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ कार्यपूर्ति के लिए ज्ञान, विचार, भावना तथा कल्पना का संयोग होता है।"

7. **एलन** के अनुसार, "निर्णयन वह कार्य है जिसे एक प्रबन्धक किसी निष्कर्ष तथा फैसले पर पहुँचने के पूर्व करता है !"

8. **फेलिक्स लॉपेज** के अनुसार, "निर्णय एक फैसले, विभिन्न विरोधाभासी आवश्यकताओं, संसाधनों एवं उद्देश्यों के पृथक्करण एवं अनिश्चितता, जटिलता अथवा यहाँ तक कि अविवेकपूर्णता की स्थिति में किसी कार्य के प्रति वचनबद्धता को इंगित करता है।"

6.5 निर्णयन के लक्षण या विशेषताएँ (Essentials or Characteristics of Decision-making)

विवेकपूर्ण निर्णय लेने के लिये आवश्यक होता है कि निर्णय की विशेषताओं को उनके सही अर्थों एवं सन्दर्भों में जाना जाये। एक निर्णय में मुख्य रूप से निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं:

(2) **निर्णयन सर्वोत्तम चयनित विकल्प है** (Decision-making is a Best Selected Alternative)-- निर्णय लेते समय प्रबन्धक के सामने विभिन्न विकल्प होते हैं। उन विकल्पों का उनकी उपादेयता एवं उनसे उत्पन्न होने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में तुलनात्मक विश्लेषण करना होता है और अधिक लाभों तथा सपरिणामों की उपलब्धि कराने वाले या कम से कम नुकसान वाले विकल्प का चयन किया जाता है। अतएव निर्णय चुना गया एक सर्वोत्तम विकल्प होता है जो या तो अधिक लाभ प्रदान करने वाला या कम से कम हानिकारक होता है।

(3) **निर्णयन सकारात्मक एवं नकारात्मक हो सकता है** (Decision-making might be Positive and Negative) - लिये जाने वाले निर्णयों का सदैव ही धनात्मक अर्थात् सकारात्मक होना जरूरी नहीं है। वे नकारात्मक भी हो सकते

हैं। किसी कार्य को करने या योजना को लागू करने का निर्णय सकारात्मक होता है और उसी कार्य को न करने या योजना को लागू न करने का निर्णय नकारात्मक होता है। कई बार नकारात्मक निर्णय भी संस्था की भलाई के लिए लेने पड़ते हैं।

(4) **निर्णयन साधन या साध्य या दोनों से सम्बन्धित होता है** (Decision-making may relate to theEnd or Means or Both) निर्णय का सम्बन्ध साधन-साध्य दोनों से हो सकता है। कुछ परिस्थितियों में निर्णय साधन का कार्य करता है और कुछ परिस्थितियों में साध्य का। जिन परिस्थितियों में उद्देश्य दिया होता है और उनकी पूर्ति के तरीकों को मालूम करना होता है तो उनमें निर्णय साधन का काम करता और कई बार निर्णयन का सम्बन्ध साधन एवं साध्य दोनों से ही हो सकता है।

(5) **निर्णयन अधिकार दर्शाता है** (Decision-making Shows Rights)- निर्णय लेना यह दर्शाता है कि निर्णयकर्ता के पास निर्णय लेने के लिए पर्याप्त अधिकार हैं। किसी संगठन के अधिकारों के भारार्पण के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि किस व्यक्ति द्वारा किस प्रकार का निर्णय लिया जा सकता है।

(6) **निर्णयन संकल्प का प्रतीक होता है** (Decision Making is an Indicator of a Commitment)- प्रबन्ध द्वारा किसी भी प्रकार का निर्णय लिया गया हो, वह उसके प्रति दृढ़ संकल्प का द्योतक होता है जिसके क्रियान्वयन हेतु सामूहिक या वैयक्तिक प्रयत्न करने होते हैं।

(7) **विशेषज्ञों का परामर्श** (Advice of Specialists) यदि प्रबन्ध या प्रशासन किसी जटिल समस्या के निर्णयन में कोई असहजता या कठिनाई पाते हैं तो वे सम्बन्धित विषय के विशेषज्ञों से परामर्श भी ले सकते हैं।

(8) **समय तत्व** (Time Factor)- निर्णयन में समय तत्व का बड़ा महत्व होता है क्योंकि समयानुकूल निर्णय ही प्रबन्ध को लक्ष्यों तक पहुँचाने में मदद करते

हैं। यदि समय से पूर्व या पश्चात् निर्णय लिये जाते हैं तो वे सदैव नकारात्मक ही होंगे।

इस प्रकार निर्णयन में उपर्युक्त लक्षण या विशेषताएँ सदैव विद्यमान रहती हैं।

6.6 निर्णयन की प्रकृति (Nature of Decision Making)

निर्णयन प्रायः किसी नीति, नियम, आदेश अथवा निर्देश के रूप में व्यक्त होता है। कभी-कभी निर्णय किसी कार्य को न करने या कार्य को विलम्ब से करने के रूप में व्यक्त हो सकता है। इस प्रकार निर्णयन की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताएँ महत्वपूर्ण हैं:

1. सतत् जारी रहने वाली प्रक्रिया (Continuous Process) प्रत्येक निर्णय भूत, वर्तमान एवं भावी घटनाओं से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित रहता है। वास्तव में निर्णय सतत् जारी रहने वाली प्रक्रिया है।

निर्णयन निरन्तर प्रक्रिया होने के कारण इसके किसी न किसी तत्व पर विचार हर समय होता रहता है, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि हर समय इन विचारों को निर्णय के रूप में परिवर्तित किया जाए। उदाहरणार्थ, निर्णय के लिए विकल्पों की खोज निरन्तर होती रहती है। इन विकल्पों का विश्लेषण एवं प्रयोग उस समय होता है जब निर्णय लेने की आवश्यकता होती है।

2. मूल्यांकन (Evaluation)- निर्णय में मूल्यांकन इसलिए करना पड़ता है, क्योंकि उपलब्ध विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव करना पड़ता है तथा निर्णय के परिणाम का भूल्यांकन करके अपेक्षित परिणामों से उसकी तुलना करनी पड़ती है।

3. **विवेकशीलता** (Rationality)- निर्णय हमेशा विवेकशीलता का प्रतीक होता है। निर्णय मनुष्य सकता है। मनुष्य के निर्णय हमेशा विवेक पर आधारित होने चाहिए। निर्णय हमेशा विचार-विमर्श, चिन्तन त पर आधारित होते हैं।

4. **वचनबद्धता** (Commitment)- निर्णय लेने वाला जब कोई निर्णय ले लेता है, तो उसे अपनी सभी योजना तथा कार्य उसी के अनुरूप करने पड़ते हैं। इस प्रकार निणय में वचनवद्धता होती है।

5. **प्रवन्ध प्रक्रिया का एक भाग** (Part of Management Process) कुछ विद्वानों ने निर्णयन को प्रबंः प्रक्रिया के बराबर या निर्णयन को ही प्रबंध प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार प्रबंध प्रक्रिया सूचनाओं को कार्य के रूमें परिणत करती है और यह परिणिति प्रक्रिया ही निर्णयन है, किन्तु यह तथ्य भ्रामक है क्योंकि निर्णयन के अतिरि प्रबन्धक अन्य बहुत से कार्य करते हैं। इस प्रकार निर्णयन नियोजन का मूल है किन्तु प्रबंध के अन्य कार्यों जैसे संगठन नियुक्ति, निर्देशन या नियंत्रण का मूल नहीं है। इस प्रकार निर्णयन को प्रबंध प्रक्रिया के एक भाग में लेना उचित है। 6. उद्देश्योन्मुख (Goal-Oriented)- निर्णयन उद्देश्योन्मुख प्रकिया है। इसका अर्थ यह है कि एक निर्ण द्वारा निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। निर्णयन में उद्देश्य उन्मुखता की विद्यमानता यह इंगित करतं है कि निर्णय लेने के पहले यह निर्धारित कर लिया जाए कि किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्णय लिया जाना है इससे निर्णयन प्रक्रिया अधिक प्रभावशाली होती है।

7. **विकल्यों की विद्यमानता** (Existence of Alternatives)- निर्णयन प्रक्रिया में विकल्पों की विद्यमानतआवश्यक है, क्योंकि इन्हीं के आधार पर निर्णय लिया जाता है। विकल्पों की विद्यमानता यह इंगित करती है कि समस्य का समाधान एक से अधिक विधियों द्वारा किया जा सकता है तथा वही विधि सर्वश्रेष्ठ होती है जिसके द्वारा निर्णय रे सम्बन्धित उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। समस्या के समाधान के लिए यदि एक से अधिक विकल्प नहीं हैं तो निर्णय का कोई औचित्य ही नहीं है।

8. **'निर्णयन' निर्णय नहीं है** (Decision-making is not a Decision)- निर्णयन स्वयं निर्णय नहीं, बत्यि निर्णय का लिया जाना है। निर्णय लेने की

प्रकृति तथा प्रक्रिया को निर्णयन कहा जाता है। निर्णयन का अर्थ तो 'फैसले (Judgement) से होता है। इसे विकल्पों के मध्य एक चयन, प्राथमिकता या पसन्दगी (Choice) कहा गया है किन्तु इस चयन तक पहुँचना, प्राथमिकता का निर्धारण करना या पसन्दगी को सुनिश्चित करने का कार्य निर्णयन कहलात है।

6.7 निर्णयन के तत्व/घटक (Elements/Factors of Decision-making)

किसी भी प्रकार की निर्णयन प्रक्रिया हो, उसमें कई तत्वों एवं घटकों का समावेश रहता है विनके कारण निर्णयन क्रिया प्रभावित होती है। वैसे तो कई प्रकार के तत्व निर्णयन में शामिल रहते हैं लेकिन उनमें से निम्न महत्वपूर्ण हैं:

1. **व्यक्तिगत तत्व** (Personal Elements)- निर्णयन में परिस्थितिजन्य तत्वों के साथ ही साथ निर्णयकर्ता की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का भी प्रभाव पड़ता है। निर्णयकर्ता का व्यक्तितत्व, उसकी विचार क्षमता तथा निर्णय दक्षता उसके नैतिक मूल्य एवं उसकी आकांक्षाएँ निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार एक ही परिस्थिति में एक कार्य के बारे में एक ही समय पर दो निर्णयकर्ताओं के निर्णय अलग-अलग हो सकते हैं।

2. **वातावरण** (Environment) निर्णय की प्रकृति के अनुसार इसके वातावरण अलग-अलग हो सकते हैं। यदि निर्णय कम महत्व का है और उसका प्रभाव संगठन के एक छोटे भाग पर पड़ता है तो निर्णय संगठन की आन्तरिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लिया जाता है। निर्णय यदि महत्वपूर्ण है और संगठन के अधिक भाग को प्रभावित करता है तो ऐसा निर्णय प्रायः बाहय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लिया जाता है। इन बाहय परिस्थितियों में आर्थिक राजनैतिक, विधिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं।

3. **परिस्थितिक तत्व** (Conditional Elements) निर्णय उपलब्ध परिस्थितियों के अनुसार लिए जाते हैं। घटनाओं के पूर्वानुमान की दृष्टि से ये परिस्थितियाँ निश्चित तत्व (certainity), जोखिम (risk) एवं अनिश्चितता (uncertainity) के रूप में परिभाषित की आती हैं। निश्चितता की परिस्थिति में निर्णय लेने में अधिक कठिनाई नहीं होती है। जोखित परिस्थिति में विभिन्न विकल्पों के परिणाम का ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं होता है, बल्कि इसके सम्बन्ध में केवल सम्भावनाएँ व्यक्त की जा सकती हैं। उस सम्भावनाओं के आधार पर निर्णय लिया जाता है। अनिश्चितता की स्थिति में विकल्पों की पहचान तो की जा सकती है किन्तु उनके परिणामों एवं सम्भावनाओं के विषय में ज्ञान नहीं रहता है। इस स्थिति में निर्णय लेना काफी कठिन हो जाता है।

4. **भागीदारी** (Participation)- संगठन में निर्णय प्रायः एक वर्ग द्वारा लिया जाता है तथा उसका क्रियान्वयन अन्य वर्गों द्वारा होता है। अतः इस प्रकार के निर्णय के क्रियान्वयन में अनेक बाधाएँ आती हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए उचित यह है कि निर्णयन प्रक्रिया में उन पक्षों को भागीदार बनाया जाए जो किसी निर्णय से प्रभावित होते हैं। संगठन में भागीदारी प्रबंध प्रणाली (Participative Management System) द्वारा यह भागीदारी हो सकती है।

5.**सम्प्रेषण** (Communication)- निर्णय के पश्चात् उसका उचित सम्प्रेषण आवश्यक है जिससे उसका क्रियान्वयन भली-भाँति हो सके। सम्प्रेषण एवं क्रियान्वयन के अभाव में एक निर्णय केवल मानसिक प्रक्रिया का एक रूप मात्र ही होता है, जिसका अपने आप में कोई महत्व नहीं होता है। अतः निर्णयों का उचित सम्मेषण क्रियान्यवर को दृष्टि से आवश्यक है।

6. **अधिकार** (Authority)- एक निर्णयकर्ता उन विषयों पर निर्णय नहीं ले सकता जिसके लिए उसके पास अधिकार नहीं है। विभिन्न प्रबंधकों के निर्णयन अधिकार संगठन संरचना की स्थापना एवं अधिकारों के भारार्पण के द्वारा

निर्धारित होते हैं। इस प्रकार प्रबंधक केवल उन विषयों पर ही निर्णय ले सकते हैं जो उनके कार्य क्षेत्र में आते हैं।

7. **निर्णयन का समय** (Time of Decision-making)- समय एवं निर्णय को किस प्रकार सम्बन्धित किया जाए इसके संदर्भ में विचारकों का कहना है कि समय पर निर्णय लेना आवश्यक है यद्यपि समय की सीमितता के कारण त्रुटिपूर्ण निर्णय भी हो सकते हैं। निर्णय में इन त्रुटियों को निर्णयकर्ता के पास दूर करने का अवसर रहता है क्योंकि निर्णय समयानुसार हुआ है। अतः निर्णयन के लिए समय तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक होता है।

8. **व्यावहारिकता का तत्व** (Element of Practicability)-- निर्णय में व्यावहारिक तत्व का होना आवश्यक है ताकि उसे सरलता से लागू किया जा सके। एक बहुत ही अच्छा निर्णय, जो व्यावहारिकता पर आधारित नहीं है, निष्फल हो जाता है। निर्णय में व्यावहारिकता लाने के लिए उन परिस्थितियों का ध्यान रखना आवश्यक है जिनमें निर्णय लागू करना है। निर्णयन में व्यावहारिकता तत्त्व का होना नितान्त आवश्यक है।

6.8 निर्णयन के सिद्धान्त (Principles of Decision-making)

निर्णयन प्रक्रिया का पालन करते समय कुछ आधारभूत पथ-प्रदर्शक तत्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इन्हीं को निर्णयन के सिद्धान्त कहा गया है। इन सिद्धान्तों का विकास प्रबन्धविदों के वर्षों के अनुभव, अन्वेषण एवं अध्ययन से सम्भव हो सका है। निर्णयन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नानुसार है-

1. **उचित मानवीय व्यवहार का सिद्धान्त** (Principle of Reasonable Human Behaviour)- मानव व्यवहार के बारे में निश्चिततापूर्वक पूर्वानुमान बड़ा कठिन है। अलग-अलग व्यक्ति अपने-अपने परिवेश और विचारों के अनुसार समान परिस्थितियों में भिन्न प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। इन जटिलताओं और दुर्वलताओं के बावजूद सामान्यतः किसी व्यक्ति के व्यवहार के बारे में एक सीमा तक अनुमान लगाया जा सकता है तथा दण्ड और

पुरस्कार की प्रतिक्रियाओं को ज्ञात किया जा सकता है। प्रवन्वविदों की मान्यता है कि सामान्यतः किसी विशेष प्रकार के मानवीय व्यवहार के कुछ विशेष कारण होते हैं। दूसरे शब्दों में, मानवीय व्यवहार के आधारों को समझकर उसके बारे में एक सीमा तक पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

2. **व्यक्तिगत स्वार्थ का सिद्धान्त** (Principle of Individual Self Interest) प्रत्येक व्यक्ति एक बड़ी सीमा तक संस्था की बातों को अपनी दृष्टि से देखता है। सामान्यतः व्यक्ति स्वार्थी होता है। स्वार्थ का प्रकटीकरण व्यक्ति के विचारों के अनुसार होता है। प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण, आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ, विचार आदि अलग-अलग होते है, जिनकी संतुष्टि का प्रयास वह अपने ढंग से करता रहता है।

अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग प्रकार की प्रेरणाओं द्वारा उत्साहित किया जा सकता है, परन्तु बिना प्रेरणाओं के उनका मनोबल उन्नत करना सम्भव नहीं है। प्रवन्धकों को कर्मचारियों के स्वार्थों और हितों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

3. **सीमित घटकों का सिद्धान्त** (Principle of Limiting Factors)- निर्णयन में सीमित घटकों का सिद्धान्त यह इंगित करता है कि निर्णयकर्ता उन घटकों को ध्यान में रखे जो निर्णय के क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं। इन घटकों में संगठन के विभिन्न आन्तरिक एवं बाहय घटक सम्मिलित हैं। इन घटकों को एक विशेषता यह है कि ये परिवर्तनशील होते हैं। अतः एक समय में एक घटक निर्णय के क्रियान्वयन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है किन्तु कुछ समय बाद उस घटक की प्रतिकूलता समाप्त हो सकती है। उदाहरणार्थ, किसी संगठन की प्रारम्भिक अवस्था में वित्तीय साधन सीमित घटक के रूप में हो सकते हैं, किन्तु बाद में इनकी सीमितता कम हो सकती है। अतः निर्णयन प्रक्रिया में सीमित घटक सिद्धान्त का प्रयोग करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है।

4. **अनुपात का सिद्धान्त** (Principle of Proportion) निर्णयन में अनुपात का सिद्धान्त यह इंगित करता है कि विभिन्न संसाधनों के की मात्रा सीमित है एवं उनका प्रयोग विभिन्न विकल्पों में किया जा सकता है। अतः संसाधनों का प्रयोग इस प्रकार किया जाए कि विभिन्न विकल्पों में उनका उपयोग अनुकूलतम हो। संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संसाधनों का आवंटन विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार किया जाए कि वे निर्दिष्ट क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुरूप हों।

5. **प्रतिबन्धक घटक का सिद्धान्त** (Principle of Prohibited Factors) प्रतिबन्धक पत्र निर्णयन प्रक्रिया के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त है कि यह घटक समस्य का मूलाधार होता है। इसके अभाव या परिवर्तन की दशा में समस्या वैसी नहीं रहती जैसी कि वर्तमान में होती है यदि प्रतिबन्धक घटक को पहचाना जा चुका है, दो निर्णय सही होगा अन्यथा निर्णय दोषपूर्ण होगा। निर्णय लेते समर प्रतिबन्धक घटक पर केन्द्रीय दृष्टि रहना जरूरी है।

6. **गतिशीलता का सिद्धान्त** (Principle of Dynamics)- परिवर्तन जीवन का नियम है। समय के साथ आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी आदि सभी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव संस्थ के उद्देश्यों, संगठन, कर्मचारियों के व्यवहार, श्रमसंघों की मनोवृत्ति, शासकीय नीति, प्रतिस्पर्द्धा की दशा, उत्पादन वे स्वरूप और मात्रा आदि सभी पर पड़ता है। गतिशील परिस्थितियों की यह माँग रहती है कि पुराने निर्णय यथावर दोहराये न जाएँ, बल्कि नई परिस्थितियों के प्रकाश में सोच-विचार कर उचित निर्णय लिये जाएँ।

7. **सामयिकता का सिद्धान्त** (Principle of Timing) प्रबन्ध में समय तत्व का विशेष महत्व है। व्यवसार में अनुकूल और प्रतिकूल समय आता रहता है। जो लोग अनुकूल समय का लाभ नहीं ले पाते उन्हें पछताना पड़त है।

प्रतिस्पर्द्धियों का सामना सफलतापूर्वक करने के लिए यह आवश्यक है कि यथा समय माल बाजार में प्रस्तुत किय जाए। इसके लिए समुचित वित्त, खरीद, कर्मचारियों, विपणन आदि की व्यवस्था करना आवश्यक है। इन सभी के बारे में सही समय पर विवेकपूर्ण निर्णय लिये जाने चाहिए।

8. **अधिकतम लाभ का सिद्धान्त** (Principle of Maximum Advantage)- निर्णयन प्रक्रिया में निर्णय इस प्रकार लेना चाहिए कि उनके द्वारा अधिकतम लाभ अर्जित हो सके। अधिकतम लाभ का अर्जन दो प्रकार से हो सकत हैः प्रथम, उत्पादन लागत में कमी लाना; एवं द्वितीय, विक्रय मूल्य में वृद्धि करना। व्यवहार में इन दोनों विधियों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। इन दोनों विधियों के सम्मिश्रण द्वारा यह निर्णय लिया जा सकता है कि उत्पादन लागत को किस स्तर तक कम किया जाए और विक्रय मूल्य को किस स्तर तक बढ़ाया जाए ताकि लाभ की मात्रा अधिकतम हो। लाभ को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं मापना चाहिए, बल्कि इसके सामाजिक पक्ष पर भी बल देना चाहिए क्योंकि यदि किसी निर्णय में केवल अल्पकालीन लाभ पर बल दिया गया है और सामाजिक पक्ष को छोड़ दिया गया है तो दीर्घकालीन स्थिति में यह लाभ हानि में भी परिवर्तित हो सकता है।

6.9 निर्णयन का महत्व (Importance of Decision-making)

प्रबन्धक जो कुछ भी कार्य करते हैं वे निर्णयन के द्वारा ही करते हैं। अतः निर्णयन प्रबन्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। एक उपक्रम की सफलता उसके प्रबन्धकों द्वारा लिये गये निर्णयों की कुशलता पर निर्भर करती है। इसलिये व्यावसायिक उपक्रमों के प्रबन्ध में निर्णयन का अत्यधिक महत्त्व है। इस महत्त्व को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :

(1) **उपक्रम की नीतियों का निर्धारण** (Determination of the Policies of the Enterprise) - उपक्रम

की नीतियों का निर्धारण उच्च प्रबन्ध को करना होता। उच्च प्रबन्ध उपक्रम की सम्पूर्ण नीति तथा विभिन्न क्षेत्रीय नीतियों का निर्धारण निर्णयन द्वारा ही करता है। उपक्रम की स्थापना निश्चित उद्देश्य अथवा उद्देश्यों के लिये की जाती है। उनकी प्राप्ति के लिए विस्तृत विवरण तैयार करने होते हैं और उन विवरणों के आधार पर उपक्रम की नीतियों का निर्माण करना होता है। नीतियाँ उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए लिये गये निर्णय ही होते हैं। नौतियाँ भावी निर्णय का भी आधार होती हैं।

(2) **व्यापक क्षेत्र** (Comprehensive Area) व्यवसाय आरम्भ करने के पश्चात् उत्पादित माल को बेचने, बाजारों को ढूँढ़ने वितरण प्रणालियों का निश्चय करने, कर्मचारियों का प्रबन्ध करने, वितीय प्रबन्ध करने, आदि से सम्बन्धित मामलों में अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं। इसी प्रकार सरकारी संस्थाओं, पूर्तिकर्ताओं एवं बाहरी जगत से भी व्यावसायिक संस्थाओं को अपने सम्बन्ध बनाने पड़ते हैं और अच्छे जनसम्पर्कों के लिए भी अनेक प्रकार के निर्णयन लेने होते हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि उत्पादन, वितरण, विपणन, वित्त-प्रबन्धन, कर्मचारी प्रवन्धन, जनसम्पर्क स्थापना आदि अनेक प्रमुख क्षेत्रों में किये जाने वाले कार्यों को निर्णय लेकर ही भली प्रकार सम्पन्न किया जा सकता है।

(3) **प्रबन्धकीय कार्यों की कुंजी** (A Key to Managerial Activities)- मेकडोनेल्ड तो कोपलैण्ड से भी आगे की बात कहते हैं कि "व्यवसाय प्रवन्धक तो पेशे से ही निर्णय लेने वाला है। अनिश्चितता उसका विरोधी और उस पर विजय प्राप्ति उसका कार्य होता है....।" ये दो कथन इस बात की ओर संकेत करते हैं कि निर्णयन प्रबन्धकीय कार्यों की कुंजी है। बिना निर्णयन के प्रबन्धकीय कार्य, जैसे- नियोजन, संगठन, नियन्त्रण द समन्वय आदि पूरे नहीं किये जा सकते ।

प्रवन्ध के विभिन्न कार्यों में निर्णयन के महत्त्व को देखा जा सकता है:-

(1) नियोजन एवं निर्णयन (Planning & Decision-making)- प्रबंधक को नियोजन करते समय क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है, कहाँ करना है और किसके द्वारा किया जाना है आदि के सम्बन्ध में निर्णय लेने

1.समस्या की पहचान एवं व्याख्या (Search and Defining the Problem)- निर्णय सदैव किसी न किसी मुद्दे (Issue) पर लिया जाता है। इसे इस 'समस्या' का नाम दे सकते हैं। निर्णयन प्रक्रिया का सबसे पहल कदम यही है कि इस समस्या को ठीक ढंग से पहचाना जाए। प्रायः निर्णय लेने वाले लोग विचाराधीन समस्या के ब में स्पष्ट नहीं होते और वे अपनी विचारशक्ति का अपव्यय करते हैं।

वास्तविक समस्या का पता लगाने के लिए गहराई में जाने की आवश्यकता होती है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूर मुद्दे को पहचानना जरूरी है। कई बार एक समस्या से सम्बन्धित अनेक घटक होते हैं या यूँ कहा जाता है कि अनेर घटक मिलकर समस्या का निर्माण करते हैं। ऐसी स्थिति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक ढूँड़ा जाना चाहिए।

2. **प्रतिबन्धक घटकों की खोज** (Search of Limiting Factor)- प्रबन्धविदों ने 'प्रतिबन्धक घटव (Limiting Factor) नामक अवधारणा प्रदान की है। किसी समस्या के बीच घटक या सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल घट को ही प्रतिबन्धक घटक कहते हैं। अन्य घटक उसके अनुपूरक एवं सहयोगी घटक होते हैं। प्रतिबन्धक घटक को केन्द्री घटक के रूप में पहचाना जाना चाहिए। इसकी पहचान से समस्या की सही व्याख्या सम्भव है।

एक मोटर वाहन अन्य दृष्टियों से अच्छी स्थिति में है, फिर भी अभी वह चल नहीं सकता है। ज्ञात होता कि उसमें पेट्रोल नहीं है, परन्तु पेट्रोल तो कल भरवाया था। खोन करने पर ज्ञात होता है कि उसका पेट्रोल टैंक फूट । हुआ है। यहाँ पेट्रोल टैंक फूटा होना, एक प्रतिबन्धक घटक है।

3. **समस्या का विश्लेषण** (Analysis of the Problem)- समस्या की सही पहचान होने से अनावश्यक सूचनाओं से बचा जा सकता है। सूचनाएँ दो प्रकार की होती हैं, प्राथमिक एवं द्वितीयक। प्राथमिक सूचनाएँ संस्था द्वार ही जुटाई जाती हैं और द्वितीयक सूचनाएँ अन्य एजेन्सियों द्वारा एकत्र की जाती हैं, जिन्हें संस्था अपने उपयोग में लार्त है। समस्या जितनी छोटी होगी, विश्लेषण उतना ही सरल होगा और समस्या की गम्भीरता विश्लेषण कार्य के जटिल बनाती है।

4. **विकल्पों का विकास** (Development of Alternatives)- विकल्पों का विकास निर्णयन का बहुत ई महत्वपूर्ण भाग है। यदि सभी विकल्प न खोजे गये तो श्रेष्ठतम का चयन असम्भव है। इस हेतु केवल भूतकालीन अनुभवों और दूसरों का अनुसरण ही पर्याप्त नहीं है। कौशल, खोज, सूक्ष्म अवलोकन और प्रतिभा के द्वारा सर्वथा नये विकल्प भी विकसित किये जा सकते हैं। तेज गति से बदलते युग में नये-नये विकल्प ढूँड़े और बनाये जा सकते हैं।।

विकल्पों के विकास हेतु कुछ प्रमुख तरीके निम्नानुसार बताये जा सकते हैं-

(i) **अनुभव** (Experience)- विगत अनुभव भी अनेक वैकल्पिक मार्ग बताने में मदद करते हैं। पिछली गलतियों से सीखना भी अनुभवों में शामिल है। अनुभव एक श्रेष्ठ शिक्षक है, परन्तु उसकी अनेक सीमाएँ भी हैं। नये-नये प्रयोग भी श्रेष्ठतम हो सकते हैं। इतिहास अपने आपको हूबहू नहीं दोहराता है। अनेक महत्वपूर्ण घटक बदल जाते हैं। यदि अन्य सभी बातें स्थिर रहें तो एक सफल निर्णय दोहराया जा सकता है। परन्तु अन्य बातें तेजी से बदल जाती हैं।

(ii) परामर्श (Advice)- विकल्पों की जानकारी आज प्रबन्धकों, विशेषज्ञों और प्रबन्ध संस्थानों से जुटाई जा सकती है। सन्दर्भ साहित्य भी नवीनतम सूचनाओं से ओत-प्रोत रहता है तथा पेशेवर परामर्शदाता भी होते हैं।

(iii) विवेचना (Describing)- समस्या का विश्लेषण करते समय की गई गम्भीर विवेचना अनेक विकल्पों के विकास में सहायता करती है।

(iv) अन्तर्संकेत और अन्तर्वेध (Hunch and Instuition)- अनेक बार कुछ विकल्प हमारे अन्दर के किसी अज्ञात कोने से सहसा अपने आप सामने आते हैं, जिनकी सफलता पर हमें बड़ी श्रद्धा होती है। अन्तरात्मा से निकले ये विकल्प हमारी विशिष्ट मानसिकता की देन होते हैं। इनके मूल में हमारे विगत अनुभव हो एक नये रूप में सामने आते हैं। विकल्पों के विकास के इस आधार को न्यायसंगत नहीं माना जाता है।

5. विकल्पों का मूल्यांकन (Evaluation of Alternatives)- जितने विकल्प विकसित किये गये हैं, उनमें से विलोपन के नियम (Law of elimination) द्वारा कुछ को तो प्रथम दृष्टि से ही त्यागा जा सकता है। महत्वहीन विकल्पों के मूल्यांकन में समय, शक्ति और धन का खर्च एक अपव्यय है।

महत्वपूर्ण विकल्पों में से प्रत्येक का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। उनके आदा-अदा अनुपात (Input-Output Ratio) पर विचार किया जाना चाहिए। विकल्प विशेष को अपनाने की लागत क्या होगी और उसके लाभ किस मात्रा में होंगे, इसकी विवेचना भी जरूरी है। इसे लागत-लाभ विश्लेषण (Cost-benefit analysis) कहा जाता है।

6. श्रेष्ठतम विकल्प का चयन और निष्कर्ष (Selection of the best Alternative & Conclusion)- विभिन्न विकल्पों के मूल्यांकन के पश्चात् आखिरी बार सोच-विचार के उपरांत सार्वाधिक अनुकूल विकल्प का चयन

कर उसे नपे-तुले शब्दों में अन्तिम रूप देना चाहिए। उसकी मान्यताओं, सीमाओं आदि व्याख्या कर दी जानी चाहिए। निष्कर्ष की शर्तों का स्पष्ट वर्णन होना चाहिए।

7. **निर्णय के क्रियान्वयन की व्यवस्था** (Arrangement of implementation of D.M.)- निर्णय लिए जाने के पश्चात् उसके क्रियान्वयन हेतु आवश्यक तैयारी पूरे मनोयोग से की जानी चाहिए। आवश्यक मानवीय और भौतिक साधन जुटाये जाने चाहिए तथा निर्णय को लागू किया जाना चाहिए। एक

प्रमुख निर्णय के क्रियान्वयन में अनेक छोटे-छोटे निर्णय लिए जाते हैं, जिनके बारे में यथोचित सावधानी जरूरी है।

निर्णय से प्रभावित लोगों को पर्याप्त जानकारी देकर उनका मनोबल उन्नत किया जाना चाहिए और पूरा सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए।

8. **अनुसरण करना** (Follow up Action)- निर्णयकर्ता की इस बारे में एक विशेष जिम्मेदारी है कि वह बाद में भी देखे कि उसके द्वारा लिये गये निर्णय को ठीक रुप में क्रियान्वित किया जा रहा है अथवा नहीं। यदि विचलन हो तो सुधारात्मक कार्यवाही होनी चाहिए और यदि गति शिथिल हो तो उसके कारणों को दूर किया जाना चाहिए।

6.10 *निर्णयन की तकनीकें अथवा विधियाँ (Techniques or Methods of Decision-making)*

प्रबन्धकीय जटिलताओं के कारण सर्वोत्तम विकल्प का चयन कर निर्णय लेना दिनों-दिन कठिन होता जा रहा है। इन्ही जटिलताओं ने निर्णयन की विभिन्न तकनीकों अथवा विधियों के जन्म एवं विकास को सम्भव बनाया है। अतः निर्णयन की तकनीकों की एक निश्चित सूची देना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। इस सम्बन्ध में कोलम्बिया विश्वविद्यालय के श्री जॉन जी. हुचिन्सन ने अपनी पुस्तक में निर्णयन की निम्नलिखित तकनीकों का उल्लेख किया है-

1. **अनुमान विधि** (Estimation Method)- यह विधि निर्णयन की सबसे सरल, शीघ्र एवं मितव्ययी विधि है। जिस निर्णय का प्रभाव क्षेत्र सीमित हो और निर्णय नैत्यिक स्वभाव के हों, वहाँ यह विधि अपनायी जाती है। इस विधि में कई बार अनुमान ही प्रधान होता है। अतः सत्यता में शत-प्रतिशत विश्वसनीयता नहीं रहती। इस विधि को विशेषतः ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ पूँजी का बड़ी मात्रा में विनियोजन किया गया हो, बड़ी सन्देहास्पद दृष्टि से देखा जाता है।

2. **प्रबन्ध के सिद्धान्त विधि** (Principles of Management Method)- यद्यपि प्रबन्ध के सिद्धान्त निर्णयन की कोई विधि नहीं है, किन्तु फिर भी ये सिद्धान्त निर्णयन प्रक्रिया में मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। हचिन्सन के अनुसार, "प्रबन्ध के सिद्धान्त निर्णयन विधि के रूप में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते, किन्तु फिर भी ये निर्णयन के वातावरण के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।"

3. **पद्धति प्रतिरूप विधि** (Procedure Counter Form Method) पद्धति प्रतिरूप विधि के अन्तर्गत निर्णयन के लिए पहले एक प्रतिरूप तैयार किया जाता है, तत्पश्चात् निर्णय लिया जाता है। उदाहरण के लिए, मान लो कि किसी कम्पनी को नवीन वस्तु का उत्पादन करना है। उसके लिए उत्पादित की जाने वाली वस्तु का पहले प्रतिरूप तैयार किया जाता है, फिर यह ज्ञात किया जाता है कि वस्तु सम्भावित माहकों की आवश्यकताओं के अनुरूप है या नहीं, यह वस्तु ग्राहकों को पसन्द आयेगी या नहीं तथा तकनीकी दृष्टि से महत्वपूर्ण है या नहीं। यही नहीं, कई तरह के प्रतिरूपों को तैयार करके विभिन्न सम्भावनाओं का पता लगाया जाता है और उसके पश्चात् ही तक्त वस्तु के निर्माण करने अथवा निर्माण न करने के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है।

4. **व्यवहारवादी विधि** (Practical Method) समूह निर्णय को विबारधारा, व्यवहारवादी विज्ञान विभि की ही देन है। कर्मचारी चयन प्रक्रिया व्यवहारवादी विज्ञान विधि की एक सरल, किन्तु महत्वपूर्ण उपलब्धि है। कर्मचारियों के चयन के समय की जाने वाली मनोवैज्ञानिक जाँच इसी तकनीक द्वारा विकसित की गई एक विधि है।

5. **अन्तबोंध विधि** (Intuition Method) निर्णयन की यह विधि अन्तर्वोध का परिणाम है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि अन्तर्ज्ञान का आरम्भ तथा अन्त अन्तर्बोध में ही निहित है। इसमें अन्य बातों के अतिरिक्त भावनाओं एवं

प्रतिक्रियाओं का भी स्थान है। जब सामान्य निर्णय की विधि प्रयोग में नहीं लायी जाती, तो यह विधि ही प्रयोग में लायी जाती है।

6. **आर्थिक एवं वित्तीय विवि** (Economical & Financial Method) सामान्य आर्थिक एवं वित्तीय विचारधाराओं तथा सीमान्त विश्लेषण सिद्धान्त ने निर्णयन विधियों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वित्तीय तकनीकें निर्णयन प्रक्रिया में जैसे पूर्ण लाभ का आधार, विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय की दर, पुनर्भुगतान अथवा विनियोजन वसूली आदि प्रबन्ध को महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

7. **ब्रेन स्टोमिंग विधि** (Brain Storming Method)- यह रचनात्मक विचार उतन सो विधि मानी जाती है। इस विधि के अन्तर्गत 6 से 8 व्यक्तियों का समूह बनाया जाता है, जिसमें कार्यरत अधिकारी तथ बाहरी विशेषज्ञ भी हो सकते हैं। इस समूह के समक्ष समस्या प्रस्तुत की जाती है। समूह का प्रत्येक सदस्य अपनी समः के आधर पर समस्या का विकल्प प्रस्तुत करता है। ब्रेन स्टोर्मिंग सत्र आधे घण्टे से एक घण्टे तक चलता है। इस अवि में 50 से लेकर 150 तक विकल्प प्रस्तुत किये जा सकते हैं। समूह की सभा में निम्नलिखित बातों का विशेष रूप ध्यान रखा जाता है-

(अ) जब समूह का एक व्यक्ति कोई विकल्प प्रस्तुत करे, तो उक्त समय समूह के अन्य सदस्य उस पर अपनं कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत नहीं करेंगे।

(ब) सदस्यों को अधिक-से-अधिक विकल्प प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया जाता है, क्योंकि जितने अधिव विकल्प आयेंगे समस्या के समाधान की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी।

(स) तत्पश्चात् समूह सदस्य अपने-अपने विकल्प प्रस्तुत करने के पश्चात् एक-दूसरे के विकल्पों में संशोधन करने तथा दो या दो से अधिक विकल्पों को एक ही विकल्प में जोड़ देने की प्रक्रिया अपनाते हैं।

8. **सांख्यिकीय विधियाँ** (Statistical Method)- आधुनिक सांख्यिकीय विधियों का निर्णयन प्रक्रिया
प्रभावी उपयोग किया जा रहा है। सांख्यिकीय विधियों में सम्भाविता (Probability), सेम्पलिग (Sampling) तथ
हाइपोथेसिस (Hypothesis) आदि प्रमुख हैं।

9. **विशिष्ट निर्णय विधियाँ** (Specific Decision Methods) निर्णयन की उपरोक्त विधियों के अतिरिच निम्न विशिष्ट विधियों का भी उपयोग किया जाता है-

(i) क्रियात्मक अनुसन्धान,

(ii) रेखीय कार्यक्रम,

(iii) पर्ट तथा सी.पी.एम,

(iv) प्रतीक्षा रेखा सिद्धान्त,

(v) क्रीड़ा सिद्धान्त, तथा

(vi) अनुरूपण।

6.11 निर्णय लेने में सुधार किया जाना अथवा निर्णय लेते समय ध्यान देने योग्य बातें

यद्यपि निर्णय लेना प्रबन्ध का एक प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण कार्य है, फिर भी अधिकांश प्रबन्धक निर्णय लेने के उत्तरदायित्व से बचने का ही प्रयास करते हैं। यदि किसी प्रकार उनको घेरे में लेकर निर्णय के लिए बाध्य भी किया जाये, तो वे गलत निर्णय की दशा में उसका दोष अपने अधीनस्थों पर लादने का प्रयत्न करते हैं। वैसे तो यह रोग सभी जगह व्यापक है, किन्तु भारतीय प्रवन्धक इसके सबसे अधिक शिकार हुए प्रतीत होते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक अच्छे उपक्रम को भी असफलताओं का सामना करना पड़ता है। बिना इच्छा के हुए निर्णय अधिकांशतः गलत ही निकलते हैं। यही कारण है कि कुछ विदेशी कम्पनियों ने तो अपने यहाँ अपने प्रशासनिक अधिकारियों को

आवश्यक प्रशिक्षण देने के लिए निर्णय लेने के सम्बन्ध में निर्धारित पाठ्यक्रम शुरू कर दिया है, जिसे पास करना प्रत्येक अधिशासी के लिए अनिवार्य होता है। इसके परिणामस्वरूप जब प्रबन्धक निर्णय लेने के अभ्यस्त हो जाते हैं, तो उनके द्वारा लिये गये निर्णय अपेक्षाकृत अधिक सही बैठते हैं। साथ ही निर्णय लेने की स्थिति से वे भागने के बजाय उसे एक स्वर्ण अवसर मानते हैं, जिससे कि उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन का सुअवसर मिलता है।

यदि हम चाहते हैं कि अधिशासी निर्णय लेने में दिलचस्पी लें तथा उनके द्वारा लिये गये निर्णय अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी एवं सही सिद्ध हों, तो हमें निम्न सुझावों का अनुसरण करना चाहिए-

1. प्रबन्धकों के लिए निर्णय लेने के सम्बन्ध में प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए। प्रशासनिक पदों पर नियुक्त सभी व्यक्तियों के लिए इस प्रकार प्रशिक्षण लेना अनिवार्य कर देना चाहिए।
2. प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों का समावेश होना चाहिए।
3. संगठन संरचना में आवश्यक परिवर्तन करके प्रबन्धकों को अधिक स्पष्ट शब्दों में परिभाषित सत्ता (Authority) प्रदान की जानी चाहिए, क्योंकि जब तक सम्बन्धित प्रबन्धक को सत्ता प्राप्त नहीं होगी तब तक निर्णय कैसे लिया जा सकता है।
4. उच्च प्रबन्धक के दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना चाहिए।
5. प्रत्येक निर्णय का ध्येय निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में योगदान करना होना चाहिए।
6. निर्णय लेते समय उसके व्यावहारिक पहलू पर सदैव ध्यान होना चाहिए।
7. लिया गया निर्णय त्रुटि मुक्त होना चाहिए।
8. कोई निर्णय लेने के उपरान्त उसका अनुसरण अवश्य किया जाना चाहिए।

6.11 सार संक्षेप

निर्णयन (Decision-making) प्रबंधन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से समस्याओं का समाधान और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सही विकल्प चुना जाता है। इसमें विभिन्न विकल्पों का विश्लेषण, उनका मूल्यांकन, और सबसे उपयुक्त विकल्प का चयन शामिल है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में सटीकता, तार्किकता, और प्रभावशीलता आवश्यक होती है। निर्णय लेने के सिद्धांत और तकनीकें, जैसेहानि विश्लेषण-लाभ -, लागतप्रभावशीलता - विश्लेषण, और सामूहिक निर्णय प्रक्रिया, निर्णय की गुणवत्ता को बढ़ाती हैं। हालांकि, निर्णय प्रक्रिया में समय, संसाधनों और मानव तत्वों की चुनौतियाँ हो सकती हैं।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. निर्णय प्रक्रिया का पहला चरण क्या है?
   A. विकल्पों का चयन
   B. समस्या की पहचान
   C. मूल्यांकन
   D. क्रियान्वयन

2. निर्णय लेने की कौन सी तकनीक संभावित विकल्पों की ताकत और कमजोरियों का विश्लेषण करती है?
   A. SWOT विश्लेषण
   B. लाभ-हानि विश्लेषण
   C. लागत-प्रभावशीलता विश्लेषण
   D. सामूहिक निर्णय प्रक्रिया

3. निर्णय प्रक्रिया का अंतिम चरण ________ है।

4. निर्णय लेने के सिद्धांत ________ पर आधारित होते हैं।

6.12 मुख्य शब्द

1. **निर्णयन (Decision-making)**: समस्याओं को हल करने और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विकल्पों का चयन।
2. **अवधारणा (Concept)**: निर्णय प्रक्रिया की मूल विचारधारा।
3. **प्रक्रिया (Process)**: निर्णय लेने के चरण, जैसे समस्या की पहचान, विकल्पों का मूल्यांकन।
4. **सिद्धांत (Principles)**: निर्णय को तर्कसंगत और प्रभावी बनाने के नियम।
5. **तकनीकें (Techniques)**: निर्णय लेने के लिए उपयोगी उपकरण, जैसे SWOT विश्लेषण।
6. **तत्व (Elements)**: निर्णय प्रक्रिया के घटक, जैसे जानकारी, विकल्प।
7. **महत्व (Importance)**: संगठनात्मक प्रदर्शन में निर्णय प्रक्रिया की भूमिका।
8. **सामूहिक निर्णय (Group Decision)**: टीमआधारित दृष्टिकोण से लिए - गए निर्णय।

9.11 स्वप्रगति- प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: B,

उत्तर 2: A,

उत्तर 3: क्रियान्वयन,

उत्तर 4: तार्किकता और सटीकता

6.13 *संदर्भ (References)*

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). Management. *Pearson Education.*

Mintzberg, H. (2018). Structure In Fives: Designing Effective Organizations. *Prentice Hall.*

Drucker, P. F. (2017). The Effective Executive: The Definitive Guide To Getting The Right Things Done. *HarperBusiness.*

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). Management: Concepts, Practice & Cases. *McGraw Hill Education.*

Sharma, R. K. (2021). Principles And Practices Of Management. *Kalyani Publishers.*

Gupta, C. B. (2021). Management: Theory And Practice. *Sultan Chand & Sons.*

6.*14* *अभ्यास प्रश्न*

1. निर्णयन से आप क्या समझते हैं? निर्णयन की वैज्ञानिक प्रक्रिया की विवेचना कीजिए।
2. "निर्णय लेना प्रबन्ध का प्रमुख कार्य है।" व्याख्या कीजिए तथा निर्णयन की वैज्ञानिक प्रविधि को समझाइये ।
3. "निर्णयन प्रबन्धकीय कायों की कुंजी है।" विवेचना कीजिये व इसके महत्व को समझाइये।
4. निर्णयन की परिभाषा दीजिए। निर्णयन के महत्व एवं प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
5. निर्णयन की परिभाषा दीजिए। निर्णयन की प्रक्रिया व सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन कोजिए ।

इकाई -7

संगठन: अवधारणा, प्रक्रिया एवं सिद्धान्त

(ORGANISATION CONCEPT, PROCESS AND PRINCIPLES)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संगठन की अवधारणाएँ

7.4 संगठन की परिभाषाएँ

7.5 संगठन की प्रकृति अथवा विशेषताएँ

7.6 संगठन के उद्देश्य

7.7 संगठन के तत्व

7.8 संगठन की प्रक्रियाअथवा संगठन के लिए आवश्यक कदम

7.9 संगठन के सिद्धान्त

7.10 संगठन के परम्परावादी सिद्धान्तों की समीक्षा

7.11संगठन की आवश्यकता अथवा महत्वअथवा संगठन के लाभ

7.12आदर्श संगठन

7.13 सार संक्षेप

7.14 मुख्य शब्द

7.15 संदर्भ

7.16 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

संगठन का अंग्रेजी पर्यायवाची 'Organisation' है। 'Organisation' शब्द की उत्पत्ति 'Organism' से हुई जिसको अभिप्राय उस संरचना से है जो विभिन्न भागों में विभक्त हो तथा जिसे एक समन्वित एवं सामंजस्यपूर्ण इकाई में जोड़ना आवश्यक हो। प्रत्येक औद्योगिक संस्था अनेक विभागों में विभक्त रहती है। ये सब विभाग अपने-अपने निश्चित एवं निर्धारित कार्यों को करते हैं। आज के उद्योग श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण की नींव पर स्थिर हैं, जिसके कारण प्रत्येक उद्योग के विभागों में वृद्धि होती जा रही है, जैसे कच्चे माल का विभाग, मशीन तथा निर्माण विभाग शक्ति विभाग, माल प्रेषक विभाग, कार्यालय विभाग आदि। ये सब विभाग उत्पादन के विभिन्न घटकों भूमि, श्रम पूँजी व साहस आदि के सहयोग से अपना-अपना सम्पादन करते हैं। यदि प्रत्येक विभाग अपना कार्य अलग-अलग करे तो उत्पादन कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। सफलता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उत्पत्ति के विभिन्न घटकों भूमि, श्रम, पूँजी व साहस में पूर्णरूप से सामंजस्य और समन्वय हो। एक निश्चित योजना के आधार पर वैज्ञानिक रूप से इन विभागों में सामंजस्य तथा उनके कार्यों में समन्वय स्थापित करना और उनके आर्थिक साधनों जैसे भूमि, श्रम, पूँजी व साहस आदि की युक्तिपूर्ण व्यवस्था करना ही 'संगठन' कहलाता है। अतः संगठन से हमारा अभिप्राय एक नीतिपूर्ण योजना से है।

अतः किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसका उचित संगठन कर लेना आवश्यक है। उदाहरण के लिये - मान लीजिये कि हाकी का मैच हो रहा है। उसमें से एक टीम के खिलाड़ी तो सुव्यवस्थित रूप से अपने-अपने स्थानों पर खड़े होकर खेल रहे हैं और दूसरी टीम के खिलाड़ी अव्यवस्थित हैं। वे मनचाहे स्थान पर जाकर खेलने लगते हैं। ऐसी दशा में यह निश्चित है कि विजय उसी

टीम की होगी जो सुव्यवस्थित रूप से खेल रही है। ठीक यही बात उद्योगों में भी होती है। यदि कोई उद्योगपति अपना उद्योग सुव्यवस्थित रूप से चलाता है तो उसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी। अव्यवस्थित उद्योग में सदैव असफलता मिलती है। सी. केनिथ के अनुसार, "एक कमजोर संगठन अच्छे उत्पाद (Product) को मिट्टी में मिला सकता है, किन्तु एक अच्छा संगठन जिसके पास कमजोर उत्पाद है, अच्छे उत्पाद को बाजार से भगा सकता है।"

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. संगठन की अवधारणा, परिभाषा और प्रकृति को समझ सकें।
2. संगठन की प्रक्रिया और सिद्धांतों का अध्ययन और विश्लेषण कर सकें।
3. संगठन के उद्देश्य, तत्व और महत्व को पहचान सकें।
4. आदर्श संगठन की विशेषताओं और परम्परावादी सिद्धांतों की समीक्षा कर सकें।

7.3 संगठन की अवधारणाएँ (Concepts of Organisation)

प्रबन्धकीय दृष्टिकोण से संगठन एक व्यापक एवं बहुअर्थी शब्द है। अधिकांश विचारक संगठन को 'व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों का ढाँचा' (Structure of Mutual Relations among Persons) मानते हैं। इस प्रकार संगठन संस्था के विभिन्न अंगों के कार्यों (Functions), भूमिकाओं (Roles), स्थितियों (Positions) व सम्बन्धों (Relations) की औपचारिक संरचना है। संगठन की कुछ प्रमुख अवधारणाएँ निम्नलिखित है:-

(1) समूह अवधारणा (Group Concept)

जब 'संगठन' शब्द को एक संज्ञा (Noun) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो यह व्यक्तियों के एक समूह या किसी संस्था को दर्शाता है। इस समूह के सदस्यों में आपसी सम्बन्ध होते हैं तथा सदस्य किसी एक नेता के नेतृत्व में कार्य करते हुए अपने सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। उल्लेखीय है कि 'भीड़' एक संगठन नहीं होती है क्योंकि इसका कोई सामान्य उद्देश्य नहीं होता है, न ही यह किसी के नेतृत्व में कार्य करती है। प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री मैकफारलेण्ड आर. डेविस, हैने तथा रेले एवं चेस्टर आई. बर्नार्ड आदि ने संगठन को मूलतः व्यक्तियों के समूह के रूप में माना है जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं।

(2) **कार्य सम्बन्धों की संरचना अवधारणा** (Concept of Structure of Work Relationships) कुछ विद्वानों के अनुसार संगठन कार्यकारी सम्बन्धों का ढाँचा है। इस अर्थ में यह वह संरचना, ढाँचा या कंकाल (Skeleton) है जो व्यक्तियों के समूह में आपसी सम्बन्धों, सत्ता, अधिकारों, दायित्वों, कर्तव्यों, भूमिकाओं तथा पद

स्थितियों (Positions) को दर्शाता है। यह समूह सदस्यों के कार्यों (Functions), प्रकाओं (Jobs), कर्तनों (Tasks) तथा कर्मचारियों के बीच आपसी सम्बन्धों के जाल (Network of relationships) को इंगित करता है। यह व्यक्तियों के लम्बवत् तथा समतल दोनों प्रकार के कार्यकारी सम्बन्धों को प्रकट करता है। इसके कारण पूरा समूह एक सूत्र में बंधकर एकीकृत इकाई बन जाता है।

इस अवधारणा के समर्थक विद्वानों में कूष्ट्ज एवं ओ'डोनेल, हौज तथा जॉनसन व विक्सबर्ग आदि प्रमुख रहे

(3) **कार्यात्मक अवधारणा** (Functional Concept) इसे प्रक्रिया अवधारणा (Process Concept) भी माना जाता है। एक क्रिया (verb) के रूप में 'संगठन' शब्द संगठित करने के कार्यों (Organising functions) की ओर

संकेत करता है। इस रूप में संगठन से आशय संरचना करने (to structure), व्यवस्था करने (to arrange), संयोजित करने (to organise) सम्बन्धी क्रियाओं से है जिसके द्वारा संगठन संरचना का संचालन किया जाता है। इस अवधारणा के समर्थकों में प्रो. उर्विक, ग्लूएक, एलेन हैमेन तथा सी.एच. नॉर्थकॉट प्रमुख रहे हैं।

(4) **सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध अवधारणा** (Concept of Social and Cultural Relationship) यह संगठन का आधुनिक दृष्टिकोण है। कई प्रबन्ध विचारक संगठन की तुलना 'जीवित समूह' (Living body) से करते हैं। परम्परागत अर्थ में संगठन अत्यन्त विवरणात्मके, सतही, यांत्रिक, औपचारिक, तकनीकी एवं प्राणहीन था। इसमें जीवन्तता का अभाव था। संगठन का आधुनिक अर्थ जीवन्त एवं स्पन्दित (Throbing) है। इसके अनुसार संगठन एक "जीवन्त एवं व्यक्तिगत शक्तियों का क्षेत्र" है। आधुनिक अर्थ में संगठन 'सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों की एक प्रणाली', 'सहकारी प्रयासों की प्रणाली' (System of Cooperative Efforts), 'सामाजिक प्रणाली' (Social System), 'व्यक्तियों के अन्तर्व्यवहारों की प्रणाली' (Interactions of People), 'सामाजिक इकाई' (Social Unit)अथवा 'मानवीय समूह' (Human groupings) माना जाता है। यह संगठन की मानवीय एवं समाजशास्त्रीय अवधारणा हैं।

इस आधुनिक अवधारणा के प्रतिपादकों में चेस्टर आई. बर्नार्ड, इटजियोनि, किस आर्मीरिस एवं निऑल एवं ब्रान्टन प्रमुख हैं।

इस प्रकार संगठन की उपर्युक्त चार अवधारणाएँ ही प्रमुख रूप से प्रचलित रही हैं लेकिन कुछ लोग प्रक्रिया अवधारणा, उद्देश्य अवधारणा एवं तन्त्र अवधारणा जैसी पृथक अबधारणाएँ गिनाते रहे हैं जो पहले से ही इन चारों प्रमुख अवधारणाओं में अन्तर्निहित हैं।

7.4 संगठन की परिभाषाएँ (Definitions of Organisation)

जैसा कि संगठन की अवधारणाओं के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि संगठन शब्द एक अतिविस्तृत अर्थों वाला शब्द है एवं प्रत्येक प्रकार के अर्थ में पृथक परिभाषा की जा सकती है अतः संगठन की कई विद्वानों ने अपने-अपने विचार से परिभाषा दी है इनमें से निम्न प्रमुख हैं:

1. मैक्फारलैण्ड (McFarland) के अनुसार, "संगठन व्यक्तियों का एक विशिष्ट समूह है जो उद्देश्यों की प्राप्ति में अपने प्रयासों का योगदान देता है।"
2. प्रो. डेविस (R.C. Davis) के अनुसार, "संगठन व्यक्तियों का एक समूह है जो एक नेता के निर्देशन में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग प्रदान करते हैं।"
3. प्रो. हैने के अनुसार, "किसी सामान्य उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशिष्ट अंगों का मैत्रीपूर्ण संयोजन ही संगठन कहलाता है।"
4. ऐलन (Allen) के मतानुसार, "संगठन किये जाने वाले कार्यों को निश्चित एवं श्रेणीबद्ध करने, दायित्वों एवं अधिकारों को परिभाषित तथा प्रत्यायोजित करने और उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य करने देने के लिए सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया है।"
5. हैमेन (Haimann) के शब्दों में, "संगठन किसी उपक्रम की क्रियाओं को परिभाषित एवं वर्गीकृत करने तथा उनके मध्य अधिकार सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया है।"
6. चेस्टर आई. बर्नार्ड (Chester I. Barnard) के अनुसार, "संगठन सचेत रूप से सम्मन्वित सामाजिय अन्तर्व्यवहारों तथा शक्तियों का समूह है जिसका एक सुविचारित एवं सामूहिक उद्देश्य होता है।"
7. इटजियोनि (Etzioni) के मतानुसार, "संगठन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्वेच्छा से निर्मित ए पुनर्निर्मित सामाजिक इकाइयाँ (मानवीय समूह) हैं।"

8. क्रिस आर्गीरिस (Chris Argyris) के अनुसार, "संगठन में सभी सहभागियों का समस्त व्यवहार सम्मिलि होता है।"

7.5 संगठन की प्रकृति अथवा विशेषताएँ (Nature or Characteristics of Organisation)

एक सशक्त संगठन सामान्यतया निम्न प्रकृति का होता है या संगठन की निम्न विशेषताएँ हो सकती हैं:-

(1) **क्रमिक एवं अपूर्व व्यवस्था** (Organical and Unique Arrangement) 'संगठन' प्रबन्ध की एक व्यवस्था (Mechanism) है जिसका उद्देश्य प्रबन्ध के कार्यों को सुविधाजनक बनाना है। पीटर एफ. ड्रकर ने लिख है कि 'संगठन' यान्त्रिक अर्थात् बुद्धिरहित (Mechanical) नहीं है। यह न ही समाज अथवा मंडली (Assembly) है। यह पूर्व-निर्मित (Pre-fabricated) नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्तिगत व्यवसाय अथवा संस्था के लिए संगठन क्रमिक और अपूर्व (organic and unique) है।

2. **लक्ष्य का होना** (Motive Target) लक्ष्य और संगठन एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि लक्ष्य के अनुसार ही संगठन-संरचना की जाती है। यदि लक्ष्य स्पष्ट नहीं है तो संगठन भी प्रभावपूर्ण सिद्ध नहीं होगा। किसी भी प्रकार के संगठन में संस्था के कुछ निर्धारित लक्ष्यों का होना नितान्त आवश्यक होता है, उन्हीं की प्राप्ति के लिए संगठन कार्यों को सम्पादित करता है।

3. **प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य** (An Important Function of Management) प्रवन्ध के कई महत्वपूर्ण कार्य हैं, जैसे नियोजन, समन्वय, नियन्त्रण एवं अभिप्रेरणा। संगठन भी इन्हीं कार्यों जैसा एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबन्ध के शेष कार्यों का सम्पादन संगठन द्वारा ही सम्भव हो पाता है। संगठन ही श्रम, पूँजी व उत्पादन के अन्य साधनों का समन्वय करता है।

4. **एक प्रक्रिया** (A Process) संगठन संस्था के कार्यों को निर्धारित करने, कर्मचारियों के बीच उन्हें विभाजित करने तथा परस्पर अधिकार-सत्ता सम्बन्ध स्थापित करने की एक प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, संगठन एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समान क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है। उन क्रियाओं को विभिन्न व्यक्तियों के मध्य वितरित किया जाता है, उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया जाता है तथा क्रियाओं व व्यक्तियों के बीच अनुकूलतम समन्वय स्थापित किया जाता है।

5. **व्यक्ति समूह का होना** (Group of Persons) संगठन की एक विशेषता यह भी है कि इसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों के समूह होते हैं, जिसमें उपक्रम के कार्यों को बाँटा जाता है तथा उनके आपसी सम्बन्धों को परिभाषित किया जाता है। मात्र एक व्यक्ति का होना संगठन नहीं कहा जाता।

6. **मानवीय व भौतिक साधनों में समन्वय** (Co-ordination between Human & Physical Resources) - मानव तथा भौतिक संसाधन मिलकर ही उत्पादन या सेवा कार्य करते हैं। श्रमिक एवं कर्मचारी कच्चे माल, मशीन व वित्त की सहायता से माल का उत्पादन व विक्रय करते हैं। अच्छा संगठन वही कहलायेगा, जिसमें मानवीय व भौतिक संसाधनों में ऐसा सामंजस्य हो कि उनका सर्वोत्तम उपयोग सम्भव हो सके।

7. **संगठन एक प्रविधि के रूप में** (Organisation as a System) संगठन कार्य एक प्रविधि या प्रक्रिया है, क्योंकि संगठन संरचना के क्रमानुसार निम्न कदम उठाने होते हैं-

(अ) प्रकृति के अनुसार कार्यों का विभाजन जैसे क्रय कार्य, विक्रय कार्य;

(ब) प्रत्येक कार्य को छोटी-छोटी क्रियाओं से समूहबद्ध करना;

अतः संगठन एक एकाकृत प्रणाली है जिसका निर्माण कई विभागों, उप-विभागों तथा उनके बीच क्रियाओं से होता है। यह प्रणाली जटिल होती है और संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति करती है।

8. **औपचारिक सम्बन्धों की स्थापना** (Estabilishing of Formal Relations) एक अच्छी संगठन संरचना से यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक अधिकारी के अधिकार एवं दायित्व स्पष्ट हों। उनके अपने बॉस, अधीनस्थों एवं अन्य अधिकारियों से क्या सम्बन्ध होंगे, कौन किसके आदेश का पालन करेगा, कौन किसको आदेश दे सकता है; कौन किसके प्रति उत्तरदायी होगा आदि की स्पष्ट व्याख्या दी गयी हो।

9. **नेतृत्व एवं निर्देशन का होना** (Leadership and Direction) - प्रत्येक संगठन में नेतृत्व व निर्देशन का होना अनिवार्य है। नेतृत्व के निर्देशन में ही लोग कार्य करते हैं। संगठन का प्रमुख व्यक्ति ही इतना क्षमतावान होता है कि उसमें नेतृत्व क्षमता एवं निर्देशन क्षमता का होना नितान्त आवश्यक होता है।

10. **एक साधन** (As a 'Means') संगठन एक साधन है, साध्य नहीं। संगठन सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनायी जाने वाली व्यवस्था है जो मानव जैसे साध्य का साधन होता है।

11. **चक्रीय क्रिया** (Cycling Activity) संगठन वह प्रबन्धकीय क्रिया है जो चक्रीय है, न कि एक दैनिक घटित होने वाली क्रिया। गल्यूइक लिखते हैं कि "संगठन एक चक्रीय क्रिया है न कि नियमित रूप से घटित होने वाली कोई दैनिक घटना।"

12. **अन्य** (Others) - संगठन की उपर्युक्त के अलावा भी कुछ विशेषताएँ होती हैं जैसे- (अ) संगठन जागरूक एवं विवेकपूर्ण प्रयास है। पीटर एफ. ड्रकर ने लिखा है कि संगठन की डिजायन और संरचना चिन्तन, विश्लेषण और सुव्यवस्थित दृष्टिकोण की अपेक्षा रखती है।

(ब) संगठन एक क्रियात्मक विचारधारा है।

(स) संगठन संचार की एक प्रणाली है।

(द) संगठन एक सामाजिक प्रणाली और परस्परव्यापी चलों (Interacting Variables) का एक समूह है।

7.6 संगठन के उद्देश्य (Objectives of Organisation)

'संगठन' भौतिक एवं सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पूँजी, व्यक्ति एवं अन्य साधनों के माध्यम से संस्था के सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। 'संगठन' कार्य अथवा प्रणाली के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः

(1) **लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग करना** जैसा कि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं कि 'संगठन' प्रबन्ध का एक अति महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबन्ध द्वारा संस्था के जो भी लक्ष्य रखे गये हैं उन्हें संगठन के बल पर या इसके सहयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है। संगठन का मुख्य उद्देश्य संस्था के नियोजित लक्ष्यों की पूर्ति में सहयोग करना होना है।

(2) **संसाधनों का सदुपयोग सम्भव बनाना** प्रबन्ध एवं प्रशासन उपक्रम के लिए जो कार्ययोजना तैयार करते हैं तथा संसाधनों की उपलब्धि कराते हैं उनका समुचित विदोहन या सदुपयोग केवल संगठन के द्वारा ही हो पाता है क्योंकि संगठन क्षमता पर यह निर्भर करता है कि वह किस संसाधन का कब, कहाँ एवं किस प्रकार से सदुपयोग एवं विदोहन करे। अतः संगठन का यह भी उद्देश्य होता है कि उपक्रम के साधनों को संयोजित करके उनका श्रेष्ठतम उपयोग सम्भव बनावें ।

(3) **संस्था की प्रभावशीलता बढ़ा**ना 'संगठन' का एक प्रमुख उद्देश्य बदलती हुई टेक्नोलॉजी एवं वातावरण को ध्यान में रखते हुए अपनी संरचना में सुधार करना है ताकि संस्था की प्रभावशीलता और भावी समायोजन क्षमता में वृद्धि हो।

(4) **समन्वय की लागतों को कम करना** संगठन कार्य का एक उद्देश्य समन्वय की लागतों को न्यूनतम करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु क्रियाओं का वर्गीकरण तथा समूहीकरण किया जाता है। कार्य-योग्य (workable) विभाग विशिष्टीकरण के आधार पर बनाये जाते हैं। इन विभागों

को परस्पर सम्बद्ध किया जाता है, जिससे समन्वय की लागतों में कमी आ जाती है।

(5) **श्रम एवं पूँजी में मधुर सम्बन्ध स्थापित करना** संगठन का प्रमुख उद्देश्य श्रम एवं पूँजी में मधुर सम्बन्ध स्थापित करना है। अतः कर्मचारियों को इस प्रकार संगठित किया जाता है जिससे वे अधिक से अधिक सन्तुष्ट रहें। इसके लिए उन्हें अनेक प्रकार की मौद्रिक व अमौद्रिक प्रेरणायें भी दी जाती हैं।

(6) **समय एवं श्रम की बचत** कुशल संगठन प्रणाली से समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है, क्योंकि कर्मचारियों में कार्यों का विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि वे कम से कम समय में अधिक से अधिक कार्य कर सकें । अतः विशिष्टीकरण के कारण कम समय में अधिक कार्य हो जाता है।

(7**) मितव्ययिताओं की प्राप्ति** कुशल सगठन से मितव्ययिताओं की प्राप्ति होती है क्योंकि न्यूनतम लाग व कम समय में अधिकतम उत्पादन होता है। कुशल संगठन से केवल लागत में ही कमी नहीं होती, बल्कि उत्पादन भी अच्छा व श्रेष्ठ किस्म का होता है।

(8**) सामाजिक उद्देश्य** संगठन के कुछ सामाजिक उद्देश्य भी हैं। अच्छे संगठन द्वारा उपभोक्ताओं को सस्तं दरों पर श्रेष्ठ प्रकार की वस्तुयें उपलब्ध हो जाती हैं।

(9) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** अच्छे संगठन से राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है क्योंकि इसके अन्तर्गत बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण लागत में कमी आती है और उद्योग-धन्धों का विकास होता है। फलतः राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

(10**) कर्मचारियों का ऊँचा मनोबल** मनोबल का उत्पादन से सीधा सम्बन्ध है। ऊँचे मनोबल द्वारा उत्पादन में वृद्धि होती है तथा नीचे मनोबल द्वारा उत्पादन में कमी आती है। केवल स्वस्थ संगठन द्वारा ही कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा उठाया जा सकता है।

(11) **संस्था को स्थायित्व प्रदान करना** 'संगठन' जैसे प्रबन्ध कार्य का एक प्रमुख उद्देश्य संस्था को स्थायित्व प्रदान करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कार्य-सम्बन्धों की ऐसी संरचना प्रणाली विकसित की जाती है जो संस्था के विकास-विस्तार की आवश्यकता को पूरा कर सके।

(12) **अन्य उद्देश्य** उपर्युक्त के अलावा भी संगठन के कुछ लक्ष्य होते हैं जैसे- प्रन्बन्ध विकास की आवश्यकताओं को पूरा करना, संस्था के सामाजिक दायित्वों के निर्वाह में सहयोग करना, अनियमित एवं निरर्थक क्रियाओं को समाप्त करना, प्रवन्ध के नियन्त्रण-विस्तार को उपर्युक्त एवं प्रभावी बनाये रखना आदि संगठन कार्य के उद्देश्य हैं।

7.7 संगठन के तत्व (Elements of Organisation)

संगठन-संरचना का निर्माण जिन संघटकों (Components) से होता है, उन्हें 'संगउन के तत्व' कहा जाता है। अलग-अलग प्रबन्धशास्त्रियों ने संगठन के अलग-अलग तत्वों को दर्शाया है लेकिन उन सभी में जो सामान्य रूप से सान्य है तथा जो सहज रूप से सर्वत्र स्वीकार्य हैं वे कुछ तत्व निम्नानुसार है:-

(1) उद्देश्यों का स्पष्ट उल्लेख (Clarification of Objects) यदि संस्था के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है तो संगठन की सफलता में बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि संगठन का उद्देश्य स्पष्ट होने से संस्था का आकार निर्धारित किया जा सकता है और विभिन्न कर्मचारियों को भिन्न-भिन्न कार्य सौंपा जा सकता है। आवश्यकतानुसार संस्था के सम्पूर्ण कार्य को कई विभागों में बाँट दिया जाता है और यह प्रयत्न किया जाता है कि विभिन्न विभागों के उद्देश्यों तथा सम्पूर्ण संगठन के उद्देश्यों में एकरूपता बनी रहे।

(2) औपचारिक समूह (Formal Groups) संस्था में कार्य करने वाले अधिकारी और कर्मचारी संगठन प्रणाली का प्रमुख संगठन होते हैं। मरविन काहन ने लिखा है कि "मानव समूह में वे व्यक्ति सम्मिलित हैं जो निर्माण एवं उत्पादन करते हैं तथा प्रवन्ध करते हैं।" प्रबन्धकों को चाहिए कि वे मानव रूपी तत्व

को बुद्धिमान मार्ने, स्व-तलाश (sclf-seeking) करने वाला समझे और ऐसा तत्व माने जिसकी प्रवृत्तियाँ एवं उद्देश्य बदलते रहते हैं।

(3) अधिकार एवं उत्तरदायित्व का स्पष्ट निर्धारण (Clear Determination of Rights and Duties) - परम्परागत संगठन प्रणाली अधिकार की अवधारणा पर आधारित है, किन्तु कोई प्रणाली जो केवल अधिकार की ही अवधारणा पर आधारित है उपयुक्त नहीं हो सकती। संस्था के विकास के लिए उचित संगठन व्यवस्था वही कही जा सकती है जो अधिकार एवं उत्तरदायित्त्व दोनों पर ही आधारित हो, परन्तु संस्था के विभिन्न अंगों के यदि अधिकार एवं उत्तरदायित्व को पहले से ही परिभाषित न किया जाये तो संस्था के सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित से सकती हैं।

(4) पर्याप्त भारार्पण (Sufficient Delegation) श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण की पूर्ण सफलता के लिये पर्याप्त भारार्पण बड़ा ही आवश्यक है। एक उच्च अधिकारी स्वयं संस्था के सम्पूर्ण भार को वहन नहीं कर सकता। अतः वह अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए भारार्पण अवश्य करेगा। भारार्पण से आशय अपने उत्तरदायित्वों को दूसरे व्यक्तियों को हस्तान्तरित करना है। अतः कुशल संगठन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि विभिन्न अधीनस्थ कर्मचारियों में उत्तरदायित्वों का भारार्पण किया जाये।

(5) रेखीय तथा स्टाफ सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध (Line & Staff Relationship) - स्वस्थ संगठन व्यवस्था के लिए रेखीय एवं स्टाफ दोनों सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध होना आवश्यक है। यदि इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होगा तो संगठन के कार्यों के सम्पन्न होने में पर्याप्त कठिनाई होगी। वास्तव में ये दोनों एक-दूसरे के परिपूरक होते हैं। यदि इन दोनों में मतभेद उत्पन्न हो जाए तो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में कठिनाई हो सकती है।

(6) केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण की न्यायोचित मात्रा (Reasonable Quantity of Centralization Decentralization) अधिकारों का केन्द्रीयकरण से आशय अधिकांश अधिकारों के एक स्थान विशेष पर केन्द्रित & होने से है जबकि इसके विपरीत विकेन्द्रीयकरण से आशय अधिकांश अधिकारों को विभिन्न व्यक्तियों पर फैला देने से

है। वास्तव में स्वस्थ संगठन के लिए केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण दोनों को ही न्यायोचित मात्रा का होता है। विकेन्द्रीयकरण भारार्पण का ही एक विस्तृत रूप है। भारार्पण एक ढंग है और विकेन्द्रीयकरण उसके परि प्रत्येक संगठन के अन्तर्गत केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीयकरण दोनों के ही तत्व पाये जाते हैं। प्रश्न केवल उनके सापेक्षिक अनुपात का होता है। अल्पकाल में केन्द्रीयकरण से क्षमता में वृद्धि होती है जबकि दीर्घकाल में केन्द्रीयकरण संस्थाको । असफलता की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखता है। अतः कुशल संगठन के लिये यह आवश्यक है कि केन्द्रीयकरण को मात्रा में न्यायोचित सम्बन्ध स्थापित किया जाये।

(7) **ढाँचा** (Structure) संगठन का अन्य तत्व उसका ढाँचा या संगठन संरचना है। ऐलन ने इसे 'संबंध स्थापना' कहा है। ऐलन लिखते हैं कि सदस्यों एवं समूहों के मध्य संबंध स्थापित करने से कौन किसके प्रति जिम्मेदार रहेगा और कौन निर्णय लेगा, यह समस्या स्वतः सुलझ जाती है। मरविन काहन ने लिखा है कि "डाँचा क्रियाओं, कार्यों, व्यक्तियों पूँजी के बीच की व्यवस्था तथा संबंध है जो अर्थपूर्ण तरीके से उन्हें परस्पर कार्य करने की अनुमति देता है।"

(8) **उचित नियन्त्रण विस्तार** (Proper Control Expansion) नियन्त्रण विस्तार की उचित होना भी स्वस्थ संगठन के लिये बड़ा ही आवश्यक है। प्रायः नियन्त्रण विस्तार जितना ही कम होता है, उतना ही अच्छा समझा जाता है। अधिकारियों का पद जैसे-जैसे ऊँचा होता जाता है वैसे-वैसे उनके नियन्त्रण का विस्तार कम हो जाता है और इसके विपरीत अधिकारी का पद घटने के साथ

ही नियन्त्रण का विस्तार बढ़ता जाता है। यदि किसी संगठन में इस नियम के आधार पर नियन्त्रण का विस्तार निर्धारित किया जाता है तो इससे संगठन स्वस्थ होता है और इसके विपरीत संगठन की प्रक्रिया में असफलता आ सकती है।

(9) **संचार व्यवस्था** (Communication System) संचार व्यवस्था संगठन में औपचारिक सूचनाओं, आदेशों-निर्देशों, प्रगति विवरणों, नीतियों-पद्धियों, कर्मचारी कठिनाइयों आदि का प्रेषण करती है। इस तत्व के अभाव आधार प्रदान करता है और नियन्त्रण को प्रभावी बनाता है।

(**10)अन्य तत्व** (Other Elements) संगठन के अन्य तत्वों में निष्ठा, अधिकारों-दायित्वों का केन्द्रीयकरण-विकेन्द्रीयकरण, नीतियाँ, पद्धतियाँ, नियम आदि सम्मिलित हैं।

7.8 संगठन की प्रक्रिया (Process of Organisation)

'संगठन' प्रबन्ध का वह कार्य है जो किये जाने वाले कार्यों को जानने, उनका वर्गीकरण करने, कर्मचारियों को अधिकार दायित्व सौंपने और उनके मध्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने से संबंध रखता है। इसलिए संगठन की प्रक्रिया के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं-

(1) **क्रियाओं का विश्लेषण** (Analysis of Activities) संगठन संरचना का निर्माण करते समय सर्वप्रथम उन सभी क्रियाओं का विश्लेषण करना होता है जिनके द्वारा संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। उपयुक्त क्रियाओं को निर्धारित करते समय मुख्य रूप से तीन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है (अ) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सभी आवश्यक क्रियाओं का निष्पादन हो। (ब) अनावश्यक क्रियाओं का निष्पादन न हो, एवं (स) सभी आवश्यक क्रियाओं का निष्पादन, समन्वित ढंग से हों।

इस तरह संगठन की प्रक्रिया के इस प्रथम चरण में विभिन्न प्रकार की गतिविधियों व क्रियाओं का विश्लेषण करके उनका समुचित निर्धारण किया जाता है।

(2) **क्रियाओं का समूहीकरण** (Grouping of Activities) संगठन प्रक्रिया का दूसरा वरण क्रियाओं का समूहीकरण करना होता है। समूहीकरण का कार्य करते समय एक-सी क्रियाओं को एक वर्ग में रखा जाता है। इन एक-सी एवं परस्पर संबंधित क्रियाओं को फिर विभागों एवं क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। तत्पश्चात् ये विभागीय एवं क्षेत्रीय क्रियाएँ पुनः खण्डों एवं उप-खंडों में विभाजित की जाती हैं। क्रियाओं के वर्गीकरण हेतु अनेक आधार अपनाये जा सकते हैं। प्रमुखतः कार्यों के आधार पर, भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर, ग्राहकों के आधार पर तथा उत्पादन विधियों एवं विक्रय-तरीकों के आधार पर क्रियाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है।

(3) **विभागों में सम्बन्ध स्थापित करना** (Linking of Departments) संस्था में विभिन्न विभागों कोनिर्धारित करने के बाद उनके आपसी सम्बन्धों को निर्धारित किया जाता है। सम्बन्धों के निर्धारण की आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि सभी विभाग संस्था के अलग-अलग कार्यों को निष्पादित करते हैं, किन्तु सभी का लक्ष्य संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में कुछ विभाग प्रत्यक्षतः योगदान देते हैं जबकि कुछ विभागों का योगदान परोक्ष होता है।

(4) **कार्यों का बँटवास** (Allocation of Tasks) संगठन प्रक्रिया का अगला चरण कार्यों का वितरण करना होता है। यह कार्य विभागों से सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् किया जाता है और कार्यों के निष्पादन हेतु वांछित जाता है। इस कदम क अन्तगत िवाभन्न व्यक्तियों को उनकी योग्यता, प्रतिभ क्षमता, रुचि एवं दायित्व के अनुसार कार्य सौंपा जाता है। इस कदम पर इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्ये व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार कार्य मिले और

प्रत्येक कार्य के लिए योग्य व्यक्ति मिलें, इस उद्देश्य की पूर्ति के लि कृत्य विश्लेषण व कृत्य-विवरण आदि की सहायता ली जाती है और योग्य व्यक्तियों का चयन किया जाता है। चय के बाद उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता है और तत्पश्चात् कार्य पर नियुक्त किया जाता है। कार्य के बँटवारे २ कार्य के निष्पादन में निश्चितता आ जाती है।

(5) उपयुक्त अधिकार सौंपना (Delegating Adequate Authority) आवश्यक अधिकार सौंपने व कार्य इस मान्यता पर आधारित होता है कि कोई भी व्यक्ति उस समय तक अपने दायित्वों का निर्वाह भली प्रकार नई कर सकता जब तक कि उसे पर्याप्त एवं आवश्यक अधिकार न सौंप दिय जायें। अधिकार सौंपते सम्मय अधीनस्थों दे कार्य की प्रकृति तथा उनकी संगठन में स्थिति आदि को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(6) समन्वय सन्तुलन एवं सम्बन्ध स्थापना (Establishing Coordination, Balance anc Relationships) - संगठन प्रक्रिया के इस चरण के अन्तर्गत व्यक्तियों, विभागों तथा कार्य-समूहों की क्रियाओं, संस्थ के उद्देश्यों और साधनों आदि के बीच समन्वय, सन्तुलन तथा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। संगठन प्रणाली में सर्भ स्तरों पर संचार व्यवस्था की जाती है और हर व्यक्ति को उसकी संगठनात्मक स्थिति का ज्ञान कर दिया जाता है।

(7) संगठन संरचना की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना (Evaluating the Effectiveness of Organisational Structure) यह संगठन प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। परिस्थितियों में परिवर्तन होते रहते हैं और संस्थाओं का आकार बड़ा होता जाता है। इसलिए इस चरण पर विद्यमान संगठन संरचना की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है और वांछित समायोजन किये जाते हैं। इस प्रकार संगठन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया इन चरणों से होकर पूर्ण होती है तथा इस प्रक्रिया के सुचारु रूप से पूर्ण होने पर ही संगठन के वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

7.9 संगठन के सिद्धान्त (Principles of Organisation)

अबन्ध विचारधारा के विकास की प्रारम्भिक अवस्था से ही विभिन्न विधारकों ने संगठन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जैसे 20वीं सदी के प्रथम दो दशकों में टेलर एवं फेयोल ने प्रबन्ध के सिद्धान्तों के साथ-साथ संगठन के सिद्धान्तों का भी वर्णन किया है। बाद में प्रबन्ध के प्रत्येक विचार के साथ संगठन सम्बन्धी सिद्धान्तों की रचना की गई है। इस प्रकार संगठन के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में दो अलग-अलग आयाम विकसित हुए, जिन्हें संगठन परिकल्पना (Organisation theory) कहा जाता है। ये परिकल्पनाएँ परम्परावादी एवं आधुनिक रूप में विकसित हैं। इन्हीं के आधार पर संगठन के सिद्धान्त भी प्रतिपादित किये गये हैं जो इस प्रकार हैं-

1. **संगठन के परम्परावादी सिद्धान्त** (Classical Principles of Organisation) परम्परावादी विचारकों के अनुसार संगठन की संरचना कुछ सिद्धांतों पर आधारित होती है, जो सभी प्रकार की संस्थाओं पर लागू होते हैं। इन सिद्धांतों का प्रतिपादन टेलर, फेयोल, मैक्सवेबर, लिण्डाल शेल्डन, उर्विक आदि विचारकों ने किया है। इनके प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

(1) **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त** (Principle of Specialization) विशिष्टीकरण का सिद्धान्त यह बताता है कि कर्मचारियों में कार्यों का विभाजन एवं उपविभाजन इस प्रकार करना चाहिये कि किसी एक श्रमिक से एक समय में केवल एक ही कार्य लिया जाये जिससे वह अधिकतम योग्यता एवं कार्यक्षमता पूर्वक कार्य कर सके। कार्य का विभाजन करते समय कर्मचारियों की योग्यता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। विशिष्टीकरण द्वारा कर्मचारियों की योग्यता में वृद्धि होती है, अतः वह कम समय में अधिक कार्य कर सकता है। कार्यानुसार विभाजन हो जाने से कार्य के निरीक्षण में भी सुविधा रहती है। टेलर महोदय ने जो अपना क्रियात्मक संगठन का प्रारूप प्रदान किया है वह इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

(2) **विभागीकरण का सिद्धान्त** (Principle of Departmentation) जब किसी संस्था में विशिष्टीकरण का लाभ लेने के लिए श्रम-विभाजन का उपयोग किया जाता है तो विभिन्न क्रियाओं का विभाजन कई प्रकार को उप-क्रियाओं में हो जाता है। इन उप-क्रियाओं का निष्पादन कुशलतापूर्वक तभी हो पाता है जब इनको अलग-अलग विभागों में रखा जाता है। परम्परावादी विचारधारा के अनुसार विभागीकरण की प्रक्रिया उच्च स्तर से प्रारम्भ होकर निचले स्तरों तक जाती है जिसके अन्तर्गत उच्च स्तर से निचले स्तर में आने के प्रत्येक स्तर पर विभागों एवं उनकी क्रियाओं पर नियंत्रण रखने में सुविधा होती है।

(3) **निर्देशों की एकता का सिद्धांत** (Principle of Unity of Directions) विभागीकरण जब संस्था में हो जाता है तो विभिन्न विभागों को दिये जाने वाले निर्देशों में एकरूपता का सिद्धांत लागू किया जाना आवश्यक है। इस सिद्धान्त के अनुसार वे सभी विभाग एक साथ रखे जाने चाहिए जो एक ही योजना से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत विभागों एवं उनकी क्रियाओं पर नियंत्रण रखने में सुविधा होती है।

यह है कि कोई भी व्यक्ति दो अधिकारियों को न तो खुश ही रख सक जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक कर्मचारी को आदेश एक स्थान से ही है कि एक व्यक्ति का एक ही बॉस होना चाहिए। अन्य शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति का एक ही बॉस होना चाहिए।

(5**) समन्वय का सिद्धान्त** (Principle of Coordination) प्रत्येक संस्था का अन्तिम उद्देश्य कार्य संचालन को निर्बाध, लाभप्रद और प्रभावी बनाना होता है। इस हेतु समन्वय का सिद्धान्त अपनाना आवश्यक होता है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि संस्था के उद्देश्यों, साधनों एवं प्रयासों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। समन्वय हेतु संगठन-चार्ट एवं मेनुअल्स का सहारा लिया जा सकता है।

(6) **उत्तरदायित्व एवं अधिकार की तुल्यता का सिद्धांत** (Principle of Parity of Responsibility and Authority) - स्वस्थ संगठन वह कहलाता है जो प्रत्येक कर्मचारी को उसके कार्य-क्षेत्र सम्बन्धी स्पष्ट अधिकार बताता है। इन अधिकारों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की सन्देहपूर्ण स्थिति नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त एक कर्मचारी को एक समय पर दो या अधिक अधिकारियों से आदेश नहीं प्राप्त होने चाहिये।

इसी प्रकार अधिकारों के निर्धारण के साथ-साथ उत्तरदायित्वों का निर्धारण भी बड़ा ही आवश्यक है। इसलिए ही एक स्वस्थ संगठन के अन्तर्गत उत्तरदायित्वों का भी पूर्ण निर्धारण किया जाता है जिससे प्रत्येक कर्मचारी को यह ज्ञान रहे कि यदि वह उचित प्रकार से कार्य सम्पादित नहीं करेगा तो उसके कुछ निश्चित उत्तरदायित्व भी होंगे। उत्तरदायित्व एवं अधिकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अधिकार की प्राप्ति नितान्त आवश्यक है।

(7) **रेखीय एवं कर्मचारी संबंध का सिद्धान्त** (Principle of Line and Staff Relationship) - परम्परावादी विचारकों ने किसी संस्था के अधिकार सम्बन्धों को दो वर्गों में विभाजित किया है ये हैं रेखीय एवं कर्मचारी के रूप में। रेखीय संबंध प्रत्यक्ष उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के मध्य होता है। जिसके द्वारा एक उच्वस्थ अपने अधीनस्थ के समस्त क्रियाकलापों को निर्धारित एवं नियंत्रित करता है। कर्मचारी संबंध विभिन्न क्रियात्मक विशेषज्ञों एवं रेखीय प्रबन्धकों के बीच होता है। जिसमें एक क्रियात्मक प्रबन्धक रेखीय प्रवन्धक को केवल सलाह दे सकता है। इसे स्वीकारना या न स्वीकारना रेखीय प्रबन्धकों पर निर्भर करना है।

(8) **नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त** (Principle of Span of Control) - इस सिद्धांन्त के अनुसार प्रत्येक अधिकारी के नियन्त्रण का क्षेत्र उतना ही विस्तृत होना चाहिए जितने पर कि वह नियन्त्रण कर सके। इस सिद्धांत का

आधार यह है कि प्रत्येक अधिकारी की भी मानवीय सीमायें होती हैं। वह स्वयं अपने कार्य में तथा अपने व्यक्तियों की देखभाल के कार्य में व्यस्त रहता है। अतएव उस अधिकारी के नीचे पाँच छः व्यक्तियों से अधिक नहीं होने चाहिए, अन्यथा वह उनका भली प्रकार मार्गदर्शन, पर्यवेक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण नहीं कर सकेगा। यह ध्यान देने योग्य बात है कि नियन्त्रण का क्षेत्र कितना होना चाहिए? यह प्रत्येक संगठन की स्थिति, आकार, कार्य की प्रकृति, प्रबन्ध की योग्यता, संचार व्यवस्था व अधीनस्थों की योग्यता आदि अनेक बातों पर निर्भर करता है। इस प्रकार यह सिद्धांत 'सम्बन्धों के सिद्धांत' पर आधारित है और बतलाता है कि नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित होना चाहिए।

(9) **सन्तुलन का सिद्धान्त** (Principle of Balance) यह सिद्धान्त विभागों की क्रियाओं में सन्तुलन स्थापित करने पर तथा कर्मचारियों, प्रबन्धकों और विभागों की अधिकार रेखाओं के स्पष्टीकरण पर बल देता है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि विभिन्न विभागों तथा कर्मचारियों को उनके द्वारा किये जाने वाले योगदान के अनुसार कोषों काआनुपातिक वितरण भी किया जाना चाहिए।

(10) **व्याख्या का सिद्धान्त** (Principle of Definition) इस सिद्धान्त के अनुसार कार्यरत व्यक्तियों, अधिकारियों तथा विभागों के कार्यों के क्षेत्रों की सीमाओं का निर्धारण स्पष्टता के साथ किया जाना चाहिए ताकि अनावश्यक मतभेद और भ्रान्तियाँ पैदा न हों। टेलर ने लिखा है कि हर संस्था में किस व्यक्ति को क्या करना होगा, इस हेतु "प्रत्येक संगठन में हरेक की स्थिति लिखित में स्पष्टतः निर्धारित की जानी चाहिए।"

7.10 संगठन के परम्परावादी सिद्धान्तों की समीक्षा (Appraisal of Classical Principles of Organisation)

परम्परावादी संगठन के सिद्धान्तों को जब प्रतिपादित किया था तो इसे अपार समर्थन मिला था क्योंकि इन विचारकों ने संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों को, जो असंगठित थे, को संगठित किया लेकिन बाद में संस्थाओं के आकार-प्रकार

आदि तथ्यों के आधार पर ये सिद्धान्त अपर्याप्त लगने लगे। विभिन्न विद्वानों ने संगठन के इन परम्परागत सिद्धान्तों की समीक्षा अलग-अलग दृष्टिकोणों से की है जिनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है -

(1) परम्परागत सिद्धान्तों का सामान्यीकरण उर्दिक द्वारा बताये गये सिद्धान्त इतने सामान्य हैं कि संगठन के कार्य विशेष को करने के लिये सिद्धान्तों का उसी के अनुरूप होना आवश्यक होता है। जबकि ये सिद्धान्त सामान्य रूप से तो ठीक हैं परन्तु कार्य विशेष के लिये ये अपनी उपयुक्तता सिद्ध नहीं कर पाते।

पापारकता का अभाव ह उदाहरण के रूप में प्रत्येक संस्था का अन्तिम उद्देश्य लाभ कमाना होता है और उद्देश्य का सिद्धान्त इस बात की व्याख्य करता है कि संगठन के प्रत्येक सदस्य को संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संलग्न रहना चाहिये। जबकि आज य | मान्यता अर्थहीन सी प्रतीत होती है, क्योंकि यदि संगठन का प्रत्येक सदस्य संस्था के लाभों को बढ़ाने के लिये र संलग्न रहेगा तो इससे समाज के प्रति अन्याय की भावना को जन्म मिलेगा जो कि किसी भी रूप में अपेक्षित नहीं है

(3) मानवीय तत्व का अभाव उर्विक ने अपने सिद्धान्तों में मानवीय तत्व के महत्व को वित्कुल ही भुल् दिया है जबकि आज की संगठन संरचना में इस तत्व का स्थान सर्वोपरि है और ऐसा समझा जाता है कि कर्मचार संस्था की ऐसी सम्पत्ति है जो कि अन्य साधन के द्वारा प्रतिस्थापित नहीं की जा सकती।

(4) सामूहिक भावना का अभाव समीक्षकों का यह भी मत है कि संगठन के परम्परागत सिद्धान्नों में सामूहिन् भावना का अभाव है जबकि कोई भी संगठन समूह भावना के अभाव में सफलता प्राप्त कर सकेगा, यह कठिन ही नह अपितु नितान्त असम्भव है।

उपर्युक्त समीक्षा के अतिरिक्त आधुनिक विचारकों का यह भी विचार है कि इन सिद्धान्तों में अभिप्रेरणा तथ अहम भावना जैसे मनोवैज्ञानिक तत्वों की अवहेलना की गयी है जबकि आज ये संगठन संरचना का आवश्यक अंग समझे जाते हैं।

II. संगठन के आधुनिक सिद्धान्त (Modern Principles of Organisation)

परम्परावादी संगठन सिद्धान्तों में नव-प्रतिष्ठित विचारकों ने कुछ संशोधन किए हैं, जैसे नियंत्रण विस्तार के सीमित से विस्तृत किया गया, लम्बवत् संगठन के स्थान पर क्षैतिज संगठन आदि। ये आधुनिक सिद्धान्त मुख्यत मानवीय व्यवहार दृष्टिकोण, तंत्र एवं आकस्मिकता दृष्टिकोण पर आधारित हैं। संगठन के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

(1) कुशलता का सिद्धान्त (Principle of Efficiency) आज इस बात की आवश्यकता है कि जो भी संगठन बनाया जाये वह ऐसा हो कि उपक्रम के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को न्यूनतम लागत एवं सगग्य भनभि में पाप्न किया जा सके। कूण्ट्ज एवं ओडोनेल के अनुसार एक संगठन उस समय कुशल माना जाता है जबकि वह निर्धारित लक्ष्यों को न्यूनतम लागत पर प्राप्त करने में समर्थ हो।

(2) अपवाद का सिद्धान्त (Principle of Exception) इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि केवल अपवादजनक स्थितियाँ और मामले ही उच्च प्रबन्धकों के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने चाहिए। जो कार्य नियमित रूप से सम्पन्न हो रहे हों उनके बारे में उच्चाधिकारियों से अधिक पूछताछ नहीं की जानी चाहिए क्योंकि उच्चाधिकारियों का

समय मूल्यवान होता है और उसे बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए।

(3) पदाधिकारियों से सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Scalar Relations) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक संगठन में कुछ अधिकारी उच्च वर्ग एवं कुछ अधिकारी निम्न वर्ग में सम्मिलित किये

जाते हैं। सभी कर्मचारियों या अधिकारियों को एक स्तर पर रखना सम्भव नहीं होता है। इसलिए जहाँ तक हो ऊँच-नीच व्यवस्था अर्थात् पद-सोपानिकता को कम किया जाना चाहिये और वरिष्ठ एवं कनिष्ठ अधिकारियों में परस्पर औपचारिक सम्बन्ध श्रृंखला की स्थापना की जानी चाहिये। प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि वह इस श्रृंखला का उल्लंघन न करे।

(4) निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity) इस सिद्धान्त की मान्यता यह है कि समय बदलने के साथ-साथ आवश्यकतायें भी बदलती हैं, तकनीकी पद्धतियाँ परिवर्तित होती हैं, संगठन के आकार में परिवर्तन होते हैं और इन परिवर्तनों के अनुरूप संगठन को बनाये रखने के लिए उसका पुनर्गठन करना जरूरी होता है। इसीलिए संगठन की संरचना इस सिद्धान्त के अनुसार ऐसी होनी चाहिये कि उसमें समय की आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन किये जा सकें।

(5) अनुरूपत्ता का सिद्धान्त (Principle of Homogeneity) इस सिद्धान्त के अनुसार एक समान कार्य करने वाले कर्मचारियों के अधिकारों तथा दायित्वों में एकरूपता होनी चाहिये। इसी प्रकार सिद्धान्तों में भी एकता होनी चाहिये जिससे न तो अनावश्यक मतभेद जन्म ले सकें और न संघर्ष हों। इसके अतिरिक्त कार्य निष्पादन में भी श्रेष्ठता तथा एकरूपता आ सके।

(6) सरलता का सिद्धान्त (Principle of Simplicity) इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन संरचना सरल होनी चाहिये और ऐसी होनी चाहिये जिससे कि यह मितव्ययिता तथा प्रभावशीलता के लाभ उपलब्ध कर सके। संगठन संरचना का निर्माण इस तरह से करना चाहिए जिससे वह सरल से सरल एवं मितव्ययी हो। संगठन संरचना सरल होने पर ही कार्य कुशलतापूर्वक हो सकता है तथा सन्देशवाहन सरल एवं प्रभावी रहता है।

(7) अन्तिम उत्तरदायित्व का सिद्धान्त (Principle of Ultimate Responsibility)- इस सिद्धान्त के अनुसार, "अधीनस्थों के कार्य के लिए उच्चाधिकारियों का अन्तिम दायित्व होना आवश्यक है।" किन्तु इसका यह अर्थ अर्थात् जहाँ तक स्वामी के प्रति दायित्व का प्रश्न है, अधिकारियों का ही होना चाहिए।

(8) उचित सन्तुलन (Appropriate Balance) संगठन संरचना का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि संगठन में उचित सन्तुलन बना रहे और अधिकारों का केन्द्रीयकरण न हो। सामान्यतः सिद्धान्त रूप में यह अपनाया जाता है कि उत्तरदायित्व एवं अधिकार में तुलना होनी चाहिए, परन्तु व्यवहार अनौपचारिक सम्बन्धों के कारण उत्तरदायित्व एवं अधिकार की तुल्यता प्रभावित होती रहती है। फलस्वरूप कुछ व्यक्तियों के पास अधिकार की मात्रा उनके उत्तरदायित्व की तुलना से अधिक होने लगती है तब यह केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति हो जाती है। यह सिद्धान्त अधिकार और दायित्व में उचित सन्तुलन की सिफारिश करता है।

संगठन के आधुनिक सिद्धान्तों की समीक्षा (Appraisal of Modern Principles of Organisation) ये सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हैं जो वर्तमान समय के संगठनों के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इन सिद्धान्तों में व्यावहारिकता का पूर्ण ध्यान रखते हुए उन सभी तथ्यों का ध्यान भी रखा गया है जो विशेष रूप से बड़ी संस्थाओं के लिए अधिक उपयुक्त हैं जो गतिशील वातावरण में कार्य करते हैं। इन सिद्धान्तों की सबसे बड़ी कमी यही है कि इन्हें लघु इकाइयों में सरलता से लागू नहीं किया जा सकता है। यदि इस सन्दर्भ को देखा जाए तो ये सिद्धान्त भी सार्वभौमिक नहीं कहे जा सकते हैं। इन्हें लागू करने में एक और समस्या यह आती है कि ये परिस्थितिजन्य है। अतः इन सब सिद्धांतों को लागू करने के

लिए उन परिस्थितियों एवं कारकों का विश्लेषण करना आवश्यक है जिनको इन्हें लागू करना है।

इन सब बातों व सीमाओं के बाद भी ये आधुनिक सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक एवं इस बढ़ती हुई औद्योगिक इकाइयों के युग में पूर्णतः प्रासंगिक माने जा सकते हैं।

7.11 संगठन की आवश्यकता अथवा महत्व (Need or Importance of Organisation)

हमारे कारखाने ले जाओ, हमारा व्यापार ले जाओ, परिवहन के साधन एवं धन ले जाओ, हमारे पास कुछ न छोड़ो किन्तु हमारा संगठन छोड़ दो और चार वर्ष के अन्दर हम अपने आपको पुनः स्थापित कर लेंगे। एण्ड्रयू कार्निगी

यह कथन सन् 1901 में अमेरिका के एण्ड्रयू कार्निगी ने अपनी विशाल सम्पत्ति को 'अमेरिका के इस्पात निगम' (United States Steel Corporation) को बेचते समय व्यक्त किये थे। इस कथन में संगठन का महत्व एवं संगठन की शक्ति का आभास स्पष्ट रूप से होता है। यह कथन संगठन के महत्वपूर्ण घटक जिसे 'माधव' कहा जाता है, की महत्ता को बतलाता है। यह संगठन के कर्मचारी ही हैं जिनके सहयोग से सफलता प्राप्त होती है। संगठन के इन कदमों के कारण आज प्रत्येक व्यावसायिक एवं औद्योगिक संस्था के लिए संगठन की आवश्यकता महसूस की जाती है तथा निम्न बिन्दुओं के द्वारा संगठन का महत्व एवं लाभों को अभिव्यक्त किया जा सकता है:-

(1) संगठन से प्रशासन व प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि होती है (Increase in Administrative & Managerial Capacity) साधारणतया प्रशासन का मुख्य कार्य नीति-निर्धारण करना तथा प्रवन्ध का कार्य प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करना होता है, किन्तु संगठन ही वह कार्य प्रणाली है, जिसके द्वारा आवश्यक विभागों में व्यक्तियों या समूहों द्वारा किये जाने वाले

कार्य को इस प्रकार संयोजित किया जाता है कि उसके द्वारा उपलब्ध प्रयत्नों को श्रृंखलाबद्ध करके कुशल, व्यवस्थित एवं समन्वित बनाया जा सके। इस प्रकार संगठन पर्याप्त सीमा तक प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करता है तथा काम करने में देरी, गलतफहमी आदि को दूर करता है। संगठन से मानवीय एवं भौतिक साधनों का पूर्ण प्रयोग हो जाता है, क्योंकि श्रेष्ठ संगठन की दशा में ही उचित व्यक्तियों की उचित पदों पर नियुक्त करके उनकी योग्यताओं व गुणों का पूरा-पूरा सदुपयोग हो सकता है। संगठन के अभाव में यह सम्भव नहीं हो सकता।

(2) **सामूहिक प्रयासों को प्रभावशाली बनाने के लिए** (For Making Collective Efforts Effective) क्लाड एस. जार्ज का मत है कि "संगठन स्वयं में कोई उद्देश्य नहीं है, अपितु उद्देश्य प्राप्ति का एक साधन है। संगठित प्रयासों के माध्यम से हम अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। संगठन वैयक्तिक सीमाओं पर विजय पाने का एक साधन है।"

जार्ज का यह कथन बतलाता है कि संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सभी सदस्यों को मिल-जुलकर कार्य करना होता है। संगठन का प्रवन्धकीय कार्य सामूहिक प्रयासों को सुगमता एवं प्रभावशीलता के साथ सम्पन्न होने का

(3) **समन्वय में सुविधा** (Helpful in Co-ordination) संगठन का निर्माण करते समय उपक्रम व क्रियाओं का वर्गीकरण एवं समूहीकरण किया जाता है। वर्गीकरण क्रियाओं के समूहीकरण से जिन विभागों का निर्मा होता है उनके मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना की जाती है। उपक्रम के सभी विभाग सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति लिए प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप समन्वय का कार्य सुविधाजनक हो जाता है।

(4) **रचनात्मक विचारधारा को प्रोत्साहन** (Stimulation of Creative Thinking) कुशल संगठन: सभी कार्य व्यवस्थित रूप से होते हैं, अव्यवस्था की कोई सम्भावना नहीं होती है। अतः संगठन में कार्यरत कर्मचा- रचनात्मक

दृष्टिकोण रखते हैं। वे सदैव उपक्रम के विकास तथा नवीनता के प्रति सजग रहते हैं। उनमें किसी प्रका का असन्तोष नहीं रहता है। अतः उनकी सोचने-समझने की शक्ति बढ़ती है तथा वे संगठन के लिए रचनात्मक का करते हैं।

(5) **विशिष्टीकरण के माध्यम से मानवीय प्रयत्नों का अधिकतम उपयोग** (Optimum Use of Humar Efforts Through Specialisation) संगठन एक साधन है जिसके माध्यम से विशिष्टीकरण सम्भव होता है इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यक्तियों में कार्य का विभाजन उनकी योग्यतानुसार किया जाता है। एक ही कार्य करते-कर वे उसके विशेषज्ञ बन जाते हैं। अतः उनके प्रयत्नों का अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है। संगठन क्षमता के आधा पर मानवीय प्रयत्नों को हम अधिकाधिक उपयोग में ला सकते हैं। कई व्यक्तियों की विशेषज्ञ सेवाएँ मिल सकती हैं

(6) **प्रवन्धकीय कार्यक्षमता में वृद्धि** (Increase in Managerial Effeciency) वर्तमान समय में योग्य एवं पेशेवर प्रबन्धकों की काफी कमी है। प्रबन्ध का संगठन कार्य इस कमी को दूर करने में पूर्ण सहयोग करता है संगठन संरचना में अधिकारों के उचित भारार्पण की व्यवस्था होती है जिससे प्रबन्ध के प्रत्येक घटक को पूर्ण महत्व देते हुए उनकी कार्यक्षमता में अभिवृद्धि हेतु अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(7) **सुविधाजनक एवं प्रभावपूर्ण समन्वय के लिए** (For the Convenient and Effective Co-ordination) - वर्तमान व्यावसायिक एवं औद्योगिक संस्थाओं का आकार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों की संख्या बढ़ती जा रही है। विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति को बल मिल रहा है। परिणामस्वरूप, समन्वय की समस्यायें नये-नये स्वरूपों में उत्पन्न हो रही हैं। समन्वय की समस्याओं को समाप्त करने तथा समन्वय को प्रभावी बनाने के लिए संगठन कार्य का महत्व बढ़ता जा रहा है। कारण कि स्वस्थ संरचनात्मक सम्बन्धों का निर्माण संगठन कार्य पर निर्भर रहता है।

(8) **मानवीय साधनों के सववोंत्तम उपयोग के लिए** (For the Best Use of Human Resources)- संगठन-कार्य मानवीय साधनों के सर्वोत्तम उपयोग को सम्भव बनाने वाला एक महत्वपूर्ण उपाय है। श्रम-विभाजन विशिष्टीकरण तथा नियन्त्रण के विस्तार के बीच संगठन-कार्य उचित सन्तुलन स्थापित करके मानवीय साधनों की लागत को कम करने में सहयोग करता है। कर्मचारियों के अधिकार-दायित्वों की स्पष्ट विवेचना के जरिये भी संगठन कार्य उनकी कार्यकुशलवा में वृद्धि करता है। व्यक्तियों को उनकी योग्यता और रुचि के अनुसार कार्य सौंपने से भी उनका हार्दिक सहयोग प्राप्त होता है। यही कारण है कि मानवीय साधनों के सर्वोत्तम उपयोग की दृष्टि से संगठन कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(9) **व्यावसायिक सफलता के लिए** (For the Business Success)- कीनेथ सी. टोवे लिखते हैं कि "स्वस्थ संगठन प्रत्येक व्यावसायिक समस्या का समाधान होता है। एक कमजोर संगठन अच्छे उत्पादन को भी धूल में मिला देता है और एक अच्छा संगठन कमजोर उत्पादन के जरिये अच्छे उत्पादक को बाजार से भगा देता है।" यह कथन बदलता है कि अच्छी संगठन संरचना व्यवसाय की सफलता को सुनिश्चित करती है। इसलिए संगठन कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(10) **मनोबल का विकास** (Morale Development) कुशल संगठन में प्रत्येक कर्मचारी को इस बात की जानकारी होती है कि उसके क्या दायित्व हैं तथा उन दायित्वों को पूरा करने के लिए उसे क्या अधिकार प्राप्त हैं? दायित्वों एवं अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या के कारण कर्मचारी को संगठन में अपने अस्तित्व का बोध होता है तथा वह सदैव उच्च कुशलता के लिए प्रयत्नशील रहता है। कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होने से संस्था सदैव प्रगति करती है।

(11) **नियन्त्रण में सुविधा** (Helpful in Control) कुशल संगठन संरचना के अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी तथा अधिशासी का कार्यक्षेत्र एवं दायित्व निश्चित

होने से नियन्त्रण कार्य सरल हो जाता है। कार्यों, अधिकारों तथा दायित्वों के निश्चित होने के कारण संगठन के विभिन्न स्तरों पर अनावश्यक हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती है तथा उच्च प्रबन्धकों को केवल महत्वपूर्ण नियन्त्रण केन्द्रों पर ही ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

(12) **प्रभावी सन्देशवाहन** (Effective Communication) - संगठन ही सन्देशवाहन प्रक्रिया को प्रभावशील बनाता है। सन्देशवाहन प्रक्रिया कुशल होने पर उच्च प्रबन्ध कर्मचारियों को उपक्रम के उद्देश्य की ओर आकर्षित कर सकता है तथा निम्न स्तर पर कार्यशील कर्मचारी अपनी समस्याएँ उच्च प्रबन्ध तक पहुँचा सकते हैं। अच्छी संगठन संरचना में पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या की जाती है जिससे यह ज्ञात करना सरल होता है कि सूचनाओं का आदान-प्रदान किनके माध्यम से होगा।

(13) **भ्रष्टाचार पर रोक** (Check on Corruption) कुशल संगठन में सभी कर्मचारियों के अधिकारों एवं दायित्वों की स्पष्ट व्याख्या होती है। संगठन के विभिन्न स्तरों पर निरन्तर नियन्त्रण कार्य किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को योग्यतानुसार कार्य एवं पुरस्कार दिया जाता है। ऐसी स्थिति में कर्मचारी अपना कार्य ईमानदारी तथा निष्ठा के साथ करते रहते हैं, जिससे भ्रष्टाचार पर रोक लगी रहती है।

(14) **कर्मचारियों को उपक्रम में बनाये रखना** (To Keep Employees in the Enterprise) - कुशल संगठन में कर्मचारी सन्तुष्ट रहते हैं। सन्तुष्ट कर्मचारी उपक्रम को छोड़ने के बारे में नहीं सोचते हैं। अतः कुशल कर्मचारी कुशल संगठन में बने रहते हैं।

उपरोक्त सभी तथ्यों से संगठन का महत्व स्पष्ट होता है। संगठन ही वह तन्त्र है जो उपक्रम के सभी कर्मचारियों को निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शक्ति प्रदान करता है। संगठन ही वह माध्यम है जिसके द्वारा संस्था के कर्मचारी निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं।

7.12 आदर्श संगठन (Ideal Organisation)

आदर्श संगठन से आशय ऐसे संगठन से होता है जो उपक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो, ऐसे संगठन में साधनों की पर्याप्त व्यवस्था होती है। प्रवन्धशास्त्री पीटर ड्रकर के अनुसार, "सर्वोत्तम संगठन वह होता है जो सामान्य व्यक्तियों को असामान्य कार्य करने में सहयोग देता है।" आदर्श संगठन में संगठन के सभी सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाता है। यह तो सर्वसामान्य बात है कि जिस संगठन में सभी सिद्धान्तों का पालन किया जाता है वह अपने लक्ष्यों को आसानी से पूरा कर सकता है। अतः वह आदर्श संगठन ही होगा।

आदर्श अथवा स्वस्थ संगठन की विशेषताएँ (Essentials of Ideal or Sound Organisation)

(1) **प्रभावशाली नेतृत्व** आदर्श संगठन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि संगठन का नेतृत्व प्रभावशाली होना चाहिये। संगठन में उच्च अधिकारी नेतृत्व प्रदान करते हैं। अतः उच्च अधिकारियों द्वारा यदि प्रभावशाली ढंग से निर्देशन किया जाता है और कर्मचारियों का उचित मार्गदर्शन किया जाता है तो कर्मचारी अधिक कुशलता से कार्य सम्पन्न करते हैं।

(2) **पर्याप्त साधन** - एक अच्छे संगठन में सभी प्रकार के साधन उपलब्ध होने वाहिए। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मशीन, कच्चा माल तथा अन्य प्रकार के साज-सामान की पूरी व्यवस्था करनी चाहिए। आवश्यक सामान यदि समय पर उपलब्ध नहीं होता है तो कार्य को सम्पन्न करने में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है।

(3) **स्थायित्वता** - आदर्श संगठन में स्थायित्वता का गुण होना आवश्यक होता है। यद्यपि संगठन में लोचशीलता एवं निरन्तरता का गुण भी होना चाहिये, परन्तु संगठन ऐसा होना चाहिये जिससे दीर्घकाल तक उपक्रम के उद्देश्यों को बिना कठिनाई के पूरा किया जा सके।

(4) **लोचशीलता** आदर्श संगठन में लोचशीलता की विशेषता भी पायी जाती है। संगठन को कभी भी स्थिर नहीं होना चाहिये। संगठन में इतनी लोचशीलता होनी चाहिये कि संस्था में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप संगठन में भी परिवर्तन किया जा सके। इस परिवर्तन से उपक्रम की कार्य-कुशलता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। प्रो. जोन्स के अनुसार, "एक संगठन की रचना इस प्रकार से की जानी चाहिये कि वह व्यवसाय के विकास, सुधार तथा बाहरी परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही अपने आपको परिवर्तित कर सके।"

(5) **स्पष्ट उद्देश्य** - प्रभावशाली संगठन की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि संगठन के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिये। संगठन के जो भी उद्देश्य निर्धारित किये जायें वे स्पष्ट रूप से परिभाषित होने चाहिये तथा संगठन में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को समझ में भी आने चाहिये ।

इस प्रकार एक आदर्श संगठन में उपर्युक्त विन्दुओं तथा ऐसी कार्यक्षमता का होना आवश्यक है जो अपने से जुड़े उत्पादन के 'उद्यम' के प्रत्येक घटक को सकारात्मक रूप से अभिप्रेरित कर सके ताकि उपक्रम या संस्था के नियोजित्त लक्ष्यों को पूर्ण किया जा सके।

1. कई विद्वानों ने संगठन के दोष अथवा बुराई का भी समावेश किया है तथा कुछ ने 'बुरे संगठन के दो' शीर्षक से कुछ बुराइयाँ या दोष गिनाये हैं लेकिन मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि 'संगठन कभी बुराई या दोष अथ हानिपूर्ण' हो ही नहीं सकता है। हाँ, संगठन का लक्ष्य दोषपूर्ण हो सकता है उसके उद्देश्यों में दोष आ सकता है लेकि 'संगठन' का अर्थ सदैव सकारात्मक ही लिया जाना चाहिए।

2. संगठन संरचना अब नये पाठ्यक्रम का अंग नहीं है, अत: संगठन संरचना को इस अध्याय में सम्मिलि नहीं किया गया है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों एवं पाठकों को पाठ्यक्रमानुसार सामग्री ही उपलब्ध कराना है लेखक

7.13 सार संक्षेप

संगठन (Organisation) एक संरचित प्रणाली है जिसमें संसाधनों, गतिविधियों और व्यक्तियों को लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित किया जाता है। संगठन की प्रकृति में समन्वय, उद्देश्यपूर्ण क्रियाएँ और दक्षता शामिल होती है। इसकी प्रक्रिया में कार्य विभाजन, प्राधिकरण, और समन्वय के चरण शामिल होते हैं। संगठन के सिद्धांत, जैसे एकता, प्राधिकरण और नियंत्रण, इसे कुशल बनाते हैं। संगठन के महत्व में लक्ष्य प्राप्ति, संसाधनों का कुशल उपयोग, और संगठनात्मक स्थिरता प्रमुख हैं। आदर्श संगठन में स्पष्ट उद्देश्य, लचीला ढाँचा और दक्षता का उच्च स्तर होता है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. संगठन का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. संसाधनों का प्रबंधन
   B. लक्ष्यों की प्राप्ति
   C. कार्य विभाजन
   D. उपरोक्त सभी

2. संगठन की प्रक्रिया का पहला चरण क्या है?
   A. कार्य विभाजन
   B. समन्वय
   C. प्राधिकरण का निर्धारण
   D. नियंत्रण

3. संगठन ________ संसाधनों का कुशल उपयोग करता है।

4. संगठन के सिद्धांतों में ________ और नियंत्रण प्रमुख हैं।

7.14 मुख्य शब्द

1. **संगठन (Organisation)**: कार्यों और संसाधनों का व्यवस्थित प्रबंधन।
2. **प्रक्रिया (Process)**: कार्य विभाजन, समन्वय और प्राधिकरण।
3. **सिद्धांत (Principles)**: संगठनात्मक दक्षता के लिए आवश्यक नियम।
4. **तत्व (Elements)**: संगठन के घटक, जैसे प्राधिकरण और जिम्मेदारी।
5. **आदर्श संगठन (Ideal Organisation)**: कुशल, लचीला और स्पष्ट संरचना।
6. **महत्व (Importance)**: लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान।
7. **समन्वय (Coordination)**: संगठन के विभिन्न हिस्सों को एकीकृत करना।
8. **परम्परावादी सिद्धांत (Traditional Principles)**: संगठन के मूलभूत नियम।

7.15 स्व प्रगति-प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: D,

उत्तर 2: A,

उत्तर 3: उपलब्ध,

उत्तर 4: प्राधिकरण

7.15 संदर्भ (References)

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). Management. Pearson Education.

Mintzberg, H. (2018). Structure In Fives: Designing Effective Organizations. Prentice Hall.

Drucker, P. F. (2017). The Effective Executive. HarperBusiness.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). Management: Concepts, Practice & Cases. McGraw Hill Education.

Gupta, C. B. (2021). Management: Theory And Practice. Sultan Chand & Sons.

Sharma, R. K. (2021). Principles And Practices Of Management. Kalyani Publishers.

7.16 अभ्यास प्रश्न

1. संगठन किसे कहते हैं? संगठन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए

2. संगठन से आपका क्या आशय है? इसकी विशेषताएँ बताइये तथा संगठन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिये

3. संगठन की प्रक्रिया को समझाइए। एक आदर्श संगठन के तत्वों का वर्णन कीजिए।

4. संगठन के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।

5. संगठन की परिभाषा दीजिए। संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

6. संगठन क्या है? इसके महत्व को बताइये।

7. संगठन को परिभाषित कीजिए तथा संगठन के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

8. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये -

(अ) संगठन की अवधारणाएँ

(ब) संगठन के उद्देश्य

(स) संगठन के तत्व

इकाई -8

संगठन संरचना एवं चार्ट

(ORGANISATION STRUCTURE AND CHARTS)

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 संगठन-संरचना

8.4 विभागीय या सैनिक संगठन या रेखीय संगठन

8.5 रेखा और कर्मचारी संघर्ष

8.6 क्रियात्मक संगठन

8.7 सहायक प्रारूप

8.8 संगठन के रूप का चुनाव

8.9 संगठनात्मक चार्ट

8.10 सार संक्षेप

8.11 मुख्य शब्द

8.12 संदर्भ सूची

8.13 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हम यह देख चुके हैं कि विभिन्न विभागों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित करने की कला को ही वाणिज्य की भाषा में 'संगठन' कहते हैं। यह प्रबन्ध का ढाँचा होता है। बिना उपयुक्त संगठन के उपक्रम एक मृतक के समान होदा है। उपक्रम के आकार में वृद्धि होने से संगठन भी बढ़ता है परन्तु इसके बढ़ने से कई समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। इन समस्याओं का हल तभी निकाला जा सकता है जब हम संगठन को विस्तृत बनायें। उसे विभिन्न रूप दें जो विभिन्न प्रकार के उपक्रमों एवं परिस्थितियों में उपयुक्त हो सके। इसी के लिए इसे विभिन्न रूपों में बाँटा जाता है। किस उपक्रम में संगठन का कौन सा रूप उपयुक्त होगा, यह उपक्रम की प्रकृति, आकार, क्षेत्र, उत्पादन की किस्म तथा कार्य प्रणाली पर निर्भर करता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. **संगठन संरचना** की अवधारणा और महत्व को समझ सकें।
2. **विभिन्न संगठनात्मक प्रारूपों** (रेखीय, क्रियात्मक, सहायक) की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकें।
3. **संगठनात्मक चार्ट** की व्याख्या और निर्माण कर सकें।
4. **संगठन संरचना के प्रकारों** का चुनाव और उनकी उपयुक्तता पर चर्चा कर सकें।

8.3 संगठन-संरचना (Organisation Structure)

संगठन संरचना से आशय एक उपक्रम के सम्पूर्ण संगठन की व्यवस्था से लगाया जाता है। संगठन संरचना का निर्धारण करना संस्था का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। पीटर एफ. ड्रुकर ने लिखा है कि,

"संगठन संरचना एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है तथा गलत संरचना व्यवसाय की कार्यक्षमता को भयंकर रूप "से प्रभावित करेगी।"

संगठन संरचना का विचार करते समय जिन बातों का ध्यान रखना चाहिए वे हैं, संगठन के उद्‌देश्य, आकार, प्रबन्धकीय कार्य, विकास की दर, विभागीकरण, नीतियाँ, बाजार के प्रकार, प्रथायें एवं परम्परायें, पद समता, उच्च प्रबन्धकों की योग्यतायें, सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकतायें, नियन्त्रण का विस्तार आदि। इन्हें संगठन संरचना का घटक कहा जाता है।

संगठन के प्रारूप (Forms of Organisation)

संगठन के कई रूप होते हैं। संगठन की व्यवस्था करने के पूर्व यह निर्णय करना जरूरी होता है कि संगठन को कौन सी प्रणाली अपनाई जाये। संगठन के प्रारूपों को मुख्यतया दो भागों में बाँटा गया है:

(1) मुख्य प्रारूप (Main Forms),

(2) सहायक प्रारूप (Subsidiary Forms)

(1) मुख्य प्रारूप (Main Forms)

ये वे प्रारूप होते हैं जो अधिकांशतः उपक्रमों द्‌वारा अपनाये जाते हैं और अधिक प्रचलित हैं। इसमें निग्न संगठन सम्मिलित किये जाते हैं:

(अ) विभागीय संगठन या रेखीय संगठन (Departmental or Line Organisation),

(ब) लम्बवत् तथा कर्मचारी संगठन (Line and Staff Organisation),

(स) प्रक्रियात्मक संगठन (Functional Organisation) I

8.4 विभागीय या सैनिक संगठन या रेखीय संगठन (Departmental or Military or Line Organisation)

यह संगठनात्मक ढाँचे का सबसे पुराना रूप है। इसे रेखीय (Line) संगठन के नाम से भी पुकारा जाता है। यह क्रम संगठन (Scalar) भी कहा जाता है। इसे सैनिक संगठन इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अपने शुद्ध रूप में अभी कुछ समय पहले तक सेना में प्रयोग किया जाता था। सैनिक संगठन में यदि कोई अधिकार देना होता है तो वह सर्वोच्च अधिकारी से निम्न और निम्नतर अधिकारियों द्वारा अंतिम सैनिक पंक्ति तक पहुँचाया जाता है। इसमें आदेश 'ऊपर से नीचे की ओर' चलते हैं। यदि कोई प्रार्थना करना हो तो वह 'नीचे से ऊपर की ओर' चलती है। चूँकि इसमें अधिकार एक लाइन के रूप में प्रवाहित होता है इसीलिए इसे line या vertical संगठन कहा जाता है। व्यवसाय में अनेक विभाग होते हैं। इसलिए वह विभागीय संगठन के नाम से भी पुकारा जाता है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकार सीधे लम्बवत् रूप में उच्च अधिकारी द्वारा उपप्रबन्धक को, अर्थात् सबः ऊपर वाले व्यक्ति से सबसे नीचे वाले व्यक्ति तक पहुँचाये जाते हैं। इन उपप्रबन्धकों को व्यापार के निश्चित क्षेत्रों व उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। इस व्यापार प्रणाली में प्रत्येक प्रबत्धक को सभी निम्न प्रबन्धकों के नियंत्रण का सामान अधिकार प्राप्त होता है। इसमें उच्च अधिकारी सीधे अपने नीचे वाले व्यक्तियों को अधिकारों का हस्तान्तरण करते हैं इस प्रकार इसके सरलतम रूप में, उच्चतम अधिकारी की पूरी संख्या के श्रमिकों पर सीधा अधिकार होता है। इसव विशेषता यह है कि किसी भी अधीनस्थ को दो उच्चतम अधिकारियों की आज्ञाओं का पालन नहीं करना होता है अधीनस्थों को उनके निकटतम उच्च अधिकारियों द्वारा आदेश दिये जाते हैं। इस प्रकार के संगठन की निम्नलिखि विशेषतायें हैं :

(1) संगठन एक बंबीर की भाँति होता है।

(2) आदेश केवल एक ही पदाधिकारी के द्वारा मिलने की व्यवस्था होती है।

(3) कर्मचारियों को आदेश अपने निकटतम अधिकारी से मिलते हैं,

(4) अधिकारी के नियंत्रण में कार्य करने वाले कर्मचारियों की पंत्या सीमित होती है।

इस प्रकार के संगठन कुछ विशेष प्रकार के उपक्रमों में ही अपनाया जाता है। ऐसे उपक्रमों की सामान्यतय कुछ विशेषताएँ होती हैं, जैसे उपक्रम की इकाई का आकार बहुत बड़ा तथा जटिल न हो, उपक्रमों की क्रियाओं क" सरलतापूर्वक विभाजन किया जा सकता हो, नियोजित कर्मचारियों की संख्या सीमित हो तथा व्यावसायिक क्रियाओं क संख्या सीमित हो ।

रेखागत संगठन को निम्नलिखित चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है :

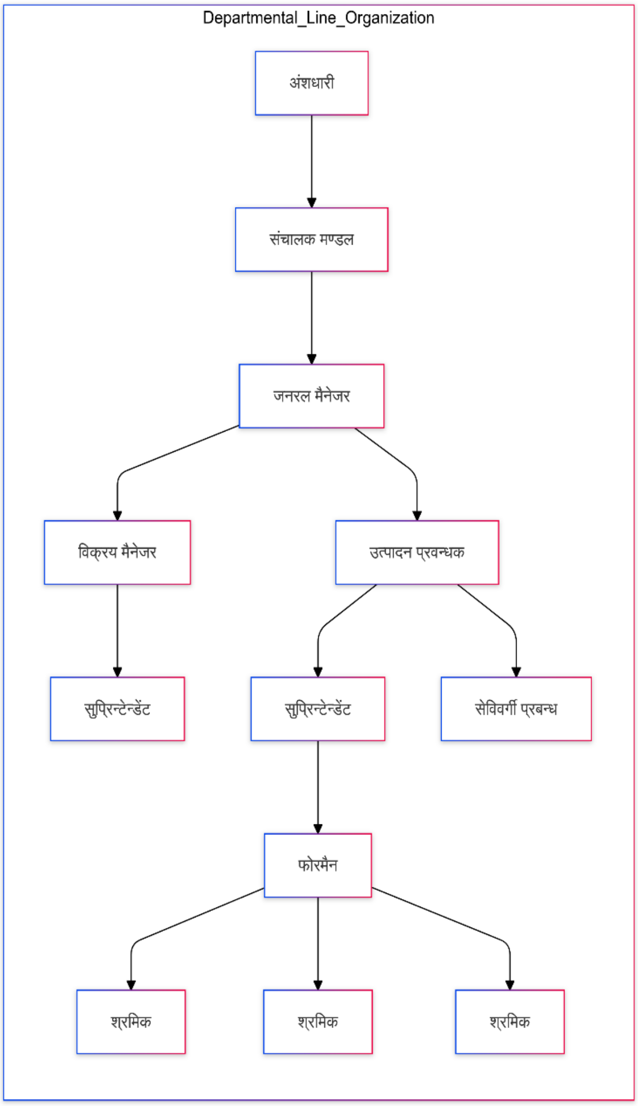

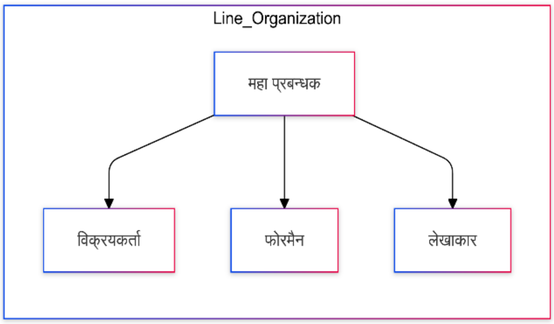

रेखा संगठनों को दो रूपों में बाँटा जा सकता है, (1) विशुद्ध (pure), (2) विभागीय (Departmental) । प्रथम प्रकार के विशुद्ध रेखागत संगठन के

अन्तर्गत, प्रत्येक स्तर पर कार्य एक सा होता है और प्रत्येक व्यक्ति एक ही प्रकार का कार्य करता है। विभाजन पूर्ण रूप से नियन्त्रित एवं निर्देशित होता है। विभागीय रेखागत संगठन की स्थिति में, सबसे पहले व्यापार को विभिन्न भागों में बाँटा जाता है, जो कि विभिन्न विभागीय अधिकारियों के अधिकार में होते हैं। इन विभागीय अधिकारियों का विभाग पर पूर्ण अधिकार एवं नियंत्रण होता है। विभागीय अधिकारी अपने आप में एक स्वायत्त समूह बना लेते हैं, अपना अलग कच्चा माल खरीदते हैं, अलग मजदूर रखते हैं और वह सभी कार्य करते हैं जो उनके विभाग के कार्यरत रहने के लिए आवश्यक होते हैं।

रेखा सगठन के लाभ (Advantages of Line Organisation**)**

इस प्रकार के संगठन के लाभ निम्न प्रकार हैं:

(1) मितव्ययी और सरत्न: इस प्रकार के संगठन का ढाँचा सरल होता है। सभी कर्मचारी इस प्रकार के संगठन को सरलता से समझ लेते हैं। यह न केवल सरल होता है वरन लाभप्रद और मितव्ययी भी होता है। इसमें शीघ्र निर्णय लेने एवं प्रभावशाली समन्वय करने की क्षमता होती है।

(2) अनुशासन बनाये रखना (Maintenance of discipline): इस प्रणाली में चूँकि एकाकी नियंत्रण होता है, इसलिए अनुशासन प्रभावशाली ढंग से बनाये रखा जा सकता है। समस्त क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान होता है और उसके लिए तत्काल निरीक्षण सुविधा उपलब्ध होती है। प्रत्यक्ष नियंत्रण श्रमिकों को पदोन्नति के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ ढंग से कार्य करने को प्रोत्साहित करता है। आदेशों की एकता, भ्रमात्मक तथा दोहरे आदेशों को दूर करने में सहायक होती है और संगठन को सक्षम बनाने के लिए मार्गदर्शन करती है।

(3) प्रत्यक्ष नियंत्रण (Direct Control): इस व्यवस्था में प्रत्यक्ष नियंत्रण संभव है क्योंकि प्रत्येक अधिकारी के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों की संख्या सीमित होती है। किसी भी समय यदि कोई अधीनस्थ कर्मचारी गलती करता है तो उसे तुरन्त रोका जा सकता है। वह अपनी जिम्मेदारी किसी अन्य व्यक्ति

पर नहीं टाल सकता, क्योंकि जिस व्यक्ति के अधीन वह कार्य करता है वह उसका पर्यवेक्षक भी होता है और तकनीकी विशेषज्ञ भो।

(4) कर्तव्यों और अधिकारों का स्पष्ट विभाजन इस पद्धति में अधिकार क्षेत्र स्पष्ट एवं पूर्ण निर्धारित रहता है, इसलिए किसी भी प्रकार के विरोधाभास की गुंजाइश नहीं रहती। कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप पर भी रोक लग जाती है।

(5) अधिकारियों का सर्वांगीण विकास (All round development of Executives): इस संगठन में उच्च अधिकार वाले अधिकारियों का सर्वांगीण विकास होता है, क्योंकि उन्हें अपने अधिकारों के अन्तर्गत कार्य करने एवं विभिन्न प्रकार के सही निर्णय लेने का पूरा अवसर प्राप्त होता है।

(6) लोच (Flexibility) यह पद्धति लोचदार कही जाती है, क्योंकि इसमें बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार तुरन्त समायोजन किया जा सकता है।

(7) कार्य में गत्ति (Speedy action) विभागीय प्रबन्धकों के सुनिश्चित अधिकार एवं दायित्व होने के कारण निर्णय शीघ्र लिए जा सकते हैं। इससे लाभदायक अवसरों का पूरा फायदा उठाया जा सकता है। विलम्ब से होने वाली हानियों से बचाव किया जा सकता है।

(8) कर्मचारियों में आत्मविश्वास की उत्पत्ति (Generation of self confidence amongst the members of staff): इस संगठन की यह विशेषता होती है कि यह कर्मचारियों में आत्मविश्वास को पैदा करता है। इससे आकस्मिक संकटों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

रेखागत संगठन के दोष (Disadvantages of Line Organisation) इस प्रणाली की कुछ हानियाँ भी हैं। जो निम्नलिखित हैं:

(1) एक ही अधिकारी पर संगठन व्यवस्था की निर्भरता इस प्रकार के संगठन का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस संगठन की सफलता सिर्फ एक मुख्य अधिकारी को कुशलता पर निर्भर रहती है। उसी की आज्ञानुसार सारे कार्य किये जाते हैं। उसके निर्णय लेने की क्षमता पर ही पूरे संगठन का कार्य निर्भर रहता

है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि मुख्य अधिकारी अक्षम हो तो संगठन की प्रगति रुक जायेगी और यदि मुख्य अधिकारी सक्षम हो तो संगठन उन्नति की ओर बढ़ता है।

(2) प्रेरणा का अभाव और पक्षपात: यह पद्धति खुशामद और जी-हुजूरी को बढ़ावा देती है। श्रमिक की पदोन्नति, उसके कार्य का उचित मूल्यांकन होना एवं उचित पारिश्रमिक मिलना सभी कुछ निकटतम उच्चरूप अधिकारी पर निर्भर करता है। एक ही व्यक्ति पर सारी गुण ग्राहकता की जिम्मेदारी होती है जिसका निर्वाह वह पक्षपातपूर्ण ढंग से करता है। चयन, पदोन्नति एवं कार्य आवंटन आदि में भेदभाव का अवसर रहता है। इससे श्रमिकों में इस पद्धति के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। कर्मचारियों को अच्छा कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिलती। सराहना के लिए कोई व्यवस्था ही नहीं है।

(3) विशिष्टीकरण का अभाव इस प्रकार के संगठन में विभागाध्यक्ष अपने कार्य का विशेषज्ञ होने की अपेक्षा हर काम में टाँग उड़ाने वाला और किसी भी कार्य में निपुण न होने वाला व्यक्ति बन जाता है। इसके अन्तर्गत विशिष्टता को कोई प्रोत्साहन ही नहीं मिलता क्योंकि कर्मचारियों को प्रायः कोई विशेषज्ञों की सलाह नहीं मिल पाती।

इस प्रकार रेखा तथा कर्मचारी संगठन, विभागीय प्रबन्धकों की छानबीन करने, सोचने और दुरन्त नियोजन करते की अयोग्यता के परिणामस्वरूप ही अस्तित्व में आया है। सामान्यतया रेखागत कर्मचारी केवल क्रय एवं विक्रय का साधारण कार्य करते रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप, जाँच हड़ताल, अनुसंधान अभिलेखन करने, प्रभाव स्थापित करने और परामर्श देने के कार्यों जैसे विशेषज्ञों के कार्यों को पूर्ण सम्मान दिया जाता है। और उन्हें उत्पादन तथा विक्रय की प्रतिदिन की क्रियाओं से अलग रखा जाता है। इससे 'विचार करने एवं क्रिया करने' की सीमा स्पष्ट रूप से अलग-अलग हो जाती है। इसमें स्टाफ 'विचारक' होता है और रेखागत कर्मचारी क्रियाशील व्यक्ति कहे जाते हैं।

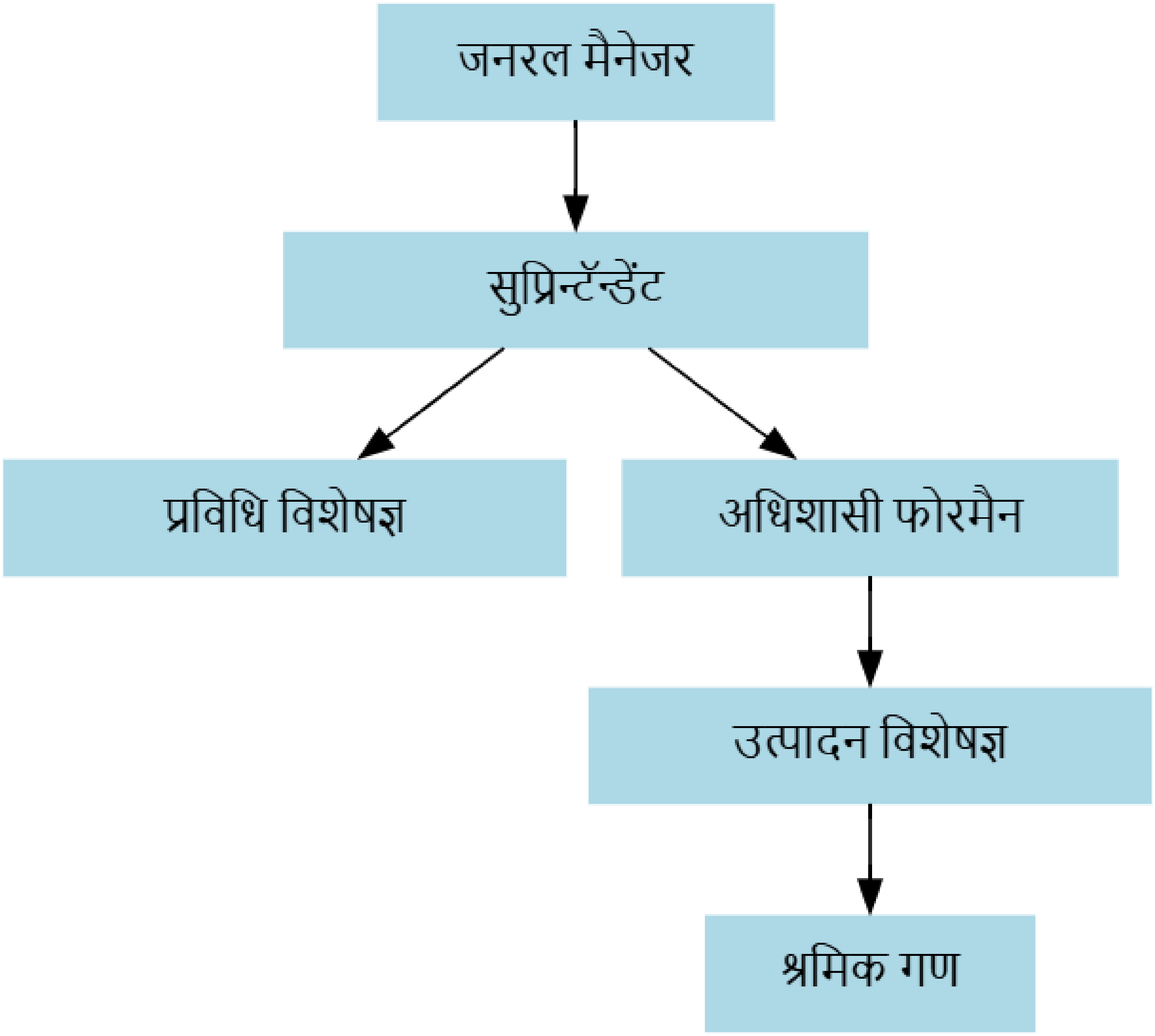

रेखा और कर्मचारी संगठन के लाभ (Advantages of Line and Staff Organisation) इस संगठन के निम्नलिखित लाभ हैं:

(1) प्रबंध में कुशलता (Efficiency in Management): इस संगठन में यह सुविधा होती है कि रेखीय अधिकारी कार्य की क्रिया पर अधिक ध्यान देने लगते हैं। विशेषज्ञ या कर्मचारी काम की जाँच पड़ताल व नियोजन आदि में लग जाते हैं। इनके द्वारा इस काम के बारे में सलाह मिलती रहती है। इसके परिणामस्वरूप प्रबंध में कुशलता बढ़ती है।

(2) अनुसंधान को प्रोत्साहन इस रूप में चूँकि विशेषज्ञों को उचित स्थान प्राप्त होता है, इसलिए अनुसंधान को अधिक प्रोत्साहन मिलने लगता है।

(3) शीघ्र कार्यवाही (Quick action): इसमें कार्य अधिक शीघ्रता और कुशलता से निपटाया जाता है क्योंकि नियंत्रण की रेखा सीधी होती है। रेखीय अधिकारी कार्य के करने पर अधिक ध्यान देते हैं।

(4) सोचने और समझने में भेद इस रूप से यह भी लाभ होता है कि कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होता है क्योंकि सोचने और करने की क्रियायें अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा की जाती हैं।

(5) संतुलन बनाये रखना इस प्रकार के संगठन की विभिन्न क्रियाओं में पर्याप्त संतुलन अधिक सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

(6) मितव्ययिता: कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने से अपव्यय रुक जाता है और मितव्ययिता बनाई रखी जा सकती है।

(7) प्रशिक्षण सुविधायें: इस पद्धति में विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न व्यवस्थापक पदों के लिए प्रशिक्षण सुविधायें उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

लम्बवत् या रेखा एवं कर्मचारी संगठन के दोष (Disadvantages of Line & Staff Organisation)

(1) रेखा और कर्मचारी संगठन में संघर्ष (Conflict between line and staff organisation): कई बार रेखाओं अधिकारी स्टाफ अधिकारियों की सलाह या राय की परवाह नहीं करते। उनमें आपस में गलतफहमी और आपसी मनमुटाव पैदा हो जाता है। स्टाफ अधिकारी भी रेखा अधिकारियों के व्यावहारिक सुझावों की उपेक्षा करते पाये गये हैं। वे इससे अपनी प्रतिष्ठा में कमी महसूस करते हैं।

(2) बड़े संगठन के लिए अनुपयुक्त: इस रूप को बड़े आकार के संगठन में लागू करना संभव नहीं हो पाता ।

(3) व्यापार के लिए हानिकारक यह व्यवस्था व्यापार के लिए हानिकारक नहीं मानी जाती, क्योंकि काम को करना और उसकी योजना बनाना अलग-अलग व्यक्तियों के हाथों में होता है। इनमें से प्रत्येक अपने उत्तरदायित्व से बचने का

प्रयत्न करता है। कई बार स्टाफ अधिकारी भी सलाह देने में लापरवाही बरतते हैं। इससे व्यापार आगे नहीं बढ़ता और उसे हानि होती है। यदि स्टाफ अधिकारियों पर अधिक निर्भर रहा आये तो फिर रेखागत अधिकारी भी अपने निर्णय और पहल करने के अधिकारों को छोड़ देते हैं।

(4) **संगठन में भ्रान्ति**: कई प्रकार के रेखागत आदेशों और स्टाफ की राय में मतभेद होने के कारण निम्नस्तर कर्मचारियों की भ्रम पैदा हो जाता है। क्योंकि अधिकारों और उत्तरदायित्वों का निर्धारण अस्पष्ट होता है स्टाफ को अपनी सिफारिशों को कार्यान्वित करने के कोई अधिकार नहीं होते, इसलिए वे भी प्रभावशाली सिः होते हैं।

8.5 रेखा और कर्मचारी संघर्ष (Line and Staff Conflict)

बहुधा यह देखा गया है कि रेखा और कर्मचारी संगठन में संघर्ष पाया जाता है। इसका प्रमुख कारण गलतफहम वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा होती है। कई बार यह व्यापार की अस्वस्थता और अकुशलता के कारण भी हो जाता है।

ऐलन का कथन है कि, "रेखागत कार्य वे कार्य हैं जिन पर उपक्रम के प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करने का सीध दायित्व होता हैं। स्टाफ या विशेषज्ञों से तात्पर्य संगठन के उन तत्वों से होता है जो रेखागत कर्मचारियों को, उपक्रम के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कारगर रूप से काम करने में सहायता देते हैं।"

दोनों प्रकार के संगठन के कार्यों को और अधिक विश्लेषित किया जाये तो कहा जा सकता है कि रेखागत संगठन नियंत्रण को बहुत अधिक केन्द्रित करता है जबकि क्रियात्मक संगठन इसका विकेन्द्रीकरण करता है। रेखागत कर्मचारी निर्णय को कार्यान्वित करने और उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उत्तरदायी होते हैं। जबकि विशेषज्ञ कर्मचारी, रेखागत कर्मचारियों को परामर्श एवं सहायता प्रदान करते हैं। मध्यम एवं बड़े उपक्रमों में केवल रेखागर संगठन से ही प्रयोजन सिद्ध नहीं होता वरन् विशुद्ध रेखागत ढाँचे में कई स्टाफ

(विशेषज्ञ) पदों का भी सृजन किय जाता है। यह स्टाफ न केवल परामर्श संबंधी कार्य करते हैं किन्तु अपने विशिष्टीकरण के क्षेत्रों के लिए क्रमशः संबंधित अधीनस्थों पर प्रत्यायोजित अधिकारों का प्रयोग भी करते हैं।

रेखागत संगठन की यह विशेषता होती है कि इसमें श्रृंखला (scalar chain) और आदेश की एकता (Unity of Command) के सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन किया जाता है। परन्तु क्रियात्मक संगठन में ऐसा संभव नहीं हो पाता। क्योंकि परामर्शदायी विशेषज्ञों का प्रत्येक अधीनस्थ प्रबंधक पर क्रियात्मक अधिकार रहता है। इस प्रकार स्टाफ के संगठन का रेखागत संगठन की भाँति कोई भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता।

रेखा और कर्मचारी संघर्ष के कारण (Causes of Line and Staff Conflict)

रेखा और कर्मचारी संघर्ष के निम्न कारण प्रमुख हैं-

(1) **रेखागत कर्मचारियों का शंकालु दृष्टिकोण** रेखामत कर्मचारी संस्थान अधवा उपक्रम के संचालन के लिए जिम्मेदार समझे जाते हैं। स्टाफ (विशेषज्ञ) प्रबंधक अपने विशिष्ट कार्यों से ही संबंधित होते हैं। चूँकि रेखागत प्रबंधकों के कार्य संस्था के लाभों पर सीधा प्रभाव डालते हैं, इसलिये उनकी यह प्रवृत्ति बन जाती है और यह महसूस करने लगते हैं कि वे स्टाफ से अधिक महत्व रखते हैं और उन पर ही व्यापार की सफलता निर्भर रहती है। इसलिए रेखागत कर्मचारी अपनी प्रतिष्ठा और अधिकारों में कमी के प्रति बड़े सशंकित होते हैं और अपने कार्यों में तथा अपने विशेषाधिकारों में स्टाफ के अनावश्यक हस्तक्षेप को बहुत बुरा मानते हैं।

(2) **रेखा और कर्मचारी के दृष्टिकोणों में अन्तर** रेखा और कर्मचारी में संघर्ष का एक यह भी कारण है कि दोनों के प्रशिक्षण, अनुभव एवं दृष्टिकोणों में बहुत अंतर होता है। स्टाफ प्रशिक्षण और अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान के कारण विशेषज्ञ का स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। रेखागत प्रबंधक उत्तरदायित्व और सामान्य योग्यता के कारण कार्य के प्रति व्यावहारिक

दृष्टिकोण रखने में गर्व का अनुभव करते हैं। स्टाफ कर्मचारी विपक्षी विचारधाराओं का सामना करते हुए रेखागत प्रबंधकों को मूलतः जिद्दी, परिवर्तन और सुधार का प्रतिरोधी और उसकी विशेष योग्यता व सामर्थ्य का मूल्य न समझने वाले के रूप में देखता है। दूसरी ओर रेखागत प्रवन्धक, स्टाफ के सुझावों को प्रायः अव्यावहारिक, केवल सैद्धान्तिक या हवाई किला बनाने वाले सुझाव समझते हैं। लाइन प्रवन्धक स्टाफ को केवल अपनी तकनीकों और कार्यविधियों में ही रुचि रखने वाला तथा ऐसी विशिष्ट भाषा में बात करने वाला पाता है जिसे अन्य कोई नहीं समझ सकता। स्टाफ के द्वारा दिये गये सुझाव उन्हें अव्यावहारिक प्रतीत होते हैं।

(3) **संकुचित निष्ठा** : रेखागत प्रबन्धक उस समस्त संस्था, जिसका कि उनका समूह एक भाग होता है, की तुलना में तत्कालीन कार्य समूह से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। कर्मचारी या स्टाफ (विशेषज्ञ) अपने पेशेवर साथियों तथा सम्पूर्ण संस्था के प्रति अधिक निष्ठावान होते हैं।

अथात् क्रियात्मक सगठन, संगठन में क्रियात्मक अधिकारों के अस्तित्व पर आधारित होता है। इसमें प्रबन्ध वे समस्त कार्यों और अधीनस्थों के निर्देशन को कार्य के अनुसार विभाजित किया जाता है और कार्य के अवसर सीमित रखे जाते हैं किन्तु अधिकार का क्षेत्र असीमित छोड़ दिया जाता है।

8.6 क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation)

इसे निम्न रेखा चित्र द्वारा समझाया जा सकता है

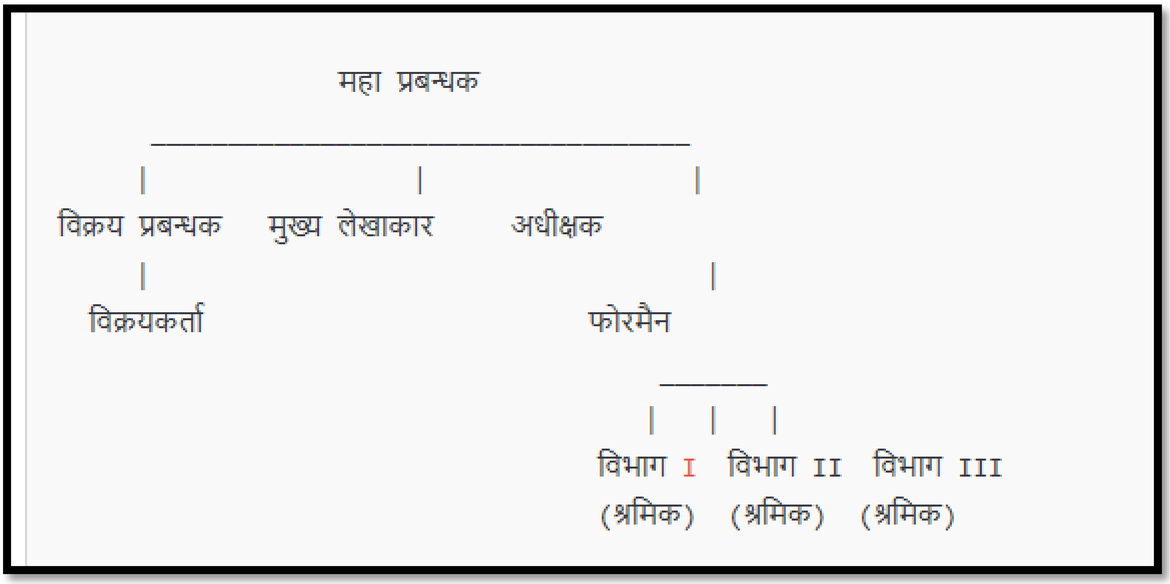

इस प्रकार क्रियात्मक संगठन वह संगठन है, जो कई क्रियाओं में विभाजित होता है, जैसे वित्त, उत्पादन, विक्रय कर्मचारी एवं कार्यालय प्रबंध, अनुसंधान एवं विकास तथा जिसमें प्रत्येक कार्य विशेषज्ञ द्वारा संपादित किया जाता है।। इस प्रकार की व्यवस्था उन संस्थाओं में सफल होती है जो एक सीमित प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करती हैं और संगठनात्मक क्रियाएँ अधिक जटिल नहीं होतीं जैसे, जूतों का उत्पादन आदि। टेलर ने कारखाने के स्तर पर क्रियात्मक संगठन का सुझाव दिया था। उसने श्रमिकों या छोटे लिपिकों, निर्देशन कार्ड लिपिक, समय व लागत लिपिक, दुकान के अनुशासन अधिकारी, टोली नायक, गति नायक, जीर्णोद्धार नायक और फोरमैन के दायित्वों को पूर्ण करने व उन्हें विभाजित करने वाले निरीक्षकों का एक बड़ा दल रखने का सुझाव दिया था।

क्रियात्मक संगठन के लाभ (Advantages of Functional Organisation)

(1) **कार्य कुशलता** (Efficiency): इस संगठन व्यवस्था में श्रमिकों की कार्य कुशलता बढ़ जाती है। क्योंकि उन्हें इसके अन्तर्गत कार्य को सीखने और उनमें सुधार के सुझाव देने में सरलता होती है। कर्मचारियों को प्रबंध स्तर पर कार्य करने के लिए सरलता से प्रशिक्षित किया जा सकता है क्योंकि काम की आवश्यकताओं और क्रियाओं को स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है।

(2) **नियन्त्रण** (Control): इसमें प्रबन्ध नियंत्रण भी सरल हो जाता है। क्योंकि शारीरिक और मानसिक कार्यों को अलग-अलग रखा जाता है। सतत् निरीक्षण संतुलन को बनाये रखता है। विशिष्ट कार्यों में आवश्यक समन्वय सरलता से हो जाने के कारण विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों में उचित संतुलन प्राप्त किया जा सकता है। इससे सहयोग को बढ़ावा मिलता है क्योंकि प्रत्येक प्रबंधक यह जानता है कि उसे एक विशिष्ट कार्य ही करना है।

(3) **विशिष्टीकरण** (Specialisation): यह संगठन व्यवस्था विशिष्टीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है और इसीलिए प्रबन्धक अपने क्षेत्र में निपुण होता है। कार्य का बँटवारा योग्यता के अनुसार ही होया है और इसलिये प्रबंध की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।

(4) **मितव्ययिता** (Economy): इस संगठन के अन्तर्गत बड़ी मात्रा में उत्पादन करना संभव होता है। इससे कई प्रकार की आंतरिक और बाहृय बचत प्राप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी होती है और मितव्ययिता का लाभ मिलता है।

इसके सिवाय निर्णय में सरलता व शीघ्रता आर्थिक लोच, निर्णयों में एकरूपता, औद्योगिक संबंधों में मधुरता, सहयोग में वृद्धि आदि के लाभ भी प्रप्त होते हैं।

(1) **समन्वय का अभाव** (Lack of Coordination) इस संगठन में, यह कहा जाता है, कि उत्तरदायित्व के अनावश्यक विस्तार के कारण नियंत्रण कमजोर पड़ जाता है। और समन्वय कठिन हो जाता है। समन्वय इसीलिये भी नहीं हो पाता क्योंकि विशेषज्ञ कभी-कभी एक दूसरे से भिन्न एवं असंगत कार्य करते हैं। इसमें कभी-कभी प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या भी बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप कार्य करने में प्रवाह का अभाव पाया जाता है।

(2) **अस्थिरता** (Unstability) इस संगठन में अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है इसका कारण उच्चकोटि का विशिष्टीकरण है। इससे इस रूप का क्रियात्मक

गुण समाप्त हो जाता है। कर्मचारियों में अदला-बदली भी इसे बढ़ाने में मदद करती है।

(3) **संकीर्णता** (Narrowness): इस संगठन में संकीर्णता का दोष भी पाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इसमें अधिकारियों को विस्तृत दृष्टिकोण वाला प्रशिक्षण नहीं मिल पाता। विशेषज्ञ अपने कार्य के महत्व पर अधिक बल देता है। वह व्यापार के अन्य क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दे पाता। इनमें अच्छे नेतृत्व की कमी पाई जाती है।

(4) **देरी (**Delay): इस प्रकार के संगठनों में शीघ्र निर्णय नहीं लिया जा सकता। इसके लिए कई व्यक्तियों से परामर्श करना पड़ता है। सम्पूर्ण संगठन में विलंब की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। यह भी कहा जाता है कि अत्यधिक विशिष्टीकरण से नीरसता तथा उच्च श्रेणी के कार्य को करने में बाधा उत्पन्न होती है।

(5) **उत्तरदायित्व का अभाव** इसके सिवाय एक ही काम पर कई अधिकारी होने के कारण उत्तरदायित्व का अभाव रहता है।

इसके अतिरिक्त इस संगठन में अनुशासन पर कम बल दिया जाना, छोटे उद्योगों के लिए अनुपयुक्ता, आदि के दोष भी पाये जाते हैं सिर्फ उन्हीं भीमकाय उत्पादन एवं विक्रय करने वाली संस्थाओं में यह उपयुक्त होता है जिससे पर्याप्त मात्रा में विशिष्टीकरण करना लाभप्रद हो।

8.7 सहायक प्रारूप (Subsidiary Forms)

सहायक प्रारूपों से तात्पर्य ऐसे प्रकारों से है जो प्रायः संगठन में मुख्य रूपों के साथ अपनाये जाते हैं। इन रूपों में (1) समिति संगठन, (2) अन्तर-इकाई संगठन, प्रमुख रूप से आते हैं। चूँकि ये अपेक्षाकृत कम प्रचलित होते हैं इसलिये भी इन्हें सहायक वर्ग में रखा जाता हैं।

(1) **समिति संगठन** (Committee Organisation) संगठन व्यवस्था के प्रमुख रूपों को सहायता प्रदान करने के लिए कभी-कभी इस प्रकार के समिति संगठन

का भी उपयोग किया जाता है। आज के प्रजातंत्र के युग में वैसे भी इस प्रकार का संगठन एक सामान्य कार्य है। व्यावसायिक जगत में इनका बहुतायत से प्रयोग होता है। इसके अन्तर्गत व्यावसायिक इकाई कार्यों की देख-रेख के लिए एक कार्यकारिणी समिति का गठन करती है जिसका एक अध्यक्ष होता है। इसकी सहायता के लिए अन्य छोटी-छोटी समितियों की स्थापना की जाती है। समिति प्रथा का उपयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सरकार के सभी विभागों में इसका प्रयोग होता है।

ये समन्वय का माध्यम मानी जाती हैं। समिति में कम से कम तीन व्यक्ति होते हैं। इसके अन्तर्गत सभी निर्णय बहुमत द्वारा लिये जाते हैं।

विश्व के कई बड़े संगठन जैसे डूपोष्ट (Dupont) स्टैंडर्ड आयल कंपनी (Standard Oil Company) आदि में समितियों के द्वारा प्रबंध किया जाता है।

टेरी के अनुसार, "समिति चुने हुये या नियुक्ति किये हुए व्यक्तियों की एक संस्था है जो उन मामलों पर विचार-विमर्श के लिए संगठित आधार पर मिलते हैं जो उनके समक्ष लाये जाते हैं।"

हैमेन के अनुसार, "समिति चुने हुए या नियुक्त किये हुए व्यक्तियों का एक समूह है जिन्हें सौंपे गये मामले पर विचार-विमर्श करने के लिये मिलना पड़ता है।"

उर्विक के अनुसार, "समिति व्यक्तियों का समूह है, जिन्हें इस शर्त पर कुछ कार्य सौंपे जाते हैं कि वे उन कार्यों को मिलकर तथा सम्मिलित रूप से करेंगे।"

इस प्रकार समिति चुने हुये या नियुक्त किये गये या नामांकित व्यक्तियों का एक समूह होता है जो अपने ऊपर सौंपे गये मामले पर विचार-विमर्श करती है और अपना प्रतिवेदन देती हैं। किसी संस्था से आशा की जाती है कि वह

एक समस्या के निवारण में पर्याप्त सक्षम हो। जबकि व्यक्ति की क्षमता इस संबंध में अपर्याप्त होती है। समितियं प्रबंध से सम्बन्धित व्यक्तियों को एक साथ मिलाने का अवसर प्रदान करती हैं जिससे वे संदेशों का आदान-प्रदान कर सकें तथा सही निर्णय लिये जा सकें।

समिति संगठन के प्रकार (Forms of Committee Organisation)

समितियों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है:

(1) रेखा या कर्मचारी समिति (Line or Staff Committee): रेखा समिति ऐसी समिति है जिसे समिति के कार्य से संबंधित समस्त अधिकार और कर्तव्य प्रदान किये जाते है। यदि समिति को कार्य के सम्बन्ध में केवल परामर्श करने तथा मार्गदर्शन करने का ही अधिकार होता है तो वह कर्मचारी (Staff) समिति कहलाती है।

(2) अस्थायी और स्थायी समिति (Temporary and Standing Committee): जब किसी विशिष्ट मामलों के सम्बन्ध में समिति का निर्माण होता है तो वह अस्थायी समिति कही जाती है। इस मामले के हल के साथ यह समिति भी भंग हो जाती है। स्थायी समिति संस्था में हमेशा कार्यशील रहती है। यह संगठन संरचना में निश्चित स्थान रखती है।

(3) औपचारिक एवं अनौपचारिक (Formal and Informal): यदि संस्था की संगठन संरचना में समिति का एक निश्चित स्थान होता है तथा निश्चित अधिकार एवं दायित्व होते हैं तो यह औपचारिक समिति कहलाती है। और जब समिति का संगठन संरचना में कोई स्थान नहीं होता है तथा जब किसी विशिष्ट समस्या के निवारण के लिये समिति की स्थापना की जाती है तो ऐसी समिति को अनौपचारिक समिति कहते हैं।

(4) अधिशासी या कार्यकारिणी समिति (Executive Committee): ऐसी समिति को संस्था के सभी सामान्य एवं विशिष्ट कार्य करने का अधिकार होता

है। यह संस्था का शासन एवं प्रबन्ध करने की समिति है। यह सर्वसत्ता सम्पन्न होती है।

(5) संयुक्त समिति (Joint Committee): जब दो या दो से अधिक समितियों में समन्वय स्थापित करना हो तो इसी प्रकार की समिति बनाई जाती है। इनमें विभिन्न प्रकार के हितों के प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों को स्थान दिया जाता है।

समितियों के कार्य (Functions of Committee)

समितियों के कार्यों को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है:

(अ) अधिकारियों का चुनाव करना समिति का महत्वपूर्ण कार्य अधिकारियों की नियुक्ति करना है। ये अधिकारी ही संस्थान की नीतियों को निर्धारित करके क्रियान्वित करते हैं।

(ब) नीतियों का निर्धारण करना समितियाँ ही संस्था की नीतियों को निर्धारित करती हैं। इन नीतियों के द्वारा ही संस्था के विभिन्न कार्यों का संचालन होता है।

(स) मूल्यांकन समितियाँ एक और महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। संस्था या कंपनी के अधिकारियों के कार्यों का मूल्यांकन का कार्य भी यही समितियाँ करती हैं। ये समितियों यह देखती हैं कि ये अधिकारी नीति के अनुसार
कार्य कर रहे हैं या नहीं।

अलफोर्ड और बैग्स ने समितियों के कार्यों को निम्न प्रकार से दर्शाया हैं:

(i) विचारों का आदान-प्रदान करना।

(ii) विभिन्न मस्तिष्कों का सामूहिक प्रयोग करना।

(iii) सदस्यों तथा सम्बन्धित विभाग को आवश्यक सूचना उपलब्ध करना।

(iv) समिति के सदस्यों से रिपोर्ट तथा सम्बन्धित विभागों से सूचनायें प्राप्त करना।

(v) विधिन्न तथ्यों को काम में लाने के योग्य बनाना।

(vi) विचार विमर्श के पश्चात् तथ्यों के आधार पर रिपोर्ट तैयार करना और उसे प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करना ।
(vii) महत्वपूर्ण समस्याओं का अध्ययन करना।
(viii) कर्मचारी प्रणाली का विकास करना।
(x) विभिन्न कार्यों में सह सम्बन्ध स्थापित करना।
(xi) आपसी सहयोग की भावना जागृत करना।
(xii) प्रभाव निर्धारित करना।
(xiii) आकस्मिक अथवा विशिष्ट प्रकार के कार्यों की व्यवस्था करना।
इस प्रकार से समितियाँ अपने क्रियाकलापों के द्वारा संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सक्रिय योगदान देती हैं।
समिति संगठन के लाभ (Advantages of Committee Organisation)
यह निर्विवाद रूप से तय है कि समिति संगठन प्रवन्ध समस्याओं के निवारण की महत्वपूर्ण विधि है। मिस फौलेट (Miss Follet) ने कहा भी है, "समिति संस्था में नेतृत्व प्रदान करने एवं अच्छे संबंधों का निर्माण करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है।"
मार्च और साइमन (March and Simon): यह भी मानते हैं कि एक व्यक्ति की अपेक्षा समिति समस्या के निराकरण के लिए सर्वोत्तम उपाय है। इसके द्वारा लिए गये निर्णय अधिक अच्छे होते हैं। समिति के लाभों को निग्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है।
(अ) समन्वय का साधन (Means of Co-ordination): संस्था के विभिन्न कार्यों में समन्वय करने का महत्वपूर्ण साधन समिति ही है। कून्टज तथा ओ'डोनेल ने कहा ही है कि, "समितियाँ व्यावसायिक नियोजन एवं व्यावसायिक नीतियों के क्रियान्वयन में समन्वय स्थापित करने का एक लाभप्रद साधन है।"

(ब) सामूहिक निर्णय (Group Decisions): यह कहना सही ही है कि एक की अपेक्षा दो व्यक्ति सदैन ही अच्छे होते हैं। इसीलिये समिति संगठन में सामूहिक निर्णय का लाभ निहित होता है।

(स) शीघ्र संदेश वाहन (Prompt Communication): समितियों के द्वारा संदेशों का आदान-प्रदान अधिक सरल बन जाता है। यह समय में बचत ही नहीं करती बल्कि सदस्यों को आपस में विचार विमर्श करने का भी मौका प्रदान करती है।

(द) श्रम विभाजन के लाभ (Advantages of Division of Labours): समितियाँ कार्यों का विभाजन कर विशिष्ट व्यक्तियों को स्थान देती हैं। इससे श्रम विभाजन के लाभ भी प्राप्त हे जाते हैं। परिणामस्वरूप कार्य करने की गति में वृद्धि होती है। निर्णय लेने में भी कठिनाई नहीं होती।

(इ) सहकारिता को प्रोत्साहन (Help in Cooperation): इस प्रकार के समिति संगठन के द्वारा सहकारिता को भी प्रोत्साहन मिलता है। लोगों में सहयोग की भावना बढ़ती है।

(क) नये विचारों का सृजन (Creation of new ideas): समिति का यह भी एक लाभ है कि जब सामूहिक रूप से विचार विमर्श होता है तो प्रत्येक व्यक्ति में नये-नये विचारों का सृजन होता है।

(ह) केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पर रोक (Check on centralisation) सत्ता के केन्द्रीयकरण को कम करने में समिति का कार्य महत्वपूर्ण होता है। संगठन का प्रत्येक व्यक्ति प्रवन्ध में अपना अस्तित्व एवं योगदान समझने लगता है। इससे कार्यकर्ताओं में सहयोग की भावना उत्पन्न होती है और अधिक रुचि से कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

(क) समस्याओं का शीघ्र निराकरण (Easy Solutions of Problems) प्रवन्ध में जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अकेला प्रबन्धक इन

समस्याओं का सामना नहीं कर पादा। समिति के विभिन्न प्रकार के सदस्यों के द्वारा इन जटिल समस्याओं का समाधान शीघ्र किया जाता है।

(ख) उतावले निर्णयों पर रोक (Hasty decisions are avoided): प्रबन्ध में उतावले निर्णय लेना लाभदायक नहीं समझा जाता है। समिति प्रबन्ध का यह महत्वपूर्ण लाभ है कि इससे उतावले निर्णय नहीं हो पाते। समिति के प्रत्येक सदस्य के विचारों और तकों को महत्व दिया जाता है। इससे संस्था में लिये जाने वाले निर्णय सोच समझ कर लिए जाते हैं।

(ग) प्रशासन में निरन्तरता (Continuity of Administration): संस्था के प्रबन्ध और प्रशासन में निरन्तरता बनाई रखी जा सकने के लिये समितियों महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। समिति के सभी निर्णय धीरे-धीरे होते हैं। इनसे जो परिवर्तन होता है वह भी धीरे-धीरे होता है। एक व्यक्ति के हाथ में कार्य होने से कभी भी प्रशासन में निरन्तरता नहीं आ पाती। क्योंकि यदि यह व्यक्ति कभी कहीं चला जाये या काम छोड़ दे तो नये व्यक्ति के आने तक सारा कार्य रुका पड़ा रहता है। या जब नया व्यक्ति आता है तो हो सकता है कि उस विचार धारा या कार्य करने के तरीके में अन्तर आ जाये और जो निरन्तरता का लाभ मिलना चाहिए वह न मिल पाये। समिति संगठन में यह लाभ प्राप्त हो जाता है।

इसके अलावा समिति से और भी कई अन्य प्रकार के लाभ और उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है। जैसे, समिति लोकतंत्रीय व्यवस्था का रूप है। इसमें भेद-भाव रहित निर्णय होते हैं। इससे व्यापार नियोजन तथा व्यापार नीतियों के निष्पादन में समन्वय स्थापित करने में भी सहायता मिलती है। अधीनस्थों को निर्णय लेने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें सीखने को मिलती हैं। इसके द्वारा आत्म स्वीकृति को भी प्रोत्साहन मिलता है। इसके द्वारा अधिकारियों के अकेलेपन में भी कमी होती है। ये हिस्सेदारी प्रबन्ध (Participative Management) को प्रोत्साहन करती है।

समिति संगठन के दोष (Disadvantages of Committee Organisation)

समिति संगठन से जहाँ एक ओर कई लाभ प्राप्त होते हैं वहीं इससे कई हानियाँ भी होती हैं। लोगों की यह राय है कि समिति उचित संगठन के लिए निकृष्ट स्थानापन्न है,

"यह अनावश्यक कार्य करने के लिए अनिच्छुकों के अनुपयुक्त चुनाव द्वारा निर्मित संघ है।"

समिति संगठन के दोषों को इस प्रकार बतलाया जा सकता है:

(अ) **उत्तरदायित्व को टालना** (Shifting of responsibility): समिति प्रबन्ध की यह विशेषता होती है कि इसमें लिए गये निर्णयों की जिम्मेवारी को सदस्यगण एक दूसरे पर टालने का प्रयत्न करते हैं। इनकी जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति पर डालना मुश्किल होता है।

(ब) **समय की बरबादी** (Time Wastage): समिति संगठन में निर्णय लेने में काफी समय लगता है। परिणामस्वरूप निर्णय समय पर नहीं लिये जाते जिससे कि व्यापार को कई अच्छे अवसरों से वंचित रहना पड़ता है और कई बार तो इसके कारण हानि भी उठानी पड़ती है। व्यवसाय में तो समय ही महत्वपूर्ण होता है।

(स) **पहल का अभाव** (Lack of Initiative): इस प्रकार के संगठन में लोगों में पहल करने का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि अच्छे परिणामों में समिति के सभी सदस्यों को भागी समझा जाता है। अतः व्यक्तिगत रूप से कोई व्यक्ति अपनी पहल के द्वारा आगे नहीं आता।

(द) **समझौते की प्रवृत्ति** (Tendency of Compromise): समिति के सदस्य किसी न किसी विभाग से सम्बन्धित होते ही हैं और वे अपने विभाग का ही हित अधिक ध्यान में रखते हैं। सामान्य रूप से संस्था का ध्यान कम ही रखते हैं। सभी निर्णय आपसी स्वार्थ और हितों को ध्यान में रखते हुए किये

जाते हैं। इसमें समझौते की भावना अधिक पाई जाती है। परन्तु इससे संस्था का अहित ही होता है।

(इ) **प्रबन्धकों की अयोग्यता पर पर्दा** (Screen for ineffective managers) समिति संगठन इसलिए भी अच्छा नहीं समझा जाता क्योंकि इसके द्वारा प्रबन्धकों की अयोग्यता प्रकाश में नहीं आ पाती। इससे अयोग्य प्रबन्धकों को प्रोत्साहन मिलता है और संस्था को नुकसान होता है।

(फ) **कार्यात्मक दायित्वों पर कम ध्यान** (Little attention to functional duties): समितियों की बैठकों की संख्या में वृद्धि होने पर सदस्यगण अपने दायित्वों पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते। परिणामस्वरूप संस्था के काम में नुकसान होता है।

(६) **अधिकारियों की क्षमता में कमी** (Decreasing efficiency in executives): जे समितियाँ हैं और निर्णय लिवाये जाते हैं, तो अधिकतर अधिकारी वर्ग निष्क्रिय हो जाते हैं। उनके निर्णय लेने की क्षमता में क्षीणता आ जाती है और वे धीरे-धीरे किसी कार्य के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की क्षमता भी खो देते हैं।

(क) **तानाशाही की प्रवृत्ति** (Tendency of Dictatorship): यद्यपि समितियाँ प्रजातांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला हैं, परन्तु व्यवहार में इनके सभी निर्णय प्रमुख अधिकारियों के अनुसार ही होते हैं। डेविस ने ठीक ही कहा है कि, "समिति प्रजातांत्रिक कार्यों की घड़ी है।" इनका कहना है कि समिति व्यवहार में उज्च अधिकारियों की 'श्वर की मोहर' के समान है। इन सबसे तानाशाही प्रवृत्ति बढ़ती है।

(ख) **ऊंची संचालन लागत** (High Operating Cost): समितियों की स्थापना के कारण लागत व्यय बढ़ जाता है। इसे छोटी श्रेणी और मध्यम वर्ग के व्यापारी नहीं सह पाते। परिणामस्वरूप इन समितियों से लाभ की जगह हानि होती है।

जब एक औद्योगिक इकाई विभिन्न प्रकार के उत्पादों का निर्माण करती है तो अन्तर इकाई संगठन, का निर्मा करना पड़ता है। इस हेतु प्रत्येक प्रकार के उत्पाद के निर्माण के लिए अलग-अलग संगठन स्थापित कर दिया जाता है इस प्रकार के संगठनों के लिए अन्तर्गत विभागाध्यक्ष निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र रहते हैं। उन्हें अपने अधीनस्थों प | नियंत्रण रखने की भी स्वतंत्रता प्राप्त रहती है। परन्तु जब इस प्रकार कई संगठन बन जाते हैं तो इन्नके बीच समन्व रखना पड़ता है। इसके लिए एक केन्द्रीय संगठन बनाया जाता है। यह केन्द्रीय संगठन सभी विभागों के संगठन कं जोड़ने का कार्य करता है।

अमेरिका की जनरल मोटर कारपोरेशन का चार प्रकार की मोटर गाड़ियों बनाने वाली इकाईयों पर नियंत्रण है ये इकाईयाँ हैं, व्यूक, शेवरलेट, औल्डस तथा पाणियाक। जनरल मोटर्स इनके संगठनों पर न केवल नियंत्रण रखता। वरन् इनकी क्रियाओं में समन्वय भी स्थापित करता है।

8.8 संगठन के रूप का चुनाव (Choice of a form of Organisation)

उपरोक्त विभिन्न प्रकार के संगठनों में से किसी एक विशेष प्रकार के संगठन का चुनाव बड़ा ही कठिन कार्य है। क्योंकि प्रत्येक संगठन में जहाँ कई गुण मौजूद हैं वहाँ उसकी कुछ कमजोरियाँ भी हैं। विशुद्ध रेखागत संगठन में जहाँ एक ओर एकीकृत नियन्त्रण, कठोर अनुशासन, शीघ्र निर्णय और निश्चित उत्तरदायित्व का आश्वासन आदि गुण्। पाये जाते हैं वहीं दूसरी ओर उसमें क्रियात्मक विशिष्टीकरण की कमी पाई जाती है। संप्रेषण और परामर्श भी नहीं हो पाता। इसे सिर्फ छोटे आकार के संगठनों में ही लागू कर सकते हैं। इसी प्रकार विशुद्ध क्रियात्मक संगठन न केवल जटिल होता है परन्तु भ्रांतियाँ भी पैदा होती हैं। इसमें प्रत्येक कार्य कई उपकार्यों में विभाजित होता है। समन्वय की कमी पायी जाती है। निर्णय विलम्ब से किये जाते हैं। रेखागत और कर्मचारी संगठन योजना जो विशिष्टीकरण पर आधारित है, बड़े संस्थानों के

लिए उपयुक्त होती है। परन्तु इसमें भी रेखा व स्टाफ में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि व्यावसायिक उपक्रमों की सफलता के लिए तीनों प्रकार के संगठनों के विवेकपूर्ण समिश्रण को अपनाया जाना चाहिये। संगठन का चुनाव करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये :

(1) **संतुलन** (Balance) इसका तात्पर्य है कि व्यवसाय की प्रत्येक शाखा अपने आप में संतुलित हो। अर्थात् वह सामान्य रूप से प्रभावपूर्ण हो। इसे "संगठन संतुलन" (Organisation balance) कहा जाता है।

(2) **समन्क्य** (Co-ordination): व्यवसाय की प्रत्येक इकाई में समन्वय होना भी अच्छे संगठन के लिए आवश्यक माना जाता है। इनसे न केवल सारा कार्य मितव्ययितापूर्वक होता है वरन् व्यवसाय की नीतियों का पालन भी सरलतापूर्वक हो जाता है।

(3) कार्यान्वयन में सुविधा (Ease in Execution): संगठन का चुनाव करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि वह कार्य को किस सीमा तक मितव्ययिता तथा आसानी से क्रियान्वित करने में सहायता करता है। अच्छा संगठन प्रत्येक आवश्यक कार्य को कम से कम असुविधा से सम्पन्न करता है। इसका प्रतिफल भी अधिकतम होता है।

(4) **उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक** (Helpful in realisation of the Objectives): संगठन को निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिये। संगठन का स्वरूप ऐसा हो कि वह हमारे उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो। निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में जो संगठनात्मक बाधायें उपस्थित होती हैं, संगठन की व्यवस्था उन बाधाओं को मूलतः समाप्त करने में सहायक होती है।

(5) **कार्यों का सुसंगत समूहीकरण** (Harmonious grouping of functions): संगठन का रूप ऐसा हो जिससे कार्यों के विभाजन में दोहरीकरण न होने पावे। औद्योगिक उपक्रम की क्रियाओं का समूहीकरण इतने सुव्यवस्थित व सुसंगत

ढंग से किया जाये कि क्रिया, परामर्श तथा समन्वय तीनों यथासंभव न्यूनतम दूरी पर हों तथा बिना किसी कठिनाई के निष्पादित हो सके।

(6) **लोच** (Elasticity): संगठन व्यवस्था में परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन की क्षमता होनी चाहिये। संगठन प्रणाली का प्रारूप ऐसा हो कि बढ़ती हुई परिस्थितियों के अनुसार समायोजन करना सरल हो।

(7) **कर्मचारियों के सन्तोष में वृद्धि** (Promotion of Satisfaction of Workers): संगठन ऐसा होना चाहिए कि उसके द्वारा कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि हो। वे काम पर सन्तोष का अनुभव करें। इसके द्वारा कर्मचारियों में कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न की जानी चाहिये। क्योंकि संतुष्ट श्रम शक्ति औद्योगिक उपक्रम के लिए एक महत्वपूर्ण सम्पत्ति होती है।

उपर्युक्त दोषों के सिवाय समिति संगठन के द्वारा कई अन्य दोष भी पैदा हो जाते हैं। जैसे मुंहफट या तेज बोलने वाले सदस्यों का एकाधिकार पाया जाना, गोपनीयता की कमी आदि। कुष्ट्ज एवं ओ'डोनेल ने सही ही कहा है कि, "समिति ऐसी होती है कि थोड़ा बनाने बैठो और ऊंट बनाकर आ जाओ।"

समिति संगठन को प्रभावी बनाने के सुझाव(Suggestions for making Committee Organisation more effective)

समिति संगठन को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसके दोषों को दूर करना जरूरी होगा। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं:

(1) उचित आकार (Reasonable size) समिति संगठन को उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें रखे जाने वाले सदस्यों की संख्या उपयुक्त होनी चाहिए। यह संख्या न तो इतनी अधिक हो कि जिससे किसी मसले पर निर्णय लेना कठिन हो जावे और न हो इतनी कम होना चाहिए कि सदस्यों को नये विचारों का लाभ ही न मिल सके और अधिनायको प्रवृत्ति को बत मिले। समिति के आकार को ध्यान में रखने के लिए सामान्यतः 5 से 8 सदस्यों को संस्था ही उपयुक्त समझा जाती है।

(2) समिति के अधिकार एवं कार्य क्षेत्र को स्पष्ट करना (Making objectives, right and scope clear) समिति के सदस्यों के कर्तव्य, अधिकार एवं दायित्वों को स्पष्ट रूप से निर्धारित कर देना चाहिए। यदि गलत निर्णय होंगे वो इन्हें उत्तरदायी उहााया जा सकेगा। उन्हें सामूहिक रूप से लिए गये निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए बाध्य किया जा सकेगा। सदस्य विषयांतर होकर बाद विवाद नहीं करेंगे। प्रत्येक सदस्य समिति के कार्य में अपने उत्तरदायित्व के पालन का सरलतापूर्वक अनुमान लगा सकेगा।

(3) समिति के सदस्यों का चुनाव (Selection of Members) समिति के सदस्यों के चुनाव में सावधानी रखना आवश्यक होता है। ऐसे ही सदस्यों को चुना जाना चाहिए जो न केवल उस समिति से सम्बन्धित मामलों में विशिष्ट ज्ञान रखते हैं वरन् उनकी समिति के कार्यों में व्यक्तिगत रुचि भो होना चाहिए। सदस्यों को कभी भी व्यक्तिगत प्रभाव के आधार पर मनोनीत नहीं करना चाहिए। अर्नेस्ट डेल (Earnest dale) ने ठीक कहा है, "समिति के सदस्यों के दृष्टिकोणों में समानता होनी चाहिए लेकिन उनकी पृष्ठभूमि में भिन्नता होनी चाहिए।"

(4) समिति का अध्यक्ष (Chairman of the Committee) समिति का अध्यक्ष एक योग्य व्यक्ति हो होना चाहिए जो समिति की मीटिंग को सही रूप दे सके। प्रस्तावों एवं वाद-विवादों का सही निपटारा करने में सहायक होवें। उसे समिति की कार्यवाही को सुचारु रूप से संचालन में समर्थ होना चाहिए।

(5) **मीटिंग की तैयारी** (Preparation of the Meeting) समिति की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि मौटिंग होने के पहले उसकी तैयारी पहले से कर ली जाये। मीटिंग के पूर्व ही उसको कार्यावली भी तैयार कर लेनी चाहिए। इससे समिति की मीटिंग का समय बेकार में बरबाद नहीं हो पाता।

(6) **अनुवर्तन** (Follow up) प्रवन्धक के लिए यह आवश्यक है कि वह समिति से सम्बन्धित कार्यों की जानकारी लेता रहे अर्थात् जो काम उसे सौंपे गये हैं

उसके अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं। समिति की कार्यवाही का प्रतिवेदन भी प्रत्येक सदस्य के पास भेजा बना चाहिये।

(7) **मूल्यांकन** (Evaluation) समिति संगठन के लिए यह भी आवश्यक है कि समिति के कार्यों का समय-समय पर मूल्यांकन होता रहे। इससे इस बात की जानकारी मिल सकेगी कि समिति से क्या-क्या लाभ प्राप्त हो रहे हैं और उसको उपयोगिता क्या है।

इस प्रकार समिति के कार्यों को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इसके अलावा समिति संगठन का चुनाव करने के पहले यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि लागत की तुलना में लाभ अधिक हों। साथ ही यह भो आवश्यक है कि समिति के निर्णय पर अमल किया जाये। इसकी प्रगति का भी लेखा-जोखा रखना चाहिए।

अन्तर-इकाई-संगठन (Inter-Unit-Organisation)

(5) **नियंत्रण क्षेत्र की उपयुक्तता** (Reasonable span of control) : अच्छे संगठन के प्रारूप में यह भी देखा जाना चाहिये कि कार्य करने वाले व्यक्तियों का नियंत्रण क्षेत्र उपयुक्त है या नहीं। नियंत्रण के क्षेत्र को कार्य की प्रकृति के अनुसार निश्चित करना चाहिये। इससे उपक्रम में होने वाली गलत गतिविधियों पर अंकुश रखा जा सकेगा। यह सद्भावपूर्ण वातावरण बनाये रखने की दृष्टि से भी अति आवश्यक है। इन सब बातों के अलावा यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि संगठन के स्वरूप का चुनाव किस प्रकार के उपक्रम के लिए किया जा रहा है। उस उद्योग की प्रकृति, आकार, विस्तार की सम्भावनाएँ, संगठन की लागत और उपयुक्तता पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

8.9 संगठनात्मक चार्ट (Organisational Charts)

संगठनात्मक चार्ट संगठन संरचना की समग्र तस्वीर दर्शाता है। इसके द्वारा समतलीय स्तर पर विभागों और संभागों का तथा लम्बवत् स्तर पर उप-विभागों, अनुभागों आदि का प्रदर्शन किया जाता है। यह उत्तरदायित्व,

अधिकारसत्ता और जवाबदेहिता के लम्बवत् प्रवाह को और संचार-श्रृंखला को प्रदर्शित करता है। संगठनात्मक चार्ट के द्वारा हम समूचे संगठन को इसके विभिन्न हिस्सों को और इनके द्वारा सम्पादित किये जा रहे कार्यों के बीच अन्तरसम्बन्धों को समझ सकते हैं।

संगठन चार्ट का उद्देश्य संगठन संरचना के मूल प्रतिमान को सूचित करना होता है। इसके द्वारा यह जाना जा सकता है कि संगठन में क्रियाओं का वर्गीकरण कार्य, क्षेत्र, उत्पाद, ग्राहक या अन्य किस आधार पर किया गया है। इससे यह जानकारी मिलती है कि संगठन में प्रबन्धकीय स्तरों की कितनी संख्या है तथा प्रबन्धकीय क्रमवद्धता में किसी प्रबन्धकीय पद की क्या हैसियत है? यह स्टाफीय, क्रियात्मक और रेखीय सम्बन्धों के बीच अन्तर भी प्रदर्शित करता है। चार्ट द्वारा विभिन्न प्रबन्धकीय पदों को जोड़ने वाली औपचारिक संचार रेखाओं की जानकारी मिलती है। सामान्यतया किसी उपक्रम में प्रमुख चार्ट से संगठन के प्रमुख हिस्सों, विभागों और संभागों का पता चलता है एवं अन्य अनेक सहायक चार्यों से विभिन्न विभागों तथा संभागों की संरचना का पता चलता है।

चार्यों के प्रकार (Types of Charts)

संगठनात्मक चार्टों के तीन प्रमुख प्रकार होते हैं -

1. लम्बवत् चार्ट (Vertical Chart),

2.समतलीय चार्ट (Horizontal Chart) और

3. वृत्ताकार चार्ट (Circular or Concentric Chart) |

लम्बवत् या पिरामिड आकार वाले चार्यों का उपयोग परम्परागत रूप से सर्वाधिक किया जाता है। यह अधिकारसत्ता और संचार के लम्बवत् प्रवाह को दर्शाता है। इसमें शीर्ष अधिकारी को सबसे ऊपर तथा निम्नस्तरीय अधिकारी को सबसे नीचे चित्रित किया जाता है। ऊपर से नीचे खड़ी रेखाएँ विभिन्न

स्तरों और पदों के सम्बन्धों को दर्शाती हैं। इसे आसानी से पढ़ा और समझा जा सकता है। इसे अमांकित रेखाचित्र द्वारा चित्रित किया जा सकता है :

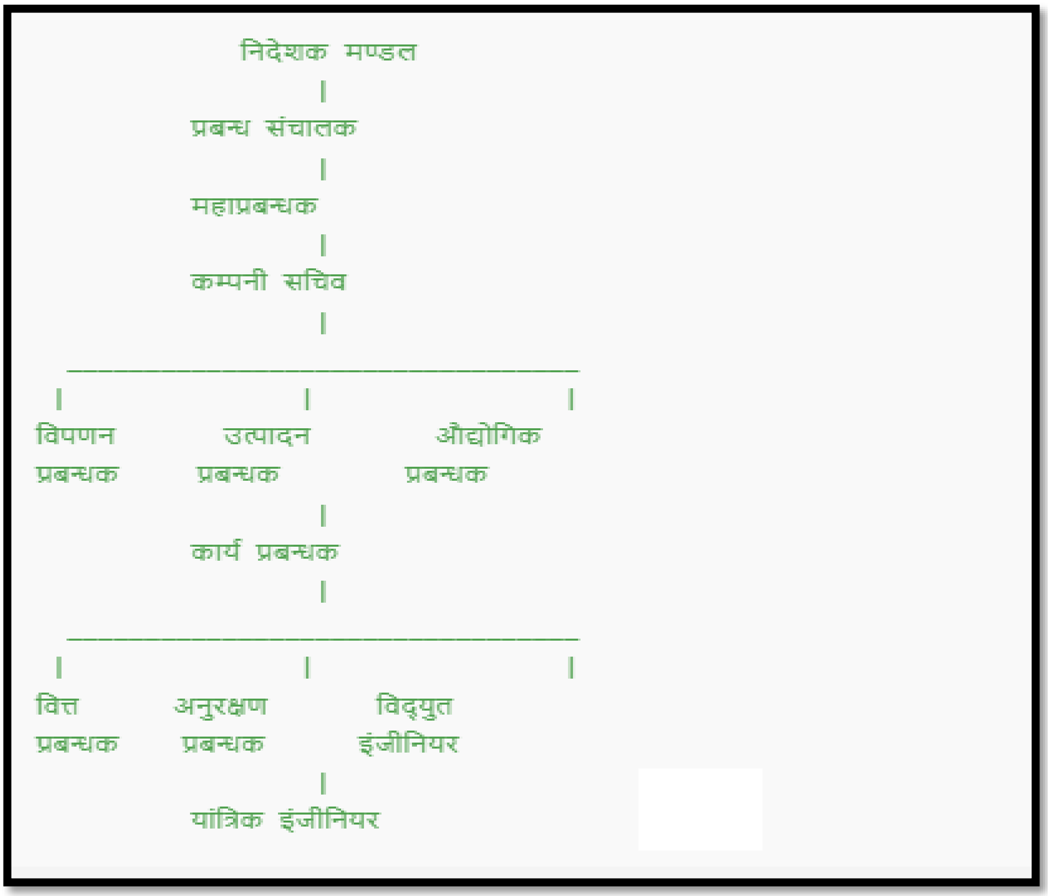

समतलीय चार्ट को बायें से दायें पढ़ा जाता है। इसमें शीर्ष अधिशासी को बिल्कुल बायीं ओर तथा निम्नतम पद को बिल्कुल दायीं ओर एवं बीच के पदों को इसी क्रम में वरिष्ठता के आधार पर प्रदर्शित किया जाता है। इसे रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है-

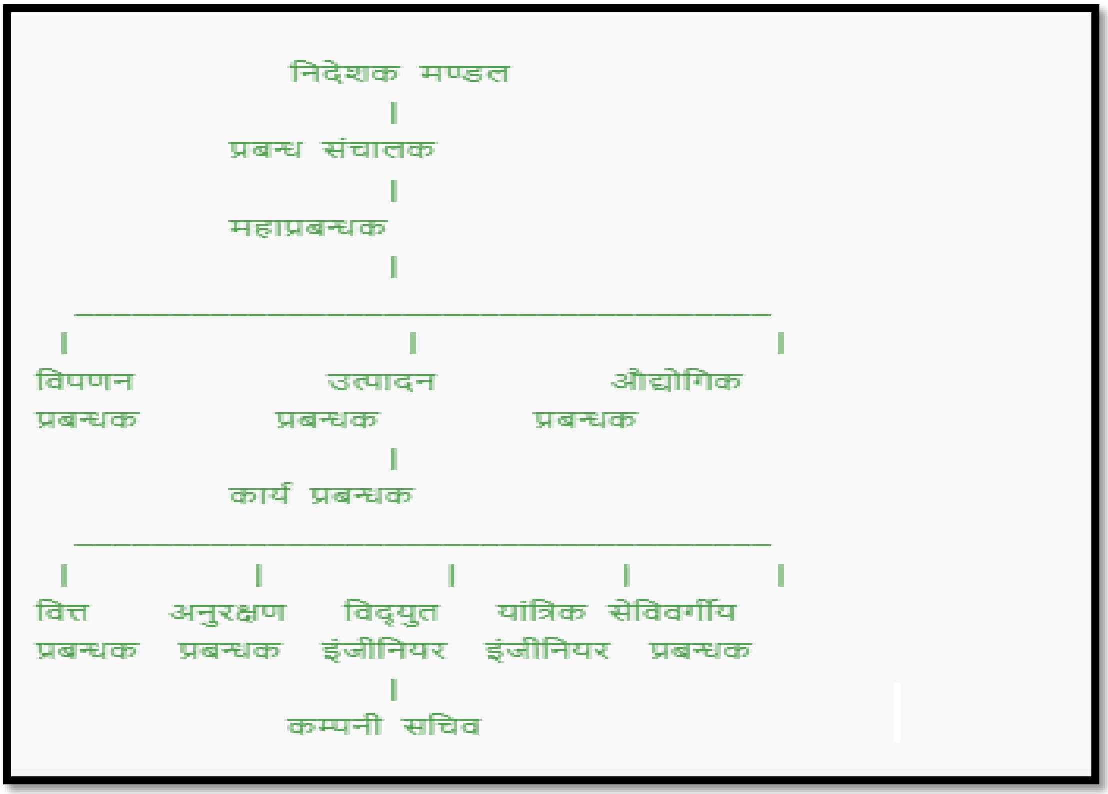

वृत्ताकार संगठन चार्ट में मुख्य अधिशासी को वृत्तों की श्रृंखला के केन्द्र में दर्शाया जाता है। अन्य अधीनस्थ पदाधिकारियों को इससे जुड़े दूसरे वृत्त की परिधि पर तथा उनसे निचले अधिकारियों को अन्य वृत्तों की परिधि पर दर्शाया जाता है। इसका लाभ यह है कि इसमें लम्बवत् अधिकारसत्तात्मक सम्बन्धों पर कम बल दिया जाता है। यह शीर्ष अधिशासी से अधिकारसत्ता के निकलते प्रवाह को दर्शाता है। यह भी सही है कि यह दिखने में जटिल होता है। इसे रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

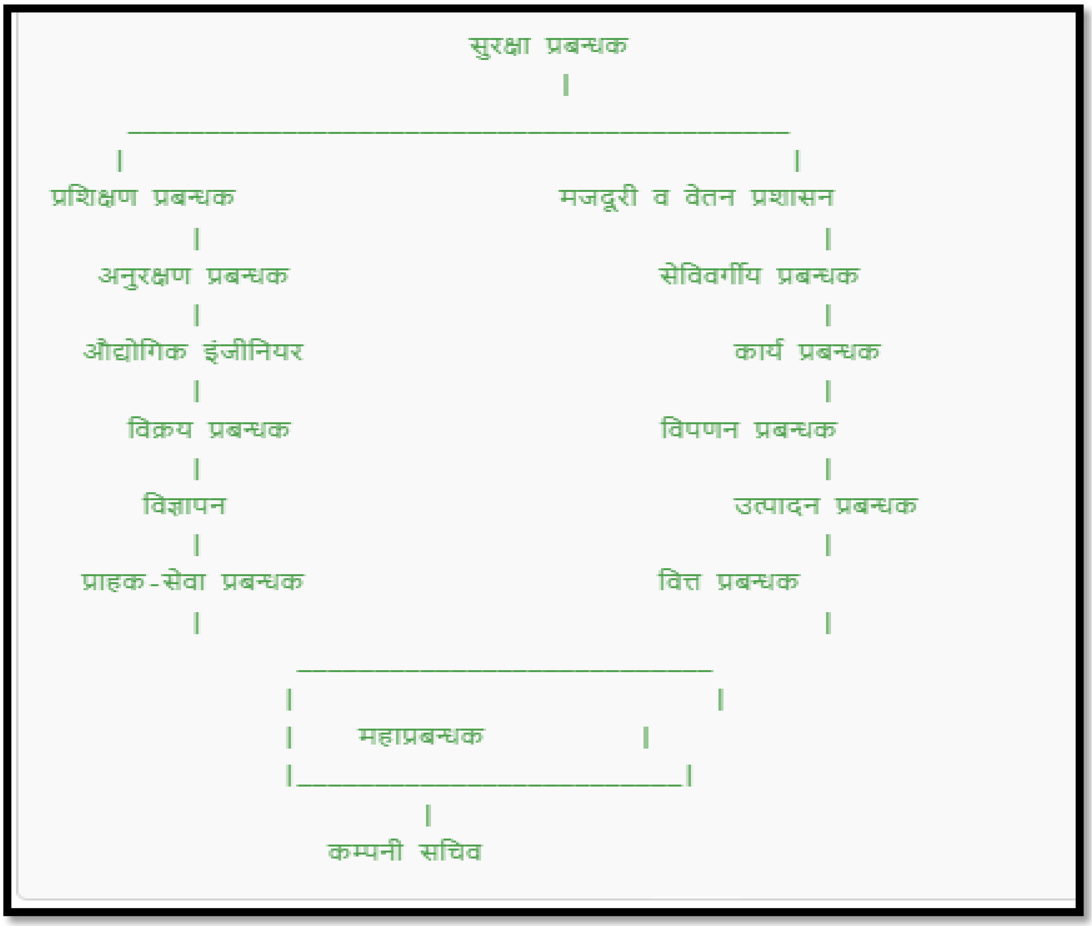

संगठनात्मक चार्ट के उपयोग (Uses of Organisational Chart)

संगठनात्मक चार्ट के अनेक उपयोग हैं, जो इस प्रकार हैं-संगठन चार्ट किसी संगठनात्मक संरचना की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करता है, यह अधिकारसत्ता -उत्तरदायित्व-जवाबदेही सम्बन्धों, संचार-श्रृंखलाओं को स्पष्ट करता है। इसमें यदि कोई विसंगतियाँ या कमियाँ हों तो उसका भी पता चल जाता है।

3. यह कृत्य विश्लेषण, कृत्य विवरण तथा कृत्य विशिष्टता एवं कृत्य मूल्यांकन में मार्गदर्शन प्रदान करता है और संगठन में नियुक्तिकरण की आवश्यकताओं के निर्धारण तथा उनके लिये प्रशिक्षण की जरूरतों के निर्धारण में सहायता करता है।

4. यह बाहरी पक्षकारों को यह निश्चित करने में मार्गदर्शन करता है कि उन्हें संगठन में किससे सम्पर्क करना है।

5. संगठनात्मक चार्ट से सभी संगठनात्मक पदों के समक्ष यह स्पष्ट होता है कि संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में उनके कार्य का क्या सम्बन्ध और योगदान है। वे पदोन्नति की सामान्य रेखाओं से अवगत होते हैं।

6. संगठनात्मक नियोजन और विश्लेषण की दृष्टि से इसका इस रूप में महत्व है कि यह संगठन करने के वैकल्पिक मार्गों का विकास करने में और उनका तुलनात्मक अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है।

संगठनात्मक चार्ट की सीमाएँ (Limitations of Organisational Chart)

संगठनात्मक चार्ट की अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनके कारण इसकी उपयोगिता कम हो जाती है। ये सीमाएँ इस
प्रकार हैं-

1. कोई भी संगठन गतिशील, जीवित और प्रवाहमयी प्रणाली होता है जो अनवरत चलायमान रहती है। जबकि संगठनात्मक चार्ट गतिशील प्रक्रियाओं व स्थितियों का स्थिर प्रतिरूप प्रदर्शित करता है। यह समय बीतने के साथ पुराना पड़ जाता है और सूचना व मार्गदर्शन की दृष्टि से पुराना चार्ट उसी तरह से अनुपयोगी होता है जिस तरह पुराना समाचार-पत्र। इसलिये इसके अप्रचलित होने की आशंका सदैव बनी रहती है। इसलिये इसे संगठन की वास्तविकता का विश्वस्त प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।

2. संगठनात्मक चार्ट केवल औपचारिक संगठन संरचना और औपचारिक सम्बन्धों को ही प्रदर्शित करता है। उपक्रम में जो अनौपचारिक संगठन और सम्बन्ध स्थापित हो बाते हैं जिनका अपना विशेष महत्व होता है, उनके बारे में यह लेशमात्र भी संकेत नहीं करता।

3. संगठनात्मक परिवर्तन तेजी से होते रहने पर यह कालातीत हो जाता है। कई उपक्रमों, जैसे- इलेक्ट्रॉनिक्स, वायु अन्तरिक्ष (Aerospace), सूचना प्रणाली उद्योगों को उत्यधिक गतिशील तथा जटिल वातावरण में काम करना
पड़ता है और त्वरित परिवर्तनों से गुजरना पड़ता है।

4. संगठनात्मक चार्ट विभिन्न प्रवन्धकीय पदों के कार्यों, अधिकारों और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट रूप से प्रदर्शन नहीं करता। इससे संगठन में सत्ता के केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की सीमा का पता नहीं चलता।

5. यह रेखीय और स्टाफीय अधिकारियों के सन्दर्भ में उनके सचात्मक सम्बन्धों के बारे में भ्रमित करता है। प्रायः शीर्ष अधिकारी के साथ जुड़े व्यक्तिगत स्टाफ को संरचना में ऊपर दिखाया जादा है। इससे स्टाफीय लोगों की हैसियत उन रेखीय अधिकारियों से ऊंची दिखाई देती है जो संरचना के निचले स्तरों पर कार्यरत होते हैं।

6. चार्ट से प्रायः संगठनात्मक संरचना को लेकर भ्रम हो सकता है, क्योंकि यह संगठन का मानकीय प्रतिरूप होता है न कि वास्तविक प्रतिरूप। इसके अतिरिक्त, यह संगठन संरचना की सिर्फ सतही तस्वीर प्रस्तुत करता है। यह विभिन्न संरचनात्मक आयामों, प्रक्रियाओं तथा तत्वों की प्रभावशीलता को प्रदर्शित नहीं करता।

8.10 सार संक्षेप

संगठन संरचना किसी संगठन की प्रभावी प्रबंधन प्रक्रिया का आधार है। इसमें विभागीय, रेखीय, और क्रियात्मक संगठन जैसी संरचनाओं की चर्चा की गई है। रेखीय संरचना में स्पष्ट अधिकार श्रृंखला होती है, जबकि क्रियात्मक संगठन में कार्य विशेषज्ञता पर बल दिया जाता है। संगठनात्मक चार्ट संगठन के भीतर विभिन्न कार्यों और उनके परस्पर संबंधों का स्पष्ट चित्रण करता है। इस इकाई में संगठन संरचना के चुनाव से संबंधित कारकों और उनके प्रभावों पर भी प्रकाश डाला गया है।

स्व प्रगति प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)
   i. रेखीय संगठन का मुख्य लाभ क्या है?

A. कार्य विशेषज्ञता

B. आदेश की स्पष्टता

C. लागत में कमी

D. लचीलापन

2. संगठनात्मक चार्ट का मुख्य उद्देश्य है:

A. संगठन के कार्यों का विभाजन

B. संगठन की संरचना का चित्रात्मक प्रदर्शन

C. कर्मचारियों का चयन

D. कार्य प्रदर्शन का मूल्यांकन

3. संगठनात्मक चार्ट संगठन के ______ और उनके परस्पर संबंधों को दर्शाता है।

4. क्रियात्मक संगठन में ______ पर बल दिया जाता है।

8.11 मुख्य शब्द

संगठन संरचना (Organizational Structure): किसी संगठन में विभिन्न स्तरों और कार्यों का ढांचा।

रेखीय संगठन (Line Organization): निर्णय और आदेश की स्पष्ट श्रृंखला पर आधारित संगठन।

क्रियात्मक संगठन (Functional Organization): कार्य विशेषज्ञता और विभागीय विभाजन पर आधारित संगठन।

संगठनात्मक चार्ट (Organizational Chart): संगठन के पदों और कार्यों का चित्रात्मक प्रदर्शन।

उत्तर 1: B. आदेश की स्पष्टता,

उत्तर 2: B. संगठन की संरचना का चित्रात्मक प्रदर्शन,

उत्तर 3: पदों,

उत्तर 4: कार्य विशेषज्ञता

8.12 संदर्भ (References)

Gulati, R. (2018). *Organisational Behaviour and Structure*. Pearson Education.

Jones, G. R. (2019). *Organisational Theory, Design, and Change*. McGraw-Hill Education.

Robbins, S. P., & Judge, T. A. (2020). *Essentials of Organisation Structure*. Pearson.

Mintzberg, H. (2021). *Structure in Fives: Designing Effective Organisations*. Sage Publications.

Ghosh, P. (2023). *Modern Approaches to Organisation Structure*. Cambridge University Press.

8.13 अभ्यास प्रश्न

1. संगठन के विभिन्न प्रारूपों के नाम बताइये। रेखा तर्धा कर्मचारी संगठन में अन्तर बताइये ।
2. संगठन के विभिन्न प्रारूपों का नाम बताइये तथा रेखा एवं कर्मचारी और क्रियात्मक संगठन को समझाइये।
3. संगठन के विभिन्न प्रारूपों का वर्णन कीजिए।
4. रेखा संगठन पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिये।
5. रेखा संगठन को समझाइये तथा इसके गुण और दोषों की विवेधना कीजिये।
6. प्रवन्ध कार्य में 'स्टाफ' का क्या महत्व है? स्टाफ कार्य कब सूबित किया जाना चाहिए।
7. रेखा एवं कर्मचारी संगठन को समझाइये। यह रेखा संगठन से किस प्रकार भिन्न है?

8. 'रेखा एवं कर्मचारी' संगठन तथा 'कार्यात्मक' संगठन में अन्तर बताइये। एक बड़े उपक्रम के लिए आप इनां से कौन-सा प्रारूप अपनायेंगे।

9. 'रेखा तथा कर्मचारी' सम्बन्धों की समस्या को स्पष्ट कीजिये। इसके समाधान के लिए सुझाव दीजिये ।

10. रेखा तथा कर्मचारी' संगठन में टकराहट के कारण स्पष्ट कीजिये तथा इस संघर्ष को दूर करने के उपाय बताइये

11. एक संगठन में सम्बन्धों के सम्भव प्रारूपों का विवेचन कीजिए। एक निर्माणी संगठन से आप किस प्रकार वे सम्बन्ध को अधिक उपयुक्त समझेंगे?

12. संगठन चार्ट क्या है? इनकी उपयोगिताएँ एवं सीमाएँ बताइये ।

ब्लॉक - III

इकाई -9

प्रबन्ध का विस्तार

(SPAN OF MANAGEMENT)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्‌देश्य

9.3 अवधारणा प्रबन्ध का विस्तार

9.4 प्रबन्ध के विस्तार को निर्धारित करने वाले घटक

9.5 संकुचित एवं व्यापक प्रबन्ध का विस्तार

9.6 आदर्श प्रबन्ध का विस्तार

9.7 सार संक्षेप

9.8 मुख्य शब्द

9.9 संदर्भ

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रबन्धक व्यावहारिक दृष्टि से व्यक्तियों की संख्या के आधार पर प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण कर सकता है। संगठन की प्रक्रिया में पदानुक्रमता निम्न प्रकार प्रकट होती है:

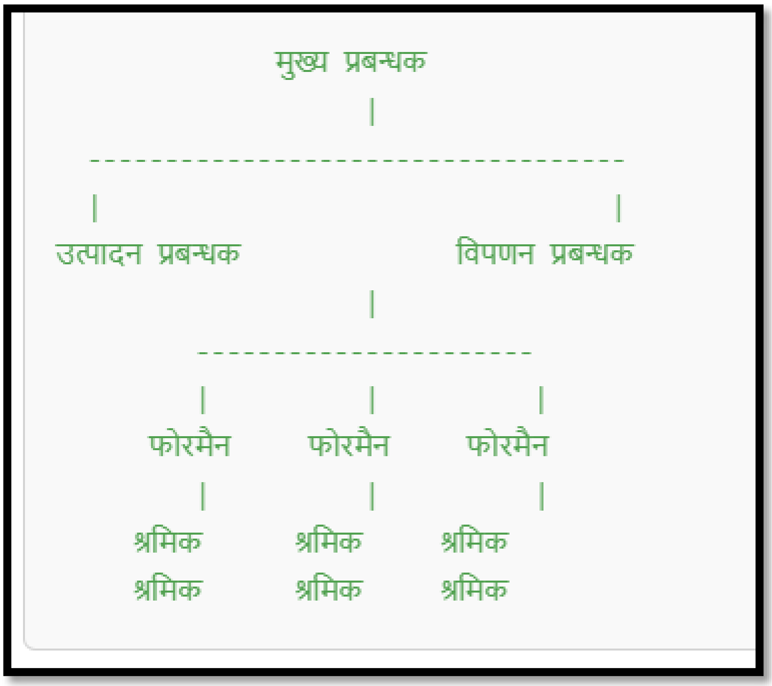

प्रबन्ध का विस्तार और पदों की पदानुक्रमता प्रबन्धक को प्रबन्ध का विस्तार निर्धारित करते समय उक्त घटकों पर समुचित रूप से विचार करना चाहिए। प्रबन्ध का विस्तार व्यापक होने पर लोचशीलता और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अनुकूलनशीलता बढ़ती है। इससे ऐसे वातावरण की सृष्टि होती है जिसमें प्रबन्धकीय पहलपन तथा योग्यता को बढ़ावा मिलता है। इससे अधीनस्थों को अभिप्रेरित करने तथा उन्हें प्रतिबद्ध बनाने में सहायता मिलती है। वहीं संकुचित विस्तार के अन्तर्गत पर्यवेक्षक सूक्ष्म और सख्त होता है। इसमें कार्यों को सुपरिभाषित किया जाता है और अधीनस्थों को पहल करने के कम अवसर मिलते हैं। इसमें अधोगामी संचार पर तथा समन्वय के औपचारिक साधनों पर अधिक जोर रहता है। यह यांत्रिक संगठनों के लिए अधिक उपयुक्त है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. प्रबंधन के विस्तार (Span of Management) की अवधारणा और महत्व को समझ सकें।

2. प्रबंधन विस्तार को प्रभावित करने वाले घटकों का विश्लेषण कर सकें।
3. संकुचित और व्यापक प्रबंधन विस्तार के लाभ और सीमाओं का अध्ययन कर सकें।
4. आदर्श प्रबंधन विस्तार के सिद्धांतों और व्यावहारिकता को समझ सकें।

9.3 अवधारणा प्रबन्ध का विस्तार (Concept Span of Management)

प्रबन्ध का विस्तार, अधीनस्थों की वह संख्या है जिसका एक अधिशासी प्रभावी पर्यवेक्षण कर सकता है। प्रबन्ध की प्रतिष्ठित विचारधारा ने एक प्रबन्धक द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से प्रबन्धित की जाने वाली अधीनस्थों की विशिष्ट संस्था के बारे में सामान्यीकरण स्थापित किया है।

ग्रेकुनास सम्भवतः वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रबन्ध के विस्तार की अनेक सीमाओं की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने उच्चाधिकारी और अधीनस्थों के बीच तीन तरह के सम्बन्धों की चर्चा की है-

1. प्रत्यक्ष एकल सम्बन्ध (Direct Single Relation)
2. प्रत्यक्ष वर्षीय सम्बन्ध (Direct Group Relation)
3. प्रति सम्बन्ध (Cross Relation)

उन्होंने इन सम्बन्धों का विश्लेषण करके एक गणितीय सूत्र का विकास किया जिससे यह प्रदर्शित होता है कि अधीनस्थ की एक संख्या के बढ़ने पर, उच्चाधिकारी और अधीनस्थ के बीच अनेक सम्बन्ध तेजी से बढ़ते हैं।

सूत्र -

अधीनस्थों की संख्या

निम्नांकित सारणी इस सूत्र की सार्थकता को बतलाती है कि अधीनस्थ की एक अतिरिक्त संख्या के परिणामस्वरूप अनेक सम्बन्धों में वृद्धि होती है जिसे प्रबन्धक द्वारा प्रबन्धित करना पड़ता है।

अधीनस्थों की संख्या और सम्बन्धों की संख्या की सारणी

अधीनस्थों की संख्या	**सम्बन्धों की संख्या**
1	1
2	6
3	18
4	44
5	100
10	11,374

सारणी की व्याख्या: ग्रेकुनास के अनुसार, किसी उच्चाधिकारी के राधीदरों की संख्या बढ़ने एकल सम्बन्ध के साथ-साथ प्रतिसम्बन्धों और वर्गीय सम्बन्धों की संख्या तेजी से बढ़ने के कारण, कुल सम्बन्धों की संख्या अत्यधिक हो जाती है। जैसे कि एक अधिशासी के तीन अधीनस्थ हों तो उसे तीन प्रत्यक्ष सम्बन्धों के अतिरिक्त सात वर्गीय सम्बन्धों तथा चार प्रतिसम्बन्धों का भी पर्यवेक्षण करना होगा। इससे सम्बन्धों की जटिलता उत्तरोत्तर बढ़ती है। चार अधीनस्थों की संख्या की दशा में इन सम्बन्धों की कुल संख्या 44, पाँच होने पर 100 तथा 10 होने पर 11,374 तक हो जाती है।

लिण्डाल उर्विक के अभिमत में सभी उच्चाधिकारियों के लिए अधीनस्थों की आदर्श संख्या चार है और संगठन के निचले स्तरों पर जहाँ अन्यों के पर्यवेक्षण के बजाय विशिष्ट कार्य को पूरा करने का उत्तरदायित्व होता है, यह संख्या आठ अथवा बारह हो सकती है।

हैमिल्टन, जो एक सैनिक अधिकारी थे, वे अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अधीनस्थों की संख्या शीर्ष-स्तर पर तीन और निचले स्तर पर एक होनी चाहिए।

वास्तविक व्यवहार में प्रबन्ध के विस्तार के बारे में इन संख्यात्मक सामान्यीकरण की पुष्टि नहीं होती है। अमेरिकी प्रवन्ध एसोसिएशन द्वारा किए गए सौ बड़ी कम्पनियों के सर्वेक्षण में यह पाया गया कि निगम अध्यक्षों को रिपोर्ट करने वाले मुख्य अधिशासियों की संख्या 1 से 24 तक थी। उनमें

से सिर्फ 2 निगमाध्यक्षों के अधीन 6 या इससे कम अधीनस्थ थे। बड़ी कम्पनियों के लिए माध्यिका संख्या (Median Number) 8 और 9 के बीच थी और छोटी कम्पनियों के लिए 6 और 7 के बीच।

इन तमाम अध्ययनों के उपरान्त भी यह सही है कि इनमें से कोई अध्ययन प्रबंध के वास्तविक विस्तार की सही तस्वीर प्रस्तुत नहीं करता, क्योंकि वे उपक्रम के शीर्ष-स्तर के आस-पास विस्तार की ओर संकेत करते हैं। समूचे उपक्रम में विस्तार को निर्धारित करना कठिन है। विभिन्न आकार वाली सौ कम्पनियों का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि प्रबन्ध के मध्यम स्तर पर शीर्ष की तुलना में विस्तार संकुचित हो जाता है।

9.4 प्रबन्ध के विस्तार को निर्धारित करने वाले घटक (Factors determining Span of Management)

एक प्रबन्धक प्रभावी तरीके से कितने अधीनस्थों को प्रबन्धित कर सकता है, इस हेतु प्रबन्धकीय, संगठनात्मक और कार्य सम्बन्धित अनेक घटकों को ध्यान में रखना पड़ता है। हम इन विभिन्न घटकों को उच्चाधिकारी से सम्बन्धित, अधीनस्य से सम्बन्धित और संगठनात्मक घटक के रूप में विवेचित कर सकते हैं-

1.उच्चाधिकारी से सम्बन्धित घटक (Superior Related Factors)

अधीनस्थों की वह संख्या जिसे कि कोई प्रबन्धक प्रभावी ढंग से प्रबन्धित कर सकता है, यह संख्या स्वयं प्रबन्धक को व्यक्तिगत विशेषताओं से भी निर्धारित होती है। इनमें महत्वपूर्ण हैं-

(i) योग्यता और सक्षमता,

(D) पर्यवेक्षकीय शैली, और

(iii) अधिकारसत्ता का भारार्पण।

योग्यता और सक्षमता (Abilities and Competence)- यदि प्रबन्धक समस्याओं को शीघ्रता से समझ लेता है कि उसमें निर्णायक शक्ति है, वह यह

जानता है कि कब विस्तृत रूप में जाना चाहिए और कब ब्यूहरचनात्मक स्तर पर जोर देना चाहिए तथा उसमें बदलती परिस्थितियों को स्वीकारने की योग्यता है तब वह बडी संख्या में अधीनस्थों की पर्यवेक्षण कर सकता है। ऐसे में प्रबन्ध का विस्तार व्यापक रखा जा सकता है।

(ii) **पर्यवेक्षकीय शैली** (Supervisory Style)- यदि प्रबन्धक सूक्ष्मतापूर्वक (Closely) पर्यवेक्षण करता है तब वह कम ही अधीनस्थों को प्रबन्धित कर सकता है। वहीं, यदि वह अपने अधीनस्थों के कार्यों व उत्तरदायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है, वह 'अपवाद-सिद्धान्त' के आधार पर पर्यवेक्षण करता है और उन्हें परिणाम के लिए उत्तरदायी बनाता है तब वह अधीनस्थों की संख्या अधिक रखकर व्यापक प्रबन्ध विस्तार को अपना सकता है।

(iii) **अधिकारसत्ता का भारार्पण** (Delegation of Authority) प्रबन्ध के विस्तार को प्रभावित करने वाला एक और उच्चाधिकारी से सम्बन्धित घटक है भारार्पण। यदि प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को कृत्य-सम्बन्धित निर्णय लेने हेतु पर्याप्त अधिकारसत्ता भारार्पित करता है, उन्हें पहल करने का समुचित अवसर प्रदान करता है और उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने हेतु अभिप्रेरित करता है तब वह अधिक संख्या में अधीनस्थों का पर्यवेक्षण कर सकता है।

2.अधीनस्थ से सम्बन्धित घटक (Subordinate Related Factors)

अधीनस्थों की वह संख्या जिसे कि कोई प्रवन्धक प्रभावी ढंग से प्रबन्धित कर सकता है, यह उसके अधीनस्थों की विशेषताओं पर भी निर्भर करता है। इनमें महत्वपूर्ण हैं-

(i) योग्यता और सक्षमता,

(ii) अभिप्रेरण तथा प्रतिबद्धता, तथा

(iii) स्वायत्तता की आवश्यकता।

(i) योग्यता और सक्षमता (Abilities and Competence)- अधीनस्थों की योग्यता और सक्षमता भी प्रबन्ध के विस्तार को प्रभावित करते हैं। जो

अधीनस्थ अपने कार्य में सुप्रशिक्षित होते हैं, कार्य-निष्पादन की योग्यता व सक्षमता रखते हैं, ऐसे अधीनस्थों की समस्या समाधान तथा पर्यवेक्षण में उच्चाधिकारी को कम समय लगता है तो प्रवन्धक विस्तार रख सकता है।

(ii) अभिप्रेरण और प्रतिवद्धता (Motivation and Commitment) जिन अधीनस्थों में पहल करने और उत्तरदायित्व उठाने की तथा अपनी योग्यता को विकसित करने के लिए अभिप्रेरणा होती है, वे अपने उच्चाधिकारियों का कम समय लेते हैं। ये बात उनकी प्रतिबद्धता पर भी लागू होती है। जो अधीनस्थ अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, उसके निष्पादन में अधिक समय व प्रयास लगाते हैं, उनके पर्यवेक्षण व नियन्त्रण में उच्चधिकारी का कम समय लगता है।

(iii) स्वायत्तता की आवश्यकता (Need for Autonomy) जो अधीनस्थ उच्च-स्तरीय स्वायत्तता को पसन्द करते हैं वे अपने निर्णय स्वयं ही लेना चाहते हैं, जबकि निर्भर प्रकृति वाले निर्णय लेने हेतु अपनी समस्याओं को लेकर अपने उच्चाधिकारी के पास जाते हैं। परिणामतः वे उनका अधिक समय लेते हैं। इस प्रकार उच्चाधिकारी और अधीनस्थ 3.

के बीच यदि सम्पर्कों की बारम्वारता बढ़ेगी तब उच्चाधिकारी अधीनस्थों का पर्यवेक्षण कम ही कर सकते हैं।

3.**संगठनात्मक घटक** (Organisational Factors)

अनेक संगठनात्मक घटक भी प्रवन्ध के विस्तार को प्रभावित करते हैं। इनमें से प्रमुख हैं-

(i) कार्यों की प्रकृति,

(ii) भौगोलिक स्थान,

(iii) योजनाओं की स्पष्टता,

(iv) निव्पादन मूल्यांकन के वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष,

(v) संचार-प्रणाली,

(vi) विशेषज्ञों की सेवाएँ, और

(vii) परिवर्तन की दर।

(i) **कार्यों की प्रकृति** (Nature of Tasks)- यदि कार्य सरल, प्रमापित, स्थायी व नैत्यक प्रकृति वाले हैं तो उनके नियोजन व निर्देशन में तथा उनके निष्पादन के नियन्त्रण में पर्यवेक्षक का कम समय लगता है। यदि कार्य जटिल, परिवर्तनशील व अत्यधिक रूप से परस्पर सम्बन्धित है तो प्रबन्धक द्वारा उन पर नजर रखने, आवश्यक परामर्श देने और उनमें सावधानीपूर्वक समन्वय स्थापित करने में अधिक समय देना होगा, इसलिए प्रबन्ध का विस्तार कम होगा। इसके अतिरिक्त, यदि किसी प्रबन्धक के अधिकांश या सभी अधीनस्थ एक जैसे कार्यों के निष्पादन में लगे हैं तो उसे उनके समन्वय व नियन्त्रण में कम समय लगेगा, इसलिए प्रबन्ध का विस्तार अधिक हो सकता है।

(ii) **भौगोलिक स्थान (Geographical** Location) यदि समस्त या अधिकांश अधीनस्थ विभिन भौगोलिक क्षेत्रों में फैले न होकर एक ही स्थान या एक ही भवन में स्थित हों तो प्रवन्धक प्रबन्ध के व्यापक विस्तार के। रख सकता है।

(iii) **योजनाओं की स्पष्टत्ता** (Clarity of Plans) सुपरिभाषित संगठनात्मक नीतियाँ, कार्य-विधियाँ, योजनाएं नियम, मापनीय मापदण्ड और विधियाँ संगठन की कार्य-प्रणाली को सुगम बनाती हैं। इनके आधार पर सुगमता दे साथ निर्णय लिया जा सकता है और इनसे निर्णय प्रामाणिक बनता है। इससे उच्चाधिकारी और अधीनस्थ के सम्बन्धं में भी सहजता आती है। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध के विस्तार को बढ़ाया जा सकता है।

(iv) **निष्पादन मूल्यांकन के वस्तुनिष्ठ निकष** (Objective Criteria of Performance Evaluation)- वस्तुनिष्ठ प्रमापों के द्वारा निष्पादन के मूल्यांकन का कार्य सरल हो जाता है। उत्पादन और विक्रय के मामले निष्पादन मूल्यांकन के वस्तुनिष्ठ निष्कर्षों की उपलब्धता से प्रवन्धक के लिए

यह संभव हो जाता है कि वे अधिव प्रबन्ध-विस्तार रख सकें। इसके विपरीत, यदि ऐसे आधारों को विकसित नहीं किया जा सके या जहाँ निष्पादन के परिमाणात्मक रूप से मापना सम्भव न हो तो प्रबन्ध का विस्तार कम होगा।

(v) **संचार प्रणाली (Communication System)** प्रबन्ध के विस्तार को प्रभावित करने वाला यह एव महत्वपूर्ण घटक है। प्रबन्धक और उसके अधीनस्थों के बीच प्रत्यक्ष, नियमित और निर्वाध संचार तथा ने नीर आपसी सम्पर्कों को सुविधा पर भी प्रबन्ध का दिप्यार निर्भर करता है। इस तरह, याद सचार व प्रतिपुष्टि प्रणाली सुगम व कारगर है तो प्रवन्ध का विस्तार अधिक हो सकता है।

(vi) **विशेषज्ञों की सेवाएँ** (Staff Assistance) प्रबन्धकों के कुछ प्रबन्धकीय कार्यभार को विशेषज्ञों के समूह का सौंपा जा सकता है तो ऐसी दशा में प्रबन्ध के विस्तार को बढ़ाया जा सकता है।

(vii) **परिवर्तन की दर** (Ratc of Change) उपक्रम द्वारा ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता हो जिनका प्रौद्योगिकी में तेजी के साथ परिवर्तन होता है या उनके उपभोक्ताओं की रुचियों व वरीयताओं में परिवर्तन आता हो तब नीतियों, योजनाओं, कार्यों आदि में वार-बार परिवर्तन लाना पड़ता है। ऐसे संगठनों में, स्थायी प्रकृति वाले उद्योगों, जैसे - बैंकिंग, बीमा, आदि की तुलना में, प्रबन्ध का विस्तार संकुचित रहेगा।

9.5 संकुचित एवं व्यापक प्रबन्ध का विस्तार (Narrow and Wide Span of Management)

संकुचित प्रबन्ध के विस्तार में अधीनस्थों की संख्या सीमित होती है परन्तु प्रबन्धकीय स्तरों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसीलिए संकुचित प्रबन्ध के विस्तार वाली संगठन संरचना ऊंचे या लम्बे पिरामिड की तरह होती है। इसे केन्द्रीकृत संगठन की संज्ञा भी दी जा सकती है।

इसके विपरीत विस्तृत प्रबन्ध के विस्तार में अधीनस्थों की संख्या अधिक होती है परन्तु प्रवन्धकीय स्तरों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है तथा ऐसे प्रबन्ध विस्तार वाली संगठन की संरचना चपटे (flat) पिरामिड जैसी होतो है। इसे विकेन्द्रीकृत संगठन की संज्ञा दी जा सकती है।

संकुचित प्रबन्ध के विस्तार के गुण व दोष (Merits aud Demerits of narrow Span of Management)- संकुचित प्रबन्ध के विस्तार के निम्न गुण हैं-

(1) अधीनस्थों की संख्या सीमित होने के कारण प्रबन्धकों पर कार्य-भार अत्यधिक नहीं होता अतः नियन्त्रण प्रभावी रहता है।

(2) प्रबन्धक तथा उसके अधीनस्थों का समूह छोटा होता है अतः उसमें अधिक सौहार्द्र तथा सामंजस्य बना रहता है।

(3) छोटा समूह होने के कारण निर्णयों में अधिक सहभागिता पायी जाती है और सम्प्रेषण या संदेशवाहन आसान होता है।

(4) वरिष्ठ प्रबन्धकों को नियोजन करने तथा सोचने के लिए अधिक समय मिल जाता है क्योंकि अधीनस्थ अपना कार्य बगैर किसी टकराव के सहजतापूर्वक करते रहते हैं।

इसके विपरीत संकुचित प्रबन्ध के विस्तार के निम्न दोष भी देखने भी देखने को मिलते हैं-

(1) प्रबन्धकीय स्तर अधिक होने के कारण प्रवन्धकों की संख्या अधिक होती है। अतः यह संगठन संरचना अधिक व्यय साध्य है।

(2) प्रबन्धकीय स्तर अधिक लम्बा होने के कारण इसमें संदेशवाहन में अधिक समय लगता है और कभी-कभी निचले स्तर के कर्मचारियों के विचार उच्च प्रबन्धक तक पहुँच ही नहीं पाते।

(3) संकुचित प्रबन्ध के विस्तार में सर्वोच्च प्रबन्ध प्रथम स्तरीय प्रबन्ध से बहुत दूर हो जाता है। इससे प्रथम स्तरीय प्रबन्धकों की सक्रिय भूमिका कम हो जाती है और वे लालफीताशाही के शिकार हो जाते हैं।

व्यापक प्रबन्धक के विस्तार के गुण व दोष (Merits and Demerits of wide Span of Management)- आज के व्यवहारवादी प्रबन्धशास्त्री व्यापक प्रबन्ध के विस्तार के समर्थक हैं। वे इसके निम्न गुण इंगित करते हैं-

(1) प्रबन्ध का विस्तार व्यापक होने से प्रबन्धकीय स्तरों की संख्या कम होती है अतः प्रबन्धकीय निर्णय तथा अन्य सूचनाओं का सम्प्रेषण बिना किसी मिलावट के शीघ्र किया जाना सम्भव होता है।

(2) प्रबन्धकीय स्तरों की कम संख्या अधीनस्थों तथा उच्च प्रबन्ध के मध्य अनौपचारिकता लाती है जिससे उनमें संगठन में सौहार्द्र का वातावरण पैदा होता है।

(3) चूँकि व्यापक प्रबन्धक के विस्तार में अधीनस्थों की संख्या अधिक होती है तो वरिष्ठ प्रबन्धक अत्यधिक नियन्त्रण पर ओर नहीं देते बल्कि वे अधिकारों का अधिकतम अन्तरण करके कार्य सम्पन्न कराना पसन्द करते हैं। इससे कार्य में तेजी आ जाती है।

(4) इसमें चूंकि अधीनस्थों पर अधिक उत्तरदायित्व डाल दिया जाता है और उन्हें आवश्यक अधिकार भी प्रदान कर दिये जाते हैं अतः वे अधिक परिश्रमी, उत्साही, लगनशील वथा उत्तरदायी बनते हैं। इस प्रकार संगठन का मानव संसाधन विकास सम्भव होता है।

इसके विपरीत व्यापक प्रबन्ध के विस्तार के निम्न दोष भी हैं-

(1) इसमें कर्मचारी समूह बड़ा होने के कारण उन पर प्रभावी नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं हो पाता जिससे संगठन शिथिल तथा कम कार्यक्षम हो जाता है।

(2) बड़े कर्मचारी समूहों में सौहार्द्र तथा सामंजस्य का अभाव रहता है जिसका प्रभाव संगठन की क्षमता पर पड़ता है।

(3) प्रबन्धकीय स्तर कम होने के कारण अधीनस्यों की प्रोन्नति के अवसर पर कम रहते हैं। इससे उनका मनोबल गिरता है तथा कार्य के प्रति अलगाव पैदा हो जाता है।

संकुचित तथा व्यापक प्रबन्ध के विस्तार के गुण-दोषों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों में से किसी को भी सर्वोपयुक्त नहीं माना जा सकता। वास्तव में उपक्रम की प्रकृति तथा आवश्यकता के अनुसार ही प्रबन्ध का विस्तार निर्धारित किया जाना चाहिए।

9.6 आदर्श प्रबन्ध का विस्तार (Ideal Span of Managemen)

प्रबन्ध के विस्तार का फार्मूला तथा प्रबन्ध के विस्तार को प्रभावित करन वाले घटकों का अध्ययन करने के बाद यह प्रश्न उठता है कि एक फर्म में प्रबन्ध का आदर्श या अनुकूलतम विस्तार कितना होना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति यह तो मानता है कि एक प्रबन्ध के अन्तर्गत कार्य करने वाले अधीनस्थों को देखण को एक सीमा होनी चाहिए परन्तु वह सीमा क्या हो इस पर मत-मतान्तर है। वास्तव में अधीनस्थों की संख्या था प्रवन्ध का विस्तार के आधार पर ही एक फर्म की संगठनात्मक संश्यना निर्भर करती है। यदि एक फर्म क्तिमिड जैसा लम्बवत् संगठन बनाती है तो उसमें प्रबन्ध का विस्तार तो छोटा होगा परन्तु इसमें अधिकारियों की संख्या अधिक रखनी होगी और वेतन बजट बड़ा होगा जबकि क्षैतिज या समतल संगठन (Horizontal or Flat) में प्रवन्ध विस्तार चौड़ा होगा और अधिकारियों की संख्या 25 चौडा या समतल प्रवन्ध विस्तार कम तथा वेतन बजट थोड़ा होगा।

इस बात को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है:

माना कि एक फर्म में 50 श्रमिक हैं। यदि फर्म का मुख्य प्रबन्धक प्रबंध विस्तार यदि फर्म का मुख्य पथक विस्तार उसे अपने अधीन 2 पर्यवेक्षक (supervisors) रखने होंगे और समतल संगठन बनाना होगा। यदि वह प्रवन्ध विस्तार

ก 5 5 5 5

5 m 5

छोटा या लम्ववत् प्रवन्ध विस्तार

छोटा अर्थात् 5 श्रमिकों का रखना चाहता है तो उसे पिरामिड जैसा लम्बवत् संगठन बनाना होगा जिसमें मुख्य प्रबन्धव के अधीन 2 प्रबन्धक होंगे। प्रत्येक ऐसे प्रबन्धक के अधीन 5-5 पर्यवेक्षक (supervisor) होंगे, इस प्रकार 10 पर्यवेक्षव होंगे जो प्रत्येक 5-5 श्रमिकों का पर्यवेक्षण करेगा। इस प्रकार प्रबन्ध विस्तार कम करने पर अधिकारियों की संख्या 12 (10) पर्यवेक्षक + 2 प्रबन्धक) हो जायेगी जो पूर्व संगठन कीतुलना में छः गुनी होगी और उतना ही बजट भी बड़ होगा। (देखिए चित्र सं. 20 व 21)। इसीलिए यह माना जाता है कि जहाँ तक सम्भव हो प्रबन्ध विस्तार चौड़ा रखन चाहिए परन्तु इस चौड़ाई की भी सीमा नियत करनी होगी जो निम्न बातों से प्रभावित होगी:

(1) प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण- प्रत्येक पर्यवेक्षक की पर्यवेक्षण क्षमता सीमित होती है। पर्यवेक्षक को पर्यवेक्षण कार्य में अधीनस्थों के मध्य कार्य बाँटना होता है, उनके प्रश्नों का उत्तर देना होता है, उन्हें कार्य के लिए प्रेरित करना होता है कुछ प्रशिक्षण देना होता है तथा कार्य का समन्वय करना होता है। इन कार्यों में लगने वाले समय का आकलन करवे ही अधीनस्थों की संख्या का निर्धारण करना चाहिए।

(2) प्रभावपूर्ण नेतृत्व - प्रभावपूर्ण नेतृत्व प्रदान करने के लिए पर्यवेक्षक को अपने अधीनस्थों के साथ जल्दी-जल्दी विचार-विमर्श करने को समय निकालना पड़ेगा अन्यथा अधीनस्थों का मनोबल गिर जायेगा और उत्पादन क्षमता घट जायेगी। अतः अधीनस्थों की संख्या का निर्धारण करने में यह देखा जाना चाहिए कि पर्यवेक्षक द्वारा उपलब्ध कराये गये समय में वह व्यक्तिगत तौर पर कितने अधीनस्थों से बातचीत कर सकता है।

अधिकांश प्रबन्ध शास्त्री उच्च प्रवन्ध स्वर पर अधीनस्थों की संख्या 6 से 8 तक तथा प्रथम श्रेणी प्रबन्ध (lower level management) स्तर पर 15 से 20 तक आदर्श मानते हैं परन्तु कुछ वृहत अमेरिकन उपक्रमों जैसे सीअर्स यूबक एण्ड कं एवं ड्यूपॉट में प्रबंध का विस्तार इससे लगभग दुगना पाया गया है अद्यपि इन उपक्रमों में ऊंचे स्तर का अधिकार-अन्तरण (delegation) तथा विशेषज्ञ सहायता उपलब्ध की जाती है।

9.7 सार संक्षेप

प्रबंधन का विस्तार (Span of Management) संगठनात्मक संरचना का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो यह निर्धारित करता है कि एक प्रबंधक कितने अधीनस्थों का प्रभावी रूप से प्रबंधन कर सकता है। इसका निर्धारण संगठन के आकार, कार्य की जटिलता, प्रबंधन स्तर, और प्रौद्योगिकी जैसी कई घटकों पर निर्भर करता है। संकुचित प्रबंधन विस्तार में कम अधीनस्थ होते हैं, जिससे व्यक्तिगत ध्यान अधिक मिलता है, जबकि व्यापक विस्तार में अधीनस्थों की संख्या अधिक होती है, जिससे संगठन अधिक फ्लैट बनता है। आदर्श प्रबंधन विस्तार कार्यकुशलता और प्रबंधन की गुणवत्ता का संतुलन बनाता है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. प्रबंधन विस्तार का मुख्य निर्धारक कौन सा है?
   A. संगठन का आकार
   B. प्रबंधक का अनुभव
   C. कार्य का प्रकार
   D. उपरोक्त सभी

2. संकुचित प्रबंधन विस्तार का मुख्य लाभ क्या है?
   A. संगठन की फ्लैट संरचना
   B. व्यक्तिगत ध्यान अधिक मिलना

C. कम निर्णय लेने की प्रक्रिया

D. कम प्रबंधकीय लागत

3. प्रबंधन विस्तार की अवधारणा ________ और अधीनस्थों की संख्या से संबंधित है।

4. आदर्श प्रबंधन विस्तार ________ और गुणवत्ता के बीच संतुलन बनाता है।

9.8 मुख्य शब्द

---

1. **प्रबंधन का विस्तार (Span of Management)**: प्रबंधक द्वारा प्रभावी रूप से प्रबंधित किए जा सकने वाले अधीनस्थों की संख्या।
2. **संकुचित विस्तार (Narrow Span)**: कम अधीनस्थों के साथ गहराई में प्रबंधन।
3. **विस्तृत विस्तार (Wide Span)**: अधिक अधीनस्थों के साथ प्रबंधन।
4. **आदर्श विस्तार (Ideal Span)**: कुशलता और गुणवत्ता का संतुलित विस्तार।
5. **संगठनात्मक संरचना (Organizational Structure)**: संगठन का ढांचा।
6. **प्रभावी प्रबंधन (Effective Management)**: लक्ष्य प्राप्ति के लिए संसाधनों का कुशल उपयोग।
7. **प्रबंधन स्तर (Management Level)**: संगठन में विभिन्न प्रबंधन श्रेणियाँ।

8. **प्रौद्योगिकी (Technology)**: तकनीकी उपकरण और प्रक्रियाएँ जो प्रबंधन को प्रभावित करती हैं।

9.स्वप्रगति- प्रश्न उत्तर

उत्तर 1: D

उत्तर 2: B

उत्तर 3: प्रबंधक

उत्तर 4: कुशलता

9.9 संदर्भ

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). *Management*. Pearson Education.

Gupta, C. B. (2021). *Management: Theory and Practice*. Sultan Chand & Sons.

Mintzberg, H. (2022). *Structure in Fives: Designing Effective Organizations*. Prentice Hall.

Drucker, P. F. (2019). *The Practice of Management*. HarperBusiness.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). *Management: Concepts, Practice & Cases*. McGraw Hill Education.

Sharma, R. K. (2021). *Principles of Management*. Kalyani Publishers.

9.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबन्ध का विस्तार क्या है? प्रबन्ध के विस्तार का निर्धारण करने वाले घटकों की विवेचना कीजिये।

2.वी.ए. ग्रेकुनस द्वारा प्रतिपादित प्रबन्ध के विस्तार सिद्धान्त को आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

3.नियंत्रण का विस्तार क्या है? इसका क्या महत्व है? यह संगठन संरचना को किस प्रकार प्रभावित करता है?

4.प्रबन्ध का विस्तार क्या है? संकुचित तथा व्यापक प्रबन्ध के विस्तार के गुण-दोषों को बताइये।

इकाई -10

अधिकार एवं भारार्पण या प्रत्यायोजन :

केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीकरण

(AUTHORITY AND DELEGATION: (CENTRALIZATION AND DECENTRALIZATION)

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 अधिकार

10.4 अधिकार के स्त्रोत या अधिकार के सिद्धान्त

10.5 अधिकार की सीमाएँ

10.6 शक्ति

10.7 अधिकार एवं शक्ति में अन्तर

10.8 उत्तरदायित्व

10.9 अधिकार एवं उत्तरदायित्व में सम्वन्ध

10.10 अधिकार का भारार्पण या प्रत्यायोजन

10.11 प्रत्यायोजन/भारार्पण के स्वरूप

10.12 भारार्पण की प्रक्रिया

10.13 केन्द्रीकरण

10.14 विकेन्द्रीयकर

10.15 सार संक्षेप

10.16 मुख्य शब्द

10.17 संदर्भ

10.18 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रारम्भिक (Introduction)- संगठन संरचना की पूर्णता केवल इस बात में नहीं होती कि विभिन्न विभागों के गठन का कार्य पूर्ण कर लिया है, बल्कि वह पूर्ण तब होती है जबकि विभिन्न विभागों को सौंप गये कार्यों के निष्पादन के लिये सम्बन्धितों को समुचित अधिकार भी दे दिये जाएँ। प्रबन्धकों के पास इतने अधिकार होने चाहिए कि वे स्वयं कार्यों का निष्पादन न करके अपने अधीनस्थों को आदेश देने एवं उन पर नियंत्रण रखने का कार्य आसानी से कर सकें। इसका दूसरा पहलू है उत्तरदायित्व, कुछ लोगों का मानना है कि यदि आपने अधिकार दे दिये हैं तो उसमें उत्तरदायित्व की भावना का उदय स्वतः हो जाता है लेकिन यह अति प्राचीन विचारधारा है। आज इसके ठीक विपरीत सोच विकसित हो रहा है, यह कि व्यक्ति को पहले कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व समझा दिये जाएँ फिर इनके निर्वहन हेतु समुचित अधिकार दे दिये जाएँ। जो भी हो उत्तरदायित्व एवं अधिकार दोनों ही कार्यों के सफलतम निष्पादन के लिए अत्यावश्यक होते हैं। 'अधिकार' एवं 'उत्तरदायित्व' को पृथक-पृथक समझ कर इन दोनों के सम्बन्धों पर विचार करना अधिक श्रेयस्कर होगा।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. अधिकार और भारार्पण (Authority and Delegation) की अवधारणा और महत्व को समझ सकें।
2. केन्द्रीयकरण (Centralization) और विकेन्द्रीकरण (Decentralization) के सिद्धांत और उनके अनुप्रयोगों का विश्लेषण कर सकें।
3. अधिकार, उत्तरदायित्व और शक्ति के बीच संबंधों को समझ सकें।

4. अधिकार और शक्ति में अंतर तथा भारार्पण की प्रक्रिया का अध्ययन कर सकें।

10.3 अधिकार (Authority)

आशय एवं अवधारणा (Meaning and Concept)- सामान्यतया 'अधिकार' शब्द का प्रयोग कई रूपों में किया जाता है, किन्तु प्रबन्धशास्त्र में इसका आशय प्रायः किसी व्यक्ति को निर्णय लेने एवं दूसरों के द्वारा उस निर्णय को क्रियान्वित कराने की शक्ति से होता है। इस तरह अधिकार का प्रत्यक्ष अर्थ किसी व्यक्ति को प्रायः उस वैधानिक शक्ति से है, जिसके आधार पर वह अन्य व्यक्तियों को कार्य के निष्पादन के बारे में आदेश देता है तथा इस आदेश के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है। प्रतिष्ठित विचारधारा के लोग अधिकार को शीर्ष प्रबन्ध एवं उसके अधीनस्थों के बीच सम्बन्ध के रूप में परिभाषित करते थे जबकि आधुनिक विचारधारा के अनुसार शीर्ष एवं अधीनस्थों के सम्बन्धों तक ही अधिकार सत्ता सीमित नहीं है, बल्कि किसी भी स्तर पर उसके कर्तव्यपालन हेतु जिनको आधार बनाकर वह कार्य निष्पादन कराना है ये आधार ही उसके मूल अधिकार कहे जाते हैं।

परिभाषाएँ (Definitions)- अधिकार कोई ऐसा तथ्य या विषय नहीं है कि जिसे पृथक् से परिभाषित किया जाए, लेकिन अधिकार के बारे में कुछ विद्वानों के विचार जान लेना आवश्यक है जो निम्न हैं:-

(1) थियो हैमन, के अनुसार, "अधिकार सत्ता, वह वैधानिक शक्ति है जिसके आधार पर अधीनस्थों को काम करने के लिए कहा जाता है तथा उन्हें बाध्य किया जा सकता है और आदेश के उल्लंघन पर आवश्यकतानुसार प्रबन्धक उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है। यहाँ तक कि उनको कार्य से भी पृथक कर सकता है।"

टिप्पणी : थियो हैमन ने भी अधिकार को इसी रूप से समझाया है कि यह एक वैधानिक शक्ति है जिसके आधार पर शीर्ष प्रबन्ध अपने अधीनस्थों को

कार्य करने को कहता है तथा उल्लंघन पर आवश्यक कार्यवाही भी कर सकता है। यदि आवश्यक हो तो वह उसे नौकरी से भी निकाल सकता है ।]

(2) हर्बर्ट साइमन के अनुसार, "अधिकार दो व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध है, जिसमें एक उच्चस्थ और दूसरा अधीनस्थ होता है। उच्चस्थ निर्णय लेता है और इस अपेक्षा के साथ अपने अधीनस्थ को प्रेषित करता है कि वह इसे स्वीकार करेगा। अधीनस्थ इन निर्णयों को क्रियान्वित करता है, उसका व्यवहार इन्हीं के द्वारा निर्धारित होता है।"

[टिप्पणी : हर्बर्ट साइमन ने अधिकार को और विस्तृत अर्थों में व्यक्त किया है। इसके अनुसार उच्चस्थ या शीर्ष प्रबन्ध एवं अधीनस्थ का होना अनिवार्य है, उच्चस्य आदेश प्रेषित करेगा जिसका पालन अधीनस्थ पूर्णतः करेगा एवं इन्ही के द्वारा उनका व्यवहार भी निर्धारित होता है ।]

(3) कूण्ट्ज एवं ओडोनेल के अनुसार, "अधिकार दूसरों को आदेश देने की शक्ति है अथवा उपक्रम या विभागीय लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अधिकार प्राप्तकर्ता के निर्देशानुसार कार्य करने के लिए आदेश देने की शक्ति है।"

(4) लुइस एलेन के अनुसार, "अधिकार ऐसी शक्तियों तथा स्वत्वों का योग है जिन्हें भारार्पण किए गए का का निष्पादन सम्भव बनाने के लिए सौंपा जाता है। इसमें तय करने अथवा न करने का स्वत्व निहित हो सकता है।'

विशेषताएँ (Characteristics)- अधिकार की इन परिभाषाओं के आधार पर इसके कुछ लक्षण स्पष्ट हो हैं जो इस प्रकार हैं:-

(1) स्वत्व का होना (Right)- अधिकार में स्वत्व (Right) निहित होता है। यह स्वत्व किसी व्यक्ति के संगठन द्वारा प्रदत्त किया जाता है। इस स्वत्व के आधार पर व्यक्ति इस स्थिति में होता है कि वह दूसरों को कार्य करने के लिए आदेश दे सकें।

(2) वैधानिकता (Legality) अधिकार वैधानिकता पर आधारित होता है। अधिकार की वैधानिकता यर इंगित करती है कि व्यक्ति अपने अधिकारों का प्रयोग संगठन द्वारा निर्दिष्ट नियमों के आधार पर करे।

(3) निर्णय (Decision)- अधिकार के आधार पर व्यक्ति निर्णय ले सकता है और उस निर्णय को दूसरों वे द्वारा क्रियान्वित करा सकता है।

(4) उद्देश्य (Objective)- अधिकार के उपयोग के पीछे यह उद्देश्य होता है कि वह दूसरों के व्यवहारों को इस प्रकार प्रभावित करे जिससे संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हो। इस प्रकार अधिकार का प्रयोग वांछित व्यवहारों में संलग्न रहने अथवा अवांछित व्यवहारों से दूर रहने के लिए किया जाता है।

(5) व्यक्तित्व में भिन्नता (Difference in Personality)- अधिकार अपने आप में वस्तुनिष्ठ होता है किन्तु इसका उपयोग प्रयोगकर्ता के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। अतः दो व्यक्तियों के पास समान अधिकार होने पर भी उनके आदेश देने की शक्ति अलग-अलग हो सकती है। शक्ति में यह अन्तर दोनों व्यक्तियों के व्यक्तित्वों में भिन्नता के कारण होता है।

10.4 अधिकार के स्त्रोत या अधिकार के सिद्धान्त (Source of Authority or Theories of Authority)

अधिकार स्रोत के सम्बन्ध में मुख्यतः दो प्रकार के विचार पाये जाते हैं। इन विचारों को ही अधिकार के सिद्धान्त भी कहा जाता है, जो निम्नलिखित हैं

(1) **औपचारिक अधिकार सिद्धान्त** (Formal Authority Theory)- इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक को अपने अधिकार अपने से ऊँचे अधिकारी द्वारा या देश के संविधान (Constitution) द्वारा प्रदान किये जाते हैं। उदाहरण के लिये, लोकपाल सहायक कोषाध्यक्ष से अधिकार प्राप्त करता है। सहायक कोषाध्यक्ष कोषाध्यक्ष से अधिकार प्राप्त करता है। कोषाध्यक्ष को अधिकार प्रबन्ध प्रदान करता है और उसे (प्रबन्ध को) अधिकार संचालक मंडल

से प्राप्त होते हैं। संचालक मण्डल को अधिकार अंशधारी प्रदान करते हैं। एक पूँजीवादी या मिश्रित अर्थव्यवस्था में अंशधारियों को अधिकार की प्राप्ति निजी सम्पत्ति के अधिकार के कारण प्राप्त होती है और निजी सम्पत्ति का अधिकार देश के संविधान द्वारा प्रदान किया जाता है।

उच्च अधिकारियों द्वारा अधीन अधिकारियों को दिये अधिकार लिखित हो सकते हैं, या मौखिक या दोनों रूप में ही हो सकते हैं। कई बार तो अधिकार स्पष्ट होते हैं, परन्तु अनेक बार ये ध्वनित (Implied) होते हैं, परन्तु किसी भी दशा में प्रबन्धकों को अपनी अधिकार सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। एक उच्चाधिकारी केवल वही अधिकार अपने अधीनस्थों को दे सकता है, जो उसे स्वयं प्राप्त होते हैं।

(2) **स्वीकार अधिकार सिद्धान्त** (The Acceptance Theory of Authority)- इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बर्नार्ड और साइमन हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी प्रबन्ध के अधिकार का अस्तित्व तभी तक होता है, जब तक कि उनके अधीन कर्मचारी उस अधिकार को स्वीकार करें। अधीनस्थ कर्मचारियों की स्वीकृति के अभाव में प्रबन्ध के अधिकारों का महत्व नहीं है तथा वे न होने के बराबर हैं। इस सिद्धान्त का तत्व यह है कि यदि किसी को अधिकार मिल जाये, परन्तु उस अधिकार को स्वीकार करने वाला कोई न हो, तो ऐसे अधिकार का कोई महत्व नहीं है। इस प्रकार अधिकार का जन्म उसी समय होता है, जब अधिकारों को स्वीकृति प्रदान करने वाला हो। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अधिकारों का उद्गम स्वीकृति में है।

बर्नार्ड के शब्दों में, "अधिकार के दो पहलू अन्तर्निहित हैं- प्रथम, विषयगत (subjective) अर्थात् वैयक्तिक सन्देश की आधिकारिक रूप में स्वीकृति तथा दूसरा वास्तविक (Objective) पहलू- संवहन का वह लक्षण, जिसके प्रभाव के द्वारा यह स्वीकृत किया जाता है।"

शक्तिशाली हैं और उनका अधिकार स्वीकार करने से उन्हें अनेक लाभ होते हैं, जो निम्न हैं-

1. वेतन, वृद्धि, सम्मान और पारितोषिक की प्राप्ति।
2. उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति में अधीनस्थ का योगदान ।
3. साथ के कर्मचारियों से प्रशंसा की प्राप्ति।
4. उत्तरदायित्व में अनावश्यक भार से मुक्ति।
5. अधीनस्थों के स्वयं के नैतिक आदर्शों के अनुसार कार्यवाही ।
6. अपने उच्च अधिकारियों के नेतृत्व गुणों के प्रति प्रतिपादन (Response) ।

उच्च अधिकारों का अधिकार स्वीकार न करने से अधीन कर्मचारियों को निम्न हानियाँ होती हैं-

7. अधिकार स्वीकार करने से जो लाभ होते हैं, उनसे वंचित रहना।
8. वेतन व सम्मान की प्राप्ति में कठिनाई तथा सामाजिक अप्रतिष्ठा ।
9. अनुशासन कार्यवाही जैसे- आर्थिक दण्ड, कारावास, नौकरी से छूटना आदि।

(3) **अन्य सिद्धान्त** (Other Theories) प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं विशेष तकनीकी योग्यता अधिकारों के स्त्रोत के सम्बन्ध के कुछ लोगों का यह भी मत है कि कभी-कभी प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं विशेष तकनीकी योग्यता भी अधिकारों के स्रोत का काम करती है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें यद्यपि औपचारिक रूप से कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं होते, परन्तु प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं विशेष तकनीकी योग्यता के कारण उन्हें विशेष मान्यता दी जाती है, उनकी राय इतनी उत्सुकता एवं आग्रह से ली जाती है तथा उसका पालन इस तत्परता से किया जाता है कि उन्हें अधिकारी का दर्जा-सा प्राप्त हो जाता है। भारतीय शासन में महात्मा गाँधी की तथा आज भी कुछ सीमा तक आचार्य विनोबा भावे की यही स्थिति है। इन व्यक्तियों को अपने प्रभावी व्यक्तित्व के कारण ही ऐसा अधिकार प्राप्त हो सकता है। मेधावी इन्जीनियर व अर्थशास्त्री आदि भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किये जाते हैं। विशेष योग्यता

के कारण ही लोग उनके परामर्श देने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। एक समाज सुधारक को सरकार की ओर से कोई अधिकार नहीं दिया जाता, परन्तु उनकी सलाह को जनता मानती है। कई बार तो देखने में आता है कि अधिकारियों के प्रयल निष्फल होते हैं, जबकि समाज सुधारक और सन्त पुरुषों के प्रयल सफल हो जाते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)- अधिकारों के स्रोत से सम्बन्ध रखने वाले उपरोक्त तीनों सिद्धान्त अपने-अपने ढंग से सत्य हैं। फिर भी एक प्रबन्धक के अधिकार प्रायः औपचारिक अधिकार सिद्धान्त (Formal Authority Theory) के द्वारा ही निश्चित होते हैं, परन्तु प्रभावशाली व्यक्तित्व या व्यक्तिगत प्रभाव भी कार्य कराने के लिये बहुत महत्व रखता है। किसी भी प्रबन्धक की कुशलता केवल अधिकारों की प्राप्ति पर निर्भर नहीं रहती वरन् उसकी कार्य करने की क्षमता व उसके व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है। किसी भी अधिकार का उपयोग या दुरुपयोग अधिकारी पर निर्भर करता है। एक कुशल प्रबन्धक के हाथों वे ही अधिकार उपक्रम की उन्नति में सहायक होते हैं, , जबकि एक अकुशल प्रबन्धक के हाथों वे ही अधिकार उपक्रम को अवनति की ओर ले जाते हैं। प्रबन्धक द्वारा अपने अधिकारों का सफल प्रयोग इन बातों पर निर्भर करता है- (i) उचित वातावरण की सृष्टि से जिनका आधार मानवीय सम्बन्ध हो। (ii) अधीन कर्मचारियों के प्रति न्यायोचित व्यवहार। (iii) अधिकारों एवं अधीन कर्मचारियों में पारस्परिक विश्वास। (iv) अधिकारी के प्रति आदर की भावना होना। (v) कर्मचारियों के मन में कार्य के प्रति उत्साह एवं लगन जायत करना आदि। ये सभी बातें प्रबन्धक की नेतृत्व कुशलता पर निर्भर करती हैं, अतः हम कह सकते हैं कि प्रबन्धक की सफलता उचित अधिकारों में निहित होती है एवं उसके कार्य की सफलता नेतृत्व (Leadership) की कुशलता में निहित होती है।

10.5 अधिकार की सीमाएँ (The Limits of Authority)

कोई भी अधिकार प्राप्त अधिकारी अपने अधिकारों का चाहे जैसा उपयोग नहीं कर सकता है, क्योंकि उसकी कुछ सीमाएँ होती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं
(1)जीव-विज्ञान सम्बन्धी सीमाएँ किसी भी अधिकारी को अपने अधीन व्यक्ति को ऐसा आदेश नहीं देना चाहिए जिसे पूरा करना उसके लिये जीव-विज्ञान की दृष्टि से असम्भव हो, क्योंकि जीव विज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता सीमित होती है और यदि उसकी क्षमता से अधिक कार्य उत्ते सौंप दिया जाये तो वह उसे नहीं कर पायेगा, जैसे एक प्रबन्धक अपने अधीन कर्मचारी को खड़ी दीवार पर ऊपर की ओर चलने का आदेश नहीं दे सकता।
131
(2) प्राकृतिक सीमाएँ - भौगोलिक स्थिति, जलवायु तथा प्राकृतिक नियमों से सम्बन्धित सीमाएँ प्राकृतिव सीमा के अन्तर्गत आती हैं, जैसे एक प्रबन्धक अपने अधीन कर्मचारी को एल्युमीनियम से चाँदी बनाने का आदेश नहीं दे सकता या कोयले को हीरे में परिवर्तित करने का आदेश नहीं दे सकता।
(3) तकनीकी सीमाएँ ये सीमाएँ तकनीकी ज्ञान एवं कला के विकास से सम्बन्ध रखती हैं और कोई भी प्रबन्धक जितनी तकनीकी उन्नति हुई है उससे आगे की स्थिति के लिये आदेश नहीं दे सकता है, जैसे- कोई भी प्रबन्धक अपने अधीन कर्मचारियों को चन्द्रमा पर शक्कर फैक्ट्री स्थापित करने का आदेश उस समय तक नहीं दे सकता जब तक कि तकनीकी ज्ञान एवं कला के विकास के फलस्वरूप चन्द्रमा पर शक्कर फैक्ट्री स्थापित करना संभव नहीं हो जाये।
(4) आर्थिक सीमाएँ - क्रेताओं एवं विक्रेताओं की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, बाजार की दशाओं के अनुसार वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य निर्धारण आदि आर्थिक सीमाएँ हैं, जिनके विपरीत एक प्रबन्धक अपने आदेश नहीं दे सकता जैसे- माँग और पूर्ति (Demand and Supply) की शक्तियों के कारण यदि बाजार

में किसी वस्तु का मूल्य 5 रु. है, तो कोई भी प्रवन्धक अपने अधीन कर्मचारी को उस वस्तु को 3 रु. में लाने का आदेश नहीं दे सकता।

(5) व्यक्ति समूह की प्रतिक्रियाएँ किसी भी अधिकार का प्रयोग करने पर उसका प्रभाव विभिन्न व्यक्तियों और व्यक्ति समूहों पर पड़ता है। एक प्रबन्धक का सम्बन्ध उपक्रम के कर्मचारियों, अंशधारियों (Share-holders), संचालक मण्डल (Board of Directors), उपभोक्ताओं आदि से होता है। अतः अधिकार प्रयोग से पूर्व उन सभी की प्रतिक्रियाओं का ध्यान रखना पड़ता है और यदि सभी वर्गों के लिये कोई अधिकार प्रयोग कल्याणकारी होता है तब तो उसका प्रयोग किया जा सकता है।

(6) अन्य सीमाएँ - उपरोक्त सीमाओं के अतिरिक्त, प्रबंधकों को एक फर्म की दशा में साझेदारी अनुभव एवं कम्पनी की दशा में पार्षद सीमा नियम तथा अन्तर्नियम, कम्पनी अधिनियन तथा व्यापारिक एवं औद्योगिक सन्नियमों में वर्णित सीमाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है।

10.6 शक्ति (Power)

आशय (Meaning)- प्रबन्धकीय शैली में शक्ति शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थों में व अलग-अलग सन्दर्भों में किया जाता है क्योंकि यह विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होती है। शक्ति को सामान्यतया एक माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा दूसरों के व्यवहारों को इस प्रकार प्रभावित किया जाता है जिससे उपयोगकर्ता के लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

परिभाषाएँ (Definitions)- शक्ति को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:-

(1) मैक्स वेबर के अनुसार, "शक्ति किसी सम्बन्ध के अन्तर्गत इस प्रकार की सम्भाव्यता है कि एक कर्ता इस स्थिति में होगा कि वह दूसरे के विरोध के बावजूद अपनी इच्छाओं की पूर्ति करेगा।"

(2) वॉल्टर नॉर्ड ने शक्ति को लक्ष्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में परिभाषित किया है जो इस प्रकार है-

"कुछ उद्देश्यों के विरुद्ध निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न संसाधनों के प्रवाह को प्रभावित करने की योग्यता ही शक्ति है। शक्ति का उपयोग तभी माना जाएगा जब इन लक्ष्यों में विरोधाभास हो।"

(टिप्पणी : इन परिभाषाओं में शक्ति को मुख्यतः किसी व्यक्ति की उस क्षमता के रूप में माना है जिसके द्वारा वह दूसरों से निर्दिष्ट कार्यों को निष्पादित कराता है अथवा अपने वांछित परिणामों को प्राप्त करता है।)

विशेषताएँ (Characteristics)- शक्ति की कुछ विशेषताएँ निम्न हो सकती हैं.-

1. एक साधन होना (To be a Source)- परिणाम प्राप्त करने के लिए शक्ति दूसरों को प्रभावित करने का एक साधन है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि दूसरों को कई अन्य माध्यमों से भी प्रभावित किया जा सकता है, जैसे अधिकार का प्रयोग, नेतृत्व क्षमता, सम्प्रेषण क्षमता, इत्यादि ।

2. सकारात्मक या नकारात्मक (Possitive or Negative)- शक्ति का प्रयोग निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में सकारात्मक या नकारात्मक रूप में हो सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शक्तिधारक स्वयं कोई निर्णय ले और दूसरों को इस निर्णय के क्रियान्वयन के लिए बाध्य कर सके अथवा वह दूसरों को किसी विशिष्ट निर्णय लेने से रोके।

3. प्रकृति (Nature)- शक्ति का स्वभाव ऐसा है कि इसका उपयोग संगठन के सन्दर्भ में किया जा सकता है या बिना संगठन के संदर्भ में। यदि संगठन के संदर्भ में इसका उपयोग होता है तो संगठन का कोई व्यक्ति यदि अधिक क्षमता वाला है तो इसका उपयोग कर सकता है।

10.7 अधिकार एवं शक्ति में अन्तर (Difference between Authority and Power)

अधिकार एवं शक्ति का उद्देश्य एक ही होने के कारण कई बार उन्हें पर्यायवाची मान लिया जाता है, यद्यपि इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। शक्ति किसी कार्य को करने की योग्यता अथवा क्षमता भर है जबकि अधिकार किसी कार्य को करने का एक वैध अधिकार (Right) है। योग्यता व अधिकार के आधार पर कई बार शक्ति व अधिकार में अन्तर करना कठिन हो जाता है तथा वे व्यवहार में एक से लगते हैं। दोनों में अन्तर करते हुए पिफिनर एवं शेरवुड लिखते हैं कि, "शक्ति अपने मूल्यों व लक्ष्यों के प्रभुत्व को प्राप्त करने की क्षमता है जबकि अधिकार संगठन के पदानुक्रम में आदेश प्रदान करने का अधिकार है।" इन दोनों के अन्तर को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है-

अन्तर का आधार	अधिकार (Authority)	शक्ति(Power)
1.आशय (Meaning) 2.क्षेत्र (Scope) 3.प्रकृति (Nature) 4. वैधानिकता (Legality) 5.संस्थागत (Institutional)	अधिकार संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए दूसरों के कार्यों को निर्देशित करने का अधिकार (Right) है। अधिकार का क्षेत्र शक्ति की तुलना में संकीर्ण है। अधिकार प्रायः संगठनात्मक होता है। अधिकार को विभिन्न नियमों- कानूनों या व्यवहारों द्वारा	शक्ति वांछित व्यवहार, परिवर्तन अथवा प्रभाव उत्पन्न करने की योग्यता (Ability) है। शक्ति सत्ता से व्यापक है। इसका क्षेत्र विस्तृत है। शक्ति प्रायः वैयक्तिक होती है। शक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार की

6. स्रोत (Source)	वैधानिकता प्रदान की जाती है।	वैधानिकता नहीं होती है।
7.संगठनात्मक संबंध(Organisa-tional relations)	अधिकार संस्थागत होता है और इसका अभ्युदय संरचनात्मक सम्बन्धों के कारण होता है। किसी संगठन के प्रवन्ध में औपचारिक अधिकार मूल तत्व के रूप में होता है। अधिकार केवल संगठनात्मक सम्बन्धों के रूप में ही सम्भव है और ये सम्बन्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रायः उच्वस्थ अधीनस्थ के रूप में होता है।	शक्ति का अभ्युदय व्यक्तिगत कारणों से होता है और इसकी मात्रा विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में अलग-अलग होती है। शक्ति संगठन में राजनीतिक क्रियाओं के रूप में होती है और इसका स्रोत अनौपचारिक सम्बन्ध होता है। शक्ति सम्बन्ध किसी दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य होता है और इसके लिए संगठनात्मक सम्बन्धों की आवश्यकता नहीं होती है।

शक्ति के स्रोत (Sources of Power)- अधिकार की तरह शक्ति भी विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होती है जिसके आधार पर शक्ति के कई प्रकार हो सकते हैं, यद्यपि विभिन्न विचारकों में इस बात पर मत भिन्नता है कि शक्ति के क्या स्रोत हैं।

उदाहरणार्थ, लासवेल तथा काप्लान (Lasswell and Kaplan) ने यह सुझाव दिया है कि किसी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने के आठ प्रारूप हैं शारीरिक शक्ति, आदर, सदाचार, स्नेह, सद्व्यवहार, धर्म, चातुर्य, एवं प्रबुद्धि । फ्रेन्च तथा रवेन (French and Raven) के अनुसार शक्ति पाँच स्त्रोतों से प्राप्त की जा सकती है जिसके आधार पर पाँच प्रकार की शक्ति हो सकती है, जो इस प्रकार हैं कूर, पारितोषिक, वैधानिक, संदर्भ तथा विशेषज्ञ ।

10.8 उत्तरदायित्व (Responsibility)

आशय (Meaning)- उत्तरदायित्व को प्रबंधशास्त्र में बहुत स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है जिससे इसके क्षेत्र को निर्धारित करने में कठिनाई होती है। कुछ विचारकों के अनुसार उत्तरदायित्व में केवल उन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जो किसी व्यक्ति को निष्पादन हेतु सौंपे जाते हैं एवं वह व्यक्ति उन कार्यों का यदि सफलतापूर्वक निष्पादन कर लेता है तो यह समझा जाता है कि उत्तरदायित्व पूर्ण हुआ।

परिभाषाएँ (Definitions)- उत्तरदायित्व एक अत्यन्त बटिल प्रक्रिया है एवं इसकी सीमाएँ भी अनियमित होती हैं अतः इसे परिभाषित करना अत्यन्त जटिल है फिर भी कुछ विद्वानों ने इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:।

1. मॉरिस हर्ले के अनुसार, "उत्तरदायित्व वह कर्त्तव्य है जिसे पूरा करने के लिए एक व्यक्ति अपनी स्थिति य कार्य के कारण बाध्य होता है। इस प्रकार के

उत्तरदायित्व में प्रारम्भिक रूप से भारार्पित करने वाले व्यक्ति के निर्देशे का पालन करना सन्निहित है।"

[टिप्पणी : मॉरिस हलें ने उत्तरदायित्व को एक कर्त्तव्य माना है जिसे पूरा करने के लिए कोई व्यक्ति अपनी स्थिति के कारण बाध्य होता है। वह अन्य किसी व्यक्ति के निर्देशों का पालन करके इस दायित्व को पूरा करता है।

2. कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के शब्दों में, "उत्तरदायित्व किसी कर्मचारी का आबन्धन है जिसे कोई कार्य निष्पादन के लिए सौंपा गया है।"

3. जार्ज टैरी ने भी उत्तरदायित्व को इसी रूप में परिभाषित किया है:"उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति का ऐसा आबन्धन है जिससे वह सौंपी गई क्रियाओं को अपनी श्रेष्ठतम योग्यता से पूरा करे।"

[टिप्पणी : इस परिभाषा के अनुसार उत्तरदायित्व केवल एक कर्त्तव्य के रूप में नहीं है, बल्कि सौंपी गई क्रियाओं के निष्पादन के संबंध में आवन्धन है। इस आबन्धन के कारण व्यक्ति उन सभी क्रियाओं के समुचित निष्पादन के लिए उत्तरदायी होता है जो उसे सौंपी गई है, भले ही इनमें से वह कुछ क्रियाओं को अपने अधीनस्थों को सौंप देता है ।।

विशेषताएँ (Characteristics)- उत्तरदायित्व की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

(1) प्रभाव (Effect)- उत्तरदायित्व एवं अधिकार का प्रभाव साथ-साथ होता है क्योंकि बिना अधिकार के उत्तरदायित्व और बिना उत्तरदायित्व के अधिकार महत्वहीन होते हैं।

(2) आबन्धन (Accountability)- उत्तरदायित्व किसी कार्य के निष्पादन के सम्बन्ध में एक आबन्धन है जो नैतिक तथा वैधानिक दोनों रूप में हो सकता है।

(3) मात्रा (Quantity)- उत्तरदायित्व के आधार पर आवन्धन की मात्रा विभिन्न स्तर के व्यक्तियों में अलग-अलग होती है।

(4) स्वीकृति (Acceptance)- उत्तरदायित्व का आविर्भाव किसी को सौंपे गए कार्य और व्यक्ति द्‌वारा उस कार्य के सफल निष्पादन की स्वीकृति के साथ ही प्रारम्भ होता है।

उत्तरदायित्व के प्रकार (Types of Responsibility)-उत्तरदायित्वों को प्रायः दो भागों में रखा गया है:

(1) चालू उत्तरदायित्व (General Responsibility)- जब किसी सतत् कार्य का भार एक प्रबन्धक द्‌वारा किसी अन्य प्रबन्धक को सौंपा जाता है, तो इसे चालू उत्तरदायित्व कहते हैं। चालू उत्तरदायित्व कभी समाप्त नहीं होता वरन् इसका हस्तान्तरण एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी को होता रहता है। उदाहरण के लिये, निर्बाध गति से चलने वाली मशीनों की देख-भाल का उत्तरदायित्व इसी श्रेणी में आता है।

(2) विशिष्ट उत्तरदायित्व (Specific Responsibility)- जब किसी अधिकारी की नियुक्ति किसी कार्य विशेष को सम्पादित करने के लिए ही की गई हो, तो उस कार्य को करने का भार उस अधिकारी का विशिष्ट उत्तरदायित्व कहलायेगा और उस कार्य के समाप्त हो जाने के पश्चात् विशिष्ट उत्तरदायित्व भी स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। उदाहरण के लिये, विज्ञापन विशेषज्ञ एवं वित्त विशेषज्ञ के उत्तरदायित्व इसी श्रेणी में आते हैं।

10.9 अधिकार एवं उत्तरदायित्व में सम्वन्ध (Relation between Authority and Responsibility)

अधिकार एवं उत्तरदायित्व एक सिक्के के दो पहलू के समान हैं, जिन्हें आपस में अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि उत्तरदायित्वों के प्रभावी निष्पादन के लिये पर्याप्त अधिकारों का होना अत्यन्त आवश्यक है और अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के लिये उत्तरदायित्वों का निर्धारण भी अत्यन्त आवश्यक होता है। अधिकार एवं उत्तरदायित्वों के बीच उचित समन्वय के अभाव में संस्था के पूर्व निर्धारित उद्‌देश्यों को प्रभावशाली रूप में प्राप्त करना केवल

कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव होता है। यदि अधिकारों की अपेक्षा उत्तरदायित्व अधिक मात्रा में होते हैं, तो उनका निष्पादन कठिन हो जाता है और यदि उत्तरदायित्वों की अपेक्षा अधिकार अधिक मात्रा में सौंप दिये जाते हैं, तो उनके दुरुपयोग की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अधिकार एवं उत्तरदायित्व एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुये हैं, परन्तु इन दोनों के बीच उचित समन्वय स्थापित किया जाना संगठन के लिये लाभदायक ही नहीं, अपितु अनिवार्यता है और यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो इसके दुष्परिणाम संस्था को असफलता की दिशा में मोड़ सकते हैं।

जवाबदेही (Accountability)

कभी-कभी उत्तरदायित्व को दो भागों में बाँटा जाता है एक भाग में परिणामों की प्राप्ति में आबन्धन को सम्मिलित किया जाता है और दूसरे भाग में किसी अधीनस्थ की उच्चस्थ के प्रति जवाबदेही को सम्मिलित किया जाता है। यदि उत्तरदायित्व को व्यापक रूप में देखा जाए तो इसके अंतर्गत न केवल कार्य के प्रति आबन्धन को हीं सम्मिलित किया जाता है, बल्कि इस आबन्धन के प्रति अधीनस्थ की जवाबदेही भी सम्मिलित होती है। शब्दकोश के अनुसार जवाबदेही का अर्थ विभिन्न विभागों का लेखा-जोखा रखना एवं सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखना होता है। प्रबंधशास्त्र में किसी व्यक्ति की जवाबदेही उसको सौंपे गए कार्य को सुचारु रूप से निष्पादित करने के सम्बन्ध में होती है। स्टीफन रॉबिन्स के शब्दों में, "उत्तरदायित्व अधिकार के उपयोग के लिए आबन्धन है और जवाबदेही अधीनस्थ को सौंपे गए कार्य के उचित निष्पादन की विश्वसनीयता स्थापित करती है। उत्तरदायित्व और जवाबदेही दोनों एक-समान प्रतीत होते हैं, किन्तु वे भिन्न हैं।" इस प्रकार जवाबदेही उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए आबन्ध का निर्माण करती है और इस बात पर बल देती है कि सौंपा गया कार्य उच्चस्थ की आशाओं के अनुरूप निष्पादित हो। इस प्रकार अधीनस्थ न केनल सौंपे गये कार्यों के निष्पादन के लिए उत्तरदायी होते हैं,

बल्कि अपने उच्चस्थ के प्रति इस बात के लिए भी जवाबदेह होते हैं कि कार्य का निष्पादन संतोषप्रद ढंग से हो।

उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही

(Responsibility and Accountability)

सामान्यतः उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है, जबकि इन दोनों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है। जहाँ एक ओर उत्तरदायित्व उच्चाधिकारियों के आदेशानुसार कार्य करने का दायित्व होता है वहाँ दूसरी ओर जवाबदेही उच्चाधिकारी के प्रति अधीनस्थ का आबन्धन (जवाबदारी) होता है। उत्तरदायित्व एवं जवाबदारी के बीच मुख्य अन्तर यह होता है कि किसी कार्य को करने का उत्तरदायित्व जबावदारी निश्चित किये बिना भी सौंपा जा सकता है जबकि किसी भी प्रकार की जवाबदारी उत्तरदायित्व सौंगे बिना निर्धारित नहीं की जा सकती। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही उच्चाधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थों के लिये ही निर्धारित किये जा सकते हैं न कि उच्चाधिकारियों के लिये।

10.10 अधिकार का भारार्पण या प्रत्यायोजन (Delegation of Authority)

नोट : अधिकार का भारार्पण या प्रत्यायोजन या अन्वरण या प्रत्वामुक्ति एवं समर्पण इन सभी का अर्थ एक ही है 'Delegation of Authority' अत: पाठकगण किसी प्रकार के भ्रम में न पड़े व भारार्पण को ही अधिक व्यावहारिक मानकर प्रयोग करें।

आशय (Meaning): जब एक उच्च अधिकारी अपने मातहत कर्मचारी को कोई कार्य सौंपते समय उसे पूरा करने के लिए आवश्यक अधिकार प्रदान करता है, तो प्रशासन की भावना में इसे 'भारार्पण' कहते हैं। एफ.जी. मूरे के अनुसार "एकाकी व्यक्ति केवल एक मानव शक्ति है।" भारार्पण एक साधन है, जिसके

माध्यम से एक उच्च अधिकारी दूसरे अधीनस्थ अधिकारियों के साथ अपने प्रबन्धकीय दायित्व में हिस्सा बंटाता है। अतः संगठन संरचना के निर्माण में अधिकार का भारार्पण एक प्रमुख प्रकिया है। जब विभिन्न विभागों एवं पदों को निर्धारित किया जाता है और उन्हें क्रियाओं का आवंटन किया जाता है तो उन क्रियाओं के निष्पादन के लिए उचित अधिकार की आवश्यकता होती है। यह अधिकार विभिन्न विभागों तथा पदों को अधिकार के भारार्पण स्वरूप प्राप्त होता है जिसे प्रत्योजन, प्रत्यायुक्त, प्रतिनिधागन, आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है।

भारार्पण की परिभाषाएँ (Definitions of Delegation)- भारार्पण एक विशुद्ध प्रवन्धकीय प्रक्रिया होती है अतः इसकी एक निश्चित परिभाषा देना जटिल होता है लेकिन फिर भी कुछ विद्वानों ने भारार्पण की जो परिभाषाएँ दी हैं वे निम्नानुसार हैं :

(1) थियो हैमन ने अधिकार के भारार्पण को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है: "अधिकार के भारार्पण का आशय केवल अधीनस्थों को निर्दिष्ट सीमाओं के अंतर्गत कार्य करने का अधिकार प्रदान किए जाने से है।"

(2) इसी प्रकार की परिभाषा इ.एफ. एल. ब्रेच ने भी दी है जो निम्नलिखित है: "संक्षेप में, भारार्पण का आशय प्रबंध प्रक्रिया के चार तत्वों में से प्रत्येक का एक अंश दूसरों को हस्तान्तरित करना है।"

[टिप्पणी: इन दोनों ही परिभाषाओं में भारार्पण को एक निश्चित सीमा के अन्दर कैद कर दिया गया है। प्रथम थियो हैमन ने अधीनस्थों को निर्दिष्ट सीमाओं में कार्याधिकार कहा है जबकि एल बेच ने इसे प्रबन्ध प्रक्रिया के चा तत्वों का हस्तांतरण कहा है जो नाकाफी है

(3) मूनी (Mooney) के विचार से, "एक उच्चाधिकारी द्वारा विशिष्ट अधिकारों का (दूसरों को) सौंपन प्रत्यायोजन है।"

(4) लुइस ए. ऐलन के अनुसार, "अधिकार प्रत्यायोजन प्रबन्ध की गत्यात्मक शक्ति है, यह एक प्रक्रिया है, जिसे अपनाकर प्रबन्धक अपने कार्यों का विभाजन करता है, जिससे कि वह सम्पूर्ण कार्य के उस भाग का निष्पादन करे जिसे केवल वह स्वयं ही, संगठन में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण, प्रभावशाली ढंग से कर सकता है और इस प्रकार वर शेष कार्य की पूर्ति के लिए अन्य लोगों की सहायता प्राप्त करता है।"

(5) एफ.जी. मूरे के अनुसार, "अधिकार प्रत्यायोजन से आशय अन्य लोगों को कार्य सौंपना तथा उसे करने हेतु अधिकार प्रदान करना है।"

टिप्पणी : उपर्युक्त तीनों परिभाषाओं में से केवल प्रो. एलन की परिभाषा ही भारार्पण की विस्तृत व्याख्या करती। है, शेष दो परिभाषाएँ अधिकार के अन्तरण तक ही स्पष्टीकरण दे पाती हैं।]

भारार्पण की उपरोक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम एक श्रेष्ठ परिभाषा दे सकते हैं।

(6) "भारार्पण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिशासितों को निश्चित कार्यों, उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों से मुक्त करके उन्हें निश्चित स्थितियों में अधीनस्थों को सौंपा जाता है।"

भारार्पण की विशेषताएँ (Characteristics of Delegations)

भारार्पण की उक्त परिभाषाओं एवं व्याख्याओं के आधार पर अधिकार के भारार्पण की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

1. अधिकार के भारार्पण के द्वारा किसी कार्य के निष्पादन में अधिकार का प्रयोग निश्चित प्रकार से करना होता है। अधिकार की मात्रा उन सीमाओं को निर्धारित करती है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति निश्चित कार्य के निष्पादन के सम्बन्ध में निर्णय ले सकता है।

2. अधिकार का भारार्पण ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है क्योंकि केवल औपचारिक अधिकार का ही भारार्पण किया जाता है और व्यक्तिगत विशेषताओं पर आधारित अधिकार इसमें सम्मिलित नहीं है।

3. भारार्पण की दोआयामी विशेषता होती है एक उच्चस्थ द्वारा अपने अधीनस्थ को अधिकार प्रदान करने के बावजूद भी वह मूल अधिकार को अपने पास रखता है। जॉर्ज टैरी के शब्दों में, "अधिकार का भारार्पण ज्ञान प्रदान करने के समान है। आज अपने ज्ञान को दूसरों में बाँट सकते हैं किन्तु इसके बावजूद भी आपका ज्ञान आपके पास रहता है। इसी प्रकार अधिकार का भारार्पण करने के बाद भी एक उच्चस्थ के पास उसका मूल अधिकार बना रहता है।"

अतः अधिकार का भारार्पण सदैव किसी पद को किया जाता है जिसका निर्धारण संगठन संरचना के समय किया जाता है।

4. कोई उच्चस्थ अपने समस्त अधिकारों का भारार्पण नहीं करता है बल्कि केवल उन अधिकारों का भारार्पण करता है जो उसके अधीनस्थों के कार्य-निष्पादन में सहायक होते हैं।

5. एक भारार्पित किए हुए अधिकार की मात्रा में परिवर्तन हो सकता है जिसके द्वारा इसकी मात्रा में वृद्धि या कमी की जा सकती है अथवा अधिकारों को समाप्त किया जा सकता है।

6. प्रत्यायोजन से प्रत्यायोजक को सत्ता में कोई कमी नहीं होती है, वह उतनी ही बनी रहती है। टेरी लिखते

हैं कि "यह दूसरों को ज्ञान बाँटने जैसा है, लेकिन इससे शन बाँटने वाले का ज्ञान कम नहीं होता है।" 7. अधिकार प्रत्यायोजन के बाद प्रबन्धक परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार सौंपी गई सत्ता को कम ज्यादा

कर सकता है अथवा इसे वापस ले सकता है। सौंपी गई सत्ता परिवर्तनीय एवं निरस्य (Revocable) होती है। 8. प्रत्यायोजन विशिष्ट अथवा सामान्य हो

सकता है। विशिष्ट प्रत्यायोजन में 'कार्य करने का ढंग' (Course of action) स्पष्ट कर दिया जाता है जबकि सामान्य प्रत्यायोजन में केवल उद्देश्य ही बताये आते हैं। प्रत्यायोजन लिखित या गर्भित भी हो सकता है।

10.11 प्रत्यायोजन /भारार्पण के स्वरूप (Forms of Delegation)

किसी अधीनस्थ को किस प्रकार अधिकार का भारार्पण किया जाता है इसके आधार पर प्रत्यायोजन के मुख्यतः निम्न स्वरूप दिखाई देते हैं

1. **औपचारिक तथा अनौपचारिक भारार्पण** (Formal & Informal Delegation) - औपचारिक भारार्पण संगठन पदानुक्रम (Hierarchy) के अनुरूप शासकीय सत्ता एवं आदेशों के अन्तर्गत होता है। दूसरी ओर अनौपचारिक भारार्पण 'आदेशों के कारण नहीं' वरन् सामाजिक, वैयक्तिक, अशासकीय सम्बन्धों एवं दूसरी ओर अनौपचारिक Extra-Hierarchy) किया जाता है। यह भारार्पण 'अनौपचारिक नेता' के द्वारा किया जाता है। इस भारार्पण का उद्देश्य कार्यों को शीघ्रतापूर्वक निपटाना है।

2. **विशिष्ट एवं सामान्य भारार्पण** (Specific & Normal Delegation)- विशिष्ट भारार्पण में विशिष्ट क्रियाएँ सौंपी जाती है, जबकि सामान्य भारार्पण में केवल सामान्य लक्ष्यों के आधार पर कार्य सौंप दिया जाता है। सामान्य लक्ष्यों की पूर्ति इस सहज भारार्पण द्वारा सम्भव हो जाता है जबकि विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अनेक प्रयास करने पड़ते हैं।

3. **अधोगामी, ऊर्ध्वगामी एवं पार्श्विक भारार्पण** (Downward, Upward and Lateral Delegation)- अधोगामी प्रत्यायोजन संगठन के उच्च स्तरों से निम्न स्तरों व पद पर आसीन कर्मचारियों को दिया जाता है। प्रत्यायोजन की प्रकृति सामान्यतः तो अधोगामी ही होती है, किन्तु कभी-कभी वह ऊर्ध्वगामी भी हो सकती है जैसे राज्य सरकार द्वारा केन्द्रीय सरकार को अधिकार सौंपना। पार्श्विक प्रत्यायोजन समस्तरीय अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच होता है।

पाश्विक प्रत्यायोजन का महत्व व्यवसाय की जटिलताओं तथा प्रबन्ध की अन्तर्निर्भरता के कारण बढ़ता जा रहा है।

4. **खंडित भारार्पण** (Discreet Delegation)- जब कोई एक समस्या अथवा निर्णयन किन्हीं दो अधिकारियों की सत्ता से जुड़ा होता है तो दोनों अधिकारियों के सत्ता भारार्पण का एकत्रीकरण (Pooling the authority delegation of two or more managers) आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार दोनों प्रबन्ध सत्ता का समुच्चयन (Pooling) करके ही निर्णय ले सकते हैं अथवा समस्या हल कर सकते हैं। इस उद्देश्य के लिए किये जाने वाले भारार्पण को खंडित अथवा बाँटा हुआ भारार्पण कहते हैं।

5. **प्रशासकीय, क्रियात्मक अथवा तकनीकी भारार्पण** (Administrative, Functional or Technical Delegation)- कार्यों के स्वभाव के अनुसार अधिकार का भारार्पण प्रशासकीय, क्रियात्मक अथवा तकनीकी हो सकता है। जब भारार्पण प्रशासनिक कार्य के निष्पादन के लिए किया जाता है तो उसे प्रशासकीय भारार्पण कहा जाता है। जब भारार्पण क्रियाओं के आधार पर किया जाता है तो उसे क्रियात्मक भारार्पण कहते हैं। जब भारार्पण तकनीकी क्रियाओं से संबंधित होता है तो इसे तकनीकी भारार्पण कहते हैं। संगठन के किसी एक पद को इन तीनों प्रकार के अधिकारों का भारार्पण कहा जाता है।

10.12 भारार्पण की प्रक्रिया(Process of Delegation)

किसी भी व्यावसायिक संगठन में अधिकार का भारार्पण स्वतः नहीं हो जाता है बल्कि उसके लिए एक सुनिश्चित प्रक्रिया अपनायी जाती है जिसमें विभिन्न तत्व होते हैं। ये तत्व सामान्यतया एक दूसरे से जुड़े रहते हैं, जो निम्न हैं:

प्रत्याशित परिणामों का निर्धारण

कार्यभार को सौंपना

अधिकार प्रदान करना

जवाबदेही निर्धारित करना

अधिकार-भारार्पण की प्रक्रिया (Process of Authority Delegation)

1. प्रत्याशित परिणामों का निर्धारण (Determination of Results Expected)-- हमेशा अधिकार का भारार्पण इसलिए किया जाता है कि उसके उपयोग से कोई व्यक्ति उन परिणामों को प्राप्त करेगा जिनके द्वारा संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके, अतः अधिकार का भारार्पण करने के पहले इन प्रत्याशित परिणामों का निर्धारण कर लेना आवश्यक होता है। यह प्रकिया संगठन के सभी पदों के लिए अपनाई जाती है ताकि संगठन के उद्देश्यों की प्राति सुनिश्चित की जा सके। परिणामों की मात्रा एवं इनके स्वभाव के आधार पर अधिकारों की मात्रा निर्धारित की जाती है।

2. कार्य-भार का सौंपा जाना (Assignment of Duties)- चूँकि एक प्रबन्धक किसी उपक्रम के सभी कार्यों को स्वयं ही पूरा नहीं करता, अतः उसे अपने कार्य का कुछ भाग अपने अधीनस्थों को भी सौंपना चाहिए, ताकि निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके। भारार्पण की प्रक्रिया में मुख्य प्रवन्धक को सबसे पहले यह निश्चित करना होता है कि उपक्रम में कुल मिलाकर कितनी प्रबन्धकीय क्रियाएँ हैं जिन्हें पूरा किया जाता है तथा उनमें से कितनी क्रियाओं को वह स्वयं अपने पास रखेगा एवं कितना कार्य-भार वह अधीनस्थों को सौंप देगा।

लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक कम्पनी में विपणन विभाग का कार्य एक व्यक्ति को देकर, चार सदस्यों की एक समिति को दे दिया जाता है, तो विपणन विभाग के अधीनस्थ लोग चारों सदस्यों के प्रति उत्तरदायी होंगे और चारों के आदेशों का पालन करने को बाध्य होंगे। यह स्थिति भ्रमात्मक हो जाती है और अधीनस्थ अपनी जिम्मेदारी से बच निकलने में समर्थ हो जाता है।

6. निरपेक्ष उत्तरदायित्व का सिद्धान्त (Principle of Secular Responsibility) यह सिद्धान्त यह बतात है कि जब अधीनस्थ किसी कार्य को पूरा करने की स्वीकृति दे देता है और उससे सम्बन्धित अधिकार भी प्राप्त कर लेता है, तो वह प्रबन्धक के प्रति कार्य के लिए उत्तरदायी होता है, परन्तु इससे प्रबन्धक का उत्तरदायित्व कम नहीं होता। वह स्वयं अपने अधीनस्थों के लिए संगठन के प्रति उत्तरदायी होता है।

7. अधिकार एवं दायित्वों की समता का सिद्धान्त (Principle of Equality of Authority & Responsibility)- चूँकि अधिकार, कार्य पूरा करने के लिए दिये जाते हैं और दायित्व कार्य पूरा करने की जिम्मेदारी से सम्बन्ध रखते हैं, अतः अधिकार एवं दायित्वों में समता होना चाहिए। इसका आशय यह है कि कोई प्रबन्धक अपने अधीनस्थ को उस सीमा से अधिक उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता, जिस सीमा तक प्रबन्धक ने उसे अधिकार प्रदान किये हैं।

इस प्रकार उक्त सिद्धान्तों का परिपालन करने से अधिकारों को प्रत्यायोजन सार्थक एवं उपक्रम को सफलता में सहायक सिद्ध हो सकता है।

"अधिकार का भारार्पण किया जा सकता है किन्तु उत्तरदायित्व का नहीं" (Authority can be Deligated but not Responsibility)-कोई भी प्रबंधक या प्रशासनिक अधिकारी किसी व्यावसायिक उपक्रम के समस्त कार्य केवल स्वयं के प्रयत्नों से ही पूर्ण नहीं कर सकता, इसके लिए उसे अधिकारों का अन्तरण या हस्तान्तरण का सहारा लेना पड़ता है। भारार्पण एक साधन है, जिसके माध्य से एक उच्च अधिकारी दूसरे अधीनस्थ अधिकारियों के साथ अपने प्रवन्धकीय अधिकारों में हिस्सा बंटाता है। अधीनस्थ अधिकारी निर्धारित सीमाओं के दायरे में ही काम करते हैं। जिस प्रकार अधिकार प्रबन्ध के कार्य की कुंजी है, उसी प्रकार भारार्पण संगठन की कुँजी है। अतः प्रबन्धक अपने अधिकारों का तो हस्तान्तरण कर सकता है, लेकिन प्रबन्धक के कुछ

उत्तरदायित्व भी होते हैं, जिनका वह अपने अधीनस्थों या अन्य कर्मचारियों के मध्य बँटवारा नहीं कर सकता है। यहाँ दो भागों में इसे समझा जा सकता है.

(अ) अधिकारों का भारार्पण किया जा सकता है (Authority can be Delegated)- कोई भी व्यवसायी या प्रवन्धकर्ता अपने अधिकारों का भारार्पण करके कार्य को आसान बना सकता है, जिसके बारे में पूर्व में भी कहा जा चुका है। अधिकारों का अन्तरण करके प्रबन्धक अपनी कार्यप्रणाली से और कई लोगों को जोड़ लेता है, जिसके निम्न लाभ होते हैं-

1. **समन्वय का साधन** (Source of Co-ordination)- चूँकि मारार्पण का प्रमुख उद्देश्य संगठन में रचनात्मक सम्बन्धों की स्थापना करना है, अतः यह लोगों में समन्वय तथा एकता स्थापित करने में सफल हुआ है। रेखा कर्मचारी तथा क्रियात्मक अधिकारी के सम्बन्ध ऊँचे तथा नीचे कर्मचारियों के सम्बन्ध में भारार्पण के माध्यम से एक-दूसरे के साथ बँधे रहते हैं। यदि भारार्पण समुचित ढंग से नहीं किया जाए, तो इसके संगठन में समन्वय की समस्या उत्पन्न हो जाएगी।

2. **प्रशासनिक भार में कमी** (Deficiency in Administrative Load)- भारार्पण के माध्यम से एक प्रशासनिक अधिकारी ऐसे कार्यों के भार से मुक्त हो जाता है, जो छोटी किस्म के हैं; अर्थात् विशेष महत्व के नहीं है, किन्तु उनके करने में पर्याप्त समय व्यतीत होता है। ऐसे कार्यों को अपने अधीनस्थों को सौंपकर वह अपनी सारी शक्ति महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निभाने में लगा सकता है। भारार्पण की अयोग्यता के कारण अधिकारीगण छोटे-छोटे कार्यों को करने में तो अपनी शक्ति का अपव्यय करते ही हैं, साथ ही महत्वपूर्ण कार्यों की ओर भी समुचित ध्यान नहीं देते, जिसके कारण उपक्रम को क्षति पहुँचती है।

3. **अधीनस्थों के नैतिक स्तर में सुधार** (Improvement in the Moral Standard of Subordinates) जिन अधीनस्थ कर्मचारियों को कार्यभार सौंपा

जाता है, उन्हें अपनी योग्यता तथा कार्य-कुशलता का प्रदर्शन करने का सुअवसर प्राप्त होता है। भारार्पण के परिणामस्वरूप अधीनस्थों के पदों का महत्व बढ़ता है तथा उन्हें अपने कार्य
से अधिक सन्तोष मिलता है। फलतः उनका नैतिक स्तर एवं मनोबल ऊँचा उठता है। 4. व्यवसाय के विस्तार में सुविधा (Facility in Business Expansion)- जब उच्च अधिकारी भारार्पण के माध्यम से ऐसे कार्यों के करने से मुक्त हो जाते हैं, जो कि छोटी किस्म के हैं, किन्तु उनके करने में अधिक समय

5. **अधीनस्थों का विकास** (Development of Subordinates)- भारार्पण अधीनस्थों को इस बात को सुअवसर प्रदान करता है कि वे अपने पदों का क्षेत्र समझने की शक्ति तथा क्षमता का विकास करें। जब अधीनस्थ कर्मचारी अधिक उत्तरदायित्व वहन करने तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेने लगते हैं, तो उच्च अधिकारी उनकी योग्यता का और अधिक विकास होने के लिए अवसर प्रदान करते हैं। ऐसा होने से पदोन्नति सरल हो जाती है।

6. **अन्य लाभ** (Other Advantages) भारार्पण के और भी कई लाभ होते हैं, जैसे- (i) भारार्पण प्रभावी संगठन की आधारशिला है; (ii) भारार्पण के होने से निर्णयन का कार्य निम्न स्तर तक सम्पन्न होता है; इससे निर्णयन के क्षेत्र में हिस्सेदारी बढ़ती है तथा पारस्परिक सहयोग भी बढ़ता है; (iii) इससे स्थानापन्न की समस्या हल हो जाती है; (iv) भारार्पण अधीनस्थों को प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य करता है; (v) भारार्पण प्रबन्धकीय पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाता है।

(ब) **उत्तरदायित्व का भारार्पण नहीं किया जा सकता** (Delegation of Responsibility can not be Done) - कोई भी प्रबन्धक यदि अपने अधिकारों का भारार्पण अन्य कर्मचारियों या अधिकारियों को करता है, तो यह उसकी कार्यशैली में निखार ला देता है तथा अन्य व्यक्तियों से काम कराना

सरल कर देता है. लेकिन प्रबन्धक या शीर्ष नेतृत्व के कुछ उत्तरदायित्व भी होते हैं, जिन्हें वह स्वयं ही पूरे कर सकता है, अन्य व्यक्ति नहीं। उत्तरदायित्व या कर्तव्य पालन व्यक्तिगत होता है जिसे अन्यों पर नहीं डाला जा सकता है। उत्तरदायित्व का निर्वाह अधिकारी या प्रबन्धक का स्वयं होना चाहिए उसकी जवाबदेही भी स्वयं की होती है, अर्थात् वह अपने दायित्व की जिम्मेदारी अन्य पर इस्तान्तरित करके बच नहीं सकता है। इसीलिए कहा जाता है कि उत्तरदायित्व का भारार्पण नहीं किया जा सकता है। उत्तरदायित्व के हस्तान्तरण के निम्न दोष या हानियाँ हैं-

1. **जवाबदेही का निर्धारण** (Determination of Accountability)- प्रबन्धक यदि अपने उत्तरदायित्व को भी अन्य कर्मचारियों को भारार्पण कर देता है, तब उस निश्चित कार्य की पूर्णता की जवाबदेही किसकी हो? यह निर्धारण करना मुश्किल हो जाता है, उत्तरदायित्व का निर्वहन करना चाहिए या कार्य अपूर्ण या गलत हो जाने पर कौन जिम्मेदार
हो यह तय करना मुश्किल हो जाता है।

2. **उपयोगिता में ह्रास** (Depreciation in Utility) प्रबन्ध या प्रशासन अपने अधिकारों के साथ दायित्वों का भी हस्तान्तरण कर दें तो उनकी स्वयं की क्या उपयोगिता होगी? इस हस्तांतरण से प्रबन्धक की उपयोगिता में कमी आती है।

3. **प्रेरणा का अभाव** (Lack of Motivation) यदि श्रेष्ठी वर्ग ने अपने दायित्वों को अन्य व्यक्तियों पर हस्तांतरित कर दिया है, तो उन व्यक्तियों को दायित्व बोध हमेशा सताता रहेगा एवं वे सहज होकर काम नहीं कर पाएँगे, इस तरह उन्हें कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिल सकेगी।

निष्कर्ष - इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध एवं प्रशासन को अपने अधिकारों का पूर्ण प्रत्यायोजन करना चाहिए, ताकि उनके अधीनस्थ वर्ग को स्वतन्त्रता से कार्य करने की प्रेरणा मिले तथा दायित्वों का हस्तान्तरण नहीं करना चाहिए जिससे कर्मचारियों को अतिरिक्त दबाव में कार्य

न करना पड़े। इसीलिए यह कथन पूर्णतः सही है कि "अधिकारों का भारार्पण किया जा सकता है, बल्कि उत्तरदायित्वों का नहीं।"

भारार्पण को प्रभावशाली बनाने के उपाय (Measures for Effective Delegation)

अधिकार भारार्पण का मुख्य उत्तरदायित्व उच्च प्रबंध पर होता है किन्तु इसी के साथ-साथ संगठनात्मक दिशानिर्देश एवं अधीनस्थों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है, अतः अधिकार-भारार्पण प्रभावशाली बनाने के लिए इन सभी दिशाओं में ध्यान देना आवश्यक है। किसी संगठन में अधिकार भारार्पण को निम्नलिखित उपायों से प्रभावशाली बनाया जा सकता है:

1.अनुकूलतम संगठनात्मक वातावरण का निर्माण (Establishing Conductive Organisational Climate)- ऐसा वातावरण जो भय एवं नैराश्य से मुक्त हो तथा जिसमें परस्पर विश्वास एवं सहयोग की भावना हो, वह संगठन की विभिन्न प्रक्रियाओं को अनुकूल रूप से प्रभावित करता है। चूंकि अधिकार भारार्पण एक संगठनात्मक प्रक्रिया है, अतः यह भी संगठनात्मक वातावरण से प्रभावित होता है। एक अनुकूल संगठनात्मक वातावरण में प्रबंधकों को यह विश्वास होता है कि अधिकार भारार्पण पुरस्कृत किया जाएगा। इस प्रकार यदि अधिकार का भारार्पण उच्च स्तर पर सुचारु रूप से होता है तो यह प्रक्रिया निचले स्तरों पर पहुँचती है और संगठन के प्रत्येक स्तर पर अधिकारों का उचित भारार्पण होता है।

10.13 केन्द्रीकरण (Centralisation)

आशय (Meaning)- केन्द्रीकरण एक ऐसी स्थिति है जिसके अन्तर्गत समस्त अधिकार एक पद या व्यक्ति के पास ही केन्द्रित रहते हैं। अन्य शब्दों में, जब कोई अधिकारी अधीनस्थों से सम्बन्धित अधिकार उन्हें भारार्पित न करके स्वयं अपने पास रखा है तो ऐसी व्यवस्था केन्द्रीयकरण के नाम से जानी जाती है।

परिभाषाएँ (Definitions)- केन्द्रीयकरण को निम्न विद्वानों ने परिभाषित किया है:

1.**कूण्ट्ज एवं ओ'डोनेल** के शब्दों में, "केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण में ठीक उतना ही अन्तर है जितना कि गर्म और ठण्डे जल में। विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत उच्चस्तरीय प्रवन्धकों के पास ही अधिकारों का केन्द्रीयकरण रहता है।"

2.**हेनरी फेयोल** के शब्दों में, "अधीनस्थों की भूमिका को बढ़ाने के लिये जो भी कदम उठाये जाते हैं वे सब विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत आते हैं तथा इसके विपरीत जो उसको कम करते हैं, केन्द्रीयकरण में आते हैं।"

3. "केन्द्रीकरण एक संगठन में प्रणालीकृत तथा स्थित रूप से अधिकार को केन्द्रीय बिन्दुओं पर निहित करना होता है।"

इस प्रकार केन्द्रीयकरण में कार्यों से सम्बन्धित अधिकांश निर्णय संगठन के उच्चतर बिन्दु पर लिए जाते हैं न कि उन व्यक्तियों द्वारा लिए जाते हैं जो कार्य-निष्पादन के लिए उत्तरदायी होते हैं। केन्द्रीयकरण निम्नलिखित परिस्थितियों में उपयुक्त होता है :

(अ) जहाँ संगठन का आकार छोटा हो; (व) जहाँ कार्य पुनरावृत्ति वाली प्रकृति का हो;

(स) जहाँ नियन्त्रण का विस्तार संकुचित हो; एवं (द) जहाँ कार्य प्रभावित हो।

केन्द्रीयकरण के लाभ

(Advantages of Centralisation)

किसी संगठन में जब केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया अपनाई जाती है तो उससे निम्नलिखित लाभ होते हैं:-

1. **संकटकालीन परिस्थिति में उपयुक्त-** संगठन में अधिकारों का केन्द्रीयकरण उस दशा में श्रेष्ठ माना जाता

है जबकि कोई संकट या आपात स्थिति बन गई हो क्योंकि ऐसी दशा में शीर्ष प्रबन्ध के पास ही समूचे अधिकार होना
उपयुक्त होता है।

2. **एकीकरण को प्रोत्साहन** भारार्पण की केन्द्रीयकरण दशा में एकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि सभी इकाइयों में एक ही व्यक्ति द्वारा समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

3. **संकटकालीन परिस्थितियों का सरलता से सामना** केन्द्रीयकरण में चूँकि एक ही व्यक्ति द्वारा निर्णय लिया जाता है। अतः निर्णय में सरलता बनी रहती है, जबकि संकटकालीन परिस्थितियों में शीघ्र निर्णय लेने की आवश्यकता होती है।

4. **क्रियाओं में एकरूपता** केन्द्रीयकरण में समस्त व्यावसायिक क्रियायें एक ही व्यक्ति द्वारा सम्पन्न किये जाने के कारण क्रियाओं में पूर्ण एकरूपता बनी रहती है, जबकि इसके विपरीत विकेन्द्रीयकरण में क्रियाओं में एकरूपता का अभाव रहता है, क्योंकि विभिन्न अधिकारी भिन्न-भिन्न प्रकार से अधिकारों का प्रयोग करते हैं।

5. **सुविधाजनक व्यक्तिगत नेतृत्व** केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत व्यक्तिगत नेतृत्व अधिक सुविधाजनक हो जाता है क्योंकि एक ही व्यक्ति सम्पूर्ण निर्णय लेता है। वह अपने कार्य को दूसरों के ऊपर नहीं टालता। वास्तव में एक व्यक्ति का नियन्त्रण विश्व में सर्वश्रेष्ठ है, यदि उसमें पूर्ण प्रबन्धकीय क्षमता विद्यमान हो।

है। उपर्युक्त लाभों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीयकरण व्यवसाय में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता

केन्द्रीयकरण की हानियाँ

(Disadvantages of Centralisation)

केन्द्रीयकरण प्रणाली में लाभों की तुलना में हानियाँ अधिक होती हैं जो निम्नलिखित हैं :

1. केन्द्रीयकरण के कारण उच्चस्तरीय प्रबंधकों के सामान्य दैनिक कार्यों में वृद्धि होती है जिससे महत्वपूर्ण कार्यों के निष्पादन में विलम्ब होता है।

2. केन्द्रीयकरण में शीर्ष प्रबंध एवं विभागीय प्रबंध के बीच प्रायः टकराव की स्थिति बनी रहती है क्योंकि विभागीय प्रबंधकों के पास अधिकारों की मात्रा नगण्य होती है।

3. केन्द्रीयकरण के कारण शीर्ष स्तर के प्रबंधकों के अतिरिक्त अन्य सभी स्तर के प्रबंधकों में असंतोष एवं निराशा की भावना होती है क्योंकि उत्तरदायित्व की तुलना में उनके पास अधिकार कम होते हैं।

4. केन्द्रीयकरण के द्वारा निचले स्तर के कर्मचारियों का उचित विकास सम्भव नहीं हो पाता, क्योंकि वे नैत्यिव कार्यों में व्यस्त रहते हैं और निर्णय लेने का अवसर उनके पास नहीं आता है।

10.14 विकेन्द्रीयकरण (Decentralisation)

आशय (Meaning)- जब एक उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थों को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में अधिकारो का भारार्पण किया जाता है तो उसे विकेन्द्रीयकरण कहते हैं। सामान्यतः विकेन्द्रीयकरण द्वारा उच्च अधिकारी सम्पूर्ण कार्यों को (अधिक महत्वपूर्ण कार्यों को छोड़कर) अधीनस्थ अधिकारियों को हस्तान्तरित कर देता है। संक्षेप में, यह कह।। जा सकता है कि विकेन्द्रीयकरण भारार्पण का ही एक रूप है जो कि भारार्पण की तुलना में अधिक व्यापक है।

उदाहरण के लिये, यदि कालेज का प्राचार्य कालेज के किसी विभागाध्यक्ष को अपने विभाग के लिये कर्मचारियों की नियुक्ति करने का कार्य भार सौंप देता है तो इसे भारार्पण कहा जायेगा, परन्तु यदि कर्मचारियों की नियुक्ति का यह सामान्य अधिकार सभी विभागाध्यक्षों को सौंप दिया जाये तो इसे विकेन्द्रीयकरण कहते हैं।

परिभाषाएँ (Definitions)

विकेन्द्रीयकरण को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है :

1. **हेनरी फेयोल के अनुसार**, "अधीनस्थ वर्ग की भूमिका के महत्व को बढ़ाने के लिये जो कदम उठाये जायें वे सब विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत आते हैं।”

2. **हेरोल्ड कृण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार**, "अधिकार का विकेन्द्रीयकरण भारार्पण का प्राथमिक पहलू है तथा जिस सीमा तक अधिकारों का भारार्पण नहीं होता, वे केन्द्रित हो जाती हैं।"

3. **लुइस एलेन के अनुसार**, "विकेन्द्रीयकरण से आशय केवल केन्द्रीय विन्दुओं पर ही प्रयोग किए जाने वाले

अधिकारों के अतिरिक्त सभी अधिकारों को व्यवस्थित रूप से निम्न स्तरों को सौंपने से है। विकेन्द्रीयकरण का संबंध उत्तरदायित्वों के संदर्भ में अधिकार प्रदान करने से है।"

[टिप्पणी : इन परिभाषाओं के अध्ययन तथा राल्फ कार्डिनर के अध्ययन के आधार पर विकेन्द्रीयकरण के निम्न प्रमुख लक्षण होते हैं-

1. विकेन्द्रीयकरण निर्णय लेने का अधिकार ऐसे विन्दुओं के निकट प्रदान करता है जहाँ पर वास्तव में कार्य का निष्पादन होता है।

2. विकेन्द्रीयकरण इस विश्वास पर आधारित है कि जिन अधीनस्थों को अधिकार सौंपा गया है, उनमें उचित निर्णय लेने की क्षमता विद्यमान हो।

3. विकेन्द्रीयकरण उस मान्यता पर आधारित है कि किसी एक व्यक्ति द्वारा लिए गए निर्णयों की तुलना में

अधिक व्यक्तियों द्वारा लिए गए निर्णय संगठन के लिए अधिक लाभदायक होते हैं।

4. विकेन्द्रीकरण तभी सम्भव है जब उच्च अधिकारी सच्चे हृदय से निम्न स्तर के अधिकारियों को अधिकार प्रदान करें तथा इस बात को मन से निकाल दें कि इन अधिकारों को वे अपने पास ही रख सकते हैं।

5. विकेन्द्रीयकरण तभी प्रभावशाली होता है जब निर्णय लेने के अधिकार के साथ उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न हो। इसका तात्पर्य यह है कि अधिकार एवं उत्तरदायित्व दोनों एक साथ सौंपे जाएँ।]

विकेन्द्रीयकरण के लाभ

(Merits of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण के विभिन्न लाभ निम्न हो सकते हैं-

1. **उच्च अधिकारियों के कार्यभार में कमी** विकेन्द्रीयकरण के कारण उच्च अधिकारियों के कार्यभार में कमी आ जाती है, सभी निर्णय लेने का भार उन पर नहीं रहता है। वह अपना ध्यान व्यवसाय के विकास की ओर केन्द्रित कर सकते हैं।

2. **प्रबन्धकीय गुणों का विकास** चूंकि विकेन्द्रीयकरण में युवा अधिकारियों को भी निर्णय लेने का मौका मिलता है, अतः उनमें प्रबन्धकीय गुणों का विकास होता है। युवा अधिकारियों का आत्मविश्वास बढ़ता है, उनमें उत्तरदायित्वों को वहन करने की क्षमता बढ़ती है।

3. **प्रेरणा एवं मनोबल में वृद्धि** विकेन्द्रीयकरण से कर्मचारियों को प्रेरणा मिलती है और उनके मनोबल में भी वृद्धि होती है क्योंकि उन्हें उच्चतम अधिकारी द्वारा कुछ मुख्य कार्य करने का अधिकार मिल जाता है।

विशेषताएँ (Essentials) इस विचारधारा के मुख्य लक्षण या विशेषताए निम्न है:- इसमें एक निश्चित जिम्मेदारी के रूप में व्यक्तियों को कार्यो का विभाजन किया जाता है।

(2) यांग्व एवं अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति (Appointment of Able and Experience Managers) - विकेन्द्रीयकरण की सफलता के लिये प्रबन्ध

के विभिन्न स्तरों पर योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिये ताकि वे अपने उत्तरदायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकें।

(3) विभिन्न विभागों में समन्वय एवं नियन्त्रण (Co-ordination and Control Among Differen Departments)- संगठन के विभिन्न विभागों में पूर्ण समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये ताकि एक विभाग के हिर दूसरे विभाग से न टकरायें तथा सभी विभागों पर उचित नियन्त्रण की भी व्यवस्था की जानी चाहिये ताकि वे अपर्न अधिकार सीमा से बाहर कोई कार्य न कर सकें।

(4) प्रभावशाली नीति निर्माण (Effective Policy Formulation)- विकेन्द्रीयकरण की सफलता केवल इसी बात में नहीं है कि अधिकार एवं उत्तरदायित्वों को विकेन्द्रित कर दिया जाये। अपितु इसके लिए प्रभावशार्ल नीतियों का निर्माण किया जाना चाहिये जिनसे संस्था के विभिन्न अधिकारी सही दिशा में निर्देशित हो।

(5) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन (Encouragement of Healthy Competition)- विभिन्न अधिकारियों एवं संगठन की विभिन्न इकाइयों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये तावि विकेन्द्रित अधिकार एवं उत्तरदायित्वों का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके।

10.15 सार संक्षेप

अधिकार प्रबंधन का एक केंद्रीय तत्व है, जो प्रबंधक को संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निर्णय लेने का अधिकार देता है। भारार्पण (Delegation) प्रबंधक को अपने कार्यों और उत्तरदायित्व को अधीनस्थों को सौंपने की प्रक्रिया है। केन्द्रीयकरण में सभी निर्णय उच्च स्तर पर लिए जाते हैं, जबकि विकेन्द्रीकरण में निर्णय लेने की शक्ति निचले स्तरों तक वितरित की जाती है। दोनों ही दृष्टिकोणों का उपयोग संगठन की संरचना और

आवश्यकता के अनुसार किया जाता है। अधिकार, उत्तरदायित्व और शक्ति में संतुलन बनाए रखना संगठन की दक्षता सुनिश्चित करता है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. निम्नलिखित में से कौन सा अधिकार का स्त्रोत नहीं है?
   A. संगठनात्मक संरचना
   B. वैधानिक नियम
   C. व्यक्तिगत प्रभाव
   D. प्रबंधकीय कौशल

2. भारार्पण का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. कार्यभार कम करना
   B. संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति
   C. नेतृत्व का विकास
   D. उपरोक्त सभी

3. ________ अधिकार के साथ उत्तरदायित्व का संतुलन बनाए रखना चाहिए।

4. केन्द्रीयकरण का लाभ है ________ निर्णय लेने की प्रक्रिया।

5. ________ में अधिकार निचले स्तरों तक वितरित किया जाता है।

10.16 मुख्य शब्द

1. **अधिकार (Authority)**: निर्णय लेने और आदेश देने की विधिक शक्ति।

2. **भारार्पण (Delegation)**: कार्यों और उत्तरदायित्व को अधीनस्थों को सौंपने की प्रक्रिया।

3. **केन्द्रीयकरण (Centralization)**: निर्णय लेने की शक्ति का उच्च स्तर पर केंद्रीकरण।

4. **विकेन्द्रीकरण (Decentralization)**: निर्णय लेने की शक्ति का निचले स्तरों पर वितरण।

5. **उत्तरदायित्व (Responsibility)**: कार्य के लिए उत्तरदायी होने का कर्तव्य।

6. **शक्ति (Power)**: कार्यों को पूरा कराने की क्षमता।

7. **अधिकार और शक्ति का अंतर (Difference between Authority and Power)**: अधिकार विधिक होता है, जबकि शक्ति व्यक्तिगत प्रभाव से संबंधित होती है।

8. **भारार्पण की प्रक्रिया (Process of Delegation)**: कार्य, अधिकार, और उत्तरदायित्व का हस्तांतरण।

उत्तर 1: C

उत्तर 2: D

उत्तर 3: प्रबंधक

उत्तर 4: तेज़ और नियंत्रित

उत्तर 5: विकेन्द्रीकरण

10.17 संदर्भ सूची (References)

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). *Management*. Pearson Education.

Mintzberg, H. (2022). *Structure in Fives: Designing Effective Organizations*. Prentice Hall.

Drucker, P. F. (2019). *The Practice of Management*. HarperBusiness.

Gupta, C. B. (2021). *Management: Theory and Practice*. Sultan Chand & Sons.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2019). *Management: Concepts, Practice & Cases*. McGraw Hill Education.

Sharma, R. K. (2021). *Principles of Management*. Kalyani Publishers.

10.18 अभ्यास प्रश्न

1. अधिकार को परिभाषित कीजिये तथा प्रवन्ध में अधिकार के स्त्रोतों का वर्णन कीजिये ।

2. अधिकार भारार्पण से आप क्या समझते हैं? भारार्पण प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए तथा उसकी सीमाएँ बताइये।

3.अधिकार से क्या आशय है? अधिकार के प्रकारों, स्रोतों एवं सीमाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

4.शक्ति से आप क्या समझते हैं? अधिकार से यह किस प्रकार भिन्न है? किसी संगठन में शक्ति के कौन-कौन से स्रोत हैं ?

5. 'भारार्पण' शब्द की परिभाषा दीजिए। इसके तत्व बताइये। क्या अधिकार दायित्व के बराबर होना चाहिए?

6.अधिकारों के भारार्पण से आप क्या समझते हैं? यह कहाँ तक आवश्यक है? अधिकार का भारार्पण करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

7. "विकेन्द्रीयकरण आज का बहुचर्चित विषय है। इस कथन की व्याख्या कीजिये तथा विकेन्द्रीयकरण को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये उपाय सुझाइये।

8. निम्न को संक्षेप में समझाइये

(i) उत्तरदायित्व (ii)जवाबदेही (iii)केन्द्रीयकरण (iv)विकेन्द्रीयकरण

इकाई -11

निर्देशन : अवधारणा एवं प्रकृति
(DIRECTION: CONCEPT AND NATURE)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 निर्देशन की परिभाषाएँ

11.4 निर्देशन की प्रकृति

11.5 निर्देशन का महत्व

11.6 निर्देशन के सिद्धान्त

11.7 निर्देशन की तकनीकें

11.8 सार संक्षेप

11.9 मुख्य शब्द

11.10 संदर्भ सूची

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

जो व्यक्ति किसी कंपनी के कार्यों को करते हैं, संचालक कहे जाते हैं। इनके द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे कार्य संचालन (Direction) कहते हैं। संचालकों से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से होता है जो कंपनी के प्रबन्ध का कार्य करते हैं।

प्रवन्ध विज्ञान में संचालन को ही निर्देशन कहा जाता है। प्रबन्ध विज्ञान के कई विद्वानों ने संचालन को प्रबन्ध के प्रकार्यों में सम्मिलित किया है। इनमें वेशलर (Washler) तथा मसारिट (Massarit) एवं कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल (Koontz and O'Donnel) प्रमुख हैं। इसके विपरीत हेनरी फेयोल (H. Fayol) ने निर्देशन के स्थान पर आदेश (Command), मेरी कुशिंग नाइल्स (Mary

Cushing Niles) ने नेतृत्व (leadership) तथा ई. एफ.एल. ब्रेच (E.F.L. Brech) ने अभिप्रेरणा (Motivation) शब्द का प्रयोग किया है। आदेश, नेतृत्व अथवा अभिप्रेरणा शब्दों का प्रयोग संचालन में की जाने वाली क्रियाओं के संबंध में ही किया गया है। परन्तु इन शब्दों के शाब्दिक अर्थों में अन्तर होने के कारण निर्देशन का अलग से अध्ययन किया जाता है।

निर्देशन का सामान्य अर्थ संचालन से है। संगठन के विभिन्नस्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना, उनको परामर्श देना तथा उनके कार्य का निरीक्षण करना प्रबंध अधिकारियों का कार्य होता है। अतः निर्देशन से आशय, "प्रबन्धकों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की संगठन-रचना करना एवं कर्मचारियों के अन्तर्विभागी संबंधों क्रियाओं का निरूपण करना तथा अधिकार एवं कर्तव्यों से भली-भाँति परिचित कराना है। इसके अतिरिक्त अधीनस्थों में ऐसी निष्ठा भावना का बीजारोपण एवं विकास करना है, जिससे वे संस्था की उच्च परम्पराओं, उद्देश्यों एवं नीतियों को न केवल हृयंगम कर लें अपितु उनकी सराहना भी करें। साथ ही अधीनस्थों के कार्यों का सतत् रूप से परीक्षण, अधिकार सत्ता का समुचित भारार्पण तथा आवश्यक निर्देशन द्वारा उनको कार्य में पूर्ण उत्साह एवं विश्वास के साथ प्रवृत करना और संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करवाना भी निर्देशन की क्रियायें ही हैं।"

निर्देशन का वैज्ञानिक आधार 'व्यवहार विज्ञान' है। संकीर्ण अर्थ में, निर्देशन अधीनस्थों के विकास और मार्ग दर्शन तक ही सीमित है। किन्तु व्यापक अर्थ में निर्देशन में नेतृत्व, पर्यवेक्षण एवं अभिप्रेरण संबंधी क्रियायें सम्मिलित होती हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. निर्देशन की अवधारणा और महत्व को समझ सकें।
2. निर्देशन की प्रकृति और इसके सिद्धांतों का विश्लेषण कर सकें।
3. निर्देशन की तकनीकों का अध्ययन कर सकें।
4. निर्देशन के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक शर्तों को पहचान सकें।

11.3 निर्देशन की परिभाषाएँ

निर्देशन की कई परिभाषाएँ दी गई हैं। उनमें से कुछ नीचे दी गई हैं। प्रो. कुण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, "निर्देशन किसी कार्य को पूरा करवाने की क्रिया से आत्मीय रूप से संबंधित है। एक व्यक्ति नियोजन, संगठन एवं कर्मचारी प्रबंध कर सकता है। किन्तु वह किसी कार्य को उस समय तक पूरा नहीं करवा सकता जब तक कि वह अधीनस्थों को यह नहीं सिखला देता कि उनको क्या करना है। अन्य सभी अधिशासी कार्यों और निर्देशन में वही अंतर है। जो निष्क्रिय एंजिन वाले किसी वाहन में बैठने तथा चालू एंजिन को गेयर में डालने से होता है।"1

उन्होंने आगे लिखा है कि, "अधीनस्थों का मार्ग दर्शन तथा उनके पर्यवेक्षण का प्रबन्धकीय कार्य ही संचालन की एक अच्छी परिभाषा है।"

एम.ई. डीमोंक के शब्दों में, "निर्देशन कार्य प्रशासन का हृदय होता है। इसमें क्षेत्र निर्धारण, आदेशन, निर्देशन

तथा गतिमान नेतृत्व प्रदान करना अन्तस्थ होते हैं।" जोसेफ एल. मैसी के अनुसार, "निर्देशन प्रबन्धकीय प्रक्रिया का हृदय है। क्योंकि यह कार्य प्रारंभन से संबंधित

है। इसके मूल में समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पहले लिये गये निर्णयों तथा पहले तैयार किये गये कार्यक्रमों एवं योजनाओं को प्रभावी बनाने का विचार निहित है।"

हेनरी एच. एलवर्स ने कहा है, "निर्देशन नियोजन के परिणामसूप प्राप्त नीतियों को कार्यान्वित करने से संबंधित है। इस संबंध में अधिकार सत्ता-सम्बन्ध, संचार प्रक्रिया एवं अभिप्रेरणा समस्या महत्वपूर्ण है।"

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्देशन का तात्पर्य अधीनस्यो कार्य संपादन करवाने के लिए उनका निर्देशन, मार्गदर्शन तथा उनके कार्य का निरीक्षण करना है। इसके अंतर्गत कार्यनिष्पादन के दौरान उत्पन्न होने वाली समस्याओं को निपटाना भी आता है। इसके चार मूल तत्त्व होते हैं। प्रथम उपक्रम के कर्मचारियों को आदेश देना, द्वितीय कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना या नेतृत्व करना। तृतीय कर्मचारिये का निरीक्षण या पर्यवेक्षण करना और चतुर्थ कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना।

11.4 निर्देशन की प्रकृति (Nature of Direction)

निर्देशन की प्रकृति को निम्न आधारों पर समझा जा सकता है:

(1) **उच्च प्रवन्धकीय प्रक्रिया** (Top management activity): निर्देशन का कार्य प्रबन्धकों का कार्य कह जाता है। यह हमेशा उच्च अधिकारियों द्वारा किया जाता है। निर्देश हमेशा ऊपर से नीचे की ओर दिये जाते हैं। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों का मार्गदर्शन ही नहीं करते वरन् उपयुक्त आदेश भी देते हैं।

(2) **भारार्पण** (Delegation) निर्देशन में भारार्पण क्रिया महत्वपूर्ण होती है। भारार्पण का आशय ही होता है अधिकारों का सौंपना। अधिकार इसलिए सौंपे जाते हैं क्योंकि अधीनस्थों से कार्य करवाना पड़ता है। भारार्पण के अंतर्गत इसकी सीमा निर्धारण उच्च अधिकारियों के द्वारा ही होता है। अतः आदेश एवं निर्देशन की तुलना में अधिकारों को सौंपना निर्देशन प्रक्रिया का सामान्य स्वरूप कहा जाता है।

(3) **निर्देशन** (Direction): निर्देशन के द्वारा उच्चाधिकारी अधीनस्थों को आवश्यक आदेश प्रदान करते हैं। इससे वे अपने कार्यों को ही सही प्रकार से कर पाते हैं। आदेश एवं निर्देश इसलिए आवश्यक होते हैं कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों से अपनी इच्छा और संस्था की नीति के अनुसार कार्य करवाते हैं। ये आदेश सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकते हैं। ये अधीनस्थों की योग्यता के अनुसार ही हुआ करते हैं।

(4) **अभिस्थापन** (Orientation): अभिस्थापन का अर्थ कार्य करने हेतु आवश्यक सामग्री व सूचनायें प्रदान करना है। इसके अंदर्गत कर्मचारियों को अधिक से अधिक सूचनायें प्रदान करने की कोशिश की जाती है। ऐसा करने से अधीनस्थ अपने से संबंधित पर्यावरण एवं कार्य को अच्छी तरह से समझ जाता है। कार्य को अच्छी तरह से समझने के कारण वह उस कार्य को मन लगाकर होशियारी से करता है।

(5) **अनुशासन एवं पुरस्कार** (Discipline and Reward): निर्देशन की क्रियाओं में अनुशासन भी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। इसीलिए इस कार्य पर अधिक बल दिया जाता है। अधीनस्थ जो अपने कार्य को समय में पूरा करने है या अनुशासन को मानते हैं, उन्हें पुरस्कार भी दिया जाता है। इससे निर्देशन की क्रिया अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

प्रमुख उद्देश्य (Main Objects)

जैसा कि निर्देशन की परिभाषा से विदित होता है निर्देशन उच्च अधिकारियों का कार्य है। यह वह क्रिया है जिसे 'काम लेने की क्रिया' द्वारा संबोधित किया जाता है। इसलिए इस क्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य अपने अधीनस्थों से काम करवाना ही होता है। इन्हें निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है:

(1) आदेश देना (Issuing orders): निर्देशन क्रिया के अन्तर्गत अधीनस्थ कर्मचारियों को काम के उचित आदेश देना चाहिए। इससे कर्मचारी अपने कार्य के सम्बन्ध में दत्तचित होकर कार्य करेंगे व संस्था के हितों की रक्षा होगी।

(2) कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना (Guiding leadership) कार्य के दौरान कर्मचारियों के कार्य से सम्बन्धित कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है इन दिक्कतों को दूर करना, उन्हें मार्गदर्शन और नेतृत्व प्रदान करना निर्देशन द्वारा ही किया जाता है।

(3) निरीक्षण या पर्यवेक्षण (Supervising the work): अधीनस्थों को कार्य के आदेश या निर्देश देना ही पर्याप्त नहीं होता वरन् इसके लिए यह भी आवश्यक है कि कर्मचारियों के कार्यों का भली-भाँति निरीक्षण किया जाये, जिससे अधीनस्थों द्वारा किया गया कार्य उपयुक्त मात्रा व गुण का हो। इससे यह भी फायदा होता है कि कर्मचारी अपने काम में सतर्क रहते हैं और उपक्रम के कार्य में बाधा नहीं पड़ती।

(4) अभिप्रेरणा देना (Motivating the employees): निर्देशन द्वारा उच्च अधिकारी कर्मचारियों को कार्य में लगे रहने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। इससे संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है। अभिप्रेरण आधुनिक प्रबंध विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है। इससे कर्मचारियों में स्वेच्छा से कार्य करने की भावना जागृत होती है। वे लगन एवं ईमानदारी से कार्य करते हैं। सामान्यतया इसके अन्तर्गत प्रबंधकों की वे सभी क्रियायें सम्मिलित होती हैं जिनके द्वारा प्रबंधक श्रमिकों एवं कर्मचारियों को श्रेष्ठतम व अधिकतम कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इससे श्रम और पूँजी के सम्बन्ध मधुर बनते हैं। यह भी प्रबंधक का मानवीय पक्ष है।

11.5 निर्देशन का महत्व (Importance of Direction)

व्यावसायिक क्रियाओं में निर्देशन का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अभाव में उपक्रम के उद्देश्यों एवं कार्यों को साकार रूप नहीं दिया जा सकता। यह प्रबंध का एक महत्वपूर्ण प्रकार्य है। कुछ विद्वानों ने इसकी तुलना जहाज के कप्तान

से की है। इसके अभाव में उपक्रम की क्रियाओं का संचालन सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। इसी क्रिया के द्वारा प्रबंध का प्रमुख उद्देश्य 'काम लेने की क्रिया' पूरा होता है।

निर्देशन उपक्रम का मस्तिष्क होता है अर्थात् उपक्रम की नीतियाँ इसी प्रकार्य के द्वारा निर्देशित की जाती हैं। जॉन सेमार (John Soymor) ने ठीक ही कहा है, "व्यापार में निर्देशन युद्ध में दाँव पेंच के समान है। इस प्रकार्य का सम्बन्ध साधनों के उपयोग, विशेष प्रयत्न को केन्द्रित करने के बिन्दुओं तथा व्यवसाय के आर्थिक जीवन में कठिनाइयों एवं विषमता के मध्य जीवित रहने से है।"

उपक्रम के लिए निर्देशन का महत्व इस बात से अधिक कारगर सिद्ध होता है कि इसके द्वारा अधीनस्थों की योग्यताओं और उनके ज्ञान में सुधार करके उनका विकास किया जाता है। उनका दृष्टिकोण वैयक्तिक से संगठनात्मक बनाया जाता है। इससे संगठन सक्रिय एवं गतिशील बनता है। अधीनस्थ इसके द्वारा वांछित दिशा प्राप्त करते हैं। उनके एकाकी प्रयासों को सामूहिक दिशा देकर संगठनात्मक उद्देश्यों की दिशा में मोड़ने का प्रयत्न किया जाता है। इसके साथ ही साथ निर्देशन इसलिए भी महत्वपूर्ण कहा जाता है क्योंकि इसके द्वारा उपलब्ध साधनों का अधिकाधिक श्रेष्ठ उपयोग किया जाता है। मानव स्रोतों को इसके द्वारा विशेष रूप से इच्छानुकूल उद्देश्यों की प्राप्ति में लगाया जाता है।

11.6 निर्देशन के सिद्धान्त (Principles of Direction)

निर्देशन के कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रबन्धकों को इसके सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है। उन्हें इन सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार है:

(1) **आदेश की एकता** (Unity of Command): इसका तात्पर्य यह है कि कर्मचारी को एक ही प्रबन्ध अधिकारी द्वारा आदेश दिये जाने चाहिए। आदेश का स्रोत एक ही होना चाहिए। कर्मचारी को जब आदेश एक ही स्रोत से प्राप्त होंगे तो वह अपने कार्य के लिए उत्तरदायी भी सिर्फ एक ही व्यक्ति के प्रति होगा। ऐसा होने पर आदेशों में विरोध एवं संघर्ष नहीं होगा। परिणामों के प्रति व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों की भावना में वृद्धि होगी। इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप निर्देशों की प्राथमिकता के निर्धारण, उच्चाधिकारियों के प्रति निष्ठा आदि के कारण उत्पन्न समस्यायें
न्यूनतम रह जाती हैं और अधीनस्थ अधिक अच्छे ढंग से कार्य करते हैं।

(2) **अभिप्रेरणा का सिद्धान्त** (The Principle of Motivation): यह सिद्धान्त इस बात को दर्शाता है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना आवश्यक है। परन्तु इसे मानवीय व्यवहार के रूप में देखना चाहिए और इसके अनुसार कार्य करने में व्यक्तियों का व्यवहार, उनके व्यक्तितत्व, कार्यों एवं पुरस्कार की प्रत्याशा, संगठनात्मक जलवायु तथा अन्य अनेक परिस्थित्तिजन्य घटकों को ध्यान में रखना चाहिए।

(3) **नेतृत्व का सिद्धान्त** (The Principle of Leadership): इसका तात्पर्य है निर्देशक या उच्च्च अधिकारी को प्रभावी नेता भी होना चाहिए क्योंकि अधीनस्थ उसी अधिकारी के आदेशों का पालन करते हैं जो उनके व्यक्तिगत हितों एवं लक्ष्यों की पूर्ति में पूर्ण रुचि का प्रदर्शन एवं सक्रिय भूमिका का निर्वाह करते हैं।

(4) **प्रत्यक्ष निरीक्षण** (Direct Supervision): प्रबंधकों को स्वतः अपने अधीनस्थों का प्रत्यक्ष निरीक्षण करना चाहिए। विभागाध्यक्ष को कर्मचारियों के प्रत्यक्ष संपर्क में आते रहना चाहिए। कर्मचारियों पर व्यक्तिगत संपर्क का अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके कारण उनमें अनुशासन की भावना जागृत होती है और उनकी कार्य के प्रति रुझान में वृद्धि होती है।

(5) **उद्देश्य निर्देशन का सिद्धान्त** (The Principle of Directing Objectives): इसका तात्पर्य है कि निर्देशन प्रभावशाली होना चाहिए। निर्देशन जितना अधिक प्रभावशाली होगा अधीनस्थ उतने ही प्रभावशाली रूप से कार्य करेंगे। अधीनस्थों को अपने लक्ष्यों एवं भूमिका का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसी के परिणामस्वरूप संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में उनका योगदान सक्रिय हो सकेगा।

(6) **अच्छे मानवीय सम्बन्धों का सिद्धान्त** (The Principle of Good Human Relation): व्यक्तियों के बीच जितना अधिक सदविश्वास, सहयोग और मित्रतापूर्ण वातावरण होगा, निर्देशन का कार्य उतना ही अधिक सुविधाजनक रहेगा। संघर्ष, अविश्वास, अनुपस्थिति आदि कार्य निष्पादन को सीमित एवं विलम्बित करते हैं। इससे निर्देशन प्रभावहीन हो जाता है। अतः अच्छे मानवीय सम्बन्धों के आधार पर ही निर्देशन कुशल कहा जा सकता है।

निर्देशन तकनीक की उपयुक्तता (Appropriateness of Direction Techinque) : सफल संचालन के लिए यह आवश्यक हैकि प्रबन्धक निर्देशन की उपयुक्त तकनीक की व्यवस्था करे। ये तकनीकें है, परामर्शात्मव निरंकुश तथा ताटस्थ्यवादी तकनीक। प्रबन्धक को इनमें से कर्मचारियों की प्रकृति व परिस्थितियों के अनुकूल उचित तकनीक का चुनाव करना चाहिए।

(8) **सूचना प्रवाह (**Flow of Information): निर्देशन के सिद्धान्तों में सूचना प्रवाह का सिद्धान्ना भी महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य है कि संगठन व्यवस्था में सही-सही सूचना का संवहन न्यूनतम समय में किया जाना चाहिए। इसके लिए औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की व्यवस्था को अपनाया जाना चाहिए। निर्देशन उत्क्ला हो प्रभार्व होगा, जितना कि सूचना प्रवाह तीव्र है।

(9) **निरंतर जागरूक निर्देशन** (Always Conscions Direction): निर्देशन का यह प्रमुख कार्य होता है कि वह अपने कर्मचारियों को आदेश देकर और आवश्यकतानुसार परामर्श देकर उनका पथ-प्रदर्शन करता है। यह देखना भी

आवश्यक है कि सारा कार्य निर्धारित नीतियों के अनुसार चल रहा है या नहीं। यदि निर्धारित नीतियों के अनुसार कार्य न चल रहा हो तो आवश्यक निर्देशन देने चाहिए अर्थात् निर्देशक को निरंतर जागरूक रह कर आदेश देने के उपरान्त भी कर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण करना चाहिए। वे इस कार्य हेतु पर्यवेक्षक और फोरमैन की सहायता ले सकते हैं।

(10) **प्रबन्धकीय संवादवाहन** (Managerial Communication) निर्देशन का यह भी एक आवश्यक सिद्धान्त है कि प्रबन्ध तथा अन्य कर्मचारियों के बीच संवादवाहन की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। संगठन चार्ट में प्रत्येक प्रबन्धकीय पद संवादवाहन के माध्यम का काम करते हैं। इस कार्य के लिए प्रबन्ध को द्विमार्गी संवादवाइन तथा प्रति पुष्टि के सिद्धान्त को काम में लाना चाहिए।

11.7 निर्देशन की तकनीकें (Techniques of Direction)

निर्देशन की कुछ प्रमुख तकनीकें इस प्रकार हैं :

(1) **अधिकारों का प्रत्यायोजन करना** (Delegation of Power) निर्देशन की तकनीकों के अंतर्गत, जहाँ कर्मचारियों से कार्य कराना पड़ता है, यह आवश्यक है कि कार्य पर उपयुक्त अधिकारी को नियुक्ति करके उसके अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जाये। उसे उसके अधिकार एवं कर्तव्य स्पष्ट रूप से बता दिये जाने चाहिए। इससे सम्बन्धित अधिकारी कार्य में अपने दायित्व को महसूस करेगा और रुचिपूर्वक कार्य करेगा।

(2) **आदेश देना** (Orders and Instructions): प्रबन्धक को अधीनस्थ कर्मचारियों को संदेशवाहन के द्वारा आदेश एवं निर्देश देने चाहिए। इससे वे अपने कार्य को प्रारंभ कर सकेंगे। उच्च अधिकारी को अपनी अधीनस्थ अधिकारी के माध्यम से विभिन्न कर्मचारियों को आदेश देना चाहिए। निर्देशों के द्वारा उनका समयानुसार नार्ग-दर्शन भी करना चाहिए।

(3) **संदेशवाहन** (Communication): आदेश व निर्देशों को कर्मचारियों तक पहुँचाने के लिए संदेश वाहन की व्यवस्था भी प्रभावशील होना चाहिए। इससे उन्हें उचित समय पर आदेश-निर्देश प्राप्त होंगे।

(4) **अनुशासन** (Discipline): प्रबन्ध के कुछ विद्वान अनुशासन को भी निर्देशन की प्रभावी तकनीक मानते हैं। इसके द्वारा निर्देशन कुशल और प्रभावशाली बनता है।

(5) **पुरस्कार** (Reward) अनुशासन के भाँति ही उचित पुरस्कार की तकनीक भी निर्देशन को सफलता देती है। इसके अन्तर्गत अच्छा कार्य करने वाले व लक्ष्य को पूरा करने वाले व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जाता है। इससे निर्देशन सुविधाजनक बनता है।

11.8 सार संक्षेप

निर्देशन (Direction) प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है जो संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों को मार्गदर्शन और प्रेरित करता है। निर्देशन की प्रकृति गतिशील, व्यक्तिकेंद्रित-, और लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच संवाद स्थापित करता है। निर्देशन के सिद्धांत जैसे स्पष्टता, प्रोत्साहन और समन्वय, प्रभावी दिशा निर्देश सुनिश्चित-करते हैं। निर्देशन की तकनीकें जैसे मौखिक और लिखित संचार, प्रोत्साहन, और नेतृत्व के माध्यम से संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. निर्देशन का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. संगठनात्मक संरचना स्थापित करना
   B. कर्मचारियों को मार्गदर्शन और प्रेरित करना

C. संगठन के नियम बनाना

D. वित्तीय नियंत्रण करना

2. निर्देशन की कौन सी विशेषता इसे अन्य प्रबंधकीय कार्यों से अलग करती है?

A. स्थायित्व

B. गतिशीलता

C. अस्थायीता

D. केंद्रीकरण

3. निर्देशन एक ________ प्रक्रिया है।

4. कर्मचारियों को उनके कार्य में प्रेरित करना ________ का हिस्सा है।

5. संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ________ और ________ आवश्यक हैं।

11.9 मुख्य शब्द

1. **निर्देशन (Direction)**: प्रबंधन की वह प्रक्रिया जिसमें कर्मचारियों को दिशा और मार्गदर्शन प्रदान किया जाता है।

2. **प्रेरणा (Motivation)**: कर्मचारियों को उनके लक्ष्यों की ओर प्रेरित करने की प्रक्रिया।

3. **नेतृत्व (Leadership)**: समूह को संगठन के लक्ष्यों की ओर निर्देशित करने की कला।

4. **संचार (Communication)**: प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच सूचनाओं का आदानप्रदान।-

5. **समन्वय (Coordination)**: संगठन के विभिन्न कार्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करना।

6. **निर्देशन के सिद्धांत (Principles of Direction)**: प्रबंधन के दिशा-निर्देशों को व्यवस्थित और प्रभावी बनाने के नियम।

7. **तकनीकें (Techniques)**: निर्देशन को क्रियान्वित करने के व्यावहारिक उपाय।

8. **फीडबैक (Feedback)**: कर्मचारियों के प्रदर्शन और समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना।

उत्तर 1: B

उत्तर 2: B

उत्तर 3: गतिशील

उत्तर 4: निर्देशन

उत्तर 5: समन्वय, प्रेरणा

11.10 संदर्भ सूची (References)

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2021). *Management*. Pearson Education.

Drucker, P. F. (2019). *The Effective Executive*. HarperBusiness.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2018). *Management: Concepts and Cases*. McGraw Hill Education.

Mintzberg, H. (2022). *Managerial Work: Analysis and Synthesis*. Routledge.

Sharma, R. K. (2021). *Principles of Management*. Kalyani Publishers.

Gupta, C. B. (2020). *Management Theory and Practice*. Sultan Chand & Sons.

11.11 अभ्यास प्रश्न

1.निर्देशन से क्या समझते हैं? इसकी परिभाषा दीजिये। इसकी प्रकृति पर प्रकाश डालिये।

2. निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं? सविस्तार लिखिये ।

3. प्रबन्ध का निदेशन कार्य क्या बताता है? प्रबन्ध प्रक्रिया में निदेशन का महत्व बताइये ।

4. निदेशन से क्या आशय है? इसके प्रमुख सिद्धान्त बताइये ।

5. निदेशन से क्या आशय है? इसे प्रबन्धकों का एक आवश्यक कार्य क्यों माना जाता है?

इकाई -12

प्रबन्ध में संचार

(COMMUNICATION IN MANAGEMENT)

अवधारणा, प्रक्रिया, मार्ग, माध्यम एवं बाधाएँ

(CONCEPT, PROCESS, CHANNELS, MEDIA AND BARRIERS)

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 संचार की अवधारणा

12.4 संचार के उद्देश्य

12.5 संचार मार्ग के प्रकार

12.6 नीचे की ओर संचार की सीमाएँ

12.7 ऊपर की ओर संचार

12.8 ऊपर की ओर संचार की समस्याएँ

12.9 समतल संचार का साधन

12.10 सहमतिपूर्वक संचार

12.11 संचार के माध्यम

12.12 संचार में बाधाएँ

12.13 प्रभावी संचार निर्माण हेतु आवश्यक सुझाव

12.14 सार संक्षेप

12.15 मुख्य शब्द

12.16 संदर्भ सूची

12.17 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

संचार प्रबन्ध का महत्वपूर्ण अंग है। प्रबन्धकों के लिए निर्णयन की तरह संचार भी 'संयोज़क कड़ी' (Link Function) का काम करता है। नियोजन से लेकर नियन्त्रण तक सभी प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन संचार कार्य पर निर्भर करता है। इसके बिना प्रबन्ध निष्क्रिय होता है। इसे प्रबन्ध का प्रथम सिद्धान्त कहा जाता है। अमेरिकी प्रबन्ध संस्थान के तत्कालीन अध्यक्ष एल्विन डॉड (Alvin Dodd) ने संचार को 'प्रबन्ध की सबसे पहली समस्या' बताकर इसके महत्व को उजागर किया है।

तीव्र औद्योगीकरण के कारण संगठनों के बढ़ते आकार, प्रौद्योगिकीय जटिलता, श्रम संघों का विस्तार, मानवीय सम्बन्धों पर बल देने तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना के बढ़ने से संचार का कार्य बहुत जटिल हो गया। यद्यपि वर्तमान समय में तार, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, टेलेक्स, मोबाइल, ई-मेल आदि ने सूचनाओं व सन्देशों के सम्प्रेषण को आसान बना दिया है, किन्तु ये सभी साधन अपने आप में संचार नहीं हैं। ये 'संचार-वाहन हैं- संचार को सम्प्रेषित करने के साधन मात्र ।'

यद्यपि संचार का महत्व प्रबन्धकीय कार्यों के प्रत्येक चरण में होता है, तथापि विशेषकर निर्देशन, यथा- अभिप्रेरण, नेतृत्व और पर्यवेक्षण के कार्य में इसकी भूमिका और बढ़ जाती है।

संचार का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definitions of Communication)- संचार को संवहन या सन्देशवाहन के नाम से भी पुकारा जा सकता है। अंग्रेजी शब्द 'कम्युनिकेशन' (Communication) की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'कम्यूनिस' (Communis) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- 'सामान्य' (Common) । अर्थात् प्रेषक अपने प्रापक के साथ सामान्य समझ स्थापित करना चाहता है।

इस तरह, संचार वह प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक व्यक्तियों के बीच सन्देश और समझ का आदान-प्रदानहोता है।

वेब्स्टर शब्दकोश के अनुसार, संचार है- "शब्दों, पत्रों अथवा सन्देशों द्वारा सम्पर्क, विचारों और सम्पत्तियों का विनिमय ।"

कीथ डेविस के अनुसार, "संचार वह प्रक्रिया है जिसमें सन्देश और समझ को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुँचाया जाता है।"

न्यूमैन और समर के अनुसार, "संचार दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, सम्मतियों या भावनाओं का विनिमय है।"

हेपनर और पेन्टिंगिल "संचार लोगों को लिखने अथवा बातचीत करने से अधिक है, यह अर्थों का विनिमय है।"

चार्ल्स ई. रेडफील्ड - "संचार तथ्यों और विचारों के मानवीय विनिमय का विस्तृत क्षेत्र है न कि दूरभाष, तार, रेडियो जैसे तकनीकी साधन।"

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

संचार की अवधारणा और प्रक्रिया को समझ सकें।

संचार के विभिन्न मार्गों और माध्यमों का अध्ययन कर सकें।

संचार में बाधाओं को पहचानकर प्रभावी संचार के निर्माण हेतु सुझाव प्रदान कर सकें।

प्रबंधन में ऊपर की ओर, नीचे की ओर और समतल संचार की भूमिका का विश्लेषण कर सकें।

12.3 संचार की अवधारणा (Concept of Communication)

संचार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सन्देश और समझ को विनिमय करने की प्रक्रिया है। संचार का मर्म समझने में निहित है। इसीलिए एलन का कहना है कि "संचार उन समस्त बातों का योग है जो कि एक व्यक्ति दूसरे के मस्तिष्क में 'समझ' उत्पन्न करने के लिए करता है। यह अर्थ का सेतु है।"

संचार में मुख्य बात यह है कि प्रेषक द्वारा हस्तान्तरित सूचना या सन्देश प्रापक के समझने योग्य होनी चाहिए। संचार तभी होगा जब प्रापक द्वारा सन्देश को उसी रूप और भाव में समझा जायेगा, जिस रूप और भाव में उसे प्रेषक द्वारा समझा जाता है। इसमें प्रेषक और प्रापक के बीच एक सामान्य समझ उत्पन्न होना आवश्यक है। संचार प्राप्त करने वाला वही बात समझता है जो संचार भेजने वाला कहना चाहता है।

संचार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रापक प्रेषक के सन्देश से सहमत हो। उसे उसमें विश्वास हो। उनके द्वारा एक-दूसरे के मन्तव्यों, विचारों, सूचनाओं और भावनाओं को स्वीकार करना जरूरी नहीं है। यह भी जरूरी नहीं कि वे एक-दूसरे की बातों को पूरा करें या उनमें विश्वास प्रकट करें। किन्तु, संचार तब तक नहीं हो सकता जब तक कि प्रेषक द्वारा प्रेषित सन्देशों को प्रापक द्वारा समझा न जाये।

लेकिन, प्रभावी संचार के लिए यह आवश्यक है कि प्रेषक के सन्देश को प्रापक द्वारा न केवल समझा जाये बल्कि उसे स्वीकारा भी जाये और उस पर अमल भी किया जाये। एक कुशल प्रवन्धक वही है जो यह जानता है कि अपनी बात को किस प्रकार रखे कि वह प्रापक को स्वीकार्य हो जये और वह उसके अनुरूप व्यवहार करे। अतः संचार को प्रभावी तभी कहा जायेगा जब वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल रहता है।

12.4 संचार के उद्देश्य (Purposes of Communication)

संचार का मूल उद्देश्य प्रेषक और प्रापक के बीच सन्देशों व सूचनाओं के प्रति सामान्य समझ को बढ़ाना है। संगठन में संचार के औपचारिक तथा अनौपचारिक आयाम होते हैं। इसे गतिशील करने हेतु अनेकानेक माध्यमों एवं विधियों का प्रयोग किया जाता है।

संचार का एक और उद्देश्य यह भी है कि किसी विशेष मामले में व्यक्तियों के बीच परस्पर सहमति और समझौता सम्पन्न किया जाये। प्रबन्धक अपने सम्प्रेषण कौशल द्वारा लोगों को अपनी बात के करीब लाता है। उन्हें अपनी अधिकार सत्ता के बजाय अपनी समझाने-बुझाने की योग्यता से अपने निर्णय के प्रति स्वीकार्यता को सुनिश्चित करता है। अनेक नेताओं और प्रबन्धकों में बड़ी सशक्त सम्प्रेषण कुशलता होती है। उन्हें पता होता है कि अपनी बात को कैसे रखना चाहिए। वे लोगों के विरोध को शान्त करना जानते हैं। वे मामले के अच्छे और बुरे पक्षों को यथोचित ढंग से उजागर करना जानते हैं। अच्छे तर्कों से एवं श्रेष्ठ सम्प्रेषण कुशलता से निकृष्ट मामलों को भी स्वीकार्य बनाया जा सकता है। वहीं, निम्न सम्प्रेषण-कौशल के कारण अच्छे मामले भी निष्प्रभावी बन जाते हैं। अतः प्रत्येक संगठन को प्रभावी संचार प्रणाली का निर्माण करना चाहिये जिससे कि कार्य-निष्पादन और कार्य-सन्तुष्टि को बढ़ाया जा सके। संचार वह साधन है जिसके द्वारा व्यवहारों को बदला जा सकता है, परिवर्तनों को प्रभावी बनाया जा सकता है, सूचनाओं को उत्पादक बनाया जा सकता है और लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

संचार की प्रक्रिया (Process of Communication)

संचार की प्रक्रिया में कम से कम दो व्यक्ति अवश्य होते हैं- संवाद-प्रेषक और संवाद

प्रेषक- सन्देश संचार के इस सरलतम प्रतिरूप से पता चलता है कि संचार के लिए तीन आवश्यक तत्व होते हैं। इसमें से यदि एक भी तत्त्व अनुपस्थित हो तो संचार नहीं हो सकता। कई प्रबन्धक ऐसा सोचते हैं कि उन्होंने सन्देश

भेजकर अपना संचार-कार्य पूरा कर लिया, किन्तु सन्देश भेजना सिर्फ शुरुआत है। कोई प्रबन्धक सैकड़ों सन्देश प्रेषित कर सकता है लेकिन जब तक उसे प्रापक द्वारा प्राप्त न कर लिया जाये, उसे पढ़ न लिया जाये और समझ न लिया जाये तब तक उसे संचार नहीं कहा जा सकता।

अब हम उपरोक्त वर्णित प्रत्येक मुख्य तत्व का विवेचन करेंगे-

(1) **प्रेषक** (Sender)- इस संचार-प्रक्रिया में पहला तत्व प्रेषक है। संचार की शुरुआत प्रेषक से होती है। वह संचार का पहलकर्ता है। उसे संवाद का स्रोत भी कहा जा सकता है। प्रेषक के पास विचार, सूचनाएँ, भावनाएँ, मनोवृत्तियाँ, मूल्य आदि होते हैं जिसे वह प्रापक के साथ साझा करना चाहता है। उसे वह उनके पास भेजना चाहता है। जैसे, जब प्रबन्धक अपने अधीनस्थों से कोई कार्य करवाना चाहता है तो वह इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संदेश संचारित करता है।

(2) **संकेतीकरण** (Encoding)- इस प्रक्रिया में अगला कदम संकेतीकरण है। इसका आशय प्रेषक द्वारा सन्देशों को प्रतीकों में बदलना है। प्रेषक अपने विचारों को शब्दों, चित्रों, रेखाचित्रों, आकृतियों अथवा संकेतों में व्यक्त कर सकता है। संकेतीकरण या कूटाभिव्यक्ति इसलिए आवश्यक है कि सिर्फ प्रतीकों के द्वारा ही सूचनाओं का विनिमय हो सकता है।

(3) **सन्देश** (Message)- कूटाभिव्यक्ति की प्रक्रिया का परिणाम संदेश होता है। सन्देश मौखिक या लिखित सकता है। सन्देश उस रूप में हो सकता है जिस रूप में प्रापक उसे समझ सके। कथन को सुना जा सकता है। हो लिखित शब्दों को पढ़ा जा सकता है। संकेतों को देखा या महसूस किया जा सकता है। उठे हुए हाथ कई तरह के सन्देश देते हैं जो कि अंगुलियों के इशारों पर निर्भर हैं। संचार में मूक सन्देशों का अपना महत्व है। उदाहरणार्थ, जब कोई प्रबन्धक देरी से आने वाले कर्मचारी को 'शुभ प्रभात' कहता हुआ भौहें चढ़ाता है तब वह अपना मन्तव्य स्पष्ट रूप से प्रकट कर देता है।

(4) **माध्यम** (Medium)- जब प्रेषक अपने सन्देश को इच्छित प्रापक के पास भेजना चाहता है तब वह इस बात का निश्चय करता है कि वह इसे किस माध्यम से प्रेषित करेगा। माध्यम सन्देश का वाहक होता है। प्रबन्धक के सम्मुख विभिन्न प्रकार के माध्यम उपलब्ध होते हैं, जैसे आमने-सामने, टेलीफोन, आदेश, नीति-वक्तव्य, पुरस्कार-प्रणाली, समूह बैठक आदि। प्रभावी संचार के लिए जरूरी है कि सन्देश भेजने के लिए उपयुक्त माध्यम का चयन किया जाए। सामान्यतया माध्यम शोरगुल या व्यक्तिकरणों (Interferences) से प्रभावित हो सकता है। कई बार ऐसा तब भी होता है जब एक से अधिक सन्देश प्रापक का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं, अथवा सन्देश अस्पष्ट या अपूर्ण होता है।

(5) **संकेतार्थीकरण** या कूटानुवाद (Decoding) जब सन्देश प्रापक के पास पहुँच जाता है तब वह इसे संकेतार्थीकरण या कूटानुवाद करता है। वह इसका भाष्य करवा है, इसका अर्थ लगाता है और इसके उद्देश्य को समझता है। ऐसा करते समय वह अपने अनुभवों, प्रत्यक्षीकरण, आवश्यकताओं, अपेक्षाओं, मूल्यों आदि व्यक्तित्व विशेषताओं से प्रभावित होता है। यदि प्रापक सन्देश को उसी अर्थ में समझ लेता है जो प्रेषक का है तो यह कहा जा सकता है कि संचार की प्रक्रिया प्रभावी है।

(6) **प्रतिपुष्टि** (Message Received)- प्रापक का सन्देश को लेकर प्रत्युत्तर इस बात पर निर्भर है कि उसने प्रेषक के सन्देश को समझ लिया है या किस रूप में समझा है। इस सन्देश प्राप्ति की पुष्टि या प्रतिपुष्टि से पता चलता है कि प्रेषित सन्देश का प्रापक पर क्या प्रभाव पड़ा है? प्रतिपुष्टि संचार-प्रक्रिया का विलोम होता है। इसमें प्रापक प्रेषक बन जाता है।

प्रापक का प्रत्युत्तर प्रेषक के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। ऐसा होने पर ही वह इस बात का निश्चय कर सकता है कि सन्देश को प्रभावी बनाने के लिए क्या किया जाना है ?

यहाँ उल्लेखनीय है कि प्रतिपुष्टि प्रेषक और प्रापक की आपसी समझदारी और तालमेल पर निर्भर है, लेकिन प्रतिपुष्टि से संचार की प्रभावशीलता बढ़ जाती है। शीघ्र प्रतिपुष्टि का अर्थ है कि सन्देश को समझ लिया गया है और स्वीकार कर लिया गया है। उपरोक्त सभी तत्व संचार प्रक्रिया को निर्मित करने में अति महत्वपूर्ण होते हैं।

संचार के मार्ग (Channels of Communication)

संचार मार्ग का अर्थ

संचार के साधनों में औपचारिक एवं अनौपचारिक ढंग से संदेश का संचार दूसरे व्यक्तियों को किया जाता है। प्रत्येक व्यावसायिक इकाई को आन्तरिक एवं बाहय दोनों प्रकार का संचार करना पड़ता है। आन्तरिक संचार का सम्बन्ध सूचना, आदेश, सुझाव, चेतावनी आदि की प्राप्ति एवं भेजना रहता है जो कि संगठन के अन्दर ही होते हैं, जबकि बाहय संचार में संदेश भेजने व प्राप्त करने का सम्बन्ध बैंकों, सरकारी कार्यालयों, बीमा एजेन्सियों, ग्राहकों, निर्यातक व अन्य व्यावसायिक गृहों आदि से रहता है। आन्तरिक एवं बाहय दोनों प्रकार के संचार के लिये कम्पनी व व्यवसाय को अपनी संचार पद्धति बनानी व विकसित करनी होती है। संगठनात्मक व्यवस्था, कार्यालयों की व्यवस्था, अधिकारियों, क्लर्क, कार्य करने वाले आदि द्वारा सभी प्रकार का संचार व्यवस्था बनी रहती है जो प्रत्येक संस्था में पायी जाती है।

अन्य शब्दों में, संचार का ढाँचा संगठन के ढाँचे पर निर्भर करता है। यदि किसी व्यक्ति को संचार को समझना व प्रबंध करना हो तो उसे औपचारिक एवं अनौपचारिक संचार को समझना आवश्यक होगा।

संचार के साधन संगठन में व्यवस्था के आधार पर चलाये जाते हैं और उसे इस ढंग से बनाया जाता है जिससे संगठन की क्रियाएँ चालू रहें। व्यावसायिक संगठन में प्रायः नीति सम्बन्धी मामले संचालक मण्डल द्वारा निर्धारित किये जाते हैं, तथा उससे सम्बन्धित सूचना प्रबंध संचालक को भेज दी जाती है, जो

कि बनायी गयी नीतियों का पालन करता है। वह सहायक विभागीय प्रबंधकों को आवश्यक निर्देश जारी करता है। सुपरवाइजर सदैव सहायक मैनेजर से निर्देश प्राप्त करके उनका पालन करते हैं। सुपरवाइजर महत्वपूर्ण निर्देशों को अपने अधीनस्थ क्लर्कों को देते हैं या उन व्यक्तियों को भेजते हैं जो कि उनके नियंत्रण में कार्य करते हों। जब कोई सूचना पुराने व्यवस्थित ढंग से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को भेजी जाती हों, तो इसे औपचारिक संचार कहा जाता है। औपचारिक संचार का उन सभी व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता है जो कि आन्तरिक रूप से संगठन में कार्य करते हों और निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हों। उदाहरणार्थ, एक सुपरवाइजर अपने प्रबन्ध संचालक से कोई संदेश का संचार नहीं कर सकता। उसे पहले सूचना विभागीय मैनेजर को देनी होगी जो कि इस सूचना को प्रबन्ध संचालक तक पहुँचा देगा। अधिकारों की यह श्रृंखला ही संचार के साधन हैं जो कि ऊपरी, नीचे की ओर तथा समतल रूप से संचार कर सकते हैं। यह क्रम कम से कम रखा जाना चाहिये, जिससे मूल संदेश में कोई परिवर्तन न करना पड़े।

12.5 संचार मार्ग के प्रकार (Types of Communication Channels)

संचार साधन के मुख्य प्रकार निम्न है

(1) नीचे की ओर संचार (Downward Channel)

(2) ऊपर की ओर संचार (Upward Channel)

(3) समतल संचार (Horizontal Channel)

(4) अंगूर की बेल संचार (Grapevine)

(5) सहमतिपूर्वक संचार (Consensus).

(1) नीचे की ओर साधन(Downward Channel)

नीचे की ओर संचार एक सुपरवाइजरी संचार विधि है, जिसे उच्च प्रबंध द्वारा किया जाता है। इसमें संदेशों का संचार नीचे की ओर होता है। संगठन की सफलता संदेशों का प्रभावी ढंग से नीचे की ओर संचार होने पर निर्भर है। समन्वय लाने की दृष्टि से सुपरवाइजरी स्टाफ अपने अधीनस्थों को संदेश भेजता है तथा उन्हें क्रियात्मक किया जाता है। यह संगठन में एक उपयुक्त साधन माना जाता है जिसमें आदेश की श्रृंखला को क्रम के आधार पर व्यवस्थित किया जाता है जो कि नीचे की ओर जाते हैं।

नीचे की ओर संचार के माध्यम (Media of Downward Communication) - नीचे की ओर संचार प्रायः मौखिक ढंग से किया जाता है। विभागीय प्रमुख को मौखिक निर्देश देना आसान रहता है। लम्बे लिखित आदेश देने के स्थान पर प्रबंध संचालक विभागीय प्रबंधकों की एक मीटिंग करके आवश्यक निर्देश देते हैं और उनके सुझाव भी प्राप्त करते हैं। प्रबंधक इस संबंध में मौखिक व लिखित दोनों प्रकार के साधनों का उपयोग कर सकता है। प्रबंध के सामने संचार करने के अनेक ढंग होते हैं। नीचे की ओर संचार में मुख्यतया पत्र, परिपत्र, मेमो, कम्पनी जर्नल, वीडियो और ऑडियो रिकार्डिंग, टेलीफोन, मीटिंग, आमने-सामने वार्तालाप, कर्मचारियों को भाषण एवं पोस्टर आदि को सम्मिलित किया जाता है।

सन्देश की उपयोगिता-

यह पाया जाता है कि कई ढंग से सन्देशों को भेजने से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं क्योंकि इससे संचार की प्रभावशीलता बढ़ती है। यदि कोई सन्देश एक से अधिक ढंग से भेजा जाए तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। संगठन में व्यस्त व्यक्ति को अधिक सन्देश प्राप्त होने चाहिए जिससे वह अपने अधिकारियों के निर्देशों के अनुरूप कार्य कर सकें। दूसरी ओर, उत्पत्ति ह्रास नियम संगठन में लागू होता है जबकि कर्मचारियों को नीचे की ओर माध्यम से संचार किया जाए। फोन, मेमो, पत्रों, विजिटिंग आदि की संख्या में वृद्धि

होने पर प्रत्येक कर्मचारी अधिक व्यस्त हो जाता है क्योंकि प्रत्येक सन्देश को सुनने व समझने में उसे पर्याप्त समय लगता है और कर्मचारी प्रत्येक कार्य पर अधिक ध्यान नहीं दे पाएगा।

नीचे की ओर संचार के उद्देश्य (Objectives of Downward Communication)

सुपीरियर स्टाफ अपने अधीनस्थ स्टाफ को इस उद्देश्य से सन्देश भेजता है कि कर्मचारी अपना कार्य सही ढंग से, सफाई से, सोच विचार कर, ईमानदारी एवं सही समय से करेंगे। वह कर्मचारियों को विशिष्ट निर्देश देते हैं तथा कार्य करने की प्रक्रिया को बताते हैं। वह कर्मचारियों से कार्य के गुण को बनाए रखने की अपेक्षा रखते हैं। कर्मचारी को निर्देश दिए जाते हैं कि वह अपने कार्य में कोई भूल न करें। नीचे की ओर संचार से कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन हो जाता है।

कर्मचारियों को भी संस्था की नीतियों, प्रक्रिया, नियमों एवं प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए और यह सभी नीचे की ओर संचार पर निर्भर करता है। इनमें से कुछ श्रमिक असहयोगी पाए जा सकते हैं। वह कार्य करने में कम रुचि रख सकते हैं वह अपने सहयोगियों से खुलकर बातें नहीं कर पाते। कभी-कभी सुपीरियरों द्वारा कर्मचारियों को उनके अरुचिपूर्ण व्यवहार पर चेतावनी देना पड़ती है। कभी-कभी प्रबन्ध द्वारा कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने हेतु प्रचार व प्रसार करके अच्छा उत्पादन प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है। यदि कर्मचारियों का कार्य अपर्याप्त हो तो उन्हें शिक्षित करने की व्यवस्था करके उनके कार्यों में सुधार लाए जाते हैं।

प्रभावी नीचे की ओर संचार के लक्षण

(Essentials of Effective Downward Communication)

(i) सुपीरियर को सन्देश के बारे में स्पष्ट एवं पूर्ण जानकारी होना चाहिए।

(ii) संदेश देने वाले को भूतपूर्व कार्यों की जानकारी होनी चाहिए और उसे संगठन की सफलता का भी ज्ञान होना जरूरी है।

(iii) सूचना को भेजने से पूर्व वह पर्याप्त मात्रा एवं उचित ढंग में होनी चाहिए।

(iv) सन्देश को उचित समय पर भेजा जाना चाहिए।

(v) सभी सन्देशों को नियमित रूप से नियमित ढंग से ही भेजा जाना चाहिए। इसमें किसी भी अधिकारी को छोड़ा नहीं जाना चाहिए।

(vi) नीचे की ओर संचार की भाषा सरल होनी चाहिए।

(vii) अधीनस्थ कर्मचारियों को यह समझना चाहिए कि सभी सन्देश उनके सीनियर अधिकारियों द्वारा ही दिए गए हैं।

(viii) संचार की दिशा रेखा न्यूनतम होनी चाहिए, जिससे उसमें अवरोध उत्पन्न न हो सके।

(ix) अधीनस्थों की योग्यता को ध्यान में रखकर ही संदेशों को भेजा जाना चाहिए।

(x) संदेश देने वाले को संगठन के उद्देश्यों के बारे में स्पष्ट विचार होना चाहिए।

(xi) प्रबन्ध की नीतियों की जानकारी सन्देश देने वाले को होना चाहिए।

12.6 नीचे की ओर संचार की सीमाए (Limitations of Downward Communication)

नीचे की ओर सन्देशों का संचार करने की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) **देरी होना** (Delay): किसी भी सन्देश को अनेक स्तरों से गुजरना पड़ता है जिसमें देरी होने की सम्भावना हो जाती है। संदेश समय पर प्राप्तकर्ता को नहीं मिल पाता।

(2) सन्देश को तोड़कर देना (Message Distortion): नीचे की ओर सन्देश अनेक व्यक्तियों से गुजर। कर पहुँचता है जिससे उसमें परिवर्तित होकर

पहुँचने के अवसर अधिक हैं। इससे सन्देश मात्रा एवं गुण दोनों से प्रभावित हो जाता है।

(3) अपूर्ण सूचना (Incomplete Information): यदि कर्मचारी को कार्य करने की पर्याप्त सूचना प्राप्त नहीं हो पाती हों, तो वह कार्य सही ढंग से सम्पन्न नहीं हो पाता है। इससे कार्य करने में भूल होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। प्रबन्ध को उस कार्य को ठीक करने में अतिरिक्त समय देना पड़ता है।

(4) सूचना पर अतिरिक्त भार (Message Overload): व्यवसायिक संगठन में सूचना पर अतिरिक्त भार पड़ने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है और कार्य सही ढंग से सम्पन्न नहीं हो पाता है।

(5) सन्देश का क्षय :- प्रत्येक स्तर पर सन्देश का कुछ न कुछ भाग क्षय होता जाता है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि सन्देश देने वाला केवल सन्देश भेजने में ही अधिक समय बर्बाद नहीं करना चाहता है। सन्देश के क्षय होने से संस्था की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

12.7 ऊपर की ओर संचार (Upward Communication)

आधुनिक व्यवसाय में नवीन तकनीकों का प्रयोग होने लगा है जैसे खुली द्वार नीति, सुझाव योजना आदि। संगठन निम्न स्तर से नवीन सूचनाएँ प्राप्त करने को तत्पर रहता है। यह पाया गया है कि उच्च अधिकारी प्रायः सन्देश भेजने में अधिक कुशल होते हैं और अधीनस्थ अधिकारी अपने कार्य के प्रति कम जागरूक होता है।

दोनों ओर से संचार की कुशल प्रक्रिया ऊपर की ओर संचार से ही सम्भव होती है। प्रबन्ध सदैव कर्मचारियों की आवश्यकता, माँग, कठिनाइयों व दुखों से परिचित रहता है। प्रबंध पर्याप्त सूचना के आधार पर सुदृढ़ निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होते हैं। उत्पादकता बढ़ाने हेतु यह आवश्यक नहीं है कि कर्मचारियों पर अधिक दबाव डाला जाए। दूसरी ओर प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि वह ऊपर की ओर संचार को विकसित करें तथा नवीन

योजनाओं, अनुसंधान आदि पर अधिक ध्यान दे सकें। जब प्रबंध को सूचनाएँ व सुझाव अपने अधीनस्थों से प्राप्त होते हैं, तो वह उनके आधार पर नवीन दिशा-निर्देश जारी कर सकता है। जब प्रबंधक समस्याओं को समझ जाते हैं तो वह इसका समाधान ढूंढ लेते हैं। ऊपर की ओर संचार कर्मचारी को एक अवसर प्रदान करता है जिसमें वह अपनी कठिनाइयों एवं समस्याओं को सामने रखता है और उसे दूर करने के प्रयास किए जाते हैं।

ऊपर की ओर संचार की विधियाँ(Methods of Upward Communication)

(1) **मीटिंग** (Meeting) ऊपर की ओर संचार करने में कर्मचारियों के साथ मीटिंग करना एक सबसे अच्छा ढंग माना जाता है। इसमें कर्मचारी उच्च अधिकारी के साथ बैठकर उपयुक्त सुझाव दे सकता है। इसमें यह निश्चित हो जाता है कि क्या कर्मचारी द्वारा दिए गए सुझाव संस्था की प्रगति में सहायक सिद्ध होंगे या नहीं।

(2) **खुली द्वार नीति** (Open-Door Policy) खुली द्वार नीति में ऊपर की ओर संचार का रास्ता खोल दिया जाता है। इसमें कर्मचारी बिना झिझक के मैनेजर के केबिन तक पहुँचकर बिना किसी डर के अपनी समस्या बता सकता है तथा उसकी बातें सुन भी सकता है। यह नीति अच्छी मानी जाती है, परन्तु इसे लागू करने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं।

(3) **सामाजिक क्रियाओं में भाग लेना** (Participation in Social Gatherings) कर्मचारियों को एक अवसर दिया जाता है कि वह सामाजिक क्रियाओं में हिस्सा लें तथा संस्था की प्रगति के बारे में आवश्यक सुझाव दें।

(4) **सुझाव बक्सा** (Suggestion Box) कर्मचारियों को अपने सुझाव देने के लिए आमंत्रित किया जाता है तथा वह अपनी समस्याओं को आसानी से बता सकते हैं। कर्मचारी अपने सुझाव सुझाव-पट्टिका में डाल सकते हैं तथा यह सुझाव नियमित अन्तराल से दिए जा सकते हैं। प्रबंध द्वारा धनात्मक एवं अच्छे सुझावों पर पुरस्कार भी दिया जा सकता है।

(5) **रिपोर्ट** (Report) प्रबंध अपने अधीनस्थों को रिपोर्ट देने के लिए प्रेरित कर सकता है। यह रिपोर्ट प्रबंध के लिए एक आधारभूत उपकरण हैं जो निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होती है। बड़े संगठनों में जहाँ पर विभिन्न क्रियाओं में बड़ी संख्या में कर्मचारी कार्यरत हों, वहाँ पर अधीनस्थों से रिपोर्ट प्राप्त करना प्रबंध की सफलता के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है। चूंकि सीनियर मैनेजर प्रत्येक कर्मचारी की क्रियाओं पर निजी रूप से देखभाल नहीं कर पाता है, अतः वह भी रिपोर्ट लेने के प्रयास में लगा रहता है।

(6) **पत्र व्यवहार** (Correspondence) कर्मचारियों को पत्र लिखने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। सर्वप्रथम प्रबंध द्वारा कर्मचारियों को पूछताछ पत्र भेजे जाते हैं और उनके जबाव प्रोत्साहित किए जाते हैं। यह प्रबंध को सूचना भेजने का एक प्रत्यक्ष ढंग है।

(7) **काउन्सिलिंग** (Counseling)- श्रमिकों को उनके वरिष्ठ अधिकारियों से सलाह लेने का परामर्श दिया जाता है। समस्या आने पर कर्मचारी को स्वतंत्र रूप से कार्य करने एवं सलाह देने के लिए प्रेरित किया जाता है जिससे संस्था की समस्याओं का निवारण आसानी से सम्भव हो सके और संस्था आगे प्रगति कर सके।

12.8 ऊपर की ओर संचार की समस्याएँ (Problems of Upward Communication)

(1) धनात्मक प्रेरणा (Positive Encouragement) ऊपर की ओर संचार न्यूनतम स्तर पर आ जाता है जबकि प्रबंध द्वारा उसे प्रेरित न किया जाए। कर्मचारी को उचित इनाम न मिलने पर वह ऊपर की ओर संचार में रुकावटें उत्पन्न करता है। अतः प्रबंध द्वारा कर्मचारियों को प्रेरित करके इसमें वृद्धि करने के प्रयास किए जाते हैं।

(2) देरी होना (Delay) प्रायः ऊपर की ओर संचार व्यवस्था में अनावश्यक देरी हो जाती है, विशेषकर जबकि संचार की कड़ी लम्बी हो। कोई भी व्यक्ति उच्च

अधिकारी को इस डर से समस्या से अवगत नहीं कराता कि कहीं वह अधिकारी नाराज न हो जाये। इन सबके कारण कार्य में देरी हो जाती है।

(3) कमजोर सुनना (Poor Listening) उच्च अधिकारी द्वारा किसी तथ्य को देर से सुनना या अनसुना करना ही संदेश के संचार में देरी करवा देता है। इसमें सावधानीपूर्वक ध्यान देना पड़ता है और यदि संदेश सही ढंग से न भेजा जाये तो उसका सही व अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।

(4) संचार संबंधी आलोचना (Communication Criticism) अधीनस्थ अधिकारी सूचना भेजने से पूर्व उसे अनेक बार सोचता है और फिर उसे उच्च अधिकारियों तक भेज पाता है। किसी भी उच्च अधिकारी की बुराई को आगे बताना अधिक कठिन माना जाता है।

(5) सन्देह स्थिति कुछ श्रमिक अपने संदेश को ऊपर तक पहुँचाने में इतने कतौर होते हैं कि वे उस संदेश को सर्वोच्च अधिकारी तक आसानी से पहुँचा देते हैं और अपने से ऊँचे अधिकारी को वाइपास कर देते हैं।

(6) प्रतिकूल तथ्यों को छिपाना कर्मचारी प्रायः उन कठिनाइयों एवं समस्याओं को छिपा बाते हैं जो कि उनके बॉस की अज्ञानता को बताते हों। कर्मचारी बॉस की इस अज्ञानता को छिपा देते हैं, परन्तु इससे संदेशों के संचार में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

प्रभावी ऊपर की ओर संचार (Effective Upward Communication)

(1) संचार की लाइन कम से कम होनी चाहिये जिससे स्क्रीनिंग, साफ करने एवं एडीटिंग की समस्या का समाधान हो सके।

(2) सुझावों को सही ढंग से हैण्डिल करने में औपचारिक पद्धति को ही प्रयोग करना चाहिये।

(3) संस्था के विकास के लिये रचनात्मक सुझावों का ध्यान दिया जाना चाहिये।

(4) ट्रस्ट के लिये एक कारपोरेट वातावरण बनाना अनिवार्य है। वरिष्ठ अधिकारियों एवं कनिष्ठ अधिकारियों के मध्य आपसी विश्वास एवं अच्छे संबंध होना आवश्यक है।

(5) कर्मचारियों को अपने कार्य के प्रति जानकारी प्राप्त होनी चाहिये।

(6) वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा डर को दूर करने के प्रयास किये जाते हैं। यह डर कर्मचारियों के मन से निकाला जाता है।

(7) प्रबंध द्वारा श्रमिकों के प्रति यह समझना चाहिये कि यदि उन्हें कोई समस्या हो तो उसे दूर करने के प्रयास करने होंगे।

12.9 समतल संचार का साधन (Horizontal Channel of Communication)

यह साधन उस स्तर पर प्रयोग किया जाता है कि जबकि व्यक्ति एक ही स्तर के हों। आज चगविदित है कि किसी भी आधुनिक व्यावसायिक संगठन की सफलता उस व्यवसाय की विशिष्टीकरण पर निर्भर होती है क्योंकि आज व्यवसाय की सफलता विशिष्टीकरण पर ही निर्भर है। उसी संगठन की प्रत्येक इकाई दूसरी इकाई से भिन्न रहती है। अन्तरनिर्भरता के लिये व उनमें समन्वय स्थापित करने हेतु समतल संचार किया जाता है। संगठन को कार्यकुशलता से

औपचारिक लिखित संचार विधि धीमी है और सूचना प्रसारण की महंगी व व्ययपूर्ण विधि है। अंगूर की बेल विधि कम खर्चीली, तीव्रगति वाली तथा संदेश भेजने की मौखिक विधि है जो अधिकतम लोगों तक पहुंचाने में प्रयोग की जाती है। बहुदिशा माध्यम होने के कारण अंगूर की बेल विधि एक सरल विधि है जो कि पुरानी समस्त विधियों को पीछे छोड़ देती है। जबकि अंगूर की बेल विधि किसी विशेष प्रतिष्ठित विधि पर आधारित नहीं है, न ही वह समतल और उर्वक दिशा विधि है।

अंगूर की बेल विधि मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पर ध्यान देती है जिसमें कर्मचारियों द्वारा उनके कार्य तथा उनके विषय से संबंधित बातों पर ध्यान दिया जाता है। अंगूर की बेल प्रथा के अभाव से बीमार व दुश्मनी का वातावरण संगठन में उत्पन्न हो जाता है। अंगूल बेल प्रथा को संगठन की जनता की राय का बेरोमीटर कहा जाता है। यदि मैनेजर भावुक है तो वह विचारों, राय, व्यवहार व कर्मचारियों की रुचि पर सूचना एकत्रित करता है।

अंगूर की बेल प्रथा कर्मचारियों को एक अवसर प्रदान करती है, जिसमें यह अपनी थकावट व अपनी परेशानी को सामने रखकर व्यक्त कर सकता है। जब वह अपने संघ के बारे में बातें करे तो उन्हें भावनात्मक आराम प्राप्त होता है। यह तथ्य कि कर्मचारी अपने सहयोगियों के बारे में बातें करते हैं या उन्हें अपने सहयोगियों में रुचि है, उनके उच्च मनोदशा या नैतिकता का प्रमाण है। अतः अंगूर बेल प्रथा न केवल उनमें एकता, सहयोग व संगठन की भावना का निर्माण करती है, बल्कि इससे कर्मचारियों की नैतिकता में भी वृद्धि होती है।

अंगूर बेल विधि की सीमाएँ (Limitations of Grapevine) -

(1) इस विधि में कुछ भूल होने की सम्भावना बनी रहती है।

(2) प्रायः अंगूर बेल विधि आत्म या स्वयं सेवा से प्रेरित है जो कि कर्मचारियों को कठिनाइयाँ देती है। इससे उनकी वास्तविकता में रुकावटें आती हैं।

(3) संदेशवाहक संदेश भेजने का दायित्व नहीं ले पाता है।

(4) कभी-कभी अंगूर बेल प्रथा से संदेश इतनी धीमी से भेजा जाता है कि उससे संगठन को हानि होने की सम्भावना हो जाती है।

(5) अंगूर बेल प्रथा प्रायः अपूर्ण सूचना प्रदान करती है जो कि संदेश प्राप्तकर्ता में गलतफहमी उत्पन्न कर सकती है।

(6) आधार रहित, काल्पनिक एवं अवास्तविक संदेश कभी-कभी संगठन के लिये हानिप्रद हो जाता है।

अंगूर बेल प्रथा को कैसे उपयोग करें (How to Use the Grapevine) -

संस्था के मैनेजर को अंगूर बेल प्रथा को निम्नलिखित ढंग से प्रयोग करना चाहिये.-

(1) प्रबंध कर्मचारियों के सम्मुख संचार के सभी साधनों को खोल सकती है और वह ऋणात्मक संदेशों के विरुद्ध लड़ सकता है।

(2) इससे सुस्तपन व डर तथा कर्मचारियों में भय को रोका जा सकता है।

(3) प्रबंध द्वारा प्रबंध को सूचित न करने पर अफवाहों को सीमा से आगे फैलने का भय बना रहता है।

(4) कोई भी निर्णय लेने से पूर्व मैनेजर को अनौपचारिक वर्ग और संगठन की पद्धति पर सम्भावित प्रभावों का अध्ययन करना होगा।

(5) संगठन की औपचारिक क्रियाओं में प्रबंध को अनौपचारिक वर्ग को डराना छोड़ देना चाहिये जिससे अंगूर बेल प्रथा को प्रभावी ढंग से चलाया जा सके।

(6) प्रबंध को सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि कार्यस्थल समुदाय बना रहे, न केवल कार्य के लिये वरन् इसे अनौपचारिक मानवीय संबंधों को भी बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये।

(7) प्रबंध को ऐसे व्यक्तियों की खोज करनी चाहिये जो कि अंगूर बेल क्रिया में अधिक सक्रिय हों। इन व्यक्तियों को पर्याप्त रूप से सूचित किया जाना चाहिये, जिससे भ्रमात्मक अफवाहों को फैलने न दिया जाये।

(8) प्रबंध अंगूर बेल प्रथा को संगठन की आम राय के रूप में एक बेरोमीटर के रूप में प्रयोग कर सकता है। इससे सही दिशा नीति अपनाने में सहायता मिलती है।

(9) अनियोजित ढंग से कार्य करने पर अफवाहें फैल सकती हैं जो व्यक्ति के नियंत्रण के बाहर होती हैं। अतः कर्मचारियों को सड़ी सूचना देकर नियंत्रण किया जा सकता है।

10)अंगूर बेल के ऋणात्मक परिणाम को सरलता से दूर किया जा सकता है, जिससे कर्मचारियों में मध्य अच्छे संबंध स्थापित किये जा सकें।

(11) अच्छे कार्य करने के ढंग एवं कार्य का अच्छा स्तर अंगूर बेल विधि का सही ढंग से प्रबंध से नियंत्रण कर सकेगा।

12.10 सहमतिपूर्वक संचार (Consensus)

सहमतिपूर्वक संचार अनौपचारिक संचार का उचित व लोकप्रिय साधन है जो कि राजनैतिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में लोकप्रिय है। एक दी गई समस्या का यह एक सामान्य समझौता है। व्यापारिक संगठन की बोर्ड मीटिंग में सावधानीपूर्वक निर्णय लिये जाते हैं। प्रायः प्रस्ताव की एक प्रति सदस्यों को दी जाती है, जिससे उनकी स्वीकृति प्राप्त की जा सकें। जब निर्णय सर्वसम्मति से लिया जाये तो उससे उस वर्ग की एकता को स्वीकार किया जा सकता है। इससे व्यापार गृह पर अच्छो छवि पड़ती है और संस्था का स्तर भी बढ़ जाता है। इसमें कर्मचारियों के प्रति प्रबंध का उच्च मनोबल बना रहता है। सहमति से आशय यह नहीं है कि वर्ग के सदस्यों में व उनके विचारों में कोई विरोधाभास नहीं है। वास्तव में पूर्ण सहमति की कल्पना नहीं की जा सकती है, क्योंकि यह सम्भव नहीं है। इसका आशय यह है कि अधिकांश व्यक्ति एक ही प्रकार का विचार व्यक्त करते हैं और सहमति होने पर उन व्यक्तियों को भी मानना पड़ता है जिन्होंने इसका विरोध किया हो। अपना विरोध संस्था के हित में त्यागना पड़ता है जिससे संगठन के विकास के लिये आवश्यक कार्यक्रम बनाये जा सकें।

समस्या को बोर्ड की मीटिंग के सामने रखा जाता है जो कि प्रस्ताव के रूप में होती है। फिर समस्या का विश्लेषण करके अतिरिक्त सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं। मुख्य अधिकारी असहमति प्रकट करने वाले व्यक्तियों के विचारों को सुनता है। वह प्रत्येक व्यक्ति से मामले पर विवेचन करता है। अन्त में

वह एक ऐसा निर्णय करता है जो कि संस्था के अधिकांश सदस्यों द्वारा स्वीकृत होता है।

सहमति का महत्व (Significance of Consensus) -

(1) सहमति संचार से प्रबंध पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(2) कर्मचारियों के मध्य संघर्ष के अवसर न्यूनतम हो जाते हैं, क्योंकि संचालकों द्वारा दिए गए निर्देशों में आपस में कोई मतभेद नहीं रहता है।

(3) सहमति के निर्णय आदि को सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाता है, जिसे आपसी सलाह से प्राप्त किया जा सकता है।

(4) सदस्यों का उनके प्रमुख के प्रति विश्वास रखने से कर्मचारियों के मध्य आपसी संघर्षों को समाप्त किया जा सकता है।

(5) सहमति की प्रक्रिया द्वारा प्रमुख की सहमति का अन्दाज लगाया जा सकता है।

(6) आपसी आदर पर ही कर्मचारियों की सहमति निर्भर करती है, जिसमें सदस्यों को एक-दूसरे के विचारों को समझाने में आसानी रहती है।

(7) सहमति से कर्मचारियों का अपने अधिकारियों के प्रति विश्वास में वृद्धि हो जाती है।

सहमति की सीमाएँ (Limitations of Consensus) -

(1) उच्च अधिकारी अपने अधिनिष्ठ कर्मचारियों के विचारों को सुनते हैं परन्तु अधिनिष्ठ अधिकारी द्वारा उच्च अधिकारी पर अपने विचारों को थोपने के प्रयास किये जाते हैं।

(2) वर्ग के सदस्य को उन विचारों को मानने के लिये बाध्य किया जा सकता है जिस पर वह सहमत नहीं है।

(3) किसी भी सदस्य से परामर्श लिये जाने पर उसे यह भ्रम हो सकता है कि उच्च अधिकारी उसी के परामर्श पर ही कार्य कर सकते हैं।

(4) असहमत व्यक्तियों को कभी भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता है क्योंकि अल्पसंख्यकों की राय पर कभी पी विचार नहीं किया जाता है।

12.11 संचार के माध्यम (Media of Communication)

संचार की सहायता से व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है तथा वह अपनी क्षमता से अपने कार्यों को सम्पन्न कर सकता है। दूसरी ओर शब्दों द्वारा व्यक्तियों के मौलिक कार्यों को हतोत्साहित किया जा सकता है। मौखिक संचार मानवीय सम्बन्धों के लिए महत्वपूर्ण होता है तथा इसका महत्व सामाजिक संगठनों में भी बढ़ता जा रहा है। कर्मचारी भी अपनी भावनाओं को एक दूसरे को बताते हैं, वह अपने विचारों को एक दूसरे को हस्तांतरित करते तथा इनके अनुभवों से लाभ प्राप्त करते हैं। विश्व में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जोकि अपने विचारों से जनता को प्रभावित करते हैं। मौखिक संचार उपयोगी होते हैं जोकि कुछ संदेशों को स्पष्ट करते हैं। बातचीत करने का स्वयं का अपना महत्व होता है और वह दूसरे व्यक्तियों की चुप्पी को समाप्त करता है। हम अपने अनेक कारणों व उद्देश्यों के आधार पर दूसरे व्यक्तियों से बातें करते हैं। व्यक्ति अपनी चुप्पी व मुसीबत को कम करने हेतु दूसरे व्यक्तियों से बातें करते हैं तथा उसके दुर्व्यवहारों से अपने अधीनस्थों को चेतावनी देते हैं, जोकि श्रमिकों को अनेक कारणों से निर्देशित करते हैं। अधिकांश व्यवसायों में मौखिक संचार का अधिक महत्व रहता है। व्यवसाय की सफलता मौखिक, लिखित व अन्य साधनों के

संचार पर निर्भर करते है। इसी कारण दो व्यवसायियों के मध्य मौखिक संचार का महत्व बढ़ता जा रहा है। संचार में किसी न किसी माध्यम का प्रयोग आवश्यक है। ये माध्यम पत्र, तार, टेलीफोन, सम्मेलन आदि हो सकते हैं। संचार अनेक माध्यमों से किया जा सकता है। जिस रूप में भी संचार किया जाता है, वह उसका माध्यम होता है। उदाहरणार्थ, यदि हम टेलीविजन के द्वारा अपना संदेश प्रसारित कराते हैं तो यह संचार का

माध्यम है। संचार के माध्यम का चुनाव अत्यन्त सोच-समझकर एवं स्थितियों के अनुरूप ही करना चाहिये। संचार में जो व्यक्ति भाग लेते हैं, वे उसके प्रतिनिधि होते हैं। आज के प्रगतिशील युग में संचार के अनेक साधन उपलब्ध हैं। इन सभी साधनों को चार समूहों में बाँटा जा सकता है-

संचार के विभिन्न माध्यम (Various Media of Communication)

संचार के विभिन्न माध्यम निम्नलिखित हैं-

(1) मौखिक संचार (Oral Communication)

(2) लिखित संचार (Written Communication)

(3) आमने-सामने संचार (Face to Face Communication)

(4) दृश्य संचार (Visual communication)

(5) चेहरे के हाव भाव व संकेत (Facial Expressions and Gesture)

(6) ऑडियो-दृश्य संचार (Audio-Visual Communication)

(7) मौन (Silence)

1. मौखिक संचार (Oral Communication)

इस प्रक्रिया में सन्देश देने वाला तथा सन्देश प्राप्त करने वाला दोनों आमने-सामने होते हैं अर्थात् इसमें समाचारों का आदान-प्रदान मौखिक रूप से किया जाता है। मौखिक संचार में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है- आमने-सामने बातचीत, टेलीफोन पर बातचीत, सामूहिक विचार-विमर्श, सभायें, सम्मेलन व सेमिनार इत्यादि । प्राचीन काल से ही प्रबन्धकों द्वारा अपने विचारों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों तक पहुँचाने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जाता रहा है। इसमें गोपनीयता भंग होने का भय नहीं रहता तथा लालफीताशाही को भी प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। इसके संशोधन में भी सुविधा रहती है।

मौखिक संचार के गुण (Merits of Oral Communication)

मौखिक संचार में वे सभी गुण होते हैं जो लिखित संचार के दोष होते हैं। इसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित गुणों का समावेश होता है-

(1) **यह समय बचाता है** (It Saves Time)- इसमें समय की बहुत बचत होती है। यदि किसी कार्य के सम्बन्ध में शीघ्र निर्णय लेना हो या कोई कार्य तुरन्त किया जाना हो तो सन्देश को मौखिक रूप से भेजना चाहिये। जब कार्यभार अधिक हो जाता है तो भी प्रबन्धक टेलीफोन आदि के द्वारा सन्देश को तुरन्त देकर अपने कार्यभार से मुक्त होना चाहते हैं तथा अपने अधीनस्थों को निर्देश भी मौखिक रूप से देते हैं। इससे उन्हें भी कार्य शीघ्र पूरा करने में सहायता मिलती है। यदि यही प्रक्रिया लिखित संचार के माध्यम से की जाये तो सारा समय लिखने-पढ़ने में ही चला जायेगा।

लिखित संचार के गुण (Merits of Written Communication)

व्यावसायिक जगत में लिखित संचार अत्यन्त सहायक एवं उपयोगी है। इसके गुणों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है-

(1) **यह स्थायी रिकार्ड होता है** (It is a permanent record)- मौखिक रूप से बोले गये शब्दों को भूल जाना मानव स्वभाव होता है क्योंकि मानव मस्तिष्क के स्मरण शक्ति की एक सीमा होती है। संदेशवाहक कुछ समय बाद यह भूल जायेगा कि पहले उसने क्या कहा था तथा संदेश प्राप्तकर्त्ता यह भूल जायेगा कि उससे क्या कहा गया था परन्तु लिखित सूचना हमेशा रहती है, अतः यह स्थायी रिकार्ड बन जाता है। लिखित सूचना प्रेषक व प्राप्तकर्ता के मध्य एक मध्यस्थ एवं प्रमाण के रूप में हमेशा उपलब्ध रहती है। कोई भी व्यक्ति यह कहकर नहीं छूट सकता कि वह सूचना के बारे में भूल गया। लिखित संदेश भविष्य में सन्दर्भ के रूप में भी कार्य करता है। भविष्य के लिये

लक्ष्य एवं नीतियाँ निर्धारित करने के लिये पूर्व अवधियों के आँकड़े लाभप्रद होते हैं।

(2) **यह कानूनी प्रपत्र होता है** (It is a legal document) व्यावसायिक व्यवहारों में अनेक प्रकार के मतभेद होने की सम्भावना बनी रहती है। लिखित संचार इस शंका को दूर करता है। कार्यालय की प्रत्येक फाइल में उसका अपना इतिहास छिपा रहता है। यह साध्य के रूप में कार्य करता है कि दो पक्षों के मध्य क्या हुआ। यह हमें याद दिलाता है कि अमुक व्यवहार कब, कहाँ, कैसे हुआ था। लिखित प्रमाण पत्रों के आधार पर व्यावसायिक विवादों को सरलता एवं शीघ्रता से निपटाया जा सकता है।

(3) **यह शुद्ध एवं यथार्थ होता है** (It is accurate and precise)... लिखित संचार अत्यन्त ध्यानपूर्वक किया जाता है क्योंकि इसमें जरा सी भी लापरवाही व्यवसाय के मार्ग में बाधायें उत्पन्न कर सकती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को सावधान बनाती है। वह अत्यन्त सोच-विचार कर निर्णय लेता है। लिखित संचार सत्यापन हेतु हमेशा खुला होता है तथा इसके सही एवं यथार्थ होनेको आसानी से चुनौती दी जा सकती है। इस प्रकार लिखित संचार में शुद्धता व यथार्थता का गुण पाया जाता है।

(4) **दोहराने में सरलता** (It can be repeatedly referred to)- लिखित संचार का प्राप्तकर्त्ता सूचना कोआवश्यकतानुसार बार-बार देख सकता है। जब तक वह उसे पूर्ण रूप से नहीं समझता, तब तक बार-बार पढ़ सकता है। इसमें किसी सूचना के गुम होने अथवा समझ में न आने का भय नहीं रहता। लिखित संचार को भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर कभी भी दोहराया जा सकता है।

(5) **उत्तरदायित्वों की सुपुर्दगी को सुविधाजनक बनाता है** (It facilitates the assignation of responsibilities) - संचार लिखित में होने से उत्तरदायित्वों के सौंपने में बहुत सुविधा मिलती है। मौखिक संचार में कोई गलती हो जाने

से यह खोजना एवं कह पाना अत्यन्त कठिन होता है कि सूचना प्रेषक अथवा प्राप्तकर्ता में से किसके कारण गलती हुई है। परन्तु जब यह लिखित रूप में होता है तो इस प्रकार की सम्भावनाओं का स्वतः ही उन्मूलन हो जाता है।

(6) **कुछ परिस्थितियों में यह आवश्यक है** (It is essential in some certain circumstances)- यदि सूचना के प्रेषक व प्राप्तकर्ता दोनों एक-दूसरे से दूर रहते हैं तो उनके मध्य बार-बार यह सम्भव नहीं है कि उस स्थान पर जाकर समाचार दिया जाये, वरन् इसके लिये लिखित संचार उपयुक्त रहता है। इसी प्रकार व्यापार प्रतिनिधि या विक्रय प्रतिनिधि के लिये बार-बार यह सम्भव नहीं है कि वह प्रबन्धकों को अपने कार्य की प्रगति के बारे में सूचित करे। उनके लिये भी लिखित संचार ही उपयुक्त रहता है। मुख्य कार्यालय तथा शाखाओं के मध्य भी लिखित संचार ही उपयुक्त रहता है।

लिखित संचार की सीमायें (Limitations of Written Communication)

लिखित संचार विभिन्न दृष्टिकोणों से लाभप्रद होता है परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि यह पूर्णतया दोषमुक्त होता है। लिखित संचार की अपनी कुछ सीमायें भी हैं जिनमें से कुछ प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं-

(1) **खर्चीली** (Costly) - लिखित संचार की प्रणाली अत्यन्त खर्चीली पड़ती है क्योंकि इसमें रिकार्ड रखने के लिये फाइल, फाइल केविनेट आदि रखने पड़ते हैं एवं इनकी देखभाल हेतु एक रिकार्ड कीपर रखना पड़ता है। पत्र लिखने की प्रक्रिया केवल डाक-व्ययों के दृष्टिकोण से ही खर्चीली नहीं होती वरन् पत्र भेजने की प्रक्रिया में जो लोग सम्मिलित होते हैं, वे संगठन के लिये कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं एवं उनका मूल्यवान समय पत्र लिखने की प्रक्रिया में व्यय होता है।

(2) **अधिक समय** (Time Consuming)- लिखित संचार की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें समय बहुत अधिक लगता है। एक पत्र को अपने स्थान तक

पहुँचने में 2-3 दिन यहाँ तक कि 8-10 दिन भी लग जाते हैं, जबकि मौखिक संचार में आधुनिक तकनीकी साधनों के द्वारा तुरन्त बात हो सकती है एवं प्राप्तकर्त्ता को तुरन्त समाचार मिल सकता है।

(3) **शीघ्र स्पष्टीकरण सम्भव नहीं** (Quick clarification is not possible) यदि सूचना का प्राप्तकर्ता समाचार के बारे में कोई शंका रखता है या कोई प्रश्न पूछना चाहता है तो वह इसका तुरन्त स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। उसे अपनी शंका को दूर करने के लिये दोबारा लिखना पड़ेगा एवं उत्तर की प्रतीक्षा करनी होगी। जबकि मौखिक संचार । में यह सरल कार्य है क्योंकि मौखिक संचार में एक बात को बार-बार पूछा जा सकता है।

3. **आमने-सामने संचार** (Face to Face Communication)

अधिकाँश परिस्थितियों में आमने-सामने किये जाने वाले संचार मौखिक ही होते हैं। संचार के इस प्रकार में संकेत, हाव-भाव एवं इशारों का प्रयोग किया जाता है। बोलने तथा सीखने की आवश्यकता इस संचार में नहीं होती। संकेतों द्वारा सूचना देना एक विशेष कला है, जिसका अपना प्रभाव होता है। आमने-सामने संचार मौखिक संचार में परिचय उत्पन्न करता है। टेलीफोन द्वारा बातचीत करना मौखिक होता है, आमने-सामने संचार नहीं। जब दो देशों के प्रतिनिधि एक-दूसरे से मिलते हैं, मुस्कराते हैं एवं हाथ मिलाते हैं तो इस प्रक्रिया को आमने-सामने संचार में शामिल किया जाता है, क्योंकि उनकी भाषा अलग-अलग होती है अतः वह संचार मौखिक संचार का रूप नहीं ले सकता। अपने अधीनस्थ से हाथ मिलाना, उसकी पीठ थपथपाना तथा चेहरे पर शोक, खुशी, घृणा एवं क्रोध के भावं लाना सांकेतिक संचार या आमने-सामने संचार के रूप होते हैं।

आमने-सामने संचार के लाभ (Merits of Face to Face Communication)

इस प्रक्रिया के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

(1) **प्रभावी संचार के लिये** (For Influencial Communication) - संचार को प्रभावी बनाने में चेहरे के हाव-भाव एवं संकेत काफी सहायता करते हैं। लिखित संचार की तुलना में एक दृष्टिकोण से मौखिक संचार बहुत अच्छा है क्योंकि इसमें वक्ता अपनी आवाज बदलकर या जिस भी स्तर की आवश्यकता हो, उसमें सन्देश को समझाया जा सकता है। आमने-सामने संचार के अपने ही कुछ लाभ होते हैं, इसमें जो सन्देश दिया जा रहा है उसमें चेहरों के हाव-भाव व संकेतों की सहायता ली जाती है।

(2) **विशेष व्याख्या के लिये** (For special Expression) विशेष व्याख्या के लिये यह प्रणाली उचित होती है। जब दो व्यक्ति आपस में कुछ बातचीत कर रहे हों या किसी विषय को लेकर बहस कर रहे हों तो उसमें बताने वाला अपने हाव-भाव को बदलकर अपनी बात समझा सकता है तथा प्राप्तकर्ता भी यदि उसे कोई शंका हो तो दूर कर सकता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्राप्तकर्ता किसी बात को इसलिये भी स्वीकार कर लेता है कि उसे यह वात अत्यन्त प्रभावी तरीके से समझायी गयी है। आमने-सामने संचार में बोलने वाले व्यक्ति को शब्दों के समायोजन की काफी गुंजाइश मिल जाती है।

(3) **संदेश पाने वाले के हाव-भाव को पढ़ने में सहायक** (Helpful in reading the Facial Expressions of Communicant) - इस संचार से यह लाभ भी है कि यदि आपकी बात को सुनकर सुनने वाला होंठ दबाता है, माथे में सलवटें डालता है या चेहरे पर झुर्रियाँ डालता है तो आशय स्पष्ट है कि वह आपकी बात में रुचि नहीं ले रहा है, अतः आपको चाहिये कि आप अपने स्वर को बदलें, स्वयं को सम्भालें व अपना पूरा ध्यान उधर केन्द्रित कर दें। ये सभी समायोजनायें केवल आमने-सामने बातचीत में ही सम्भव हैं। यदि कोई व्यक्ति हँसी की मुद्रा में ही बात को स्वीकार करता है तो उससे उसी रूप में बात कहनी चाहिये ।

आमने-सामने संचार की सीमायें (Limitations of Face to Face Communication)

आमने-सामने संचार के प्रमुख दोषों या सीमाओं का वर्णन निम्नलिखित है-

(1) **केवल छोटी संस्थाओं में ही सफल** (Successful only in Small Units)- संचार के इस रूप को छोटी व्यावसायिक संस्थाओं में ही काम में लाया जा सकता है, बड़े आकार के संगठनों में इस व्यवस्था को व्यवहार में लाने में कठिनाई होती है। आज के प्रगतिशील युग में तो इस व्यवस्था को व्यवहारिक रूप में अपनाना और भी कठिन हो गया है, विशेष रूप से उन इकाइयों या विभागों में जो विभिन्न स्थानों पर स्थापित हैं।

(2) **सुनने वालों की असावधानी का भय** (Fear of negligency of Communicant) - इस संचार की एक कमी यह भी है कि यदि सुनने वाला सावधान नहीं है तो इस संचार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह व्यवस्था तभी सफल या प्रभावी सिद्ध हो सकती है जबकि सुनने वाला व्यक्ति भी उतनी ही रुचि ले जितनी कि बोलने वाला। परन्तु मानव प्रकृति के अनुसार व्यावहारिक जीवन में सदैव ऐसा नहीं होता है।

(3) **भीड़ की स्थिति में असम्भव** (Impossible in case of crowd) आमने-सामने का संचार उस स्थिति में भी सम्भव नहीं है जबकि बहुत अधिक भीड़-भाड़ हो। यद्यपि यह बात सही है कि वक्ता पूरी भीड़ को एक साथ बता सकता है, परन्तु यह भी निश्चित है कि ऐसी स्थिति में उसमें से अधिकाँश लोग बोलने वाले की बात पर ध्यान नहीं देंगे। जब वक्ता भी यह समझ जायेगा कि सुनने वाले उसकी बात को ध्यान से नहीं सुन रहे हैं तो वह भी रुचि नहीं लेगा एवं परिणामस्वरूप संचार व्यवस्था प्रभावी नहीं होगी।

4. **दृश्य संचार** (Visual Communication)

संचार की इस तकनीक में ऐसे साधनों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें देखकर सूचना प्राप्त की जाती है। दृश्य संचार साधनों में निम्नलिखित साधन मुख्य हैं चेहरे के हाव-भाव एवं संकेत, प्रदर्शनियाँ, चार्ट, फोटोमाफी, पोस्टर (Posters) संगठन चार्ट, सूचना पट्ट, माइक्रोफिल्म, फिल्म टेलीविजन, सांख्यिकीय चित्र, छपी हुई तस्वीरें इत्यादि। अनुकरण करना एक कला है जिसमें विचार व हाव-भावों को संकेतों के माध्यम से या चेहरे के बदलते भावों से समझा जाता है। कटे हुये चिन्ह (x) से हम भली-भाँति परिचित हैं, इसका अर्थ स्पष्ट है कि खतरा है, इसे नहीं छूना चाहिये। इस प्रकार इन सभी चिन्हों एवं दृश्यों से संचार करना बहुत सरल है। जहाँ विद्युत के स्विच होते हैं या अन्य कोई विद्युत उपकरण होते हैं, वहाँ लिखा होता है 'खतरा' (DANGER) इसका आशय है कि इसके पास नहीं जाना है।

इस संचार प्रणाली में न तो कुछ लिखना होता है, न कहीं हस्ताक्षर करने की आवश्यकता होती है और न ही शब्द बोलने पड़ते हैं तथा सन्देश का संचार हो जाता है।

यदि हम चाहे कि दृश्य संचार अकेला ही पर्याप्त है तो यह गलत होगा क्योंकि यह अकेले पूरी संचार व्यवस्था को पूर्ण नहीं कर सकता। वास्तविकता तो यह है कि इस प्रणाली का प्रयोग अन्य किसी प्रणाली के साथ अत्यन्त सरल रूप में किया जा सकता है। जो बात सभी के लिये सामान्य हो या सभी को चेतावनी देती हो या विज्ञापन करती हो, उसके लिये यह व्यवस्था उपयुक्त रहती है। सांख्यिकीय आँकड़ों को प्रदर्शित करने में यह प्रणाली अत्यन्त उपयुक्त रहती 1

5. **चेहरे के हाव-भाव एवं संकेत** (Facial Expressions and Gestures)

लिखित संचार केवल शब्दों के रूप में ही प्रेषित किया जाता है और उसमें मौखिक व गैर-मौखिक संचार तत्वों का अभाव रहता है। गैर मौखिक तत्वों में आवाज के स्वर, चेहरे के हाव-भाव व संकेतों को शामिल किया जाता है। जार्ज

टेरी ने इन्हें "शारीरिक भाषा" (Body Language) के नाम से सुशोभित किया है। इस शारीरिक भाषा में आँखों का घुमाना, चलाना, बन्द करना, दबाना, होंठों का फड़फड़ाना, होंठों का दबाना, माथे पर बल डालना, चेहरे को घुमाना,. पीठ थपथपाना, भुजाओं को हिलाना इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। नीरसता, गुस्सा, मुस्कराहट, भय, दया, समझ का अभाव इत्यादि को शब्दों की तुलना में इस भाषा द्वारा अधिक प्रभावी रूप से समझाया जा सकता है। यदि संचार प्रक्रिया में शारीरिक भाषा के अंशदान को भुला दिया जाये तो यह वास्तव में एक बहुत बड़ी भूल होगी। यदि किसी मनुष्य के चेहरे पर तो क्रोध के भाव हैं एवं माथे में सलवटें पड़ी हुई है तथा वह कहता है कि आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई तो इससे संचार प्रभावी नहीं होता तथा न ही इसका उद्देश्य पूरा होगा।

जो सफल संदेश प्रेषक (Communicator) होते हैं वे चेहरे के हाव-भाव एवं संकेतों का अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करते हैं। अच्छा बॉस (Boss), जब अपने अधीनस्थ को किसी गलती पर डाँटता है, तो अपने चेहरे पर गुस्सा नहीं लाता। हालांकि उसके मन में क्रोध होता है परन्तु वह चेहरे से ऐसा प्रतीत नहीं होने देगा, तभी एक अधीनस्थ भविष्य में किये जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में चौकन्ना एवं सावधान रहेगा। क्रोध में आकर उल्टा सीधा कहने अथवा गाली देने से संचार उतना अधिक प्रभावी नहीं हो सकता जितना कि प्यार व हँसी के स्वभाव से।

6. **ऑडियो-दृश्य संचार** (Audio-Visual Communication)

यह संचार व्यवस्था टेलीविजन एवं सिनेमा फिल्मों पर जोर डालती है। संचार व्यवस्था के आधुनिक माध्यम टेलीविजन, लघु फिल्में व वीडियो टेप आदि हैं। इसमें प्रकाश व आवाज का समन्वय होता है। इस व्यवस्था में लिखित शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। टेपरिकार्डर की ऑडियो कैसेट के माध्यम से भी

कोई संदेश या विज्ञापन कराया जा सकता है। आज के फैशन के युग में संचार के इस माध्यम का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

दृश्य संचार व्यवस्था भी स्वयं में पूर्ण नहीं होती। कोई भी अकेली संचार व्यवस्था कुछ नहीं कर सकती। अतः इस संचार व्यवस्था को भी अन्य व्यवस्थाओं के साथ ही अपनाया जाना चाहिये।

अन्य साधनों की तुलना में ऑडियो-दृश्य संचार का साधन अधिक प्रभावी हो सकता है एवं दीर्घकाल तक चलता है। यह प्रणाली वहाँ अधिक उपयुक्त होती है, जहाँ अधिक भीड़-भाड़ हो, अधिक प्रचार करना हो या जानकारी विस्तृत रूप में देनी हो। बड़े-बड़े व्यावसायिक गृहों में इस तकनीक का प्रयोग श्रमिकों को शिक्षित करने एवं उत्पाद का प्रचार करने हेतु किया जाता है। नये घरेलू उपकरण जैसे- मिक्सी या वाशिंग मशीन, नये सर्फ को प्रभावी बनाने, सूटिंग या शटिंग में नये-नये डिजाइनों या किसी नये उत्पाद की जानकारी देने में यह प्रणाली उचित प्रतीत होती है। इस तकनीक को और अधिक प्रभावी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि फिल्मों की स्लाइड्स को रुचिकर व आकर्षक बनाया जाये तथा उनका विवरण पूर्ण एवं स्पष्ट हो।

7. **मौन अथवा चुप रहना** (Silence)

उपर्युक्त सभी संचार साधनों के अलावा चुप रहना या बिना शब्द बोले संचार करना भी एक साधन है। यह वास्तव में एक कला है। यह आवश्यक नहीं है कि मुँह से बोलकर ही व्यक्त किया जागे वरन् संकेत से भी पूरी बात। को कहा जा सकता है। यह अनुभव पर आधारित होता है। शब्दों की तुलना में चुप रहना अधिक प्रभावी होता है। किसी ने बात कहो और दूसरा उसे सुनकर चुप रहा तो स्पष्ट है कि इसमें उसकी सहमति है। इसमें शब्दों का प्रयोग नहीं

किया जाता। चुप्पी द्वारा भी प्रभावी रूप से संचार किया जा सकता है। जब दो अजनबी एक दूसरे से मिलते हैं, कुछ क्षणों के लिये बातचीत करते हैं तथा फिर चुप हो जाते हैं तो उन दोनों के संचार में अन्तर होता है। जब कोई उच्चाधिकारी या प्रबन्धक प्रवेश करता है तो अधीनस्थ जो वार्तालाप कर रहे होते हैं, तुरन्त चुप हो जाते हैं, इसे सम्मान कहते हैं या भय भी कहा जा सकता है। इसी प्रकार यदि ग्राहक दुकानदार से 500 रुपये की वस्तु के 450 रुपये कहता है तथा दुकानदार चुप रहता है तब उसे मौन सहमति समझा जायेगा। चुपचाप रहने से क्रोध, प्रसन्नता, रुचि का अभाव, अस्वीकृति आदि भावों की अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण तरीके से की जा सकती है।

संचार के उपरोक्त साधनों के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त सभी प्रणालियों के अपने-अपने गुण एवं दोष हैं। कोई भी प्रणाली स्वयं में पूर्ण नहीं है। किस समय किस प्रणाली का प्रयोग किया जाये, यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वास्तविकता तो यह है कि आवश्यकतानुसार इनमें से दो या दो से अधिक माध्यमों को एक साथ अपनाया जाना चाहिये ।

कम्प्यूटरीकरण तथा यन्त्रीकरण (Computerisation and Mechanisation)

बैंकिंग विकास के साथ ही साथ बैंकों में यन्त्रीकरण आरम्भ हो गया था। सामान्य टंकण यन्त्रों के प्रयोग से शुरू होकर टेलेक्स, टेलीप्रिंटर, विजली चालित टंकण यन्त्र, फैक्स (Fax) आदि का प्रयोग बैंकिंग क्षेत्र में यन्त्रीकरण का प्रत्यक्ष प्रमाण है। बैंकों में कारोबार की अप्रत्याशित वृद्धि ने बैंकों को यन्त्रीकरण के लिये विवश कर दिया है। ग्राहकों की बढ़ती संख्या से उनके खातों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप खाता विवरण तैयार करने की समस्या, खातों पर ब्याज की गणना आदि कार्य के लिये यन्त्रीकरण को अपनाया गया। आज कैल्क्यूलेटर की सहायता से तुरन्त ब्याज की गणना की जा सकती है।

12.12 संचार में बाधाएँ (Barriers in Communication)

एक सफल व्यावसायिक संदेशवाहक बनने के लिये व्यक्ति को अपनी कुशलता एवं योग्यता को बढ़ाना होगा। परन्तु उसकी नियोजन, तैयारी, संचार का कार्य अधूरा व असफल रहेगा, यदि वह संचार की बाधाओं को नहीं समझेगा। यह बाधाएँ भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक हो सकती हैं, जो कि नियोजन में रुकावटें लाकर संगठन की प्रगति को अवरुद्ध करती हैं। संचार की प्रक्रिया में ऐसी अनेक बाधाएँ हैं। इन बाधाओं का मुख्य कारण संदेश को गलत ढंग से समझना है।

यह घटक संदेश भेजने वाले एवं संदेश प्राप्त करने वाले के आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्मचैतन्यता आदि पर निर्भर करते हैं। मैनेजर को इन बाधाओं की जानकारी होनी चाहिये। ऐसे संदेश का उपयोग नियोजन के प्रबंधकीय कार्यों, संगठन, स्टाफिंग व नियंत्रण में किया जाता है। यदि यह बाधाएँ समय पर दूर नहीं की गयीं तो यह व्यावसायिक संगठन के लिये घातक सिद्ध हो सकती हैं।

जब संदेशवाहक विचारों को अपरिवर्तित एवं बिना बदले प्राप्तकर्ता के लिये भेजे और प्राप्तकर्ता उसे प्राप्त करे, तो संचार की प्रक्रिया को पूर्ण मान लिया जाता है। परन्तु पूर्ण संचार की प्रक्रिया बाधाओं के अनेक घटकों के कारण पूर्ण नहीं मानी जा सकती है। संदेशवाहक को कमजोर संदेश के कारणों को समझना होगा तथा उसे प्रभावी ढंग से भेजना होगा। जब तक उसे बीमारी का आभास न हो, वह उसका उपाय नहीं कर सकेगा। योग्यता को बढ़ाने हेतु संचार की प्रक्रिया को समझना प्रथम कदम है, परन्तु संचार में रुकावट डालने वाले घटकों को समझकर ही प्रभावी संचार किया जा सकता है। प्रबंधक अपने समय का 90% भाग संदेश के संचार पर व्यय कर सकते हैं परन्तु उसके अधिकांश भाग को गलत ढंग से समझा जा सकता है। बड़े व जटिल व्यवसायिक संस्थानों में संदेश सही ढंग से नहीं भेजे जाते हैं और संदेशों को अनेक रूपों में

गलत ढंग से भेज दिया जाता है परन्तु इस स्थिति को सुधारने के प्रयास किये जाने चाहिये।

बाधाओं के प्रकार (Types of Barriers)

बाधाओं के प्रकार को निम्नलिखित ढंग से रखा जा सकता है:-

(1) भाषा व सीमेन्टिक बाधाएँ (Language and Semantic Barriers)

(2) संगठनात्मक बाधाएँ (Organisational Barriers)

(3) भौतिक बाधाएँ (Physical Barriers)

(4) सामाजिक-मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (Socio-Psychological Barriers)

1. भाषा व सीमेन्टिक बाधाएँ (Language and Semantic Barriers)

इसमें निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है.

(1) **समान भाषा का अभाव** (Lack of Common Language): एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को संदेश मौखिक या लिखित रूप में भेजा जा सकता है। प्रत्येक मानवीय भाया के अपने चिन्ह और अपने व्याकरण व्यवस्था होती है। यदि सन्देशवाहक एवं संदेश प्राप्त करने वाले की भाषा पृथक-पृथक हों तो उन्हें संदेशों को भेजने में बाधाएँ आयेंगी। जब तक दोनों व्यक्तियों की समान भाषा न होगी, तब तक वह संदेश का अर्थ न समझ सकेंगे। जैसे अंग्रेजी बोलने वाले बॉस एवं तमिल बोलने वाले श्रमिक के मध्य संदेश को नहीं भेजा जा सकता, जब तक कि उन्हें समान भाषा का ज्ञान न हो। समान भाषा व व्याकरण का ज्ञान होने पर ही वह संदेश को समझ सकते हैं।

(2) **कमजोर भाषा** (Poor Vocabulary): कमजोर भाषा से हमारा संदेश कठिन एवं कम प्रभावी हो जाता है। शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं और उसे सही ढंग से उपयोग किया जा सकता है। संदेशवाहक को संदेश भेजते समय भाषा की स्पष्टता का प्रयोग करना चाहिये। शब्दों को उनके अर्थ के लिये ही प्रयोग नहीं किया जाता, बल्कि प्राप्त करने वाले को उसे सही अर्थों में समझना आवश्यक

होता है। कमजोर भाषा होने पर संदेश वाहक न तो सही संदेश दे सकता है और न ही लिख सकता है। यदि प्राप्त करने वाला संदेश के शब्दों को ठीक ढंग से नहीं समझता, तो उसका सही अर्थ नहीं समझ सकेगा।

(3) **अधिक भाषा का प्रयोग** कठिन, अस्पष्ट व अधिक भाषा का प्रयोग करने पर व्यक्ति के दिमाग में गलत भावना व असंतोष पनप जाता है। गैर-मतलब के शब्दों को प्रयोग करने का कोई अर्थ नहीं होता है। संचार के लिये सरल व प्रभावी शब्दों व भाषा का प्रयोग किया जा सकता है। अतः स्पष्टता के लिये अधिक भाषा का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये जिससे संदेश का भ्रमपूर्ण अर्थ समझने को रोका जा सकता है।

(4) **सीमेन्टिक बाधाएँ** (Semantic Barriers): शब्दों का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता, परन्तु उनसे काल्पनिक अर्थ का बोध किया जाता है। कोई भी शब्द का अनेक अर्थ लगाया जा सकता है। कभी-कभी संदेश भेजने वाला किसी एक अर्थ में संदेश भेजता है जबकि प्राप्त करने वाला उसे अन्य किसी अर्थ में समझ सकता है। विभिन्न अवसरों पर एक शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाया जा सकता है। अंग्रेजी में अनेक शब्द हैं जैसे Light, Cheap etc. जिन्हें अनुकूल एवं प्रतिकूल रूप में प्रयोग किया जा सकता है। एक ही शब्द को धनात्मक या ऋणात्मक रूप में प्रयोग कर सकते हैं। प्राप्त करने वाला शब्द को ऋणात्मक रूप में लेकर उसका भिन्न अर्थ लगा सकता है।

(5) **व्याकरण का अल्प ज्ञान** (Poor knowledge of Grammer): मौखिक संचार में व्याकरण का अधूरा व अल्प ज्ञान बाधक सिद्ध होता है। एक अच्छी शब्दावली व्याकरण के ज्ञान के अभाव में व्यर्थ है। वर्तमान में नौकरी के आवेदन-पत्र, व्यवसायिक पत्र व्यवहार आदि में लिखित व मौखिक संचार के प्रयोग में व्याकरण का पूर्ण ज्ञान न होने से संदेश समझने में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। यदि संदेशवाहक सही क्रिया का चुनाव नहीं कर पाता है तो

वह अपने विचारों को सही ढंग से संचार नहीं कर पायेगा। व्याकरण के अलावा कोमा, सेमीकॉलन आदि के उपयोग का भी सही ज्ञान होना आवश्यक है।

(2) **संगठनात्मक बाधाएँ** (Organisational Barriers)

संगठनात्मक संचार की प्रमुख बाधाएँ निम्नाकित हैं

(1) **पुरातन व ऐतिहासिक बाधाएँ**:- संगठन में संदेशों का संचार किसी औपचारिक साधन की सहायता से विधिपूर्वक होना चाहिये। कर्मचारी से यह आशा की जाती है कि यह समय-समय पर अपने वरिष्ठ अधिकारियों से मिलें, परन्तु ऐसा करना सरल कार्य नहीं माना जाता है। परन्तु इस व्यवस्था को कुछ प्रबंधक अच्छा नहीं मानते और उनका विचार है कि संस्था में प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे से मिलने की स्वतंत्रता होनी चाहिये और वे इस ऐतिहासिक रुकावट का विरोध करते हैं।

सामान्यतया कनिष्ठ कर्मचारी व्यगो वरिष्ठ अधिकारियों को संदेश भेजने में कठिनाई अनुभव करते हैं। प्रायः ऊपर की ओर संचार से हानि होती है। ऐतिहासिक लम्बी कड़ी ही सूचना की हानि के लिये जिम्मेदार है। कर्मचारियों में असंतोष की भावना से औपचारिक संचार में रुकावटें आ जाती हैं और संदेश भेजना संभव नहीं हो पाता है।

(2) **माध्यम का गलत चुनाव** (Wrong Choice of Medium): संचार के अनेक ढंग हैं जिनमें मौखिक एवं लिखित संचार दोनों ही अधिक लोकप्रिय हैं। संचार के विभिन्न साधनों का उपयोग परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न समयों में विभिन्न रूपों में किया जाता है। अतः इन माध्यमों के सापेक्षिक गुण एवं सीमाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। परन्तु मैनेजर के लिये संचार का सर्वोत्तम ढंग आमने-सामने बातें करना है। एक तस्कर के लिये मौखिक संचार एक गलत माध्यम है परन्तु केवल टार्च लाइट का सिग्नल दिखाना तस्करी में उपयुक्त माध्यम माना जाता है। इसी प्रकार से एक पुलिस के लिये मौखिक माध्यम का उपयोग करना गलत होगा। अशिक्षित श्रमिकों के लिये आडियो

विजुअल ढंग अच्छा माना जाता है। कभी-कभी पत्र लिखने के स्थान पर टेलीफोन पर संदेश भेजना अधिक उपयुक्त माना जाता है।

(3) **श्रमशक्ति का विशिष्टीकरण** (Specialisation of the Work Force): बड़े आकार के व्यावसायिक संगठन में श्रमिकों के मध्य विशिष्टीकरण के बढ़ने से प्रभावी आन्तरिक संचार में रुकावटें आती हैं। कार्य को इस ढंग से बांटा जाता है कि उसमें कार्यरत व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को सही ढंग से संदेश नहीं भेज पाते हैं। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का कार्य सौंप दिया जाता है, इससे उसके बाहर के कार्य सौंपने से उसमें बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। प्रत्येक श्रमिक का कार्य एक ही कार्य तक सिमट कर रह जाता है। इससे एक विभाग के व्यक्ति दूसरे विभाग के व्यक्तियों से पृथक हो जाते हैं।

(4**) संचार भार** (Communication Load): संचार भार संचार के मार्ग में एक प्रमुख बाधा है। इसमें

प्राप्तकर्ता के संदेश में जटिलता आ जाती है। बढ़ते हुये विशिष्टीकरण और आधुनिक व्यवसाय की जटिलता के कारण सूचना में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिये। एक व्यस्त संगठन में, एक व्यक्ति जो औपचारिक एवं अनौपचारिक माध्यमों से जुड़ा हो, वह संदेश प्राप्त करने में अधिक व्यस्त रहता है। उसे बड़े स्तर पर सूचना का प्रसारण करना पड़ता है। परन्तु जटिल सूचनाओं का संचार करना कठिन रहता है। इसी प्रकार संचार के भार में वृद्धि होने पर भी उसका संचार करना जटिल हो जाता है। कर्मचारी को पूर्ण सूचना का संचार न होने पर वह सही ढंग से कार्य नहीं कर पाता है।

(3) **भौतिक बाधाएँ** (Physical Barriers)

भौतिक संचार में निम्नलिखित बाधाएँ उत्पन्न होती है-

(1) **शोर** (Noise):- शोर होने पर सिग्नलों को भेजने में रुकावटें आती हैं। अनचाहे सिग्नलों से चाहे गये सिग्नलों को प्राप्त करने में कठिनाइयाँ आती हैं। यह सूचना प्रायः ध्वनि के रूप में होती हैं, परन्तु यह लिखित भौतिक या

मनोवैज्ञानिक रूप में हो सकती हैं। ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो अपना संदेश अधिक ध्वनि परन्तु कम इशारे में भेजते हैं। वास्तव में वे अनचाहा संदेश भेजते हैं, जिसमें प्राप्तकर्ता को कम रुचि रहती है। वह संदेश प्राप्तकर्ता को जरूरत से ज्यादा संदेश भेज देते हैं, क्योंकि वह अपने बारे में जरूरत से ज्यादा ही बोलते हैं।

तकनीकी या भौतिक शोर मशीन में खराबी के कारण अधिक आवाज करती हैं जिससे संदेश प्राप्तकर्ता को संदेश सुनने में काफी कठिनाइयों आती है। इसी प्रकार यदि मीटिंग में कोई सदस्य देरी से प्रवेश करता है तो सभी सदस्यगण उसके देरी से आगमन से परेशान हो जाते हैं। कमजोर टेलीफोन कनेक्शन तथा खराब लिखावट तकनीकी शोर के कुछ उदाहरण हैं।

(2) **दूरी** (Distance): संदेशवाहक एवं संदेश प्राप्तकर्ता के मध्य दूरी होना भी संचार में एक बाधक है। यदि तकनीकी उपकरणों जैसे टेलीफोन, टेलेक्स आदि का अभाव हो। इसी प्रकार कार्यालय भवन में कर्मचारियों का सही ढंग से न बैठना भी संचार में रुकावटें उत्पन्न करता है, जिसे दूरी कम करके रोका जा सकता है। कार्यालय में कर्मचारियों का दूरी पर बैठने से उनमें संचार में अवरोध उत्पन्न करता है। बॉस अपने और कर्मचारियों के मध्य बैठने के स्थान के लिये कुछ दूरी तय कर सकता है और उनमें संचार दूरी रख सकता है।

(3) **लिंग** (Sex):- स्त्री व पुरुष के साथ-साथ काम करने में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष में अधिक आत्मविश्वास और कमाण्ड करने की आदत होती है। स्त्रियाँ भौतिक रूप से बढ़ नहीं पाती हैं। अतः स्त्रियों के विचारों व उनकी भावनाओं को व्यक्त करने में लिंग एक अवरोध का काम करता है। दूसरी ओर पुरुष अपनी बात को मनवाकर ही शान्त होता है। स्त्रियाँ अपने विचारों व भावनाओं को पुरुषों की अपेक्षा अधिक अच्छे ढंग से बता सकती हैं। स्त्रियाँ कम आक्रमक होती हैं और उन्हें ऋणात्मक परिणाम ही प्राप्त होते हैं।

(4) **समय** (Time): संचार को भेजने में समय लगने से मानवीय संबंधों एवं उसकी तीव्रता पर प्रभाव पड़ता है। यदि वरिष्ठ अधिकारी अपने कर्मचारियों को सन्देश एक लम्बे समय तक न दें या पति व पत्नी एक लम्बे समय तक एक-दूसरे से दूर रहें तो संचार में कभी आ जाती है और उनके संबंधों में दरार आ सकती है। संदेश वाहन में समय अन्य ढंगों से भी वाधक सिद्ध हो सकता है। यदि मेहमान रात को आता हो तो उसे नींद आने के कारण उस जोश से स्वागत न मिलने के कारण वह स्वयं को मानहानि समझ सकता है और अपने आपको बेइज्जत समझने लगता है। इसी प्रकार देर रात को टेलीफोन करने से प्राप्त करने वाले को बुरा लग सकता है। पति द्वारा पत्नी को बहुत समय तक इन्तजार कराने पर उसके साथ संचार में असुविधा हो सकती है।

(5) **आयु** (Age) :- आयु परिपक्वता, शैक्षणिक योग्यता आदि से दो व्यक्तियों के मध्य संचार में बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। दो व्यक्तियों के मध्य जनरेशन कमी के कारण भी संदेश का संचार करने में बाधाएँ आ जाती हैं। आयु व परिपक्वता में अन्तर आने से निर्णय लेने के स्तर में अन्तर आ जाता है। संगठन में पुराने वृद्ध श्रमिक अपना एक पृथक सामाजिक संगठन बना लेते हैं जो प्रायः नौजवानों से पृथक रहते हैं और उनकी पसंद नापसन्दगी में अन्तर होने के कारण उनकी रुचि में अन्तर आ जाते हैं। प्रायः वृद्ध श्रमिक सामाजिक रूप से स्वयं को असुरक्षित रखते हैं, क्योंकि वृद्ध श्रमिकों एवं नौजवान श्रमिकों के मध्य संचार की कमी होने से उनके कार्य करने में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं और उस संस्था का सही ढंग से विकास सम्भव नहीं हो पाता है।

(4) **सामाजिक-मनोवैज्ञानिक बाधाएँ** (Socio-Psychological Barriers)

सामाजिक मनोवैज्ञानिक संचार में निम्नलिखित बाधाओं को सम्मिलित किया जा सकता है-

(1)**स्तर बाधाएँ** (Status Barriers) स्तर समाज में रहने वाले व्यक्ति का एक क्रम प्रदर्शित करता है जो कि व्यक्ति की व्यक्तिगत योग्यता, वेतन, कार्य, वरिष्ठता, सौंपे गये कार्य, आयु आदि पर निर्भर करता है। जब कर्मचारियों में स्तर का विचार आता है तो वह संदेश के संचार में बाधक सिद्ध हो सकता है। उच्च स्तर के कर्मचारी एक ही वर्ग में अधिक शक्ति का अनुभव करते हैं। स्तर के आधार पर शक्ति, अधिकार, महत्व और दायित्वों में अन्तर आ जाते हैं। अधीनष्ठ कर्मचारी प्रायः अप्रसन्न करने वाले संदेशों को भेजने में भयभीत रहते हैं और वह अपने छोटे स्तर के कारण वरिष्ठ अधिकारियों के चेम्बर में जाने से भी भय खाते हैं। स्तर की यह जानकारी व भावना ऊपरी संचार की प्रक्रिया में बाधाएँ उपस्थित करती हैं। यदि सूचना से वरिष्ठ अधिकारी अप्रसन्न रहते हों तो वह उस सूचना को प्रबंध तक ले जाने में डरते हैं, क्योंकि प्रबंधक वरिष्ठ अधिकारियों को अयोग्य समझने लगते हैं। वे कुछ भी सुझाव देने का साहस नहीं जुटा पाते। वह अपनी वर्चस्वता बनाये रखने में कभी भी सुझावों को प्रबंध तक नहीं पहुँचाते हैं और इस प्रकार संचार में बाधाएँ उपस्थित हो जाती है।

(2)**वास्तविकता का भिन्न अर्थ** फ्रान्सिस वैकन का मत है कि व्यक्ति वास्तविकता में विश्वास करता है। विचारों में भिन्नता के कारण व्यक्ति की सोच में अन्तर आ जाता है। यदि दो मित्र सिनेमाघर भी जाते हों, तो फिल्म के बारे में उनकी राय भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है। व्यक्ति कान, नाक, आँख, स्वाद, खुशबू आदि से अनेक बातों का आभास कर लेता है। इन भौतिक भिन्नता के कारण व्यक्तियों में वस्तु के बारे में भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। जैसे गरीब बच्चे का 1 रुपये का सिक्का अमीर घर के बच्चे की तुलना में अधिक उपयोगी लगता है। यदि विक्रेता अपने सभी ग्राहकों को समान समझें तो उसे संदेश के भेजने में अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना होगा।

(3)**भाषा** (Language): दो व्यक्तियों के मध्य भाषा का अंतर होने पर भी संचार में बाधाएँ आ जाती हैं। हम अपने अनुभवों को विस्तार से दूसरे व्यक्ति को नहीं बता पाते हैं। व्यक्ति कुछ खास बातों पर ही ध्यान देता है और अन्य बातों को छोड़ देता है। कभी-कभी हम वस्तु के बारे में आंशिक रूप से ही संचार कर पाते हैं और संदेश देते समय केवल गिने चुने शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है।

(4)**छानना व एडीटिंग करना** (Filtering and Editing): जब किसी संदेश को व्याकरण, निर्वचन एवं सरलीकरण द्वारा भेजा जायें तो उसमें कुछ कमी आ जाती है। कानूनी रूप से प्रस्तावित तथ्य को उसी भाषा या शब्दों में व्यक्त करना कठिन हो जाता है और संदेशवाहक का सही संदेश प्राप्तकर्ता को प्राप्त नहीं हो पाता है। संदेश की यथार्थता को सही रूप में भेजना सम्भव नहीं हो पाता है।

अनेक बार कनिष्ठ अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों को केवल वह संदेश देते हैं जिसे वह प्राप्त करना पसन्द करते हैं। वह उस संदेश को नहीं भेजते हैं जो इनके वरिष्ठ अधिकारियों को नापसंद होता है। इस प्रकार सूचना पूर्ण रूप से न पहुँचकर अधूरे रूप से पहुँचती है।

(5)**कम सुनना** (Bad Listening): कम सुनना भी संचार में बाधक सिद्ध होता है। यदि संदेश को ध्यान से सुना जाये, तो उससे संघर्ष व नासमझी में कमी होगी। अनेक व्यक्ति भिन्नता के कारण या भावना के कारण ध्यान से नहीं सुन पाते। इसका मुख्य कारण सुनने वाले व्यक्ति की अपनी परेशानियाँ एवं व्यस्तता है। कम सुनने वाला यह समझता है कि उसके विचार अधिक उपयोगी है और बोलने वाले का कोई महत्व नहीं है। एक स्कूल/कालेज का छात्र अपनी लड़की दोस्त के बारे में ज्यादा ध्यान लगाता है और वह प्रोफेसर के भाषण पर इतना ध्वल नहीं देता है। एक कर्मचारी अपनी लड़की की शादी

पर ज्यादा ध्यान देने के कारण प्रायः अपने वरिष्ठ अधिकारियों के संदेश को अनसुना कर देता है।

(6)**हलो प्रभाव** (Halo Effect): हलो प्रभाव एक मनोवैज्ञानिक अवरोधक है जो बोलने वाले पर अविश्वास या विश्वास प्रकट करता है। विश्वास एक आवश्यक तत्व है जो समस्त मानवीय कार्यों में प्रयुक्त होता है। दो व्यक्ति आपस में क्या बातें करते हैं और उसे किस तरह लेते हैं, यह इन दोनों के विश्वास पर निर्भर करता है। यदि मनोवैज्ञानिक रूप में दोनों व्यक्तियों में अनबन है तो उनमें अधिक संघर्ष होने की सम्भावना है। यदि हमें बोलने वाले पर विश्वास है तो हम अपने व्यवहार में परिवर्तन करके उसे बोलने वाले के अनुकूल कर सकते हैं। यदि हमें बोलने वाले पर विश्वास नहीं है, तो उसके कहने का व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और न ही विचारों में कोई परिवर्तन आ सकता है। गनुष्य का जीवन बहुरंगी होने के कारण उसे सफेद या काला नहीं किया जा सकता। हमें मिश्रित विचारों पर ध्यान देना होगा। यदि विभागीय प्रमुख यह समझता है कि उसके अधीनष्ठ कर्मचारी बेईमान हैं तो वह उन्हें शंका की निगाह से देखेगा। यदि उसे विश्वास हो कि उसके कर्मचारी ईमानदार हैं तो वह विश्वास के साथ उन पर भरोसा कर सकेगा।

(7)**परिवर्तन पर रोक** (Resistance to Change): यदि किसी संदेश में कोई नवीन विचारधारा का प्रस्ताव हो तो हम उसके प्रति कोई ध्यान नहीं देते हैं। इस नवीन विचार को जानबूझकर अस्वीकृत कर दिया जाता है, यदि वह विश्वास, नैतिकता, मूल्य, व्यवहार या राय से मेल न खाता हो। एक औसतन धयस्क व्यक्ति सदैव नवीन विचारों का तिरस्कार करता है विशेषकर जब उसके परिणाम अनिश्चित हों। वह यह समझता है कि सब कुछ सामान्य रूप से चल रहा है और परिवर्तन लाने पर वह स्वयं को असुरक्षित अनुभव करेगा। अतः वह यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि कोई भी नवीन प्रस्ताव सफल नहीं होगा। वह यह भी समझ सकता है कि नवीन प्रस्ताव को अपनाने से स्थिति

और बिगड़ सकती है। नवीन विचार को एक क्रान्तिकारी प्रस्ताव मानकर अपनाया जा सकता है। अतः कोई भी औसत व्यक्ति नवीन विचारों को अपनाने से घबराता है और नवीन विचारों को स्वीकार नहीं करता।

(8)**ध्यान न देना** (Inattentiveness): जिस संदेश का कोई मूल्य नहीं होता उसे प्राप्त करने वाला ध्यान से नहीं सुनता और संदेश भेजने में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। प्राप्त करने वाला व्यक्ति स्वैच्छिक रूप से नियंत्रण करने का प्रयास करता है। परन्तु सावधानीपूर्वक ध्यान देना सदैव जरूरी नहीं है। कभी-कभी कुछ संदेशों के प्रति व्यक्ति अधिक सजग रहता है।

यदि संदेश को स्पष्ट रूप से संचार न किया जाये, तो हम बेफिक्र हो जाते हैं। यदि वह हमारे विचारों से मेल न खाता हो। यदि कोई संदेश सिनेमा या टी.वी. की सहायता से संचार किया जाता हो, तो उसे पसंद न करने पर व्यक्ति सिनेमा हाल छोड़ देता है या टी.वी. बंद कर देता है। एक क्लर्क अपने काम के प्रति लापरवाह हो जाता है यदि उसका ध्यान अपने आफिस की महिला टायपिस्ट की ओर ही हो। कोई भी व्यक्ति थके होने के कारण, चिन्ता होने के कारण या नींद के कारण संदेश पर ध्यान नहीं दे पाता है।

(9)**भावनाएँ** (Emotions): ऋणात्मक भावनाएँ संचार में अवरोध उत्पन्न करती हैं। भावनाओं का प्रायः संचार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, परन्तु ऋणात्मक भावनाएँ एक प्रभावी संचार पर अवरोधक सिद्ध होती हैं। भावना से, अस्त संदेशवाहक अपने संदेश को संचार करने में कठिनाइयों का सामना करता है। वह सही ढंग से सोच नहीं पाता है और शब्दों का सही उपयोग नहीं कर पाता है। ऋणात्मक भावनाओं पर नियंत्रण लगाना कठिन होने पर संदेश वाहन में अनेक अवरोध आते हैं। जब कोई कार्य सही ढंग से नहीं हो पाये तो वह इसका कारण ऋणात्मक भावनाओं को ही भानता है। इससे संदेश के संचार के प्रभावी होने में कठिनाइयाँ आती हैं।

(10) **भूतपूर्व अनुभव** (Past Experience): व्यक्ति के रहने व सोचने के ढंग पर उसके सोचने, समझने व कार्य करने का प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति का व्यवहार व उसका मूल्य पुराने अनुभव पर निर्भर करता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी अनुभव होता है जो उसे दूसरे व्यक्तियों से पृथक करता है। जैसे एक कृषक का व्यवहार व भाषा एक डॉक्टर के व्यवहार व भाषा से भिन्न होती है। इनके मध्य संचार की प्रक्रिया में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं।

(11) **संदर्भ** (Inference): प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अनेक प्रकार की क्रियाओं एवं संदर्भ से भरा हुआ है। जैसे जब व्यक्ति मेज पर कार्य करने लगता है तो उसके भार को कुर्सी सहन करती है जिस पर वह बैठा है। हम यह सोच सकते हैं कि हमारे संदर्भ अच्छे होंगे परन्तु गलत सम्भावनाओं पर वह गलत भी हो सकते हैं। हम चिन्हों को मान्यता के आधार पर समझते हैं, परन्तु कभी-कभी यह गलत भी सिद्ध हो सकते हैं। कुछ संदर्भ में जोखिम भी रहता है, परन्तु हम इसे छोड़ नहीं सकते हैं। गैर-अनुभवी व्यक्ति के संदर्भों को सोच-समझकर ही लिया जाना चाहिये और बिना तथ्यों की जानकारी लिये किसी भी संदर्भ को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये।

(12) **व्यवहार व मूल्य** (Attitude and Value): व्यवहार व्यक्ति की निजी आवश्यकता की पूर्ति करता है। इससे व्यक्ति की आवश्यकता की संतुष्टि होती है। जब कोई संदेश प्रतिकूल हों तो वह उसे आसानी से ग्रहण नहीं कर पाता है। संदेश व्यक्ति के व्यवहार से अवरोध उत्पन्न कर सकते हैं। विभिन्न मूल्य होने के कारण व्यवहार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। व्यक्ति का निजी व्यवहार, मूल्य और उसकी राय प्रभावी संचार में बाधक सिद्ध होते हैं। किसी भी व्यक्ति को कोई भी सूचना उस समय अनुकूल मानी जाती है जबकि वह उसके व्यवहार के अनुरूप हों। सरकारी नीतियाँ अनुकूल होने पर तुरन्त मान ली जाती हैं। यदि कोई संदेश हमारे विचारों के प्रतिकूल हो तो सत्य होने पर भी

उसे नहीं माना जाता है। व्यक्ति की विचारधारा उसके चरित्र एवं व्यवहार से प्रभावित होती है। प्रायः व्यवहार को परिवर्तित करना सम्भव नहीं हो पाता है।

बाधाओं का निराकरण

वर्तमान युग संचार का युग है। संचार के क्षेत्र में अत्यधिक मात्रा में सूचनाओं का सूजन होता है और मानवीयआवश्यकताओं की पूर्ति में संचार की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चूंकि संगठन के प्रत्येक पहलू को प्रभावी तथा आदर्श संचार की आवश्यकता होती है। प्रायः संचार की इस प्रक्रिया में अनेकों बाधाएँ उपस्थित होती हैं जिनको निम्नांकित सुझावों के आधार पर बाधाओं का निराकरण किया जा सकता है-

(1) संचार में सरल भाषा समझने योग्य होती है।

(2) संचार प्रक्रिया में संदेश या सूचना पूर्ण होना चाहिए।

(3) विषय वस्तु संपूर्णता के साथ संक्षिप्त होना चाहिए।

(4) मौलिक संचार प्रक्रिया अधिक महत्व की होती है।

(5) संचार तंत्र पूर्ण रूप से लोचदार हो।

(6) प्रभावी संचार के लिए द्विचरणीय संचार तंत्र के माध्यम से हो।

(7) संचार प्रक्रिया में उचित आंतरिक संगठनात्मक वातावरण निर्मित हो।

(8) सुनना चातुर्य संचार को अत्यधिक प्रभावी बनाता है।

12.13 प्रभावी संचार निर्माण हेतु आवश्यक सुझाव (Suggestions to Overcome barriers to Communication)

प्रबन्धकों को अच्छा सम्प्रेषक बनने के लिए न केवल अपने संदेशों में सुधार करना चाहिए, वरन् सम्प्रेषण के प्रति अपनी समझ एवं कौशल में भी वृद्धि करनी चाहिए। प्रबंधकों को सम्प्रेषण की बाधाओं को दूर करने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए -

1. **प्रत्यक्ष सम्प्रेषण** (Direct Communication)- जहाँ एक सम्भव हो संदेश सम्बन्धित व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से दिये जाने चाहिए। प्रत्यक्ष सम्प्रेषण में समय बचता है तथा मूल संदेश अपरिवर्तितं रहता है।

2. **बोधगम्य भाषा** (Easy Language)- सन्देश के लिए सरल, सुबोध एवं प्रेषिति के बौद्धिक स्तर के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। क्लिष्ट तथा द्वि-अर्थी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। भाया 'समझ' उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए, 'पहेली' (Puzzles) नहीं। तकनीकी शब्दावली (Technical jargon) से बचना चाहिए।

3.**संचार सिद्धान्तों का अनुपालन** (Following the Principles of Communication)- सन्देश के निर्माण, संचरण तथा प्रतिपुष्टि में सम्प्रेषण के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

4. **अच्छी सम्प्रेषण योजना का विकास** (Developing Good Communication Plan)- प्रत्येक सम्प्रेषण योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित होना चाहिए। सम्प्रेषण के प्रत्येक पहलू पर विचार किया जाना चाहिए।

5. **उद्देश्यों की स्पष्टता** (Clarity of Objectives)- सम्प्रेषण के लक्ष्य स्पष्ट होने चाहिए। 'वास्तविक' एवं 'प्रकट' दोनों प्रकार के उद्देश्यों में एक समानता रहनी चाहिए।

6. **उपयुक्त माध्यम** (Proper Media)- संदेश की प्रकृति, तीव्रता एवं अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए संरचना में प्रबन्ध के स्तर भी यथासम्भव न्यूनतम रहने चाहिए।

7. **अच्छे मानवीय सम्बन्ध** (Good Human Relations)- कर्मचारियों में पारस्परिक सद्भाव एवं सहयोग का वातावरण निर्मित करके ही सम्प्रेषण की प्रभावी व्यवस्था की जा सकती है।

8.**वैयक्तिक विभिन्नताओं पर ध्यान** (Consideration of Individual Differences)- प्रेषक को वैयक्तिक भिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही

सूचनाओं का प्रेषण करना चाहिए ताकि उनसे उत्पन्न बाधाओं को दूर किया जा सके।

9. **प्रभावी प्रयन्य प्रणाली** (Effective Management System)- प्रबन्धक श्रेष्ठ प्रबन्ध प्रणाली- कुशल नेतृत्व, निर्देशन, अभिप्रेरण व नियंत्रण को अपनाकर सम्प्रेषण के अवरोधों को दूर कर सकते हैं।

10. **पूर्वाग्रहों का परित्याग** (Removal of Prejudices)- प्रेषक एवं प्रेषिति को बिना किसी पूर्वाग्रह या पूर्व-मान्यता के खुले मस्तिष्क से सम्प्रेषण करना चाहिए।

11. **कुशल श्रवण** (Right Listening)- जोसेफ दूहर के शब्दों में, "कुशल श्रोता चेतना का विकास कर लेता है, जो व्यक्तिगत अलगाव की इकाई को पाटने तथा दूसरों के अनुभवों एवं भावनाओं का लाभ उठाने में सहायक होती

12. **समयानुकूल**ता (Timeliness)- सम्प्रेषण की सफलता बहुत कुछ सीमा तक संदेशों के समयानुकूल सम्प्रेषण पर निर्भर करती है। उपर्युक्त समय पर भेजी गई सूचना अनेक प्रकार से उपयोगी सिद्ध होती हैं।

13. **स्वयंपूर्ण कार्यात्मक इकाइयों की स्थापना** (Establishment of Self contained Functional Units)- संगठन में स्वयंपूर्ण इकाइयों की स्थापना से उनमें निकट सम्पर्क बढ़ जाता है तथा संदेशों के आदान-प्रदान में सुविधा हो जाती है।

14. **वैकल्पिक साधनों का प्रयोग** (Use of Alternative Means)- जब संगठन में अनेक स्तर होने के कारण सन्देशों के आदान-प्रदान में कठिनाई उत्पन्न होने लगती है तो सम्प्रेषण के लिए वैकल्पिक माध्यमों व साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

15. **व्यवस्थित सम्प्रेषण** (Systematic Communication)- सम्प्रेषण की प्रक्रिया को अनियोजित नहीं छोड़ा जाना चाहिए। सम्प्रेषण का समय, स्थान,

उद्देश्य, विषय-वस्तु, प्रेषिति आदि पूर्व-निर्धारित होने चाहिए। सूचना प्रवाह का निवमन किया जाना चाहिए।

16. **अनुगमन एवं प्रतिपुष्टि** (Following up and Feedback)- प्रेषक को इस बात की जानकारी कर लेनी चाहिए कि सन्देश प्राप्तकर्ता ने सन्देश का सही एवं वही अर्थ लगाया है जो उसके (प्रेषक के) मस्तिष्क में हो। प्रेषिति की प्रक्रिया का भी तत्काल ज्ञान किया जाना चाहिए तथा उसके संशयों व भ्रमों को दूर करना चाहिए।

17. **पुनरावृत्ति** (Repetition)- "सही समझ" उत्पन्न करने के लिए सन्देश की पुनरावृत्ति भी की जानी चाहिए।

18. **अनौपचारिक सम्प्रेषण का प्रयोग** (Using the Grapevine)- प्रत्येक संगठन में अनौपचारिक सम्प्रेषण की श्रृंखला भी साथ-साथ चलती है। कुशल प्रबन्धक इनका उपयोग भ्रमों व शंकाओं को दूर करने, संगठन की नब्ज जानने तथा यथार्थ स्थिति को पहचानने के लिए कर सकते हैं।

12.14 सार संक्षेप

संचार (Communication) प्रबंधन का मूल तत्व है, जो संगठन के सभी स्तरों पर सूचनाओं का आदानप्रदान करता है। यह प्रक्रिया विचारों-, संदेशों और विचारधाराओं को प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने में मदद करती है। संचार के मार्ग जैसे नीचे की ओर, ऊपर की ओर, और समतल संचार संगठनात्मक कार्यों के प्रवाह को सुनिश्चित करते हैं। संचार में बाधाएं, जैसे भाषा, मनोवैज्ञानिक और भौतिक समस्याएं, प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। प्रभावी संचार के लिए प्रबंधन को स्पष्टता, सहमति, और उचित माध्यमों का उपयोग करना चाहिए।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. संचार के कौन से प्रकार में प्रबंधन से कर्मचारी तक सूचना प्रवाहित होती है?
   A. ऊपर की ओर संचार
   B. नीचे की ओर संचार
   C. समतल संचार
   D. सहमतिपूर्वक संचार

2. प्रभावी संचार के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व क्या है?
   A. भौतिक बाधाएं
   B. स्पष्टता
   C. अनुशासन
   D. प्रौद्योगिकी

3. ________ संचार समान स्तर के कर्मचारियों के बीच होता है।

4. संचार को बाधित करने वाले कारक ________ कहलाते हैं।

5. ________ का उद्देश्य संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करना है।

12.15 मुख्य शब्द

1. **संचार (Communication)**: जानकारी और विचारों के आदानप्रदान की - प्रक्रिया।

2. **संचार के मार्ग (Communication Channels)**: सूचनाओं के प्रवाह के लिए उपयोग किए जाने वाले रास्ते।

3. **नीचे की ओर संचार (Downward Communication)**: प्रबंधन से कर्मचारियों तक सूचना का प्रवाह।

4. **ऊपर की ओर संचार (Upward Communication)**: कर्मचारियों से प्रबंधन तक जानकारी का प्रवाह।

5. **समतल संचार (Lateral Communication)**: समान स्तर के कर्मचारियों के बीच संचार।

6. **संचार में बाधाएँ (Barriers in Communication)**: वह समस्याएँ जो संचार को बाधित करती हैं।

7. **प्रभावी संचार (Effective Communication)**: संगठन के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए उपयुक्त तकनीक का उपयोग।

8. **सहमतिपूर्वक संचार (Consensus Communication)**: सामूहिक सहमति से जानकारी का प्रवाह।

उत्तर 1: B

उत्तर 2: B

उत्तर 3: समतल

उत्तर 4: संचार में बाधाएँ

उत्तर 5: प्रभावी संचार

12.16 संदर्भ सूची (References)

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2021). *Management*. Pearson Education.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2020). *Management: Concepts and Practices*. McGraw Hill Education.

Mintzberg, H. (2019). *The Structuring of Organizations*. Prentice Hall.

Sharma, R. K. (2022). *Communication in Management*. Kalyani Publishers.

Gupta, C. B. (2018). *Business Communication: Concepts and Cases*. Sultan Chand & Sons.

12.17 अभ्यास प्रश्न

1. व्यावसायिक संगठन में बाह्य एवं आन्तरिक संचार की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए।
2. नीचे की ओर संचार क्या है? इसके मुख्य उद्देश्य क्या हैं? इसकी सीमाएँ भी बताइये।
3. व्यावसायिक संगठन में ऊपर की ओर संचार का महत्व बताइये। इसकी क्या कठिनाइयाँ हैं ?
4. समतल संचार की अच्छाईयों व बुराईयों का वर्णन कीजिये ।
5. संचार से क्या आशय है? संचार के विभिन्न माध्यमों का वर्णन कीजिए।
6. मौखिक संचार से क्या आशय है? इसके गुण व सीमाओं का वर्णन कीजिए।
7. लिखित संचार का वर्णन करते हुए, इसके गुण एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।
8. आमने-सामने संचार से क्या आशय है? इसके लाभ एवं सीमाओं को बताइए।
9. दृश्य संचार क्या है? इसकी उपयोगिता का वर्णन कीजिए।
10. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-

(i) चेहरे के हाव-भाव एवं संकेत

(ii) ऑडिया- दृश्य संचार

(iii) मौन

ब्लॉक - IV

इकाई -13

नियंत्रण : अवधारणा, उद्देश्य एवं प्रकृति

(CONTROLLING CONCEPT, OBJECTIVES AND NATURE)

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 परिभाषायें

13.4 नियंत्रण की प्रकृति

15.5 नियंत्रण की प्रमुख विशेषताएँ

13.6 नियंत्रण की आवश्यकता और महत्व

13.7 नियंत्रण की सीमायें

13.8 नियंत्रण के प्रकार

13.9 नियंत्रण के स्तर

13.10 नियन्त्रण-प्रक्रिया

13.11 सार संक्षेप

13.12 मुख्य शब्द

13.13 संदर्भ सूची

13.14 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

व्यवसाय के लिए नियंत्रण कोई नया शब्द नहीं है। नियंत्रण व्यवसाय के साथ ही प्रारम्भ हुआ। इसका तात्पर्य सूचनाओं या जानकारी के आधार पर कार्यवाही करने से है। इसके द्वारा परिवर्तनीय परिस्थितियों को सुनिश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में सही प्रकार से निर्देशित किया जाता है। प्रबन्ध में नियंत्रण का अर्थ परीक्षण (to check) से होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि संस्था का कार्य योजनाबद्ध रूप से चल रहा है अथवा नहीं। पर्याप्त निर्देश मिल रहा है या नहीं। संस्था के विभिन्न तत्वों में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से पर्याप्त सम्बन्ध स्थापित है या नहीं। वास्तव में नियंत्रण की अच्छी योजना के आधार पर ही उच्च प्रबन्धक अधिकारों का प्रत्यायोजन करता है।

नियंत्रण में यह निश्चित किया जाता है कि हम क्या करना चाहते हैं। फिर देखना चाहिए कि क्या किया जा रहा है। कार्य में क्या त्रुटि है और उसे कैसे सुधारा जा सकता है। इसमें सदैव सजगता, सतर्कता, परीक्षण और आवश्यक हुआ तो कुछ अंशों में कुछ समय के लिए रुकावट या रोक की आवश्यकता होती है।

प्रबन्ध के नियंत्रण कार्य द्वारा अधीनस्थों के कार्य निष्पादन को मापा जाता है। इसके द्वारा सही निर्देश दिये जाते हैं। नियंत्रण प्रक्रिया द्वारा यह आश्वासन प्राप्त किया जाता है कि कार्य अपेक्षित विधि के अनुसार ही किया जा रहा है। यह कार्य यद्यपि निष्पादन की अंतिम क्रिया के रूप में सामने आता है तथापि यह कभी समाप्त न होने वाली प्रकृति का होता है। यह उच्च स्तरीय प्रबन्धकों के आंतरिक्त, सभी स्वरों पर किया जाता है।

नियंत्रण की आवश्यकता प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर पाई जाती है। 'किसी भी संस्था, संगठन अथवा विभाग के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अपनाये गये कार्यक्रम ठीक से कार्यान्वित किये जा रहे हैं या नहीं, यह जानने के लिए कार्यों की जाँच पड़ताल करके उनमें आवश्यकतानुसार सुधार करना 'प्रबन्धकीय

नियंत्रण' कहलाता है। इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी जाती हैं। कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार हैं:

13.2 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

नियंत्रण की अवधारणा, उद्‌देश्य और प्रकृति को समझ सकें।

नियंत्रण के स्तर और प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकें।

संगठन में नियंत्रण की आवश्यकता और सीमाओं का अध्ययन कर सकें।

नियंत्रण के विभिन्न प्रकारों और उनकी प्रासंगिकता को समझ सकें।

13.3 परिभाषायें (Definitions)

हेनरी फेयोल के अनुसार, "नियंत्रण का आशय यह जाँचने से है कि संस्था के सभी कार्य अपनाई गई योजनायें, दिये गये निर्देश व निर्धारित नियमों के अनुसार हो रहे हैं या नहीं। नियंत्रण का उद्‌देश्य कार्य की कमियों या त्रुटियों का पता लगाना है जिससे यथा समय उनमें सुधार किया जा सके तथा भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति को रोका जा सके।"

जार्ज टैरी के अनुसार, "नियंत्रण का तात्पर्य यह निश्चित करना है कि क्या किया जा रहा है, अर्थात् कार्यों का मूल्यांकन करना और आवश्यकतानुसार सुधारात्मक उपाय अपनाना है जिससे निष्पादन योजनाओं के अनुसार हो सके।"

ब्रेच के शब्दों में, "नियंत्रण निश्चित योजनाओं तथा प्रकार्यों के वास्तविक कार्य निष्पादन के जाँचने की प्रक्रिया है, जिससे पर्याप्त उन्नति व संतोषजनक काम

हो सके और साथ ही ऐसे अनुभवों का रिकार्ड रखना है जो संभावित भावी आवश्यकताओं की पूर्ति में अपना योगदान दे सके।"

कृण्ट्ज एवं ओ'डोनेल के अनुसार, "नियंत्रण अधीनस्थ कर्मचारियों की कार्यवाहियों को नापना और सुधार करना है जिससे यह विश्वास हो सके कि घटनायें योजनाओं के अनुसार चल रही हैं।"

कोटलर की भाषा में, "नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किये जाते हैं।"

प्रोफेसर हेमैन के अनुसार, "नियंत्रण छानवीन द्वारा यह निश्चित करने की प्रक्रिया है कि कार्य योजना के अनुसार हो रहा है अथवा नहीं, उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उपयुक्त प्रगति हो रही है या नहीं और आवश्यकता पड़ने पर विचलन का सुधार करना है।"

गोट्ज के अनुसार, "प्रबन्धकीय नियंत्रण का आशय कार्यों को योजनानुसार सम्पन्न करने से है।"

मैसी के अनुसार, "नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वर्तमान कार्यों का मापन किया जाता है और कुछ पूर्व। निश्चित तथ्यों की ओर मार्ग दर्शन किया जाता है।"

रार्बर्ट ऐन्थोनी के अनुसार, "प्रबन्ध नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबन्धक यह ज्ञात करता है कि साधनों की प्राप्ति एवं प्रयोग कुशलतापूर्वक किया गया है और संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनका प्रयोग भी कुशलतापूर्वक ही किया गया है।"

मैरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार, "नियंत्रण किसी निश्चित लक्ष्य या लक्ष्यों के समूह की ओर निर्देशित क्रियाओं में संतुलन बनाये रखना है।"

इस प्रकार नियंत्रण प्रबन्ध का वह महत्वपूर्ण कार्य है जो इस बात के निर्धारण से सम्बन्ध रखता है कि कार्य योजनाओं, लक्ष्यों तथा नीतियों के अनुसार हो रहा है या नहीं और यदि नहीं हो रहा है तो उसके क्या कारण है तथा उसे दूर

करने हेतु क्या कदम उठाये जाने चाहिए। संगठन में विभाजन नितांत आवश्यक है उच्च अधिकारी अपने कुछ अधिकारों को अपने अधीनस्थ अधिकारी को सौंप देता है। परन्तु वह समस्त कार्यों के लिए अंतिम रूप से जिम्मेदार होता है। अतः उसे संगठन में किसी न किसी प्रकार की नियंत्रण व्यवस्था को जन्म देना चाहिए जिससे वह अधीनस्थ कर्मचारी द्वारा किये गये कार्यों पर एक न एक प्रकार से नियंत्रण रख सके। इसलिए नियंत्रण अधिकार सौंपने की प्रक्रिया का परिणाम मात्र है।

13.4 नियंत्रण की प्रकृति (Nature of Control)

नियंत्रण संगठन के उद्देश्यों को विधिपूर्वक उपलब्ध कराने में प्रोत्साहन प्रदान करती है। यह एक ऐसी युक्ति है जो प्रबन्ध के तनावों एवं पारस्परिक मन-मुटावों को दूर करता है। यह कुशलता को प्राप्त करने की एक धारणा है।

प्रबन्धकीय नियंत्रण में दो प्रकार की प्रक्रियाओं का समावेश होता है प्रथम प्रेरणात्पक (Motivative) तथा द्वितीय उपचारात्मक (Corrective) । प्रेरणात्मक प्रक्रिया एवं नेतृत्व प्रधान कार्य होता है और इसमें नियंत्रण प्रक्रिया का समावेश होता है। इस क्रिया में नियोजित कार्यों में किसी प्रकार के विचलन नहीं हों इसके लिए भावी निर्देशों को सम्मिलित किया जाता है। नियंत्रण व्यक्तियों को पूर्व निर्धारित विधियों के अनुसार कार्य करने को प्रेरित करता है। उपचारात्मक प्रक्रियाओं से नियोजित प्रयत्नों में उत्पन्न विचलनों को निर्धारित करके परिणामों का मापन किया जाता है। इसके पश्चात् उपचारात्मक उपायों का सुझाव दिया जाता है। इस प्रकार संस्था में श्रेष्ठ और कुशल परिणामों को प्राप्त करने के लिए प्रेरणात्मक एवं उपचारात्मक नियंत्रण एक साथ चलने चाहिए।

नियंत्रण के उद्देश्य (Objectives of Control)

ओसबार्न (Osborn) ने नियंत्रण व्यवस्था के निम्न तत्व सुझाये हैं :

(1) योजना (Plan): नियंत्रण का प्रथम आवश्यक तत्व योजना बनाना है। योजना के अभाव में व्यवसाय-व्यवसाय ही नहीं रहता। योजना एक पथ प्रदर्शक के समान है जो सबको मार्ग दर्शन एवं निर्देश प्रदान करती है।

2) उचित संचालन नीति (Proper Operating Policy): नियंत्रण को सरल बनाने के लिए कुछ उचित संचालन नीतियाँ बनाना भी जरूरी है। ये नीतियाँ लिखित हो सकती हैं परन्तु उन्हें व्यावहारिक होना आवश्यक है। ये नीतियाँ विस्तृत भी होनी चाहिए। ऐसी नीतियों के निर्माण में उच्च प्रबन्धकों की पूर्ण सहमति होनी चाहिए तथा संस्था की नीतियाँ संस्था के व्यक्तियों को ज्ञात भी होनी चाहिए।

(3) अधिकारों का प्रत्यायोजन या विकेन्द्रीकरण (Delegation or Decentralisation of Authority): एक सुयोग्य नियंत्रण व्यवस्था में पर्याप्त रूप से अधिकारों का प्रत्यायोजन एवं विकेन्द्रीकरण किया जाता है। इसके द्वारा संस्था के प्रमुख कार्यों को शीघ्रता एवं कुशलता से किया जा सकता है।

(4) संगठन की संरचना (Organisational Structure): यदि नियंत्रण व्यवस्था को प्रभावशाली बनाना है तो यह भी आवश्यक है कि संगठन की संरचना सुदृढ़ होनी चाहिए। अच्छी संगठन संरचना के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं दायित्व का स्पष्ट विभाजन किया जा सकता है और उनके क्रियान्वयन की उचित व्यवस्था की जा सकती है। अन्य स्टाफ के मध्य भी सम्बन्धों का निर्धारण संगठन के द्वारा ही संभव होता है।

(5) संदेशवाहन (Communication): संस्था में कुशल संदेशवाहन स्थापित होना चाहिए। इसके अभाव में कुशल नियंत्रण स्थापित नहीं किया जा सकता। संस्था की भावी योजनाओं के मूल्यांकन में संवादवाहन ही काम आता है। इसी के द्वारा प्रबन्धक यह ज्ञात कर पाता है कि योजना सही चल रही है या नहीं। संदेशवाहन से नियंत्रण के कार्यों में महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होता है।

(6) अधिकार एवं दायित्व में संतुलन (Balance between Authority and Responsibility): यह भी आवश्यक है कि अधिकार और दायित्वों में परस्पर उचित संतुलन स्थापित हो। इसके अभाव में नियंत्रण स्थापित करना कठिन हो जाता है। दायित्वों को अधिकारों के समरूप ही सौंपना चाहिए।

(7) कार्य प्रणालियाँ (Procedures): नियंत्रण में एकरूपता और प्रभावशीलता लाने के लिए संस्था में कार्य प्रणालियाँ निश्चित कर देना चाहिए।

(8) नियंत्रक की योग्यता (Ability of Controller) नियंत्रण की सफलता वास्तव में नियंत्रक की योग्यता पर निर्भर रहती है। नियंत्रक को चाहिए कि वह अपने कार्यों में मानवीय दृष्टियों को ध्यान में रखे।

13.5 नियंत्रण की प्रमुख विशेषताएँ (Essential Characteristics of Control)

(1) अंतिम क्रिया (End function) नियंत्रण क्रिया का प्रारम्भ प्रबन्ध की अन्य क्रियाओं के पश्चात् होता है। पर यह प्रबन्ध की अन्य क्रियाओं के निष्पादन की जाँच करता है। और सर्वोत्तम परिणामों को प्राप्त करने के लिए उनमें समन्वय को स्थापित करता है। इस प्रकार नियंत्रण, प्रवन्ध की अन्य क्रियाओं की कुशलता को नियंत्रित करता है।

(2) यह प्रबन्धक का कार्य है (Control is the function of management): नियंत्रण करना प्रबन्धक का कार्य है। इसे प्रबन्धक की ओर से कोई अन्य पूरा नहीं कर सकता।

(3) यह सभी स्तरों पर लागू होता है (It is exercised at all levels): नियंत्रण सभी स्तरों पर किया जाता है। परन्तु अन्तिम नियंत्रण करने का अधिकार उच्चस्तरीय प्रबन्धक को ही होता है। विभागीय प्रबन्धक अपने विभागों का नियंत्रण करते हैं जबकि निरीक्षण तथा फोरमैन कार्य करने वाले व्यक्तियों पर नियंत्रण करते हैं। उच्च प्रबन्धक अशासकीय नियंत्रण करते हैं।

मध्य वर्गीय प्रबन्धकों की नियंत्रण की समस्यायें संस्था की नीति के क्रियान्वयन से सम्बन्धित होती है जबकि निम्न वर्गीय प्रबन्धकों के नियंत्रण की समस्या कार्य संचालन से सम्बन्धित होती है।

(4) नियंत्रण एक सतत् क्रिया है (It is a continuous process): नियंत्रण हमेशा जारी रहता है। इसके माध्यम से उद्देश्यों, योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों, विधियों आदि पर निरन्तर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यह कभी समाप्त नहीं होता।

(5) यह भविष्योन्मुख होता है (It is proforward-looking): नियंत्रण भविष्य से सम्बन्धित होता है अर्थात भूतकाल की क्रियाओं का नियंत्रण नहीं होता। भविष्य की क्रियाओं का नियंत्रण भूतकाल के आधार पर होता है। भविष्य में भूतकाल की गलतियों को सुधारा जाता है। भूतकाल भविष्य के नियंत्रण को आधार प्रदान करता है।

(6) नियंत्रण व्यक्तियों पर नहीं होता नियंत्रण व्यक्तियों पर न होकर सामग्री, मशीनों तथा उत्पादन व अन्य निर्जीव साधनों पर किया जाता है।

(7) नियंत्रण व हस्तक्षेप भिन्न-भिन्न नियंत्रण कार्य कुशलता बढ़ाने एवं सुधार करने के लिए किया जाता है। जबकि हस्तक्षेप से कार्य कुशलता में बाधा होती है।

(8) नियंत्रण नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही होता है: नियंत्रण नकारात्मक और सकारात्मक दो रूप से प्रयोग में आता है। नकारात्मक (Negative) नियंत्रण का उद्देश्य उपक्रम के साधनों का समुचित प्रयोग करना होता है। सकारात्मक (Positive) नियंत्रण का उद्देश्य साधनों के दुरुपयोग को रोकने से होता है।

(9) नियंत्रण की गति चक्रीय होती है (It is a circular movement): नियोजन, नियंत्रण के लिए आवश्यक क्रिया है। नियंत्रण का प्रारंभ भी नियोजन या उद्देश्यों के निर्धारण से होता है। इन उद्देश्यों से ही कर्मचारियों का

मूल्यांकन किया जाता है। इसी मूल्यांकन के आधार पर आवश्यक सुधार किया जाता है। नई योजना बनाई जाती है। इस प्रकार नियंत्रण की गति चक्रीय होती है।

(10) गत्यात्मक प्रक्रिया (Dynamic Process): एक अच्छी नियंत्रण प्रक्रिया को सदैव लोचपूर्ण होना चाहिए। जिससे उसको व्यवसाय की परिवर्तित परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार ढाला जा सके।

13.6 नियंत्रण की आवश्यकता और महत्व (Need and Importance of Control)

व्यवसाय में नियंत्रण का काफी महत्व है। क्योंकि कुशल नियंत्रण व्यवस्था के विद्यमान होने से व्यवसाय के समस्त कार्य उचित विधि एवं गति से होते हैं। केवल इतना ही नहीं, बल्कि व्यवसाय निर्धारित योजनाओं को प्राप्त कर सरलतापूर्वक उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। जहाँ भी संयुक्त प्रयासों एवं साधनों द्वारा सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति करनी होती है वहाँ पर नियंत्रण एक अनुपेक्षणीय अनिवार्यता है। ज्यों-ज्यों किसी उपक्रम का आकार बढ़ता है, कर्मचारियों की संख्या बढ़ती जाती है तथा कार्य पद्धतियाँ जटिल होती जाती हैं त्यों-त्यों नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व बढ़ता जाता है। नियंत्रण के अभाव में कोई भी प्रबन्धक अपने कार्य को पूरा नहीं कर सकता। नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व के अनेक कारण हैं

(1) नियंत्रण प्रत्यायोजन की प्रक्रिया में सहायक (Helpful in delegation process)- प्रबन्ध को सभी स्तरों पर कुशलता से काम करने के लिए अपने अधीनस्थों को अधिकारों का प्रत्यायोजन करना पड़ता है। इसी प्रत्यायोजन की क्रिया द्वारा वे अधिकारी अपने दायित्वों का निर्वाह कर पाते हैं। परन्तु कार्य किस प्रकार हो रहा है, नियमित रूप से हो रहा है कि नहीं, यह वह नियंत्रण के द्वारा ही देखता है। अतः प्रत्यायोजन के लिए नियंत्रण आवश्यक है।

(2) मनोबल के लिए आवश्यक (Vital for morale) मनोबल संस्था की प्रगति के लिए आवयक समझा जाता है। मेक्फार लैण्ड के शब्दों में, "संस्था के मनोबल एवं शक्ति के लिए नियंत्रण करना आवश्यक है।"

कर्मचारी कभी भी ऐसी स्थिति को पसंद नहीं करते जो नियंत्रण के बाहर हो। अनियंत्रित स्थिति में कर्मचारी अपने भविष्य के बारे में किसी भी बात को सोच नहीं सकते।

(3) नियंत्रण अभिप्रेरणा का साथन है (Means of motivation) नियंत्रण के द्वारा कर्मचारियों को अभिप्रेरित भी किया जा सकता है। इसके द्वारा प्रबन्धक यह पता आसानी से लगा सकता है कि कौन कर्मचारी कुशल है तथा कौन अकुशल, कौन व्यक्ति अच्छा काम करता है तथा कौन कामचोर है। अच्छे कार्यों के लिए कर्मचारियों की प्रशंसा इसी के द्वारा की जा सकती है। अच्छे कार्य न होने पर दंड की व्यवस्था की जा सकती है। अच्छे नियंत्रण के कारण व्यवस्था का वातावरण सौहार्द्रपूर्ण बनता है। इससे अच्छे मानवीय सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

(4) नियंत्रण समन्वय में सहायक (Help in co-ordination) प्रबन्धक के लिए समन्वय आवश्यक होता

है बगैर समन्वय के प्रबन्धक अपने कामों में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। नियंत्रण संस्था में प्रभावशाली समन्वय करने में काफी सहायता करता है। ड्रकर के अनुसार, "नियंत्रण उद्देश्यों एवं साधनों तथा उत्पादन एवं प्रयासों में संतुलन बनाये रखता है।"

(5) नियंत्रण भ्रष्टाचार, चोरी आदि पर रोक लगाता है उपक्रम में होने वाला भ्रष्टाचार, चोरी आदि को

रोकना-व्यवसाय की समृद्धि के लिए आवश्यक है। अनैतिकता से मनोबल गिरता है और कर्मचारियों का आत्मिक व चारित्रिक ह्रास होता है। नियंत्रण के द्वारा इन गतिविधियों पर रोक लगाई जा सकती है। इसके द्वारा

अनुशासनात्मक वातावरण को बनाने में प्रोत्साहन मिलता है व कर्मचारियों की अनैतिक कार्यवाइयाँ भी कम हो जाती हैं।

(6) नियंत्रण कार्य कुशलता बढ़ाता है- नियंत्रण के होने से कर्मचारियों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। वे अपना काम निश्चित समय में ही पूरा नहीं कर लेते बल्कि प्रबन्धक को भी इसका मूल्यांकन करने में सुविधा होती है जिससे कर्मचारियों की कार्य कुशलता बढ़ जाती है।

(7) नियंत्रण जोखिम से सुरक्षा प्रदान करता है नियंत्रण को जोखिम से सुरक्षा प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। इसके द्वारा संस्था की प्रत्येक क्रिया की जाँच होती है व त्रुटियों का पता लगाया जाता है। इन्हें दूर करने के उपाय व कदम उठाये जाते हैं। यह जोखिम से बचाकर सुरक्षा प्रदान करता है। प्रभावपूर्ण नियंत्रण से कार्य करने में जोखिम समाप्त हो जाता है।

(8) निर्णय लेने में आवश्यक (Necessary for decision-making) निर्णय लेना एवं नियंत्रित करना एक दूसरे से निकट रूप से सम्बन्धित है। विद्वानों का यह मानना है कि उच्च अधिकारियों के निर्णय नियंत्रण ही होते हैं।

उपर्युक्त बातों के सिवाय कुछ और भी ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ नियंत्रण का महत्व है। जैसे नियंत्रण के द्वारा लागत में कमी होती है। यह प्रबन्ध का एक आवश्यक अंग है। व्यवसाय के सतत बढ़ते हुए आकार एवं जटिलतायें नियंत्रण के महत्व को बढ़ा देती हैं। यह वर्तमान परिवर्तनशील वातावरण में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यह नेतृत्व को सफल भी बनाता है।

13.7 नियंत्रण की सीमायें (Limitations of Control)

नियंत्रण प्रबन्ध का महत्वपूर्ण कार्य ही नहीं है वरन् एक आवश्यक क्रिया है। परन्तु इसके बावजूद इस क्रिया की कुछ सीमायें हैं। ये इस प्रकार हैं :

(1) आंतरिक क्रियाओं से सम्बन्ध नियंत्रण का संबंध संस्था की सिर्फ आंतरिक क्रियाओं से होता है। संस्था के बाहर की क्रियायें इसके क्षेत्र में नहीं आती। जैसे

सरकारी नीति तथा अन्य व्यापारियों के व्यवहार आदि पर संस्था का कोई नियंत्रण नहीं होता और इसलिए ऐसे कार्य इसकी सीमा में नहीं आते।

(2) मानकों (Standards) के निर्धारण की कठिनाई नियंत्रण हमेशा किसी कार्य की प्रभाव से तुलना करता है। परन्तु संगठन या संस्था के सभी कार्यों को मापना संभव नहीं होता है और इसलिए इनके प्रभावों को भी निश्चित नहीं किया जा सकता। इस कारण उचित नियंत्रण रखना संभव नहीं हो पाता। जैसे कर्मचारियों की लगन, स्वामि भक्ति तथा मनोबल आदि का कोई प्रभाव नहीं होता और इसलिए ये कार्य इसके नियंत्रण में नहीं आते।

(3) व्यक्तिगत उत्तरदायित्व में कठिनाई व्यवसाय के कार्य कई स्थितियों में एक से अधिक बार किये जाते हैं। यदि इस कार्य में त्रुटि या नियंत्रण के द्वारा जाँच करनी हो तो यह ज्ञात करना कठिन होता है कि इस त्रुटि के लिए कौन व्यक्ति जिम्मेदार या उत्तरदायी है। अर्थात् नियंत्रण सामूहिक कार्यों के निष्पादन में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को निर्धारित नहीं कर पाता। इसकी प्रभावशीलता अधीनस्थों के उत्तरदायित्वों पर निर्भर रहती है।

(4) सुधारात्मक प्रयास करना संभव न होना नियंत्रण करने के लिए गलतियों अथवा त्रुटियों का पता तो लगा लिया जाता है परन्तु इनको दूर दूर करने के लिए सुधार के उपाय करना संभव नहीं हो पाता। अतः नियंत्रण की उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

(5) व्ययपूर्ण (Expensive) नियंत्रण को संस्था की विभिन्न क्रियाओं में लगाने के लिए काफी धन व्यय करना पड़ता है। यह इतना अधिक हो जाता है कि संस्था इसे वहन नहीं कर पाती। कभी-कभी खर्च किये गये धन का दुरुपयोग हो जाता है। अतः नियंत्रण की विधि लागू करते समय उससे प्राप्त लाभों की तुलना में व्यय अथवा लागत पर ध्यान देना जरूरी हो जाता है।

13.8 नियंत्रण के प्रकार (Types of Control)

नियंत्रण कई प्रकार का हो सकता है। जैसे भौतिक नियंत्रण, आर्थिक नियंत्रण। भौतिक नियंत्रण में उत्पादन का परिणाम, श्रमिकों का कार्य भार आदि आते हैं। आर्थिक नियंत्रण में आगम, लागत व्यय आदि सम्मिलित होते हैं। इस आधार पर नियंत्रण को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है:

(1) प्रबन्धकीय नियंत्रण (Management Control)

(2) बजट नियंत्रण (Budgetary Control)

(3) लागत नियंत्रण (Cost Control)

(1) प्रबन्धकीय नियंत्रण (Management Control): इसके अंतर्गत कई प्रकार के क्षेत्र सम्मिलित होते हैं।

जैसे-

(अ) नीति एवं आयोजन का नियंत्रण।

(ब) संगठन संरचना पर नियंत्रण।

(स) उत्पादन, मात्रा एवं किस्म नियंत्रण ।

(द) कर्मचारी चयन, पद स्थापना, कार्य, आवंटन, अनुशासन नियंत्रण ।

(इ) वेतन एवं मजदूरी नियंत्रण ।

(फ) कार्य प्रणाली नियंत्रण ।

(म) शोध एवं विकास नियंत्रण ।

(क) आंतरिक एवं बाह्य सम्बन्ध नियंत्रण ।

(ख) आयोजन, क्रियान्वयन, मूल्यांकन एवं पुनरावलोकन ।

(2) बजट नियंत्रण (Budgetary Control): यह नियंत्रण बजट से सम्बन्धित होता है। इसमें

(अ) मुख्य बजट ।

(ब) विक्रय बजट।

(स) सामग्री वजट।

(द) श्रम बजट ।

(3) प्रशासन-व्यय बजट ।

(म) वित्तीय व्यय बजट, सम्मिलित हैं।

(3) लागत नियंत्रण (Cost Control): इस प्रकार के नियंत्रण में

(अ) मूल लागत।

(ब) कारखाना लागत ।

(स) उत्पादन लागत ।

(द) कुल लागत सम्मिलित होते हैं।

नियंत्रण के उपर्युक्त विभिन्न प्रकारों में बजट नियंत्रण और लागत नियंत्रण विशेष रूप से महत्वपूर्ण समझे जाते हैं।

13.9 नियंत्रण के स्तर (Control of Levels)

किसी व्यावसायिक इकाई में नियंत्रण व्यवस्था को प्रभावशील बनाने के लिए निम्नलिखित स्तर होना आवश्यक माना जाता है:

(1) उद्देश्यों की स्पष्ट एवं सरल व्यवस्था (Easy and clear definition of objectives): -संस्था के उद्देश्यों को भली-भाँति स्पष्ट करना चाहिये। नियंत्रण व्यवस्था को सफल बनाने के लिए यह एक आवश्यक कदम है। क्योंकि नियंत्रण के अन्तर्गत हमें निश्चित प्रभावों से विचलनों की जानकारी लेनी पड़ती है जो बिना स्पष्ट व्याख्याओं के संभव नहीं हो पाती। इन उद्देश्यों में सभी प्रकार की क्रियाओं का समावेश होना चाहिये।

(2) महत्वपूर्ण नियंत्रण बिन्दु (Strategic Points of Control): सामान्यतः नियंत्रण को सम्पूर्ण संगठन संरचना में सर्वत्र फैलाया नहीं जा सकता है। इस प्रकार नियंत्रण अव्यावहारिक तथा व्ययशील होता है। अतः इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दुओं का निर्धारण करना जरूरी है। ये बिन्दु नियंत्रण के केन्द्र बिन्दु कहे जाते हैं।

(3) पर्याप्त लोच का होना (Flexibility): नियंत्रण व्यवस्था में परिवर्तनशीलता होनी चाहिये। ऐसा इसलिए क्योंकि प्रभाव व परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं रहती हैं। कई अच्छी योजनायें विशेष अवसरों के उत्पन्न होने पर असफल हो जाती हैं। नियंत्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये, जिससे आवश्यकताओं और अवसरों के अनुरूप इसे डाला जा सके। हेमैन ने ठीक कहा है कि, "एक अच्छी नियंत्रण व्यवस्था को गत्यात्मक होना चाहिये तथा व्यावसायिक जगत में होने वाले सतत परिवर्तनों से समता बनाये रखना चाहिये।"

(4) संगठन संरचना के अनुरूप होना (Follow Organisational Structure) चूँकि संगठन संरचना के द्वारा प्रबन्ध के समस्त कार्य संपन्न किये जाते हैं इसलिए नियंत्रण व्यवस्था को इस संगठन के अनुरूप बनाया जाना चाहिये। हेमैन के अनुसार,

"संगठन और नियंत्रण अलग-अलग नहीं किये जा सकते, यदि प्रभावशाली नियंत्रण करना है तो दोनों एक-दूसरे के बिना ठीक कार्य नहीं कर सकते। नियंत्रण व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने का अर्थ है उसकी विभिन्न समसयाओं को समुचित रूप से हल करना। जैसे कौन नियंत्रण करेगा, कौन सूचनायें देगा, और कौन किसे नियंत्रित करेगा आदि। इससे ही संगठन की योजनायें सफल हो सकती हैं।"

(5) मितव्ययिता (Economy): नियंत्रण व्यवस्था में मितव्ययिता का गुण होना चाहिए। वह ऐसा न हो कि इसके न होने में जो हानि होती है उससे अधिक इस पर व्यय होवे। इस पर खर्च की राशि उचित हो। बर्बादी को रोकना चाहिए। छोटा व्यवसायी साधारण व्यवस्था ही अपनाता है जबकि बड़े व्यवसायी नियंत्रण की विस्तृत पद्धति अपनाते हैं।

(6) प्रति पुष्टि (Feed back): कोई नियंत्रण व्यवस्था तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि वह वास्तविक रूप में एकत्रित सूचनाओं के आधार पर नियोजित न हो। वास्तव में सुधारात्मक उपायों को तब तक नहीं बताया जा

सकता जब तक कि उसके समक्ष त्रुटियों या कमजोरियों या विचलनों को नहीं रखा जाता। स्वतः नियंत्रण व्यवस्था के लिए भी कई यांत्रिक सुविधाओं का प्रयोग किया जाता है।

(7) सुझावात्मक (Suggestive): नियंत्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो सुधारात्मक कार्यवाही को निर्देशित करे। इसके माध्यम से यह शीघ्र ज्ञात होना चाहिए कि प्रगति में क्या कमी है, कमी के लिए कौन सा व्यक्ति या समूह उत्तरदायी है और वह कमी किस प्रकार से दूर की जा सकती है।

(8) कमजोर बिन्दुओं को सुदृढ़ किया जाना (Strengthening of the weak points): संगठन के कमजोर बिन्दु सम्पूर्ण व्यवसाय एवं संस्था के लिए दुखदायी होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि नियंत्रण व्यवस्था में इन कमजोर बिन्दुओं को दूर करने की शक्ति होनी चाहिए अथवा संगठन के इन बिन्दुओं को पहले से सही कर लेना चाहिए, जिससे नियंत्रण प्रभावी बन सकेगा।

(9) समय नियंत्रण का महत्वपूर्ण तत्व (Time is an important element of control) : इसका तात्पर्य है कि संगठन की सारी क्रियायें बिना विलम्ब के समय अनुकूल चलनी चाहिए। इससे समय पर लक्ष्यों की प्राप्ति हो सकेगी और नियंत्रण को सफलता प्राप्त होगी। जहाँ प्रबंध की क्रियाओं में समय को ध्यान में रखा जाता है, वहाँ प्रायः नियंत्रण प्रभावशील रहता है। यदि समय से काम नहीं होगा तो नियंत्रण की क्रियायें अस्तव्यस्त हो जायेगी।

(10) नियंत्रण निरन्तर प्रक्रिया है (Control is a Continuous Process): नियंत्रण एक निरन्तर प्रक्रिया कही जाती है। यह सदैव गतिमान रहनी चाहिये। कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल के शब्दों में, "जिस प्रकार एक जहाज चालक अपने यंत्रों के द्वारा निरन्तर यह देखता रहता है कि उसका जहाज ठीक दिशा में गंतव्य स्थान की ओर जा रहा है ठीक उसी प्रकार एक व्यावसायिक प्रबन्धक को भी अपने नियंत्रण तन्त्र द्वारा निरन्तर यह देखना चाहिये कि उसका उपक्रम अथवा विभाग सही दिशा की ओर चल रहा है।"

(11) नियन्त्रण विधि समझने योग्य होनी चाहिये (It should be understandable): -नियन्त्रण से सही फायदा लेने के लिये इसे सरल व समझने योग्य होना चाहिये। इसका तात्पर्य है इसे नियंत्रक (Controller) और नियन्त्रित (Controlled) दोनों आसानी से समझ सकें। नियंत्रण विधियों के जटिल होने से उनसे सम्बन्धित परिणाम प्राप्त नहीं होते ।

(12) मानवीय दृष्टि को ध्यान में रखना (Human factor consideration): नियन्त्रण व्यवस्था में मानवीय स्वभाव का ध्यान रखना चाहिये। अधिकतर यदि कर्मचारी त्रुटियों के लिये दंडित किये जाते हैं तो वे सूचनायें या रिपोटों को देते ही नहीं। ऐसा बता दिया जाता है कि सभी ठीक चल रहा है। सूचनाओं का यदि उपयोग न हो तो कर्मचारी भी इसे देने में आलस्य करते हैं। इनकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है।

(13) भविष्यदर्शी (Forward looking): एक प्रभावी नियन्त्रण व्यवस्था में वास्तविक निष्पादन के नियोजित कार्यमान से, संभावित विचलनों का अनुमान लगाने की भी व्यवस्था होनी चाहिये। इससे भविष्य की जोखिमों से बचा जा सकेगा।

13.10 नियन्त्रण-प्रक्रिया (Control Process)

नियन्त्रण की प्रक्रिया से तात्पर्य उस प्रकार की क्रिया से है, जिसमें कार्य करने के लिए उपयुक्त प्रभावों का निर्धारण किया जाता है। वास्तविक कार्य प्रगति की प्रभावों से तुलना की जाती हैं और यदि वास्तविक कार्य प्रगति अर्थात् निष्पादन निर्धारित प्रभावों से भिन्न है तो इसकी जाँच करके आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। जूरन (Juran) के अनुसार, एक नियन्त्रण प्रक्रिया निम्न स्तरों से युक्त होनी चाहिये :

(1) नियन्त्रण के बिन्दुओं का चुनाव,

(2) माप की इकाइयों की परिभाषा,

(3) वास्तविक कार्यों का विधिवत मापन एवं संक्षिप्तीकरण,

(4) कार्यों के परिकार्यों का चुनाव,

(5) प्रभाव एवं वास्तविक कार्यों के अन्तर के कारणों को ज्ञात करना,

(6) क्या कार्य करना है इसका निर्णय लेना,

(7) निर्णय के अनुसार कार्य करना।

श्री लेम्स एल. पिर्स ने इस प्रक्रिया को केवल निम्नलिखित तीन स्वरों में ही विभाजित किया है:

(1) नियोजन करना,

(2) वास्तविक कार्यों की योजनाओं से तुलना करना एवं रिपोर्ट देना, तथा

(3) निर्णय लेना एवं कार्य करना।

इन आधारों पर नियन्त्रण की प्रक्रिया को निम्न चार प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है:

(1) प्रकार्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण (Establishment of Standards and goals) 1

(2) कार्यों का मूल्यांकन (Appraisal of Performance)

(3) विचलन के कारणों को ज्ञात करना (Determining reasons for deviation) |

(4) सुधारात्मक कार्यवाही (Corrective action) I

(1) प्रकार्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण (Establishement of Standards & goals)- चूँकि प्रमापों का प्रयोग मापदंड के रूप में किया जाता है, इसलिए इनका पूर्व निर्धारण करना जरूरी हो जाता है। इनके निर्धारण पर ही नियन्त्रण प्रक्रिया संभव हो पाती है। कूष्ट्ज एवं ओ'डोनेल ने लिखा है कि, "प्रमाप निश्चित कसौटी होते हैं जिनसे वास्तविक कार्य को मापा जा सकता है। वे उपक्रम अथवा विभाग के नियोजित लक्ष्यों को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं

जिससे कि निर्धारित कर्तव्यों की पूर्ति को इन लक्ष्यों के सम्पर्क से मापा जा सके।"

प्रकार्यों का निर्धारण व्यवसाय के उद्देश्यों जैसे लाभ में वृद्धि, ख्याति या वित्तीय सुदृढ़ता आदि को ध्यान में रखकर किया नाता है। इससे यह भली-भाँति ज्ञात हो जाता है कि कार्य ठीक प्रकार से चल रहा है या नहीं।

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के लक्ष्यों की पूर्ति का उत्तरदायित्व उपक्रम में कुछ निश्वित व्यक्तियों पर होना चाहिये जिससे कि निष्पादन की किसी त्रुटि के लिए व्यक्तिगत उत्तरदायित्व निर्धारण करने में सुगमता हो सके।

(2) कार्यों का मूल्यांकन करना (Appraisal Performance)-इस प्रक्रिया में वास्तविक परिणामों का निर्धारित प्रमापों से मूल्यांकन किया जाता है। इससे यह पता चल जाता है कि समस्त कार्य नियोजन के आधार पर प्रमाप की ओर आगे बढ़ रहा है या नहीं। यदि परिणाम आपके अनुकूल नहीं है तो इसकी सूचना प्रबंधकों को दे देनी चाहिये। इससे समय पर सुधार संभव हो सकेगा। इस मूल्यांकन में दो का क्रियायें सम्मिलित होती हैं, प्रथम निष्पादन का आँकना तथा द्वितीय प्रभावों से उसकी तुलना करना। निष्पादन के आँकने कार्य यद्यपि कठिन होता है परन्तु निरीक्षण, पर्यवेक्षण, तथा प्रतिवेदन, साम्यान्तरिक रिपोर्ट्स, जाँच तथा अंकेक्षण आदि के द्वारा किया जा सकता है।

(3) प्रमापों तक नहीं पहुँचने के कारणों को ज्ञात करना(Finding out reasons for not reaching the standards)-कार्य निष्पादन तथा प्रमापों के बीच के अन्तर के कारणों का पता लगाना, प्रबंधकीय नियंत्रण के लिए आवश्यक होता है। इसमें यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है कि जो अन्तर आया है उस अन्तर के पीछे क्या कारण हैं। गलती कहाँ हुई है, योजना बनाने में या उसके कार्यान्वयन में। इसे विचलन के कारणों, उसके प्रमापों एवं

विस्तृतता पर ध्यान देना चाहिये। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि मूल्यांकन के द्वारा माप में सुधार किस प्रकार किया जा सकता है।

(4) सुधारात्मक कार्य (Corrective action)-यह नियन्त्रण प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। जब वास्तविक कार्य प्रभाव से एक निश्चित विचलन सीमा से अधिक हो जाते हैं तो प्रभावों में सुधारात्मक कार्य करने पड़ते हैं। यह नियंत्रण का सार है। ये सिर्फ गलती के सुधार के लिए ही नहीं होते वरन् गलती को रोकने के लिए भी होते हैं।

सुधारात्मक कार्यवाही की प्रकृति एक कार्य से दूसरे कार्य से पृथक हो सकती है क्योंकि यह विचलनों के कारणों पर आधारित होती है। विचलनों की प्रकृति के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र कर्मचारियों के उपयुक्त प्रशिक्षण एवं निर्देशन की व्यवस्था करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के मनोबल को भी प्रोत्साहित करना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी कर्मचारियों में उत्साह की कमी के कारण प्रभाव एवं निष्पादन में अन्तर आ जाता है। मनोबल को प्रोत्साहित करने के लिए अतिरिक्त पारितोषण, बोनस, सार्वजनिक प्रयत्न आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। कभी-कभी दोषपूर्ण मशीनरी एवं कार्य करने की असंतोषजनक दशायें भी विचलनों के कारण हो सकते हैं। इन्हें दूर करने का प्रयाप्त करना चाहिए।

13.11 सार संक्षेप

नियंत्रण (Controlling) प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण कार्य है जो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करता है। यह प्रक्रिया मानकों के निर्धारण, प्रदर्शन का आकलन और आवश्यक सुधारात्मक कार्रवाई के माध्यम से कार्यान्वित होती है। नियंत्रण की आवश्यकता इसलिए होती है ताकि संसाधनों का प्रभावी उपयोग हो और संगठनात्मक लक्ष्यों को समय पर प्राप्त किया जा सके। नियंत्रण की प्रकृति प्रबंधकीय, निरंतर और गतिशील होती है। नियंत्रण के विभिन्न स्तर जैसे रणनीतिक, सामरिक और परिचालनिक स्तर संगठन की

समग्र कार्यक्षमता को बढ़ाने में मदद करते हैं। हालाँकि, नियंत्रण में बाधाएँ जैसे मानवीय त्रुटियाँ, व्यय, और समय की सीमाएँ भी मौजूद होती हैं।

स्वप्रग-ति प्रश्न

1. नियंत्रण प्रक्रिया का अंतिम चरण क्या है?
   A. मानकों का निर्धारण
   B. प्रदर्शन का मूल्यांकन
   C. सुधारात्मक कार्रवाई
   D. समीक्षा

2. नियंत्रण की प्रकृति में निम्नलिखित में से कौन-सा शामिल नहीं है?
   A. गतिशीलता
   B. निरंतरता
   C. पूर्णता
   D. उद्देश्यपूर्ण

3. नियंत्रण ________ प्रक्रिया का अंतिम चरण है।

4. नियंत्रण प्रक्रिया में मानकों का ________ आवश्यक होता है।

5. ________ नियंत्रण भविष्य में संभावित समस्याओं को रोकने पर केंद्रित है।

13.12 मुख्य शब्द

1. **नियंत्रण (Control)**: प्रबंधन का कार्य, जो मानकों के अनुरूप प्रदर्शन सुनिश्चित करता है।

2. **नियंत्रण प्रक्रिया (Controlling Process)**: मानकों का निर्धारण, प्रदर्शन का मूल्यांकन, और सुधारात्मक कार्रवाई।
3. **नियंत्रण के प्रकार (Types of Control)**: पूर्वनियंत्रण-, समकालीन नियंत्रण और पश्चनियंत्रण।-
4. **नियंत्रण के स्तर (Levels of Control)**: रणनीतिक, सामरिक और परिचालनिक।
5. **सीमाएँ (Limitations)**: नियंत्रण प्रक्रिया की व्यावहारिक चुनौतियाँ।

13.13 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: C

उत्तर 2: C

उत्तर 3: प्रबंधन

उत्तर 4: निर्धारण

उत्तर 5: पूर्वनियंत्रण-

13.14 संदर्भ सूची (References)

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2021). *Management*. Pearson Education.

Ghuman, K., & Aswathappa, K. (2020). *Management: Concepts and Practices*. McGraw Hill Education.

Mintzberg, H. (2019). *The Structuring of Organizations*. Prentice Hall.

Sharma, R. K. (2022). *Communication in Management*. Kalyani Publishers.

Gupta, C. B. (2018). *Business Communication: Concepts and Cases*. Sultan Chand & Sons.

13.15 अभ्यास प्रश्न

1. नियंत्रण की परिभाषा दीजिए। नियंत्रण की विशेषताएँ एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए।

2. नियन्त्रण से आप क्या समझते हैं? नियन्त्रण के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

3. नियन्त्रण क्या है? नियन्त्रण प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

4.नियन्त्रण की परिभाषा दीजिए। इसकी विशेषताओं, प्रमुख लाभों एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।

5. नियन्त्रण क्या है? नियन्त्रण पद्धति के प्रमुख लाभों व सीमाओं की विवेचना कीजिए।

6. प्रबन्धकीय नियन्त्रण से आप क्या समझते हैं? एक बड़ी निर्माणी संस्था के लिए आप किस प्रकार नियन्त्रण प्रणाली की स्थापना करेंगे?

7. नियन्त्रण के महत्व तथा सीमाओं की विवेचना कीजिए।

8. नियन्त्रण की प्रकृति, उद्देश्य एवं महत्व की विवेचना कीजिए।

9. नियन्त्रण से आप क्या समझते हैं? आधुनिक प्रबन्ध में इसके महत्व को समझाइये ।

इकाई -14

प्रबन्धकीय नियन्त्रण की तकनीकें
(TECHNIQUES OF MANAGERIAL CONTROL)

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 परम्परागत तकनीक

14.4 आधुनिक तकनीक

14.5 बजट नियन्त्रण के उद्देश्य

14.6 बजट नियन्त्रण के लाभ

14.7 बजट नियन्त्रण की सीमायें

14.8 प्रबन्ध का 'Z' सिद्धान्त: अवधारणा

14.9 सार संक्षेप

14.10 मुख्य शब्द

14.11 संदर्भ सूची

14.12 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रबन्धकीय नियन्त्रण का कार्य प्रबन्धक द्वारा किसी संस्थान के वास्तविक परिणाम एवं इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी उपकरण की भाँति सुधार के प्रयत्न किये जाते हैं। नियन्त्रण की तकनीकों को निम्न तीन भागों में विभक्त करके अध्ययन किया जा सकता है-

(1) परम्परागत तकनीक (Traditional Techniques)

(2) आधुनिक तकनीक (Modern Techniques)

(3) अन्य तकनीक (Other Techniques)

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

परम्परागत और आधुनिक नियंत्रण तकनीकों की समझ विकसित कर सकें।

बजट नियंत्रण के उद्देश्य, लाभ, और सीमाओं का विश्लेषण कर सकें।

प्रबंधन के 'Z' सिद्धांत की अवधारणा को समझ सकें।

14.3 परम्परागत तकनीक (Traditional Techniques)

प्रबन्ध की विकास अवस्था में प्रबन्धकीय नियन्त्रण की जो भी तकनीके अपनायी गईं, उन तकनीकों की मुख्य रूप से अवधारणा यह थी कि बिना अनुशासन के संस्था में कार्यरत कर्मचारी आलसी एवं कामचोर हो जाता है। इस प्रकार कर्मचारी में प्रबन्ध के प्रति उत्तरदायित्व की भावना समाप्त हो कर गैर जिम्मेदार हो जाता है। अतएव काम करने, एवं उत्तरदायित्व की भावना जागृत करने की दृष्टि से उन पर प्रतिबन्ध एवं नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। कर्मचारियों को भय, दण्ड एवं अन्य प्रतिबन्धों से नियन्त्रित किया जाता है, जिससे वे स्वतंत्रता महसूस न कर सकें। नियन्त्रण से। कर्मचारी अपने निर्णयों

को उच्चाधिकारियों के समक्ष प्रकट नहीं करते बल्कि कर्मचारी संगठन के निर्णयों को ही स्वीकार कर लेते हैं।

परम्परागत तकनीकों के अन्तर्गत प्रमुख दोष परिलक्षित होते हैं जो निम्न हैं-

(1) कर्मचारियों का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

(2) वे भयभीत होकर कार्य करते हैं।

(3) उनकी कार्य क्षमता एवं निर्णय क्षमता मन्द हो जाती है।

(4) उन्हें नौकरी का खतरा सदैव बना रहता है।

(5) वे अनुत्पादक हो जाते हैं।

(6) वे न्यूनतम स्तर पर कार्य करने का प्रयास करते हैं।

(7) कर्मचारियों के मनोबल एवं सूजन शक्ति पर गहरा असर पड़ता है।

(8) वे अपनी ओर से कोई सुझाव नहीं देते।

प्रबन्ध नियन्त्रण को परम्परागत तकनीकों के उठते दोषों को दूर करने के निम्न सुझाव इस प्रकार है: (1) कर्मचारियों के साथ संचार प्रभावशाली होना चाहिये। नियन्त्रण तकनीकों की सूचना तथा कार्यमापन के सन्दर्भ में जानकारी प्रदान करना चाहिये।

(2) नियन्त्रण लक्ष्यों के अनुरूप हो, जिससे कर्मचारियों की सहभागिता बनी रहे।

(3) प्रबन्ध को निःसंदेह कार्य की क्षमता पर जोर देना चाहिये।

(4) कर्मचारी अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिये स्वर्य प्रयत्नशील रहें।

(5) नियन्त्रणों का यथा समय पुनरीक्षण किया जाना चाहिये एवं आवश्यकता के आधार पर उसमें संशोधन किया जाना चाहिये।

(6) कर्मचारियों को समय-समय पर प्रशिक्षण देना एवं रोजगार की सन्तुष्टि पर ध्यान देना चाहिये।

14.4 आधुनिक तकनीक (Modern Techniques)

प्रबन्धकीय नियन्त्रण की दूसरी महत्वपूर्ण तकनीक प्रबन्ध विकास की दृष्टि से आँकड़ों व विभिन्न सूचनाओं पर आधारित हैं। ये ऐसी तकनीकें हैं जो कर्मचारियों के अलावा उपक्रम व संस्था के भौतिक संसाधनों पर भी नियन्त्रण रखती हैं। इस प्रकार की तकनीकें निम्नलिखित हैं :

बजटरी नियन्त्रण (Budgetary Control)

नियन्त्रण की विभिन्न प्रकार की तकनीकों में बजट नियंत्रण सबसे अधिक प्रचलित और महत्वपूर्ण तकनीक कही जाती है। बजट नियंत्रण का तात्पर्य बजट अनुमानों तथा वास्तविक परिणामों में तुलना करने की प्रक्रिया से है। हम जानते हैं कि बजट व्यापारिक संस्थान का एक महत्वपूर्ण अंग है। इससे व्यवसायी को अपने व्यापार को नियमित करने तथा उसकी कुशलता बढ़ाने में बहुत सहायता मिलती है। व्यापार की लाभदायकता अधिकतर सही बजट बनाने और बजट नियंत्रण पर ही निर्भर रहती है।

बजट क्रियाविधि का विवरण न होकर चालू योजनाओं के आपेक्षित परिणामों का विवरण है। बजट से तात्पर्य आँकड़ों को एकत्रित करना, भावी योजनाओं को बनाना तथा सभी अनुमानों को संतुलित कार्यक्रम में संगठित करना होता है। वास्तविक आँकड़ों को बजट के आँकड़ों से तुलना करने पर व्यापार को दिया निर्देश दिया जा सकता है और नकारात्मक विचलनों को तुरन्त ठीक किया जा सकता है। इससे न केवल परिणामों के अनुमान ही प्राप्त किये जा सकते हैं वरन् उन परिणामों को प्राप्त करने की क्रिया विधि का भी निर्देश दिया जा सकता है।

इस प्रकार इस क्रिया का उद्देश्य बजट अनुमानों तथा वास्तविक कार्य निष्पादन के बीच विषलनों का पता लगाना तथा उनके कारणों को दूर करना है। बजट बनाना ही बजट नियन्त्रण है।

परिभाषा (Definition)

बजट नियंत्रण की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं। मेरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार, "बजट नियन्त्रण प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। यह वास्तव में नियोजन के हाथों का एक साधन है, जो समन्वय के द्वारा नियंत्रण तक पहुँचता है तथा इन तीनों क्रियाओं नियोजन, समन्वय तथा नियन्त्रण को कसकर एक सूत्र में बाँधता है। मिश्रित नियोजन को आवश्यक बनाकर तथा परिचालन की समस्याओं का पूर्वानुमान लगाकर यह पहले विचार करने को प्रोत्साहन देता है।"

जे.ए. स्कार्ट ने कहा है कि, "बजट नियन्त्रण शब्द प्रबन्धकीय नियन्त्रण तथा लेखा कर्म की पद्धति पर लागू होता है, जिसमें सभी क्रियायें पूर्व अनुमानित और जहाँ तक संभव हो पूर्व नियोजित होती हैं और वास्तविक परिणामों की पूर्वानुमानों तथा नियोजनों से तुलना होती है।"

ग्लेन ए. वैल्श के अनुसार, "बजट नियन्त्रण में बजटों तथा बजट रिपोर्टों का प्रयोग होता है ताकि बजट में निर्दिष्ट लक्ष्यों के संदर्भ में दैनिक क्रियाओं का समन्वय, मूल्यांकन एवं नियन्त्रण निरन्तर किया जा सके।"

इंस्टिट्यूट आफ कास्ट एन्ड वर्क्स एकाउन्टेन्ट्स इंग्लैंड के अनुसार, "बजट नियन्त्रण के द्वारा एक नीति की स्थापना की जाती है और वास्तविक परिणामों की बजट के निश्चित परिणामों से निरन्तर तुलना होती रहती है। इससे व्यक्तियों को व्यवसाय के उद्देश्यों के प्रति अधिक क्रियाशील बनाया जाता है तथा नीतियों के संशोधन का आधार ढूँढ़ा जाता है।"

रिचर्ड डी. इरविन के अनुसार, "बजट नियन्त्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा पता किया जाता है कि क्या किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत वास्तविक परिणामों की सम्बन्धित बजट के आँकड़ों से तुलना की जाती है और फिर या तो निष्पादन को स्वीकार किया जाता है या अन्तर को समाप्त करने के लिए बजट अनुमानों में समायोजन किया जाता है।"

14.5 बजट नियन्त्रण के उद्‌देश्य (Objects of Budgetary Control)

बजट नियन्त्रण का मूल उद्‌देश्य यह पता लगाना होता है कि व्यावसायिक उद्‌देश्यों की प्राप्ति हो रही है या नहीं। यदि नहीं हो पा रही हो तो अन्तर के कारण एवं उपायों को ज्ञात करना। इसका उद्‌देश्य तैयार की गई योजनाओं तथा साधनों में समन्वय स्थापित करना होता है। बजट नियन्त्रण प्रबन्धकों के हाथ में एक ऐसा अस्त्र है जिसके द्‌वारा व्यवसाय एवं उद्‌योग की क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है तथा उद्‌देश्यों की प्राप्ति होती है। बजट नियन्त्रण के प्रमुख उद्‌देश्य इस प्रकार हैं-

(1) नीति निर्धारण में सहायता करना (To determine the business policy) व्यापार की सामान्य नीति निर्धारण करने में बजट नियन्त्रण काफी सीमा तक सहायक होता है। व्यावसायिक नीति की सफलता सही और विश्वसनीय बजटों पर ही निर्भर रहती है। व्यावसायिक नीति निर्धारण करने के लिए आवश्यक आँकड़े बजट द्‌वारा ही उपलब्ध हो सकते हैंध

(2) पूँजी की आवश्यकताओं का निर्धारण करना (To ascertion the Capital requirement): उत्पादन बजट से संस्था की पूँजी की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जा सकता है। कितना धन पूँजीगत सम्पत्तियों पर व्यय किया जायेगा तथा कितना प्रत्यक्ष व्ययों एवं अधिव्ययों पर व्यय होगा इसका निर्धारण सरलता से किया जा सकता है।

(3) लागत लेखों को लाभकारी बनाना (To increase the utility of Cost Records): बजट नियन्त्रण के द्‌वारा परिव्यय लेखे अधिक विश्वसनीय परिणाम देते हैं और लागत लेखों का अधिक लाभकारी रूप से प्रयोग किया जा सकता है।

(4) परिव्यय पर नियंत्रण (To Control Costs): विभिन्न विभागों एवं क्रियाओं के संबंध में पृथक् पृथक् बजट तैयार होने से परिव्यय पर नियन्त्रण

रखा जा सकता है। यदि किसी विभाग में निर्धारित व्यय से अधिक धन खर्च होता है तो उसके कारणों की जाँच कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। इससे न केवल व्यावसायिक व्ययों पर ही नियन्त्रण रखा जा सकता है, बल्कि उत्पादन लागत के विभिन्न तत्वों में भी समन्वय किया जा सकता है। गत वर्षों के तुलनात्मक आँकड़े उपलब्ध होने से क्रय, विक्रय एवं प्रशासन आदि क्षेत्रों के व्ययों में मितव्ययिता करने में सुगमता रहती है।

(5) प्रशासन कार्य की क्षमता में वृद्धि (To increase Administrative efficiency) बजट नियन्त्रण से प्रबन्धकों की प्रशासन कार्य क्षमता बढ़ जाती है। सामयिक बजट द्वारा व्यापारिक नीतियों की कार्य कुशलता का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रशासन को सुव्यवस्थित करके उसकी कार्ग धगदा में सुधार किया वा सकता है।

(6) विकास तथा अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन (To encourage research and development): बजट नियन्त्रण का उद्देश्य व्यवसाय में विकास एवं अनुसंधान की योजनाओं को भी बढ़ावा देना है। इस कार्य में
पूर्व नियोजित लक्ष्यों और वास्तविक विकास के तुलनात्मक अध्ययन से बड़ी सहायता मिलती है। इन सभी उद्देश्यों के सिवाय बजट नियन्त्रण के कुछ अन्य उद्देश्य हैं जैसे अतिपूँजी तथा अल्प पूँजीकरण के

(7) दोषों को दूर करना, संगठन की आंतरिक व्यवस्था तथा बाहरी वातावरण में होने वाले परिवर्तनों को समायोजित करना, निर्धारित प्रभावों से विचलन का पता लगाना तथा उसे दूर करना, इस बात का पता लगाना कि कब तथा किस सीमा तक वित्त की आवश्यकता होगी, साधन उपलब्ध करना इत्यादि इन उद्देश्यों को बजट के द्वारा प्राप्ते किया जा सकता है।

14.6 बजट नियन्त्रण के लाभ (Advantages of Budgetary Control)

बजट नियन्त्रण से संस्थान को कई महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं। इसके द्वारा व्यवसाय के उद्देश्य एवं लक्ष्य भली-भाँति स्पष्ट हो जाते हैं और व्यवसाय के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण होने से प्रगति सुचारु रूप से प्राप्त की जा सकती है। इसके लाभों को नीचे लिखे अनुसार दर्शाया जा सकता है:

(1) यह नीति निर्धारण में सहायक होता है।

(2) इससे परिव्ययों पर नियन्त्रण संभव हो जाता है।

(3) उत्पादन की सभी समस्याओं का पूर्वविवेचन करके ही योजनायें बनाई जाती हैं। योजनाओं के अनुसार कार्य होने पर जटिल से जटिल समस्या भी सरलता से सुलझाई जा सकती है।

(4) व्यवसाय के लक्ष्यों व उद्देश्यों को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।

(5) इसके द्वारा विभिन्न कर्मचारियों पर उत्तरदायित्व डाला जा सकता है। व्यवसाय की सफलता तथा असफलताओं के कारणों का ज्ञान हो सकता है। अनुसंधान एवं व्यवसाय के विकास के लिए आसानी से उचित योजनायें बनाई जा सकती हैं और भविष्य की अनिश्चितता समाप्त की जा सकती है।

14.7 बजट नियन्त्रण की सीमायें (Limitations of Budgetary Control)

बजट नियन्त्रण की कई सीमायें भी हैं जैसे-

(1) मानवीय सीमायें (Human Limitations): बजट नियंत्रण ही सब कुछ नहीं होता। व्यवसाय की सफलता प्रत्येक कर्मचारी के पूर्व सहयोग एवं सक्रिय प्रयास पर निर्भर रहती है। यदि लक्ष्यों की प्राप्ति में सभी प्रबंधकों का सक्रिय सहयोग न मिले तो सफलता प्राप्त नहीं हो पाती।

(2) कुशल प्रबंध (Efficient Management): बजट नियन्त्रण प्रबन्ध का एक साधन है। प्रवन्ध में निर्णय लेने की कला का अपना निजी महत्व है। यदि

प्रबन्धक सही निर्णय लेने से बचना चाहे केवल और बजट नियन्त्रण का सहारा ले तो इससे वांछनीय परिणाम प्राप्त नहीं होते।

(3) सम-विच्छेद विश्लेषण (Break Even Analysis)- सम-विच्छेद विश्लेषण एक ऐसी तकनीक है जो नियोजन करने, लागत नियन्त्रित करने तथा परिचालन मात्रा का निर्धारण करने में प्रयोग में लायी जाती है। इस तकनीक द्वारा उत्पादन के उस बिन्दु या स्तर का पता लगाया जा सकता है जिस पर उपक्रम केवल विक्रय द्वारा अपनी लागतों को पूरा कर पाती है। उस उत्पादन एवं विक्रय स्तर पर उसे कोई लाभ या हानि नहीं होती। उस बिन्दु या स्तर से अधिक क्षमता पर उत्पादन या विक्रय करने से लाभ होता है तथा कम क्षमता पर हानि होती है। सम-विच्छेद विश्लेषण में निम्न कदम उठाये जाते हैं:

स्थिर लागत सम-विच्छेद बिन्दु = प्रति इकाई दत्तांश

इसमें दत्तांश से आशय प्रति इकाई मूल्य तथा प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत के अन्तर से है। जो सर्वप्रथम स्थिर लागत को पूरा करने के काम में लाया जाता है। जिस बिन्दु पर दत्तांश द्वारा स्थिर लागत पूरी कर दी जाती है वही सम-विच्छेद बिन्दु कहलाता है। इसके उपरान्त यह दत्तांश लाभ को प्रदर्शित करता है।

सम-विच्छेद बिन्दु विश्लेषण नियन्त्रण की आसान तथा लोकप्रिय विधि है। इसमें नयी कम्पनियों की दशा में यह पता लगाना भी सम्भव होता है कि क्षमता के किस स्तर पर उसका सम-विच्छेद बिन्दु होगा। जिस कम्पनी का सम-विच्छेद बिन्दु नीचे स्तर पर होता है, उनकी लाभ कमाने की क्षमता अधिक मानी जाती है। सम-विच्छेद विश्लेषण के आधार पर विक्रय नियोजन तथा लागत नियन्त्रण करना सम्भव होता है।

(4) विनियोग प्रत्याय दर (Return on Investment- ROI)- यह तकनीक सर्वप्रथम यू.एस.ए. की डू पोन्ट कम्पनी द्वारा प्रयोग में लायी गयी। इसलिये इसे डू पोन्ट तकनीकी के नाम से भी जाना जाता है। इस तकनीक में निम्न

फार्मूला का प्रयोग करके विनियोग पर प्रत्याय दर ज्ञात की जाती है- विनियोग प्रत्याय दर = शुद्ध लाभ विक्रय × 100

विक्रय X कुल विनियोग

अथवा विक्रय पर लाभ का प्रतिशत विक्रय सम्पत्ति अनुपात

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत विनियोग प्रत्याय दर को बढ़ाने के दो रास्ते हैं प्रथम, विक्रय पर लाभ का प्रतिशत बढ़ाया जाय या विक्रय-सम्पत्ति अनुपात में वृद्धि की जाये। विक्रय सम्पत्ति अनुपात में वृद्धि करने के लिए विनियोग की तुलना में विक्रय-मात्रा में आनुपातिक रूप से अधिक वृद्धि की जाय अथवा विपरीत विक्रय मात्रा स्थिर रखते हुए विनियोग में कमी की जाय। उदाहरण के लिए, यदि कम्पनी का विक्रय पर शुद्ध लाभ 5% है तथा विक्रय सम्पत्ति अनुपात 4 है तो विनियोग पर प्रत्याय दर 20% हुई।

विनियोग प्रत्याय दर तकनीक एक उपक्रम के विभिन्न प्रभार्गो (divisions) या एक प्रबन्ध के अन्तर्गत कार्यरत कई उपक्रमों के वित्तीय निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीक मानी जाती है। इस तकनीक में जहाँ विक्रय पर लाभ का का प्रतिशत वाला भाग उपक्रम की परिचालन दक्षता (operational efficiency) का मूल्यांकन करता है, वहाँ विक्रय-सम्पत्ति अनुपात उपक्रम के भौतिक संसाधनों के सदुपयोग का मूल्यांकन करता है । इस प्रकार इस तकनीक से सम्पूर्ण संगठन कार्यों का मूल्यांकन करके उन पर उचित नियन्त्रण रखा जाना सम्भव होता है।

(5) लाभ-लागत विश्लेषण (Benefit-Cost Analysis) लाभ-लागत विश्लेषण तकनीक नयी परियोजनाओं के मूल्यांकन तथा उन पर नियन्त्रण रखने में प्रयोग की जाती है। इस तकनीक में जब भी कम्पनी कोई नयी परियोजना जैसे विद्यमान क्षमता का विस्तार या आधुनिकीकरण अथवा नवीन उत्पादन का विकास आदि करना चाहती है तो परियोजना का मूल्यांकन वित्तीय तथा सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से किया जाता है। इसमें विभिन्न आँकड़े व

सूचनाओं का संग्रहण व विश्लेषण करके उस परियोजना से सम्बन्धित वस्तु की उत्पादन लागत, विक्रय अनुमान तथा लाभप्रदता की स्थिति का अनुमान संख्यात्मक रूप में लगाया जाता है। इसके साथ ही उस परियोजना से सम्बन्धित सामाजिक लाभ व लागतें भी उसके मूल्यांकन में सम्मिलित कर ली जाती हैं।

जब ऐसी मूल्यांकन रिपोर्ट के आधार पर परियोजना लागू की जाती है तो परियोजना चालू हो जाने पर और उत्पादन का विक्रय होने पर वास्तविक परिणामों की तुलना मूल्यांकन रिपोर्ट से की जाती है। यदि वास्तविक परिणाम अनुमानों की तुलना में असन्तोषजनक पाये जाते हैं तो उन कारणों का पता लगाया जाता है और सुधारात्मक कदम उठाये जाते हैं। इस प्रकार परियोजना लागतों पर नियन्त्रण रखना तथा संसाधनों का सदुपयोग करना संभव होता है। वैसे भी एक उपक्रम के समक्ष जो भी सम्भावित परियोजनाएँ होती हैं, उन सभी का मूल्यांकन करते हैं और उनमें से केवल वे ही परियोजनाएँ लागू की जाती हैं जो सर्वाधिक लाभप्रद हैं। इस प्रकार उपक्रम के संसाधनों का सर्वोच्च उपयोग सम्भव हो पाता है।

(6) प्रबन्धकीय अंकेक्षण (Management Audit)- प्रबन्धकीय अंकेक्षण तकनीक का प्रयोग अभी तक विकसित देशों में होता रहा है परन्तु अब भारत में भी इसका प्रचलन नियन्त्रण तकनीक के रूप में बढ़ रहा है। यह एक उपक्रम या संस्था के प्रवन्ध का रचनात्मक मूल्यांकन है जो सर्वोच्च प्रबन्ध द्वारा विशेष रूप से कराया जाता है।

यह अंकेक्षण टीम संगठन के उद्देश्यों, नीतियों तथा कार्यक्रमों की रचना तथा उनकी व्यवहारिकता की जाँच करती है। इसके साथ ही उपक्रम के मानवीय तथा भौतिक संसाधनों के सदुपयोग के बारे में भी अपनी जाँच करती है। इसके उपरान्त बाहय वातावरण को ध्यान में रखकर लक्ष्यों, आन्तरिक संगठन संरचना आदि में परिवर्तन हेतु सुझाव भी देती है।

प्रवन्धकीय नियन्त्रण की तकनीकों में विभिन्न प्रकार को अन्य तकनीकै प्रबन्ध विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जोकि निम्नांकित हैं

(III) अन्य तकनीकें -

1. रेखीय आयोजन (Linear Programming)
2. क्रियात्मक अनुसन्धान (Operational Research)
3. वितरण संभार-तंत्र (Distribution Logistics)
4.मानव संसाधन लेखांकन (Human Resource Accounts)
5.प्रबन्ध सूचना प्रणाली (Management Information System)
6. अपवाद द्वारा प्रबन्ध (Management by Exception)
7. परियोजना नियन्त्रण (Project Controls)

उक्त तकनीकें किसी उपक्रम अथवा संस्था में व्यक्तिगत अवलोकन एवं निरीक्षण के पूर्व की स्थिति में इस प्रकार को नियंत्रण व्यवस्था आवश्यक होती है।

14.8 प्रबन्ध का 'Z' सिद्धान्त: अवधारणा ('Z' Theory of Management: Concept)

'Z' का सिद्धान्त जापानी प्रबन्ध के अभ्यास को जिसकी वजह से संयुक्त राज्य और अन्य देश उसे स्वीकार करते हैं उसको वृहद पैमाने पर मानते हैं उसकी व्याख्या करता है।

इस सिद्धान्त की यह अवधारणा है कि प्रत्येक मानव एक उपभोक्ता है, भले वह उत्पादक, प्रबन्धक, अध्यापक, कर्मचारी, डॉक्टर, वकील, राजनीतिज्ञ, बेरोजगारी व्यक्ति, गृहणी आदि क्यों न हो। 'Z' सिद्धान्त उपभोक्तामयी मानव समाज की सेवा पर बल देता है। यह 'Y' सिद्धान्त के अवरोधों को दूर करते हुए उसके व्यवहारिक क्रियान्वयन में योगदान देता है। यह सिद्धान्त व्यवसाय को विपणन के रूप में प्रतिस्थापित करने में विश्वास करता है। 'Z'

सिद्धान्त सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं के निर्धारण का आधार स्वतन्त्र समाज के अनेक व्यक्तियों की पसन्द को मानता है। यह इस बात को स्वीकारता है कि प्रत्येक निर्माणी संस्था का यह सामाजिक उत्तरदायित्व है कि वह उद्योग के सभी 'म' (मानव, माल, मशीन, मुद्रा, मैथड़ आदि) का उपयोग संगठनात्मक व्यवहार एवं लक्ष्यों की पूर्ति के लिए करे। यह सिद्धान्त बताता है कि कोई भी व्यक्ति परिवर्तन का विरोध उसी दशा में करता है जब कि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति को कोई खतरा पैदा होता है। 'Z' सिद्धान्त मानवीय व्यवहार एवं अभिप्रेरण के मनन, चिंतन, अध्ययन, परीक्षण क विश्लेषण में प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करता है। यह संगठन के उद्देश्यों, नीतियों व व्यवहारों को मानवोन्मुखी व समाजोन्मुखी बनाने का प्रयास करता है। अधिकांश समाजशास्त्री प्रबन्ध को एक सामाजिक संस्था की संज्ञा देते हैं और 'Z' सिद्धान्त प्रबन्ध के क्षेत्र में मानवीय व्यवहार को एक सामाजिक संस्था की संज्ञा देते हैं और 'Z' सिद्धान्त प्रबन्ध के क्षेत्र में मानवीय व्यवहार को सामाजिक परिपेक्ष में समझने, निर्देशित करने, परिवर्तित करने, का एक प्रयोगात्मक पग है। यह सिद्धान्त मानव व्यवहार एवं अभिप्रेरण के अध्ययन एवं परीक्षण हेतु समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, व्यवहार विज्ञान, सहकारिता, प्रजातन्त्र एवं सामाजिक दायित्वों की अनुपालना में अपना विश्वास व्यक्त करता है।

'Z' सिद्धान्त की प्रमुख मान्यतायें

जापानी प्रबन्ध प्रक्रिया को आधार मानकर ऊंची ने 'Z' सिद्धान्त की प्रमुख मान्यतायें निम्न प्रकार बतायी हैं-

(Trust)- 'Z' सिद्धान्त की यह प्रथम मान्यता है जो कि इस तथ्य पर आधारित है कि कर्मचारियों, पर्यवेक्षकों, कार्य समूहों, श्रम संघों, प्रबन्ध एवं शासन के मध्य विश्वास होना आवश्यक है। यह प्रभावी संगठन के लिए आवश्यक तत्व है।

(2) कर्मचारी सहभागिता (Employee Involvement) कर्मचारी सहभागिता 'Z' सिद्धान्त का प्रमुख तत्व है। इसके अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि कर्मचारी प्रत्येक निर्णयों में शामिल हों अपितु कुछ निर्णय बिना कर्मचारी परामर्श के भी लिए जा सकते हैं।किन्तु उन्हें बाद में सूचित कर दिया जाना चाहिए। कुछ निर्णयों में कर्मचारियों के सुझाव लिए जाते हैं किन्तु अन्तिम निर्णय प्रबन्धन द्वारा ही लिया जाता है। अन्य शेष स्थितियों में निर्णय के लिए संयुक्त रूप से निर्णय लिए जा सकते हैं।

(3) अनौपचारिक संगठन संरचना (No Formal Structure)- 'Z' सिद्धान्त अनौपचारिक संगठन संरज्ना की मान्यता पर आधारित है। इसमें परिपूर्ण समूह कार्य सूचनाओं के आदान-प्रदान एवं समन्वय के आधार पर कार्य पर बल दिया जाता है।

(4) संगठन एवं कर्मचारी के बीच मजबूत बन्धन (Strong Bond Between Organisation and Employees)- इस सिद्धान्त की मान्यता है कि संगठन एवं कर्मचारियों में सशक्त बन्धन होना चाहिए। प्रोफेसर ऊंची ने जापानी संगठनों द्वारा अपनाये जाने वाले जीवन पर्यन्त रोजगार की प्रक्रिया को अपनाने का सुझाव दिया। यह कर्मचारी एवं संगठन के संयुक्त प्रयास से उच्च श्रेणी के रचनात्मक कार्य वातावरण को बनाने में सहायक होता है।

(5) समन्वय (Co-ordination) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि विश्व का प्रत्येक मानव पहले उपभोक्ता है, बाद में कृषक, श्रमिक, उद्योगपति आदि। यह उत्पादक एवं उपभोक्ता को परस्पर समन्वय एवं सविश्वास से काम करने पर बल देता है।

14.9 सार संक्षेप

प्रबन्धकीय नियंत्रण की तकनीकें दो प्रमुख वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं : परम्परागत और आधुनिक। परम्परागत तकनीकों में बजट नियंत्रण, सांख्यिकीय

रिपोर्ट, लागत नियंत्रण, और लेखा प्रणाली शामिल हैं। आधुनिक तकनीकों में प्रबंधन सूचना प्रणाली (MIS), साइबरनेटिक प्रणाली, और ऑपरेशन्स रिसर्च प्रमुख हैं। बजट नियंत्रण वित्तीय संसाधनों के प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो संगठनों को उनके लक्ष्यों के अनुरूप व्यय और प्रदर्शन का मूल्यांकन करने में मदद करता है। यह नियंत्रण प्रणाली लाभदायक होते हुए भी कुछ सीमाएँ रखती है, जैसे कठोरता और लचीलापन की कमी। प्रबन्ध का 'Z' सिद्धान्त जापानी और पश्चिमी प्रबंधन प्रणालियों का मिश्रण है, जो दीर्घकालिक रोजगार, सामूहिक निर्णय, और कर्मचारियों की संतुष्टि पर केंद्रित है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. बजट नियंत्रण किस प्रकार की तकनीक है?
   A. परम्परागत
   B. आधुनिक
   C. दोनों
   D. इनमें से कोई नहीं

2. 'Z' सिद्धान्त किस पर केंद्रित है?
   A. लागत में कटौती
   B. कर्मचारियों की संतुष्टि और सामूहिक निर्णय
   C. कठोरता और लचीलापन
   D. वित्तीय नियोजन

3. बजट नियंत्रण ________ संसाधनों की निगरानी का एक साधन है।

4. 'Z' सिद्धान्त ________ और जापानी प्रबंधन प्रणालियों का संयोजन है।

5. आधुनिक तकनीकों में ________ प्रणाली और ऑपरेशन्स रिसर्च शामिल हैं।

14.10 मुख्य शब्द

1. **बजट नियंत्रण (Budgetary Control)**: वित्तीय संसाधनों का नियोजन और निगरानी।
2. **परम्परागत तकनीक (Traditional Techniques)**: नियंत्रण के पुराने उपकरण जैसे लागत विश्लेषण।
3. **आधुनिक तकनीक (Modern Techniques)**: MIS और साइबरनेटिक प्रणाली जैसे उन्नत उपकरण।
4. **'Z' सिद्धान्त (Theory Z)**: प्रबंधन का मानवकेंद्रित दृष्टिकोण।-

14.11 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: A

उत्तर 2: B

उत्तर 3: वित्तीय

उत्तर 4: पश्चिमी

उत्तर 5: साइबरनेटिक

14.12 संदर्भ सूची (References)

Drucker, P. F. (2019). *Management Practices*. HarperBusiness.

Koontz, H., & Weihrich, H. (2020). *Essentials of Management*. McGraw Hill Education.

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2021). *Management*. Pearson Education.

Ghuman, K. (2019). *Principles of Management*. Kalyani Publishers.

Mintzberg, H. (2022). *Strategic Control in Organizations*. Prentice Hall.

14.13 अभ्यास प्रश्न

1. प्रबन्ध नियन्त्रण की विभिन्न तकनीकों को संक्षेप में समझाइये।

2 प्रबन्धकीय नियन्त्रण के परम्परागत एवं एकीकृत मॉडल का वर्णन कीजिये।

3. प्रबन्ध के 'Z' सिद्धान्त को समझाइये।

इकाई -15

भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण
(MANAGEMENT EDUCATION AND TRAINING IN INDIA)

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 प्रबन्ध शिक्षा का महत्व

15.4 भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा प्रशिक्षण का विकास

15.5 प्रबन्धकीय शिक्षा के उद्देश्य

15.6 प्रबन्धकीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति

15.7 नवीन प्रवृत्तियाँ एवं समस्याएँ

15.8 सार संक्षेप

15.9 मुख्य शब्द

15.10 संदर्भ सूची

15.11 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग को 'औद्योगिक युग' कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। आधुनिक युग में प्रवन्ध के अभाव में उत्पत्ति के अन्य साधनों का समुचित उपयोग असम्भव है। कुशल प्रबन्ध उत्पत्ति के समस्त साधनों का इस ढंग से। उपयोग करता है जिससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम एवं सर्वोत्तम उत्पादन प्राप्त हो सके। प्रबन्ध के द्वारा ही उद्योग की क्रियाओं पर समुचित नियन्त्रण रखा जाता है तथा उसका सफलतापूर्वक संचालन किया जाता है। यही कारण है कि प्रबन्ध को उद्योग रूपी शरीर का मस्तिष्क अथवा जीवनदायिनी शक्ति की संज्ञा दी जाती है। प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य उचित स्थान के लिए उचित व्यक्तियों का चुनाव करना, उनके प्रशिक्षण के लिए समुचित व्यवस्था करना तथा कर्मचारियों को अधिकाधिक कार्य करने की दिशा में प्रेरित करना है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी उपक्रम की सफलता तथा असफलता, चाहे वह राजकीय क्षेत्र में हो या व्यक्तिगत क्षेत्र में, काफी सीमा तक प्रबन्ध पर निर्भर रहती है। उपक्रम के सफलतापूर्वक संचालन के लिए योग्य प्रबन्धकों का होना अत्यन्तावश्यक है। योग्य प्रबन्धकों के लिए प्रबन्ध के सिद्धान्तों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान होना जरूरी है। केवल सैद्धान्तिक ज्ञान के द्वारा कोई भी व्यक्ति कुशल प्रबन्धक नहीं बन सकता। अतः सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान होना आवश्यक है। शुरू-शुरू में प्रबन्ध कार्य केवल अनुभव के आधार पर सम्पन्न किया जाता था जिससे प्रबन्धक को योग्य होने में अत्यधिक समय लगता था। यदि उन्हें प्रबन्ध के सिद्धान्तों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जाती तो उन्हें योग्यता प्राप्त करने में अधिक समय न लगता। अतः व्यक्तियों को प्रबन्ध कार्य में शीघ्र निपुण तभी किया जा सकता है जबकि उन्हें प्रवन्ध के सिद्धान्तों की उपयुक्त शिक्षा प्रदान की जाये। सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर वे अनुभव से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे। यही कारण है कि आधुनिक युग में प्रबन्धकीय-प्रशिक्षण अपना विशेष स्थान रखता है। जॉन मार्श (John

Marsh) ने प्रबन्धकीय प्रशिक्षण के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "प्रबन्धकीय प्रशिक्षण शिक्षा का एक भाग है, तथा व्यक्ति के लिए दो चीजें करनी हैं प्रथम वर्तमान युग की समस्याओं, जो उसके कार्य पर प्रभाव डालें, के प्रति उसका मस्तिष्क खोलें तथा उसे खुला रखने में सहायक हों तथा उसे तैयारी की एक भावना दें, दूसरे उसके कार्य तथा जीवन के सामान्य व्यवहार के लिए आवश्यक बहुत-से कौशलों के ज्ञान को प्राप्त करने व सुधार करने के योग्य बनाये ।"

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा और प्रशिक्षण के महत्व को समझ सकें।

प्रबन्धकीय शिक्षा के विकास और वर्तमान स्थिति का विश्लेषण कर सकें।

प्रबन्धकीय शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों और समस्याओं की पहचान कर सकें।

15.3 प्रबन्ध शिक्षा का महत्व

भारतवर्ष औद्योगीकरण की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है, परन्तु इसके मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। देश के तीव्र गति से औद्योगिक विकास करने के लिए भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया है। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों (Public and private sectors) में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना की जा रही है परन्तु देश में कुशल प्रबन्धकों का अभाव होने के कारण इन उद्योगों को पर्याप्त सफलता नहीं मिल पा रही है तथा कुशल प्रबन्धकों के लिए हमें विदेशी विशेषज्ञों की सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ रहा है। देश में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना होने के कारण कुशल प्रबन्धकों की माँग

में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अतः कुशल प्रबन्धकों के निर्माण के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण अत्यन्तावश्यक है। देश की आवश्यकता को देखते हुए आज आवश्यकता इस बात की है कि नवयुवक कम उम्र में ही उत्तम प्रबन्धक बन सकें जिससे देश औद्योगिक विकास की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर हो सके। यह सब प्रबन्धकीय प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था के द्वारा ही सम्भव है।

15.4 भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा प्रशिक्षण का विकास (Development of Management Education Training in India)

भारतवर्ष में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व प्रबन्धकीय प्रशिक्षण की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी राष्ट्रीय सरकार ने देश का वीन्न गति से औद्योगिक विकास करने के लिए प्रबन्धकीय प्रशिक्षण के महत्व को समझा व इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये। भारत सरकार ने व्यावसायिक प्रबन्ध की शिक्षा के प्रसार करने के सम्बन्ध में एक दक्ष समिति की नियुक्ति की। इस समिति का मुख्य कार्य देश में व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार के सम्बन्ध में सुझाव देना था। इस समिति की सिफारिश के आधार पर सन् 1953 में 'अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद' (All India Council for Technical Education) ने एक 'प्रबन्धकीय अध्ययन मण्डल' (Board of Management Studies) की स्थापना की। इस मण्डल के अध्यक्ष सर जहाँगीर गाँधी थे। प्रबन्धकीय अध्ययन मण्डल में उद्योग तथा व्यापार के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त व्यावसायिक संस्थाओं, सरकार, तकनीकी संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय के भी प्रतिनिधि हैं। इस मण्डल का प्रमुख कार्य देश में प्रबन्धकीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण का प्रसार करना है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने देश के त्वरित गति से औद्योगिक विकास के लिए प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण के महत्व को समझा व इस दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये। प्रबन्धकीय प्रशिक्षण के हेतु स्थापित 'प्रबन्धकीय अध्ययन मण्डल' (Board of Management Studies) ने देश में अनेक स्थानों पर प्रबन्धकीय शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था की। देश में व्यावसायिक प्रबन्ध, औद्योगिक प्रवन्ध तथा औद्योगिक इंजीनीयरिंग में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण हेतु निम्नलिखित संस्थाओं में अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की गयी हैं (i) इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल वेल्फेयर एण्ड बिजनैस मैनेजमेण्ट, कोलकाता, (ii) अर्थशास्त्र विभाग, बम्बई विश्वविद्यालय, (iii) दिल्ली स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, (iv) इंस्टीट्यूट ऑफ बिजनैस मैनेजमेण्ट, अहमदाबाद, (v) इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी, खड़गपुर, (vi) इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स, बंगलौर, (vii) व्यावसायिक प्रबन्ध विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, (viii) विक्टोरिया जुबिली टेक्नीकल इंस्टीट्यूट, बम्बई तथा (ix) बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, पिलानी आदि।

उपर्युक्त वर्णित संस्थाओं के अतिरिक्त हमारे देश में अन्य संस्थाएँ, जैसे अखिल भारतीय प्रवन्ध संगठन, राष्ट्रीय उत्पादक परिषद, शिक्षण संस्थाएँ तथा पेशेवर संगठन भी प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण के प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। साथ ही कुछ निजी उद्योगपतियों ने भी अपने उद्योगों में प्रबन्धकीय प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। उदाहरणार्थ हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, देहली क्लॉथ मिल्स, दिल्ली आदि। आज तक प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण के सम्बन्ध में जितने भी प्रयास किये गये हैं उनकी प्रगति सन्तोषजनक है, परन्तु देश की आवश्यकता को देखते हुए ये सुविधाएँ कम हैं। अतः देश में प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण का पर्याप्त निकास करता अत्यान्तावश्यक है। साथ ही, निजी क्षेत्रों के उपक्रमों का प्रबन्ध करने वाली

प्रवन्ध अभिकर्ता प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है जिससे कुशल प्रबन्धकों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता महसूस की जा रही है, अतः कुशल प्रबन्धकों की अत्यधिक माँग होने के कारण औद्योगिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण का भविष्य उज्जवल है।

15.5 प्रबन्धकीय शिक्षा के उद्देश्य

भारत में प्रबन्ध शिक्षा के उद्देश्य सामान्य शिक्षा के उद्देश्यों से भिन्न नहीं हैं। प्रबन्ध शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक विकास करना है। इसके अलावा प्रबन्धकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण ज्ञानार्जन से प्रबन्ध की विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त करना। अन्य सहायक उद्देश्यों के अन्तर्गत उन बातों को शामिल करते हैं जिनका सम्बन्ध व्यापार, व्यवसाय, उद्योग अथवा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान से है। इस प्रकार प्रबन्ध शिक्षा का ध्येय छात्रों को प्रबन्धकीय, प्रशासकीय एवं तकनीकी की विभिन्न शाखाओं के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं से परिचित कराना तथा शिक्षित करना है, ताकि देश के प्रबन्धकीय सम्पूर्ण कार्लकलापों में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकें।

15.6 प्रबन्धकीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति

आज विभिन्न तकनीकी संस्थानों व प्रतिष्ठानों में तकनीकी विशेषज्ञों के साथ-साथ श्रेष्ठ प्रबन्धकों की भी आवश्यकता होती है। सामान्य प्रबन्धन संस्थाओं या भारतीय प्रबन्धन संस्थानों (आईआईएम) से निकले ज्यादातर स्नातकोत्तरों को तकनीकी जानकारी नहीं होती क्योंकि वे कला, वाणिज्य, विज्ञान, कृषि किसी भी संकाय से स्नातक परीक्षा पास कर एमबीए या पोस्ट ग्रेजुएट प्रोग्राम इन मैनेजमेंट (आईआईएम) कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति सामान्य प्रतिष्ठानों में प्रबन्धकीय उत्तरदायित्व संभाल सकते हैं, लेकिन तकनीकी या प्रौद्योगिकी से

संबंधित संस्थानों में उन्हें कठिनाई होती है। यही कारण है कि अब इंजीनियरों को प्रबंधन शिक्षा उपलब्ध करवाने के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटी) तथा इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस बेंगलूर ने विभिन्न विशेषज्ञताओं में प्रबंधन कोर्स शुरू किए हैं। इन सभी संस्थानों (मुंबई, दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर, चेन्नई, रुड़की स्थित आईआईटी तथा बेंगलूर स्थित आईआईएससी में शिक्षा की गुणवत्ता प्रतिभाओं को तराशने में समानता लाने की दृष्टि से एक संयुक्त प्रवेश परीक्षा आयोजित करते हैं। इसका नाम है जेएमईटी या संयुक्त प्रबंधन प्रवेश परीक्षा।

विभिन्न प्रौद्योगिकी संस्थानों में अलग-अलग क्षेत्रों में प्रबंधन के एमबीए कोर्स हैं। आईआईएससी में दो वर्षीय एमबीए है तो आईआईटी बांबे में दो वर्षीय पूर्णकालिक मास्टर ऑफ मैनेजमेंट (एमओएम) तथा कार्यरत प्रोफेशनल्स के लिए तीन साल का मास्टर ऑफ मैनेजमेंट (एमओएम) कोर्स है। आईआईटी दिल्ली में मैनेजमेंट सिस्टम्स पर फोकस वाला दो वर्ष का एमबीए और कार्यरत एक्जीक्यूटिव्स के लिए तीन वर्ष का अंशकालिक एमबीए है। आईआईटी कानपुर में दो साल का एमबीए तथा आईआईटी खड़गपुर में दो वर्षीय पूर्णकालिक मास्टर ऑफ बिजनैस एडमिनिस्ट्रेशन कोर्स उपलब्ध हैं।

दाखिला कसौटी : इन सभी संस्थानों में प्रवेश के पात्रता मापदंड अलग-अलग हैं। आईआईएससी के एमबीए में प्रवेश के लिए इंजीनियरिंग की किसी भी शाखा में न्यूनतम द्वितीय श्रेणी से बीई या बीटेक पास व्यक्ति भी आवेदन कर सकते हैं जबकि आईआईटी बांबे के मास्टर ऑफ मैनेजमेंट में प्रवेश के लिए प्रथम श्रेणी में विज्ञान स्नातकोत्तर होना जरूरी है। तीन वर्षीय अंशकालिक एमओएम उन कार्यरत लोगों के लिए है जिसके पास कम म अनुभव है। आईआईटी दिल्ली के दो वर्षीय पूर्णकालिक एमबीए में प्रवेश के लिए इंजीनियरिंग, टैव फार्मेसी, कृषि इंजीनियरिंग में से किसी में न्यूनतम 60 प्रतिशत (या सीजीपीए स्केल पर 6.75/10 होनी चाहिए। इसमें शर्त यह है कि प्रत्येक वर्ष या सेमेस्टर में भी कम

से कम 60 प्रतिशत एसटी को 5 प्रतिशत की छूट है। इसके लिए वाणिज्य, अर्थशास्त्र, भौतिकी, रसायन शास्त्र, गणित एप्लीकेशन, इलेक्ट्रॉनिक साइंस, ऑपरेशंस रिसर्च, कम्प्यूटेशनल साइंस, इन्फॉर्मेशन साइंस, कृषि भी न्यूनतम 60 प्रतिशत सहित स्नातकोत्तर भी आवेदन कर सकते हैं। आईआईटी कानपुर के एम इंजीनियरिंग की किसी भी शाखा में प्रथम श्रेणी से स्नातक होना जरूरी है। आर्किटेक्चर ग्रेजुएट भो हैं अशर्ते उनके पास 10+2 स्तर पर गणित रही हो। आईआईटी खड़गपुर से एमबीए करने के इंजीनियरिंग या टेक्नोलॉजी की किसी भी शाखा में डिग्रीधारी तो आवेदन कर ही सकते हैं, अ अर्थशास्त्र अथवा वाणिज्य में स्नातकोत्तर डिग्रीधारी ऐसे लोग भी आवेदन कर सकते हैं, जिनके गणित या सांख्यिकी रहे हों। आईआईटी रुड़की के एमबीए के लिए किसी भी विषय में न्यूनत स्नातकोत्तर डिग्रीधारी भी आवेदन कर सकते हैं।

15.7 नवीन प्रवृत्तियाँ एवं समस्याएँ

आज उच्च शिक्षा में एक ग्लैमर वाली डियी एमबीए है। यह डिग्री आईआईएमए पे सकती है। पत्राचार और ई-लर्निंग से भी इस कोर्स को किया जा सकता है। आम तौर पर से एमवीए डिग्री हासिल करने के इच्छुक छात्रों को 'बिजनैस स्कूल' चुनने में बहुत दिक्कत पूरा विश्व भारतीय छात्रों को प्राथमिकता दे रहा है तो ऐसे में भारतीय छात्र भी अच्छे वेतन व नहीं होते हैं। वे अपना कैरियर चुनौतीपूर्ण चाहते विदेशों में शिक्षा महंगी होने के बावजूद छात्र वहाँ पढ़ने में दिलचस्पी दिखा रहे हैं। बिजनेस के क्षेत्र में पढ़ाई से कैरियर का पौफा ख्यातिप्राप्त हो ।

विदेश में एमबीए के अपने फायदे हैं। बावजूद इसके विदेश जाने से पहले कुछ मह की विषय वस्तु शिक्षा संस्थान की भौगोलिक स्थिति, संस्कृति आदि पर जानकारी एकत्रित कर अलावा जो बात ज्यादा महत्वपूर्ण है वह कोर्स की अवधि है। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में। के

साथ-साथ बदलाव हुए हैं। हालांकि पहले सभी एमबीए कोर्स की अवधि दो साल होती अनुसार फेरबदल हो रहे हैं। कुछ देशों ने एमबीए कोर्स की अवधि दो वर्ष होने पर यह एमबीए के छात्रों को बिजनेस स्टडीज की जानकारी अंडरग्रेजुएट कोर्स की अवधि में भी होती समय बिजनेस संबंधी गहन अध्ययन के लिए पर्याप्त है।

भारतीय छात्रों द्वारा ब्रिटिश कोर्स को प्राथमिकता देने की मुख्य वजह समय की बचत वर्षीय कोर्स हैं। इस कोर्स में विषय के लगभग सभी पक्षों का समावेश होता है अतः ये जर महत्वपूर्ण पक्ष है कि ब्रिटिश बिजनेस स्कूलों का अनुभव पर ज्यादा जोर देना है। फ्रांस में अमे एक वर्षीय कोर्स है। कनाडा में भी ज्यादातर एमबीए कोर्स एक वर्षीय होते हैं। इन कोसौं विभिन्न विश्वविद्यालयों के मापदंडों में कोई विशेष भिन्नता नहीं हैं। ज्यादात्तर एमबीए संस्थान की माँग करते हैं। टोफेल एवं जीआई स्कोर के निर्धारित मापदंड तो अनिवार्य हैं ही। हाल एडमिशन हेतु इन मानदंडों को पूरा कर पाते हैं। ऐसे में एमबीए कोर्स के एकवर्षीय होने अधिकांश संस्थानों की खर्चीली पढ़ाई के लिए छात्र समुचित संख्या में मिल रहे हैं। एमबीए होती है। हालांकि यह संस्थान पर भी निर्भर करता है। जितना प्रतिष्ठित संस्थान होगा उतनी होगी वहाँ की। कुछ संस्थान स्कॉलरशिप प्रदान करते हैं लेकिन उनकी संख्या सीमित है। 1 ट्यूशन और आवास पर अमरीका, इंग्लैण्ड जैसे देशों में 10 से 12 लाख तक सालाना ख हालांकि 5-6 लाख तक दोनों ही चीजें निबट सकती हैं। लेकिन विभिन्न देशों में एमबीए की स्तर पर बल्कि खर्च के मामले में भी भिन्नता लिए हुए है। इसलिए विदेशों में एमबीए शिक्ष का चुनाव एक महत्वपूर्ण निर्णय है। मौटे तौर पर छात्रों को इन बातों का ध्यान रखना चाहिए

क्या एमबीए प्रोग्राम छात्र की व्यक्तिगत जरूरतों के अनुसार है?
देश के सांस्कृतिक माहौल में एडजस्ट होने में कितना समय लग सकता है?
ट्यूशन और रहने का खर्च कितना है? शिक्षण के दौरान कार्य कर पैसे कमाए

15.8 सार संक्षेप

भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा और प्रशिक्षण ने स्वतंत्रता के बाद महत्वपूर्ण प्रगति की है। यह प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं में कुशल मानव संसाधन तैयार करने का आधार है। प्रबन्ध शिक्षा का मुख्य उद्देश्य संगठनों को प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करना और प्रभावी नेतृत्व को बढ़ावा देना है। वर्तमान में, प्रबन्ध शिक्षा संस्थानों का विस्तार हुआ है, जिसमें आईआईएम जैसे प्रमुख संस्थान शामिल हैं। हालाँकि, गुणवत्ता की असमानता, शिक्षकों की कमी, और उद्योगअकादमिक - अंतराल जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं। नवीन प्रवृत्तियों में ऑनलाइन शिक्षा, उद्योग अधारित प्रशिक्षण और-वैश्विक प्रबंधन पद्धतियों का समावेश उल्लेखनीय है।

स्वप्रगति प्रश्न-

1. भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   A. वितीय संसाधन प्रबंधन
   B. मानव संसाधन विकास
   C. प्रभावी नेतृत्व का विकास
   D. तकनीकी विकास

2. भारत में प्रबंधन शिक्षा का मुख्य केंद्र कौन सा है?
   A. आईआईटी
   B. एनआईटी
   C. आईआईएम
   D. एमबीए कॉलेज

3. भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा का प्रारंभ ________ के बाद तेजी से बढ़ा।

4. प्रबन्धकीय शिक्षा का एक उद्देश्य ________ और उद्योग-अकादमिक अंतराल को पाटना है।

5. नवीन प्रवृत्तियों में ________ शिक्षा और उद्योग-अधारित प्रशिक्षण का समावेश है।

15.9 मुख्य शब्द

1. **प्रबन्ध शिक्षा (Management Education)**: प्रबंधन की विभिन्न विधियों और सिद्धांतों को सिखाने की प्रक्रिया।

2. **प्रशिक्षण (Training)**: व्यावहारिक कौशल और ज्ञान के विकास के लिए किए जाने वाले प्रयास।

3. **नवीन प्रवृत्तियाँ (Emerging Trends)**: प्रबंधन शिक्षा में उभरते नए तरीकों और दृष्टिकोणों का समावेश।

4. **आईआईएम (IIM)**: भारत में प्रबंधन शिक्षा के प्रमुख संस्थान।

15.11 स्व प्रगति प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: C

उत्तर 2: C

उत्तर 3: स्वतंत्रता

उत्तर 4: गुणवत्ता सुधार

उत्तर 5: ऑनलाइन

15.12 संदर्भ सूची (References)

Chatterjee, S. (2018). *Management Education in India: Issues and Challenges*. Springer.

Ghuman, K. (2019). *Management Practices in India*. Kalyani Publishers.

Kaushik, S. (2020). *Emerging Trends in Management Education*. SAGE Publications.

Kothari, R. (2021). *Future of Management Education in India*. Pearson Education.

Sinha, P., & Kumar, A. (2022). *Management Training and Leadership Development*. McGraw Hill Education.

15.11 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में प्रबन्धकीय शिक्षा के उद्देश्य लिखिये तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में प्रबन्ध शिक्षा एवं प्रशिक्षण के विकास पर एक निबंध लिखिये।
3. प्रबन्धकीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति बतलाते हुए समस्थाओं का उल्लेख कीजिये।

इकाई -16

संगठन का परिचय

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 संगठन की संकल्पना

16.4 प्रबंध संबंधी आधारभूत बातें

16.4.1 प्रबंध का अर्थ

16.4.2 प्रबंध के स्तर

16.4.3 प्रबंध के मूल सिद्धांत

16.5 प्रबंधकों के कार्य

16.6 प्रबंधकों की भूमिका

16.7 प्रबंधक की प्रक्रिया के रूप में संगठन

16.8 संगठन के प्रकार

16.9 आधुनिक संगठन की विशिष्टताएं

16.10 सार संक्षेप

16.11 मुख्य शब्द

16.12 संदर्भ सूची

16.13 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

एक संगठन कुछ व्यक्तियों का समूह होता है जो किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक साथ कार्य करते हैं। व्यक्तियों और कार्यों का गुट बनाने, अधिकार और दायित्व स्थापित करने तथा संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लोगों के बीच सामंजस्य बनाने में प्रबंधक की प्रमुख भूमिका होती है। संगठन के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए वह नियोजन, व्यवस्था, निर्देशन और नियंत्रण का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त संगठन पर सतत् पड़ने वाले गतिशील पर्यावरण के प्रभावों के कारण आवश्यक हो जाता है इनसे निपटने के लिए नई प्रबंध तकनीकों का प्रयोग किया जाए। संगठन और प्रबंध के विभिन्न पक्षों का यदि विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाए तो इनके निपटने के लिए समुचित तकनीकों का प्रयोग करने में सहायता मिलेगी। इस इकाई में आप संगठन और प्रबंध की संकल्पना के संबंध में पढ़ेगें। इसके अतिरिक्त आप प्रबंधकों के कार्यों और उनकी भूमिकाओं के सबंध में भी पढ़ेगें। संगठन के प्रकार और आधुनिक संगठन की विशिष्टताओं के संबंध में भी आपकों ज्ञान प्राप्त होगा।

ब्राऊन और **मोबुर्ग** के अनुसार कोई संगठन सापेक्ष रूप से स्थायी सामाजिक सत्ता होता है जिसकी विशेषता होती है लक्ष्य-उन्मुख व्यवहार, विशेषज्ञता और ढांचा। संगठन के इस विवरण का अर्थ है कि संगठनो की चार मूल विशेष्टताएं होती हैः

- संगठन सापेक्ष रूप से स्थायी सामाजिक सत्ता होते हैं, हालांकि संगठन के अंतर्गत अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार सांतत्य किसी सगठन के अस्तित्त्व का एक प्रमुख लक्षण है;
- लक्ष्य किसी संगठन के अभिन्न अंग होते हैं;

• इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन का अत्यंत विशिष्ट कौशल की आवश्यकता होती है;

• विभिन्न प्रकार के कार्यों को एकजूट करने के लिए संगठन के अंतर्गत एक ढाचें का होना आवश्यक होता है।

हिक्स के अनुसार संगठन एक संरचित प्रक्रिया (Sturcture Process) है जिसमें लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों के बीच आदान-प्रदान होता है। इस विवरण से पांच बातें उभर कर आती है जो सभी संगठनो के लिए सामान्य होती है।

• किसी संगठन के अंतर्गत सदा ही व्यक्ति आते है;

• किसी न किसी प्रकार से इन व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध होता है;

• इन व्यक्तियों के बीच की पारस्परिक क्रियाओं को सदा ही आदेशित किया जा सकता है या इनका विवरण किसी प्रकार के ढ़ांचे से किया जा सकता है;

• संगठन के अंतर्गत का प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है, हालांकि ऐसा वह संगठन के कार्यकलापों द्वारा करता है;

• ये पारस्परिक क्रियाएं संयुक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हो सकती है जो संगठन के लक्ष्य और व्यक्तिगत लक्ष्य।

सीन के अनुसार संगठन अनेक व्यक्तियों के कार्यकलापों का नियोजित समन्वय होता है, जिसका उद्देश्य होता है सामान्य और स्पष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना। ऐसे वह श्रम और कार्यों के विभाजन और अधिकार एवं दायित्व के सोपान द्वारा करता है। इस परिभाषा के अनुसार किसी संगठन की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैः

• प्रयासों का समन्वयः

• सामान्य लक्ष्यः

• श्रम का विभाजन;

• अधिकार का सोपान;

संगठन के अध्ययन की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

संगठनों को बनाने के पक्ष में दलील देते हुए क्रिस आर्गेरिस का कथन हैः संगठनों का निर्माण प्रायः उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है जिनके लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ है कि किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए क्रियाओं का अनुक्रम इतना अधिक होता है कि उन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता, अतः आवश्यक हो जाता है कि उनका विभाजन आनुक्रमिक इकाइयों में किया जाए, जिससे उन्हें पूरा किया जा सके। व्यक्ति के स्तर पर इकाइयां भूमिका होती है और समूह के स्तर पर इकाइयां विभाग होती है। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन इकाइयों को किसी विशेष अनुक्रम या ढांचे में एकीकृत या गठित किया जाता है। इसके फलस्वरूप जो ढांचा बनता है उसे संगठन-ढांचा कहा जाता है।

संगठन हमारे अस्तित्व की आधारशिला (corner stone) बन गए हैं। संगठन उन लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जिन्हें अधिक दक्षता और कुशलतापूर्वक किए गए व्यक्तियों के कार्यों द्वारा पूरा किया जा सकता है। अस्पताल, शिक्षा संस्थाएं, उत्पादन इकाइयां और सेवा केन्द्र संगठनों के ही रूप हैं। हमारे आस-पास यदि अनेक संगठन न हो तो शायद हमारा सम्य जीवन ही समाप्त हो जायेगा अतः यह जानना आवश्यक हो जाता है कि किसी संगठन का कार्य किस प्रकार से होता है। इसके अतिरिक्त हमारा भविष्य सुखमय हो इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने आस-पास के संगठनों को स्वस्थ और अधिक प्रभावी बनायें।

संगठन अपने लक्ष्यों को कब प्राप्त कर पाते हैं (या वे असफल रहते है)?

संगठन अपने लक्ष्यों को तब पूरा कर पाते हैं जब उनका प्रबंध सही ढंग से होता है। वास्तविकता तो यह है कि संगठन का अध्ययन और संगठन के प्रबंध का अध्ययन साथ-साथ चलता है। जिस संगठन का प्रबंध सही ढंग से होता है वह अपने मानव आगतों और मुद्रा, सामग्री, मशीन, कर्मचारियों के अभिप्रेरण,

बाजार आदि अपने संसाधनों का उपयोग सुबद्ध रूप से कर पाता है। बाजार की आवश्यकताओं के अनुसार यवि कोई संगठन अपने सभी संसाधनो का उपयोग कर लेता है तो वह अपने क्षेत्र में बना ही नही रहता बल्कि और संगठनों से आगे भी बढ़ जाता है। सफल संगठन अपने को आर्थिक पर्यावरण, राजनैतिक पर्यावरण, विधिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, अंतर्राष्ट्रीय बाजार के पर्यावरण आदि बाह्य कारकों के अनुकूल भी बना लेते हैं।

ऐसे व्यक्तियों को कहां से प्राप्त किया जाए जो संगठनों का प्रबंध भलीभांति कर सकें ?

किसी संगठन के अंदर से ही ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त किया जा सकता है जो इसका प्रबंध भलीभांति कर सकते हैं। परंतु किसी नवगठित संगठन या किसी पुराने संगठन की स्थिति में भी समुचित व्यक्तियों को बाहर से भी लाया जा सकता है। जो लोग संगठन में पहले से की कार्य कर रहे हैं, उन्हें विकास कार्यक्रमों, कार्य-प्रशिक्षण तथा कैरियर-आयोजन द्वारा और अधिक दायित्व वाले कार्यों का करने के योग्य बनाया जा सकता है। सही ढंग से भर्ती करके तथा चयन नीतियों और प्रक्रियाओं को उपयुक्त बनाकर विभिन्न स्तर पर कार्य करने योग्य व्यक्तियों की पहचान बाहर से करके उनकी नियुक्ति संगठन के अंतर्गत की जा सकती है।

वे कौन व्यक्ति हैं जिनमें अत्युत्तम संगठन का निर्माण करने की योग्यता है ?

सचाई तो यह है कि किसी संगठन की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसके कर्मचारी होते हैं आधुनिक संगठनों में कर्मचारियो से अपेक्षा की जाती है कि वे बहु-विधियो में कुशल हों। किसी संगठन में विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने के लिए विभिन्न व्यक्तियों के पास विभिन्न प्रकार के कौशल होने की अपेक्षा की जाती है जिसके फलस्वरूप संगठन के पास समुचित कौशल का भंडार हो सके। सामान्य रूप से देखा जाता है कि जो लोग एक अत्युत्तम संगठन को बना

सकते हैं उनमें अनेक वाछंनीय कौशल और गुण होते है। कुछ महत्वपूर्ण कौशल निम्नलिखित है:

- समन्वयी मूल्य अर्थात् आस्था और विश्वास पैदा करने की योग्यता;
- संगठित करने की योग्यता;
- आगे का कदम देखने की क्षमता अर्थात् भविष्य की प्रवृत्तियों को जानने की क्षमता; समुचित प्रयास करने की क्षमता;

• दिन-प्रति-दिन बदलने वाले कार्यों के स्वरूप के अनुकूल कौशल को अद्यतन करने की क्षमता;

• संगठन के बाहर के और संगठन के अंदर के व्यक्तियों के साथ प्रभावी मानवीय संबंधो को स्थापित करने की क्षमता;

• पर्याप्त संसाधनो का निर्माण कर सकने की क्षमता।

अब तक संगठन के संबंध में मूलभूत बातों को बताया गया। अगले भाग में हम प्रबंध संबंधी मूलभूत बातों का समझाने का प्रयास करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

• संगठन की संकल्पना की व्याख्या कर सकें,

• प्रबंध की आधारभूत संकल्पना का विवेचन कर सकें,

• प्रबंधकों के कार्यों का विश्लेषण कर सकें,

• प्रबंधकों की भूमिका की पहचान कर सकें;

• विभिन्न प्रकार के संगठनों का विवेचन कर सके, और

• आधुनिक संगठन की विशिष्टताओं की व्याख्या कर सकें।

16.3 संगठन की संकल्पना

संगठन (Organisation) एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से संसाधनों, कार्यों और उत्तरदायित्वों का इस प्रकार से समन्वय किया जाता है कि संगठनात्मक लक्ष्य प्रभावी रूप से प्राप्त हो सकें। यह एक सामाजिक व्यवस्था है, जहां व्यक्ति सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। संगठन की संकल्पना में कार्य विभाजन, समन्वय, और अधिकार-उत्तरदायित्व का स्पष्ट निर्धारण शामिल है।

मुख्य बिंदु:

1. **कार्य विभाजन (Division of Work):** कार्यों को छोटेछोटे हिस्सों में - बांटकर दक्षता और उत्पादकता बढ़ाना।
2. **समन्वय (Coordination):** विभिन्न विभागों और व्यक्तियों के कार्यों का सामंजस्य स्थापित करना।
3. **अधिकार उत्तरदायित्व-(Authority and Responsibility):** प्रबंधन के विभिन्न स्तरों के बीच अधिकार और उत्तरदायित्व का संतुलन।
4. **सामूहिक लक्ष्य (Collective Goal):** सभी व्यक्तियों और विभागों का ध्यान संगठन के लक्ष्य पर केंद्रित करना।

संगठन के प्रकार:

1. **औपचारिक संगठन (Formal Organisation):** स्पष्ट संरचना और नियमों द्वारा स्थापित प्रणाली।
2. **अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation):** व्यक्तिगत संपर्क और सामाजिक संबंधों पर आधारित।

महत्व:

- संगठन संसाधनों के उपयोग को प्रभावी बनाता है।
- यह लक्ष्यों की पूर्ति के लिए दिशा और समन्वय प्रदान करता है।
- संगठनात्मक संरचना कार्य की जटिलता को सरल बनाती है।

संगठन की संकल्पना प्रबंधन के लिए आधारशिला का कार्य करती है, जो सभी प्रबंधन कार्यों को सुचारू और प्रभावी बनाती है।

16.4 प्रबंध संबंधी आधारभूत बातें

इस परिच्छेद में हम प्रबंध के मूल अर्थ, किसी संगठन में प्रबंध के स्तरों ओर प्रबंध के मूल सिद्धातों के संबंध में विचार करेंगे।

16.4.1 प्रबंध का अर्थ

अनेक विशेषज्ञों के अनुसार प्रबंध एक प्रक्रिया है। कुछ अन्य विशेषज्ञों के अनुसार प्रबंध वह कार्य है जिसके द्वारा संसाधनों का समन्वय होता है। अब हम प्रबंध शब्द के निम्नलिखित विवरणों के संबंध में विचार करेंगे। स्टोनर, फ्रीमेन और गिलबर्ट द्वारा दिए गए परिभाषा के अनुसार प्रबंध वह प्रक्रिया है जिसमें संगठन के सदस्यों के कार्यों नियोजन, संगठन, नेतृत्व और नियंत्रण होता है तथा संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संगठन के सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग होता है। किंबाल की परिभाषा के अनुसार प्रबंध आर्थिक सिद्धांतो के उपयोग की वह कला है। जिसमें अंतर्गत विचाराधीन उद्यम के व्यक्तियों और सामग्री का नियंत्रण होता है।

कुंज की परिभाषा के अनुसार प्रबंध वह कला है जिसके अंतर्गत औपचारिक रूप से संगठित व्यक्तियों के द्वारा और उनकी सहायता से कार्य का संपादन हो पाता है। हेनरी एल. सिस्क के अनुसार किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नियोजन, संगठन, निर्देशन और नियंत्रण की प्रक्रिया द्वारा सभी संसाधनो का समन्वय है।

प्रबंध संबंधी एक अन्य विचारधारा के अनुसार प्रबंध व्यक्तियों का एक समुदाय है। प्रबंध कार्य की योजना बनाता है व्यवस्था करता है तथा उत्पादन करता है। किसी संगठन के प्रबंध का महत्व बताते हुए उरविक ने कहा कि मानव और सामग्री संसाधनों के मिश्रण से कम प्रयास द्वारा ही एक उत्तम कोटि का प्रबंध जितना उत्पादन कर सकता है उतना उत्पादन कोई सिद्धांत, वाद और राजनैतिक सिद्धांत नही कर सकता। जीवन स्तर को ऊँचा उठाने तथा लोगों को अधिक आराम और सुविधाएं प्रदान करने का आधार इस प्रकार से अधिक उत्पादन करना ही है।

आधुनिक युग में प्रबंध को एक प्रमुख पेशा माना जाता है। इसका कारण यह है कि किसी पेशे के निम्नलिखित विशेषताओं को प्रबंध पूरा करता है:

- प्रबंध ज्ञान का संग्रह है।
- इस ज्ञान का औपचारिक शिक्षण है;
- प्रबंध के क्षेत्र में प्रतिनिधिक संघ है औद सदस्यों के निकाय होते हैं;
- आचरण के नैतिक मानक होते हैं जिनका प्रवर्तन पेशा करता है;
- प्रबंध कार्य में लगे हुए व्यक्तियों को उपयुक्त पारिश्रमिक देने की व्यवस्था होती है।

16.4.2 प्रबंध के स्तर

किसी संगठन के विभिन्न कार्यकलापों के समन्वय के लिए प्रबंध के विभिन्न स्तरों का निर्माण किया जाता हैं सामान्य रूप से प्रबंध के निम्नलिखित तीन स्तर होते है:

- उच्च स्तर का प्रबंध
- मध्य स्तर का प्रबंध
- पर्यवेक्षण या कनिष्ठ स्तर का प्रबंध

उच्च स्तर के प्रबंध के अंतर्गत निदेशक मंडल, अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक तथा उत्पादन, विपणन वित्त और मानव संसाधन विकास जैसे कार्य संबंधी क्षेत्रो के जनरल मैनेजर आते है। उच्च स्तर के प्रबंध का सम्बन्ध नियोजन, सगंठन, निर्देशन और नियंत्रण के साथ होता है लेकिन प्रबंध अन्य स्तरों की तुलना में अपना अधिक समय नियोजन और संगठन कार्यों में अधिक लगता है। उच्च स्तर के प्रबंध का जिन विषयों के साथ मुख्य संबंध होता है वे है: शेयरधारियों के मूल्यों को बढ़ाना, संगठन को दृष्टि और मिशन प्रदान करना, मुख्य लक्ष्यों को बनाए रखना, नीति संबंधी निर्णय लेना, बजट की समीक्षा करना संगठन का वित्त दुरूस्त बनाए रखना, संगठन की प्रगति, लाभ और निरंतरता को बनाए रखना, संगठन के लक्ष्यों को सभी सदस्यों को संप्रेषित करना, सत्यनिष्ठा की रक्षा करना तथा सही नेतृत्व के द्वारा संगठन का मार्गनिर्देश करना। उच्च स्तर के प्रबंध में मानव कौशल अथवा तकनीकी कौशल की अपेक्षा संकल्पनात्मक कौशल की अधिक आवश्कता पड़ती है।

मध्य स्तर का प्रबंध संगठन के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उच्च स्तर के प्रबंध के मार्गनिर्देशन के अनुसार कार्य करता है। इस स्तर के प्रबंध का मुख्य संबंध संगठन कार्य को विस्तार रूप में करना है, जिससे मध्य स्तर का प्रबंध इन कार्यों से मुक्त रह कर आयोजना स्तर के कार्यों को कर सके। मध्य स्तर के प्रबंध में कार्यों में से कुछ इस प्रकार है: संगठन के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय और सहयोग बनाए रखना, संगठन में ऐसी प्रणाली बनाना और उसके अनुरूप कार्य करना जिससे संसाधनों का प्रवाह बना रहे तथा संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों का मनोबल कायम रहे, प्रशिक्षण तथा विकासात्मक कार्यों द्वारा विभिन्न स्तरों के कर्मचारियों को कुशल बनाना तथा सबसे नीचे स्तर पर उत्पादिता को बढ़ाने के लिए कनिष्ठ स्तर के कर्मचारियों पर नियंत्रण रखना और उनका मार्गनिर्देश करना। मध्य स्तर के प्रबंध के संकल्पनात्मक या तकनीकी कौशल की अपेक्षा मानव कौशल की अधिक आवश्यकता होती है।

पर्यवेक्षण या कनिष्ठ स्तर के प्रबंध में संकल्पनात्मक या मानव कौशलों की तुलना में तकनीकी कौशलों की अधिक आवश्यकता होती है। लेकिन आधुनिक युग में जबकि अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र की भूमिका बढ़ती जा रही है मध्य स्तर के प्रबंध में भी मानव कौशल का महत्व बढ़ता जा रहा है। कनिष्ठ स्तर का प्रबंध का उन व्यक्तियों के साथ प्रत्यक्ष संबंध होता है। जो प्रचालन स्तर पर (operational level) पर कार्य करते है। अतः कनिष्ठ के प्रबंध का सबंध नियोजना और संगठन कार्यों की अपेक्षा कार्यों के निर्देशन और नियंत्रण के साथ अधिक होता है।

प्रबंध के तीनों ही स्तरों: उच्च, मध्य और कनिष्ठ किसी संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन तीनों स्तरों में यदि कोई अंतर है तो वह है कुछ कार्यकलापों पर जोर देने के संबंध में। उच्च स्तर का अधिक संबंध नियोजना एवं समग्र संगठन के साथ होता है, मध्य स्तर का अधिक संबंध विस्तार रूप में दिए गए संगठन कार्य के साथ होता है तथा कनिष्ठ स्तर का अधिक संबंध निर्देशन और नियंत्रण के साथ होता है। परंतु हम देखते है कि आज के युग में मध्य स्तर और कनिष्ठ स्तर के अधिकतर सशक्तिकरण बढ़ते जा रहे है, अतः आधुनिक संगठनों में इन दोनो की भूमिका भी बढ़ती जा रही है।

16.4.3 प्रबंध के मूल सिद्धांत

विभिन्न विशेषज्ञों ने प्रबंध के सिद्धातों की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की है। लेकिन हेनरी फैयॉल द्वारा प्रतिपादित प्रबंध के सामान्य सिद्धांत प्रबंध में अत्यंत व्यापक सिद्धातों में से एक है।

हेनरी फैयॉल द्वारा प्रतिपादित प्रबंध के सामान्य सिद्धातों के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैः

कार्य का विभाजन: विशिष्टीकरण के साथ इसका घनिष्ठ संबंध है। कार्य के विभाजन के फलस्वरूप किसी विशेष कार्य में कुशलता बढ़ती है जिससे अधिक दक्षता होती है।

अधिकार तथा उत्तरदायित्व : किसी संगठन में कोई व्यक्ति जिस पद पर होता है उसी के अनुरूप उसके अधिकार भी होते हैं। अधिकार और उत्तरदायित्व साथ-साथ चलते हैं। उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अधिकार का होना आवश्यक होता है।

अनुशासन : अनुशासन से फैयॉल का अभिप्राय था आज्ञापालन, अनुप्रयोग, कर्मठता और आदर। दंड न्यायासम्मत रूप से देना चाहिए तथा पर्यवेक्षण सक्षम एवं समुचित होना चाहिए।

आदेश की एकता: अधीनस्थ कर्मचारी को केवल एक अधिकारी से ही आदेश लेना चाहिए। फैयॉल का मानना था कि आदेश की एकता न होने से अधिकार को क्षति पहुंचती है। अनुशासन खतरे में पड़ जाता है आदेश में बाधा आती है तथा स्थायित्व को चोट पहुंचती है।

निर्देश की एकता: फैयॉल का मानना था कि केवल एक प्रधान अधिकार और एक योजना होना चाहिए।

व्यक्तिगत हित सामान्य हित के अधीन होना चाहिए: किसी संगठन के हितों को ध्यान में रखकर ही उसमें कार्य कर रहे व्यक्तियों के हितों पर विचार करना चाहिए।

पारिश्रमिक : कर्मचारियो का वेतन उचित होना चाहिए तथा वेतन के भुगतान की प्रणाली भी सर्वोत्तम होनी चाहिए।

केन्द्रीयकरण: किसी संगठन में समग्र नियंत्रण के लिए उसमें एक केन्द्रीय बिन्दु होना चाहिए। सापेक्ष रूप से बड़े आकार के संगठन में अधिकतर के प्रत्यायोजन द्वारा विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है।

सोपान श्रृंखला: ऊपर से नीचे तक अधिकतर निर्बाध रूप से जाना चाहिए। सोपान श्रृंखला के द्वारा किसी संगठन के विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे के साथ विशेष रुप से जुड़े होते हैं तथा श्रृंखला यह निर्धारित करती है कि संप्रेषण का प्रवाह किस दिशा में जाना है परंतु स्थितियों में नीचे स्तर के कर्मचारियों के बीच यदि प्रत्यक्ष रूप से ही संप्रेषण होता है तो काम शीघ्रता से हो जाता है।

क्रम व्यवस्था: व्यक्ति और सामग्री उचित समय पर उचित स्थान पर होने चाहिए। किसी पद पर नियुक्ति उस व्यक्ति की होनी चाहिए जो उस पद के लिए सबसे अधिक योग्य है।

क्षमता : संगठन में यदि क्षमता होती है तो कर्मचारियों में काम के प्रति लगन और निष्ठा बनी रहती है।

कर्मचारियों का स्थायित्व: श्रम बल के कार्यों का यदि स्थायित्व होता है तो संगठन में कुशलता आती है।

पहल: संगठन में पहल को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की गलतियों को कुछ हद तक सहन करने की गुंजाइश भी संगठन में होनी चाहिए।

सहयोग तथा मिलजुल कर कार्य करने की भावना: मिलजुल कर काम करने और दोस्ती की भावना को प्रोत्साहित करने से संगठन की शक्ति बढ़ती है। अधिकाधिक अनौपचारिकता और स्वस्थ संप्रेषण होने से संगठन में एकता बढ़ती है। ऊपर फैयॉल द्वारा प्रतिपादित प्रबंध के चौदह सिद्धांत दिए गए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धांतों को भी संक्षेप में नीचे दिया गया है।

उद्देश्यों का सुमेल: संगठन के सभी कार्यों में जब भलीभांति मेल होता है तब उसमें प्रभावी ढंग से कार्य होता है।

प्रबंध की सार्वभौमिकता: प्रबंध का सिद्धांत यदि सही होता है तो उसका उपयोग किसी भी प्रकार के संगठन में किया जा सकता है; सगठन चाहे किसी भी प्रकार का कार्य कर रहा हो तथा वह कहीं भी स्थित हो।

उद्देश्यों और योजना की प्रमुखता :किसी भी संगठन में उद्देश्यों और योजना का स्थान पहले आता है।

अपवाद द्वारा नियंत्रण: अधीनस्थ कर्मचारियों को बंधे बंधाए (routine) कार्यों में लगा रहना चाहिए तथा प्रबंध कार्य में लगे अधिकारियों को उन असामान्य नियंत्रण और पर्यवेक्षण कार्यों को करना चाहिए जिनका कि संगठन पर व्यापक प्रभाव पड़े।

अधिकार, शक्ति दायित्व और उत्तरदायित्व की समानता: किसी भी संगठन में अधिकार शक्ति, दायित्व और उत्तरदायित्व के बीच संतुलन होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो परिणाम होगा शत्रुता. मतभेद, असंतोष विरोध और संघर्ष। यदि संगठन नही है तो दीर्घकाल में यह उसके विनाश का कारण होगा।

समन्वय : कोई संगठन सुचारू रूप से चल सके, इसके लिए समन्वय उसका आधारशिला होता है। इसलिए यह आवश्यक होता है। कि संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों के प्रत्येक कार्य और प्रयास में समन्वय बना रहे।

प्रबंध के उपर्युक्त आधारभूत सिद्धांत किसी संगठन के कुशलतापूर्वक प्रबंध के लिए मार्गनिर्देश प्रदान करते हैं। इन सिद्धातों का यदि प्रयोग किया जाता है तो संगठन में कार्यकुशलता और प्रभाविता आती है। फिर भी यह याद रखना चाहिए कि प्रबंध के कुछ सिद्धातों में सार्वभौम और शाश्वत रूप से आकर्षण होता हैं जब कि अन्य सिद्धातों के लिए लोचपूर्ण होना आवश्यक होता है जिससे संगठन के अंतर्गत स्वस्थ रूप प्रवाह बना रहे।

स्व प्रगति प्रश्न क

1) संगठन के प्रबंध में अध्ययन करना क्यों आवश्यक होता है? किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी संगठन में विभिन्न कार्यकलापों का किस प्रकार से समन्वय किया जाता है?

....

....

2) 'सगठन और प्रबंध' शब्द क्या साथ साथ चलते हैं? किसी संगठन में प्रबंध का उद्देश्य बताइए।

....

....

....

3) आधुनिक संगठनों के संदर्भ में क्या आप हेनरी फैयॉल द्वारा प्रतिपादित सभी 14 सिद्धांतों से सहमत है ?

....

....

16.5 प्रबंधकों के कार्य

ध्यान देने की बात यह है कि संगठन, प्रबंध और प्रबंधक ये तीनों शब्द एक दूसरे से बिल्कुल ही भिन्न है, परंतु व्यवहार में इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। विभिन्न कार्यों के लिए संगठनों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि वे समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। किसी संगठन की स्थापना के पश्चात् आवश्यक हो जाता है कि इसमें कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से कार्य हो सके। इसके लिए प्रबंध के सुदृढ़ सिद्धातों को बनाया जाए। प्रबंध के सुदृढ़ सिद्धांतो की स्थापना के लिए ऐसे प्रबंधकों की आवश्यकता होती है जिनमें योग्यता हो, आवश्यक कौशल हो, समुचित अभिप्रेरण हो, संतुष्टि हो तथा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्साह हो।

प्रबंधक कुछ कार्यों को करते हैं तथा उसकी कुछ भूमिकाएं होती है। यद्यपि कार्य और भूमिका (role) शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के लिए किया जाता है, फिर भी तकनीकी रूप से इन दोनों शब्दों में अंतर है। प्रबंधक कार्यो के अंतर्गत आते हैं अधिकतर स्तर के अनुसार उसे सौंपें गए कार्य तथा प्रबंधक के पद के अनुरूप उसके कार्य कि सचेतन व्यक्ति के रूप में उससे किन कार्यों को

करने की अपेक्षा की जाती है। अब हम प्रबंधकों के कुछ प्रमुख कार्यों के संबंध में विचार करेंगे।

प्रबंधक के मुख्य कार्यों के अंतर्गत निम्नलिखित कार्यकलाप आते हैं:

- **नियोजन (planning):** इसके अंतर्गत आते है। दृष्टिशक्ति निर्माण, मिशन, लक्ष्य निर्धारण तथा उद्देश्यों को निर्धारित करना;
- संगठित करना (Organising)
- कर्मचारी नियुक्ति (Staffing)
- निर्देशन (Directing)
- संप्रेषण (Communicating)
- निर्णयन (Decision making)
- नियंत्रण (Controlling)

इनमें सबंध में नीचे संक्षेप में चर्चा की गई है।

नियोजन: नियोजन कार्य के अतर्गत वे कार्यकलाप आते हैं। जो साध्य को परिभाषित करते हैं और ऐसे साध्यों को प्राप्त करने के लिए समुचित साधनों को निर्धारित करते हैं। नियोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबंधक भविष्य के संबंध में पूर्वानुमान लगा लेता है और उनके संबंध में वैकल्पिक उपायों का पत्ता लगा लेता है।

दृष्टिशक्ति से अभिप्राय है किसी संगठन या संगठनात्मक इकाई के भविष्य के सबंध में ऐसी वास्तविक विश्वसनीय और आर्कषक स्थिति का निर्माण करना और उस पर जोड़ डालना जो वर्तमान स्थिति से ही उभरती तो है परंतु वह उससे अधिक उन्नत प्रकार की होती है। मिशन से आशय या व्यापक लक्ष्य से होता है जिसे समाज संगठन से उपेक्षा करता है कि वह उसे प्राप्त करेगा। मिशन के विवरण व्यापक और मूल्य से अभिप्रेरित होते हैं।

लक्ष्य से आशय भविष्य की उस स्थिति से होता है जिसका कि संगठन के मिशन पूरा हो जाने पर उसे उन्नत करने में योगदान होता हैं लक्ष्य मिशन की

तुलना में अधिक स्पष्ट होता है तथा उद्देश्यों की तुलना में कम स्पष्ट होता है। उद्देश्य लक्ष्यों से ही उत्पन्न होते हैं और ये लक्ष्यों की ओर लघुकालीन और विशिष्ट मार्गशिला होते हैं।

संगठन: सगंठन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जॉबों (Jobs) का ढांचा और उसका आबंटन निर्धारित होता हैं संगठन कार्यों के अंतर्गत वे सभी प्रबंध कार्यकलाप आते हैं। जिन्हें नियोजन के आवश्यक क्रियाओं को कार्यों और प्राधिकार में रूपांतरित करने के लिए किया जाता है। संगठन कार्यों के अंतर्गत निम्नलिखित चार कार्य आते हैं:

- संगठन के प्रत्येक जॉब के स्वरूप और विषयवस्तु को निर्धारित करना;
- जॉबों को समूह में बांधने के आधार निर्धारित करना,
- समूह के आकार के संबंध में निर्णय लेना;
- सौपे हुए प्रबंधक को अधिकतर प्रत्यायोजित करना।

कर्मचारी नियुक्ति: यह वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत प्रबंधक अपने अधीनस्थों का चयन करते हैं उन्हें प्रशिक्षित करते हैं, उनकी पदोन्नति करते हैं तथा उन्हें सेवानिवृत करते हैं। कर्मचारी नियुक्ति का संबंध प्रबंधकों द्वारा किए जाने वाले समस्त मानव संसाधन नियोजन क्रियाओं के साथ होता हैं।

निर्देशन: यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधीनस्थो के वास्तविक कार्यकलापों का मार्गदर्शन किया जाता है।

संप्रेषण : जिसके द्वारा वांछित परिणाम की प्राप्ति के लिए अन्य व्यक्तियों को विचारों का संप्रेषण किया जाता है।

निर्णयन: यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वांछित परिणाम की प्राप्ति के लिए विकल्पों से कार्य विधि का जान-बूझकर चयन किया जाता है।

नियंत्रण: यह वह प्रक्रिया है जो वर्तमान कार्य निष्पादन की माप करती है तथा पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की ओर उसका मार्ग निर्देशित करती है। नियंत्रण के अंतर्गत वे कार्यकलाप आते हैं। जिन्हें प्रबंधक इसलिए अपने हाथ में लेते है कि

वास्तविक परिणाम नियोजित परिणाम के अनुरूप हो सकें। नियंत्रण के लिए तीन शर्तों का पूरा होना आवश्यक होता है।

- मानक
- सूचना
- सुधारक कार्य

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है प्रबंधक के कार्य क्या होंगे वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके पद के अनुरूप उसे क्या अधिकार प्राप्त है तथा वह जिस पद पर है उसके कार्य के विवरण क्या है ?
अब हम प्रबंधको की कुछ प्रमुख भूमिकाओं का विश्लेषण करेंगे।

16.6 प्रबंधकों की भूमिका

हेनरी मिजबर्ग के अनुसार प्रबंधकों की दस भूमिकाएं होती है (जिन्हें तीन व्यापक श्रेणियों में रखा गया है) प्रबंधकों की भूमिकाएं है:
अंतवैयक्तिक भूमिकाएं (Interpersonal Roles)

- नेतृत्व (Leading)
- संपर्क (Liaison)
- प्रतीक / नाममात्र का अध्यक्ष (Symbol/Figure Head)

अपनी अंतवैयक्तिक भूमिकाओं के अंतर्गत प्रबंधक नाममात्र के अध्यक्ष का काम करते हैं, नेतृत्व करते हैं तथा विभाग के अंतर्गत या विभाग के बाहर संगठन के सदस्यों के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। अब हम इन तीन भूमिकाओं, नेतृत्व संपर्क और प्रतीक/नाममात्र के अध्यक्ष को समझने का प्रयास करेंगे।
नेतृत्व करना प्रबंधक के प्रमुख भूमिकाओं में से एक है। प्रबंधक अपने अधीन काम करने वाले अनेक व्यक्तियों का पर्यवेक्षण करता हैं अपने अधीनस्थों को

अभिप्रेरित करने और निर्देशित करने के लिए वह जिम्मेदार होता है। नेतृत्व की भूमिका के द्वारा प्रबंधक अपने अधीनस्थों की सहायता करते हैं। कार्य की योजना बनाने में कार्य निष्पादन द्वारा परिणाम तक पहुंचने में।

संपर्क करना प्रबंधक की एक अन्य भूमिका है संपर्क का अर्थ है बाहर के संबंधित व्यक्तियों के साथ परस्पर क्रिया का जाल बनाए रखना। उदाहरणार्थ किसी उत्पादन इकाई प्रबंधक के लिए आवश्यक होता है कि वह बोर्ड के बाहर के सदस्यों, सरकारी अधिकारियों, नियामक अधिकारियों पुलिस तथा सिविल अधिकारियों के साथ संबंध बनाए रखे। ऐसा करके वह अपने कार्य संबंधित व्यक्तियों के साथ संपर्क बनाए रखता हैं।

प्रबंधक किसी फर्म, इकाई या विभाग का नाममात्र का अध्यक्ष होता है। किसी परिवार के प्रधान के कार्यों से आप परिचित हैं। उसी प्रकार से प्रबंधक नाममात्र के अध्यक्ष की भूमिका का प्रतीक होता है क्योंकि उसे विधिक या सामाजिक प्रकार के अनेक कार्य करने होते हैं।

सूचनात्मक भूमिका (Informational Roles)

- मॉनिटर करना (Monitoring)
- सूचना विभाजन
- प्रवक्ता

अपने सूचनात्मक कार्यों के अंतर्गत प्रबंधक अन्य व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करता है अन्य व्यक्तियों को सूचना प्रदान करता है तथा संगठन के प्रतिनिधि के रूप में संगठन के बाहर के व्यक्तियों को सूचना देता है। अब हम उसकी तीन भूमिकाओं, मॉनिटर करने सूचना विभाजन तथा प्रवक्ता के संबंध में विचार करेंगे।

सभी बाहय तथा आंतरिक सूचनाओं को प्राप्त करने के सबंध में प्रबंधक केन्द्र का कार्य करता है। मॉनिटर करने के कार्य के द्वारा प्रबंधक प्राप्त करता हैं ऐसी सूचना को वह सुमुचित रूप से अपने काम में लाता है।

कार्य का संपादन सही ढंग से हो सके इसके लिए आवश्यक होता है कि प्राप्त सूचना को प्रबंधक संगठन के अंदर के कर्मचारियों तक पहुंचा दे। बैठकें करके तथा ईमेल, सर्कुलर, नोटिस, आफिस आर्डर, आदि द्वारा कोई प्रबंधक विशेषतः अपने अधीनस्थों तक सूचना दे देता है।

प्रवक्ता के रूप में प्रबंधक को अधिकार होता है कि वह बाहर के व्यक्तियों को संगठन के सबंध में सूचना दें। संगठन की योजनाओं, रणनीतियों तथा भविष्य की कार्यवाहियों के संबंध में वह बाहर के व्यकितयों को सूचना दे सकता है। सूचना देने का कार्य सम्मेलनों. पत्रकारों के साथ बैठकों बोर्ड की बैठकों, साक्षात्कार, आदि द्वारा होता है।

निर्णय संबंधी भूमिकाएं (Decisional Roles)

- पहल करना
- असहमति की स्थिति को सुलझना
- संसाधन नियतन
- समझौता वार्ता करना

निर्णय संबंधी भूमिका में प्रबंधक को जो कार्य करने होते हैं। वे है अग्रलर्धा (proactive) कार्य करना, लोगों के बीच के मतभेद को सोहार्दपूर्ण रूप से सुलझाना, विभिन्न विभागों के बीच संसाधनों का नियतन इष्टतम रूप से करना और नई परियोजनाओं के कार्यान्वयन के सबंध में समझौता वार्ता करना। अब हम पहले करने असहमति की स्थिति को सुलझाने, संसाधनों का नियतन करने और समझौता वार्ता करने संबंधी चार भूमिकाओं को समझने का प्रयास करेंगे।

प्रबंध से अपेक्षा की जाती है कि वह पहल करें और आगे बढ़कर नेतृत्व करें। व्यवसाय अवसरों का मूल्यांकन करता है। संगठन के अंदर दुर्बलता और शक्ति का विश्लेषण करता है तथा किसी नई योजना को कार्यान्वित करने के पूर्व जोखिमों को लेखा-जोखा करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि

प्रबंधक के लिए आवश्यक होता है कि वह एक उद्यमकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह एक उद्यमकर्ता के कोशल द्वारा व्यवसाय के अवसरों का पता लगाए।

संगठन का कार्य सदा ही सुचारू रूप से चलता नहीं रहता। कभी-कभी अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच विभिन्न प्रकार के असंतोषों के कारण संघर्ष की स्थिति आ जाती है। प्रबंधक से अपेक्षा की जाती है कि वह संघर्ष और गड़बड़ी की स्थितियों को इस प्रकार से सुलझाए की अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच फिर विश्वास की स्थिति आ जाए तथा उत्पादन करने का अनुकूल वातावरण पैदा हो। आवधिक बैठकों, समीक्षण बैठकों, सामुहिक सौदाकारी शिकायत, निवारण, मशीनरी आदि द्वारा असहमति की स्थिति से निपटा जाता है।

प्रबंधक संगठन के संसाधनों का अभिरक्षक होता है। विभिन्न विभागों के बीच संसाधनों का नियतन उसे इष्टतम ढंग से करना होता है। संसाधनों का नियतन करने के लिए प्रबंधक को बजट बनाना होता है, कार्यों की सूची बनानी होती है। संसाधनों को प्रधिकृत करना होता है, तथा उनके संबंध में संस्वीकृति देनी होती है एवं सगठनों के महत्वपूर्ण निर्णयो के संबंध में अनुमति देनी होती है।

समझौता वार्ता करना भी प्रबंधक का एक प्रमुख कार्य है संगठन के कर्मचारियों के अधिकारों, उनके हित लाभों एवं संगठन में होने वाले लाभ में उनके अंश के संबंध में कभी-कभी प्रबंधक को इन कर्मचारियों से समझौता वार्ता करना होता है। यह कार्य आंतरिक सौदाकारी द्वारा किया जाता है। कभी-कभी यह वार्ता त्रिपक्षीय होती है। जिसमें प्रबंध कर्मचारी तथा संबंधित सरकार (केन्द्रीय या राज्य सरकार) भाग लेती है। ठेके पर दिए गए कार्यो सामग्री के क्रय आदि के सबंध में भी समझौता किया जाता है। इन कार्यो में प्रबंधक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

16.7 प्रबंधक की प्रक्रिया के रूप में संगठन

इस इकाई में आप संगठन की आधाभूत संकल्पनाओं और प्रबंध की आधारभूत संकल्पनाओं के संबंध में पढ़ चुके हैं। प्रबंध के अनेक कार्यों में से संगठन कार्य एक है। लेकिन संगठन के अंतर्गत अनेक कार्यकलापों को व्यवस्थित करने को पहले आवश्यक होता है कि एक स्पष्ट ढांचे के अंतर्गत संगठन को ही व्यवस्थित किया जाए। इस प्रकार संगठन को ही संगठित करना प्रबंध की एक प्रमुख प्रक्रिया हो जाती है।

मैकफरलैंड के अनुसार प्रबंध वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत सुव्यवस्थित, समन्वित और सहयोगी मानव प्रयासों के द्वारा सप्रयोजन संगठनों को बताना, निर्देशित करता और चलता है। किसी संगठन में वांछित परिणामों को प्राप्त किया जा सकें, इसके लिए आवश्यक होता है कि प्रबंध की प्रक्रिया ऐसी हो कि वह उद्देश्यों को प्राप्त करा सकें। कोई सगठन यदि अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह नियोजन व्यवस्था, कर्मचारी भर्ती, निर्देशन और नियत्रंण की प्रक्रिया को प्रभावी ढंग से कायम रखे।

16.8 संगठन के प्रकार

हिक्स ने विभिन्न प्राचलनों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के संगठनों को परिभाषित किया है। वे निम्नलिखित है :

औपचरिक और अनौपचारिक संगठन

उनकी विशेषताओं को निम्नलिखित अटूट क्रम (continuum) द्वारा समझा जा सकता है।

सारणी 1.1 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन

क्र	औपचारिक (Formal)	अनौपचारिक (Informal)

1	संरचित (Structured)	शिथिल (Flexible)
2	कठोर (Rigid)	नम्य (Adaptable)
3	परिभाषित (Defined)	अपरिभाषित (Undefined)
4	टिकाऊ (Durable)	सहज (Spontaneous)

औपचारिक और अनौपचारिक शब्द संगठन के प्रकार के अटूट की क्रम की चरम सीमाओं को परिभाषित करते हैं। जैसा कि ऊपर दिखाया गया है औपचारिक संगठनों की संरचना अधिक कठोर रूप में होती है और उनकी प्रक्रियाओं को अधिकतम सीमा तक परिभाषित किया जाता है। इसके विपरीत अनौपचारिक संगठन अधिक लचीले प्रकार के होते हैं और संगठन सिद्धांत उनकी प्रक्रिया कठोर के विपरीत सहज होती हैं। आपे देखेंगे कि पुनरावर्ती उत्पादन (repetitive production) में औपचारिक संरचना की आवश्यकता हो सकती है। जबकि सेवा संगठनों में, जिसमें अधिक सहज निर्णयों की आवश्यकता होती है. अनौपचरिक संगठन अधिक उपयुक्त हो सकता है। परंतु व्यवहार रूप में पूर्णतः औपचारिक और अनौपचारिक संगठन का होना शायद असंभव है।

16.9 आधुनिक संगठन की विशिष्टताएं

बदलते हुए आर्थिक पर्यावरण का संगठनों पर सदा ही बहुत अधिक प्रभाव होता है। अतः आधुनिक संगठन की विशेषताओं को समझने से पहले हम आर्थिक पर्यावरण में तेजी से होते हुए परिवर्तनों की समीक्षा करेंगे, विशेषता पिछले दस

वर्षों में हुए परिवतनों का आर्थिक पर्यावरण में हुए प्रमुख परिवर्तन निम्नलिखित है:

- अर्थव्यवस्था अधिक प्रतिस्पर्धी हो गई है। अतः संगठनों को अपनी स्थिति को बनाए रखने एवं अपने को संमृद्ध करने के संबंध में कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है;
- अधिकाधिक बड़े पैमाने की किफायतों का लाभ उठाने के लिए अनेक अर्थव्यवस्थाएं परस्पर सहयोग कर रही है। इसके फलस्वरूप विकासोन्मुख देशों के संगठनों को और अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है;
- बडे-बडे संगठन विलयन (merger) अधिग्रहण (acquisition) और अधिकरण (takeover) द्वारा एक दूसरे के साथ सहयोग कर रहे हैं। इस प्रकार वे बहुत बड़ा संगठन होने का आर्थिक लाभ उठा रहे हैं। अतः देश के अंदर के छोटे या बड़े संगठनों को अपनी स्थिति को बनाए रखना तथा अपना विकास करना कठिन हो रहा है;
- संगठनों के प्रति समाज विश्व में अंतर्राष्ट्रीय मानक, देशीय कानून और नीति निर्धारकों की मनः स्थिति ऐसे होते जा रहे है कि कोई संगठन अति उत्तम उत्पादन करके ही अपनी स्थिति बनाए रख सकता हैं। संरक्षणवाद का जमाना समाप्त हो रहा है;
- कार्यकलाप के अधिकतर क्षेत्रों में मानव शक्ति का स्थान प्रौद्योगिकी लेती जा रही है;
- भारत सहित अधिकतर विकासोन्मुख देशों की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्रक योगदान बढ़ता जा रहा है;
- कम्प्यूटर के आगमन ने संगठनों के कार्यस्थलों में क्रांति ला दी है इसके चलते संगठनों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ा है;

- व्यवसायों के कार्यकलापों में सतत उत्पादन के नवीन प्रक्रिया और उत्पादन विभेदन का स्थान बढ़ता जा रहा है;
- उत्पादकों और सेवा प्रदान करने वालों के बीच बढ़ती जा रही प्रतियोगिता के चलते अब समय आ गया है कि मांग और पूर्ति के खेल में उपभोक्ताओं का स्थान प्रमुख हो जाए:
- पूर्ति श्रृंखला की गति तेज हो गई है, जिसके फलस्वरूप अपने उपभोक्ताओं तक पहुंचने की प्रक्रिया में उत्पादकों को कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है।
- ऐसा लगता है कि अप्रचलन (obsolescence) अथवा सतत नवीन प्रक्रिया (innovation) के युग में प्रवेश कर गए हैं। आज के युग में केवल कोई विशेष प्रौद्योगिकी ही बडी तेजी से प्रचलन के बाहर नहीं हो जाती बल्कि किसी विचार (प्रबंधकीय नवीन प्रक्रिया) का स्थान भी शीर्घ हर कोई नया विचार ले लेता है;
- विश्व आज एक विश्वव्यापी गांव होता जा रहा है तथा बहुराष्ट्रीय संस्थाओं (multinationals) जैसे संगठन ऐसी छत हो गए हैं जिसके अनेक संस्कृतियों वाले समाज पनपते हैं।
- इस प्रकार के परिवर्तन लगातार होते जा रहे हैं। ऊपर दिए गए परिवर्तन अनन्य (exclusive) नहीं बल्कि केवल संकेतक (indicative) है। आर्थिक पर्यावरण में हुए ऐसे परिवर्तनों ने आधुनिक संगठनों पर प्रभाव डाला है। इस दृष्टि से आधुनिक संगठनों के कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है:
- जनशक्ति को ध्यान में रखकर यदि हम देंखे तो पाएंगे कि संगठनों में छोटा होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।
- संगठनों में स्तरों की संख्या घटती जा रही है ऊँचे संगठनात्मक ढांचे (संरचना) का स्थान सपाट (flatter) संगठनात्मक ढांचा लेते जा रहे हैं, यहां तक की वर्तुल (circular) संगठनात्मक ढांचा होता जा रहा है।

- पहले एवं तकनीकी श्रमिक के पास जो तकनीकी कौशल होता था उसकी तुलना में उसके समकक्ष के आधुनिक तकनीकी श्रमिक के पास बहुत अधिक औसत तकनीकी कौशल होता है;
- व्यवसाय का केन्द्र बिन्दु ग्राहकों को संतुष्ट करना तथा शेयरधारियों के मूल्यों को बढाना होता जा रहा है;
- फलेक्सी स्थान और फलेक्सी समय का उपयोग अधिकतर होता है,
- उत्पादों की गुणवत्ता पर अधिक दिया जा रहा है:
- सेवा संगठनों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ प्रबंध के मध्य और कनिष्ट स्तर को अधिकाधिक अधिकार दिए जा रहे है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि ग्राहकों की आवश्यकताओं के संबंध में उन्हें सबसे पहले ज्ञान होता है। इस परिवर्तन के साथ सगंठन के अंतर्गत उर्ध्वमुख संप्रेषणों और अधोमुख संप्रेषणों में सुधार लाने के साथ ही साथ पार्श्विक संप्रषणों (lateral communication) और अनौपचारिक संप्रषणों को अधिकाधिक किया जाने लगा है;
- प्रबंध के शीर्षस्थ स्तर द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों की प्रक्रिया में मध्य स्तर के तथा यहां तक कि कनिष्ठ स्तर के प्रबंधकों को भी अधिकाधिक रूप में शामिल किया जाता
- अब व्यावसायिक आचार पर अधिक जोर दिया जाता है क्योंकि किसी संगठन के बहुत समय तक टिके रहने के लिए आचार प्रमुख कारक होता है,
- इस बात पर जोर दिया जाने लगा है कि व्यक्ति तथा संगठन अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करें क्योंकि आज के युग में प्रौद्योगिकी एवं संकल्पनाएं समय के पिछे पड़ती जा रही है,
- बहुराष्ट्रीय संगठनों के अधिकाधिक प्रवेश के कारण संगठन के अंदर और संगठन के बाहर अंतःसांस्कृतिक मुद्दों का महत्व बढ़ता जा रहा है;

- संगठनों में स्थायी विभागों की संकल्पना का स्थान अब कार्यकलापों की आऊटसोर्सिंग (outsourcing) ले रही है। ऐसा उस स्थिति में किया जाता है, जब किसी विभाग के कार्य पुनरावर्ती प्रकार के होते हैं।

प्रश्न ख

1) प्रबंधकों के विभिन्न कार्य और भूमिकाएं क्या है ?

....

....

....

....

....

2) संगठनों के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से है ?

....

....

....

3) कोई संगठन किस प्रकार का है, इसका निर्धारण कौन से कारक करते हैं ?

....

....

....

16.10 सार संक्षेप

संगठन उन व्यक्तियों का समूह होता है जो किसी विशिष्ट लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक साथ काम करते हैं। दूसरी ओर प्रबंध एक ऐसी कला है जिसके अंतर्गत औपचारिक रूप से संगठित व्यक्तियों के समूह के द्वारा कोई कार्य कराया जाता है। किसी संगठन की शक्ति को बढाने के लिए उसके कार्यकलापों के नियोजन, सगंठन, नेतृत्व और नियंत्रण की यह प्रक्रिया है।

उद्यम की कार्यकुशलता और उत्पादिता को बढ़ाने के लिए संगठन और प्रबंध के विचारों और सिद्धांतों का व्यापक रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रबंध के स्तर है: शीर्षस्थ, मध्य और पर्यवेक्षण। संगठन के लक्ष्यों को पूरा करने में सभी स्तरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए फैयॉल द्वारा प्रतिपादित प्रबंध के सामान्यत सिद्धांत मार्गदर्शक का काम करते हैं। किसी संगठन में प्रबंधक विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। प्रबंधक द्वारा किए जाने वाले प्रमुख कार्य हैः नियोजन, संगठन, कर्मचारी, भर्ती, निर्देशन, संप्रेषण, निर्णयन तथा नियंत्रण। संगठन में प्रबंधको की अनेक भूमिकाएं भी होती है। उनकी प्रमुख भूमिकाएं हैः अंतवैयक्तिक भूमिकाएं सूचना संबंधी भूमिकाएं तथा निर्णय लेने संबंध भूमिकाएं।

संगठन का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता हैं। औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन, प्राथमिक तथा द्वितीयक संगठन तथा प्रमुख उद्देश्यों पर आधारित संगठन। पर्यावरण में हुए तेजी से परिवर्तनों के फलस्वरूप आधुनिक संगठनो का आविर्भाव हुआ है। आधुनिक संगठन की विशिष्टताएं है छोटा आकार, छोटे स्तर, उच्च कोटि का तकनीकी कौशल, ग्राहकों की संतुष्टि और शेयरधारियों के मूल्य को बढ़ाना केन्द्र बिन्दु होना लचिला समय और लचिला स्थान, उत्पादों की गुणवत्ता, मध्य स्तर को अधिक अधिकार देना, व्यावसायिक आचार पर अधिक बल, सतत ज्ञान प्राप्ति, अंतः सांस्कृतिक प्रबंध, व्यवसाय के आऊटसोर्सिंग में वृद्धि आदि। किसी संगठन में सुचारू रूप से और कुशलतापूर्वक कार्य के लिए अत्यंत जागरूक और गतिशील प्रबंध की आवश्यकता होती है।

16.11 मुख्य शब्द

औपचारिक संगठन (Formation organisation): वह संगठन जिनका ढांचा अधिक कठोर होता है और जिसमें प्रक्रियाओं का लगभग अधिकतम रूप में स्पष्ट कर दिया जाता है।

प्रबंधक के कार्य (Functions of Manger): प्रबंधक के अधिकार के स्तर तथा उसकी स्थिति के कार्य (जॉब) विवरण के अनुसार उसे सौंपे गए कार्य।

अनौपचारिक संगठन (Informal Organsiation): वह संगठन जिसका ढांचा अधिक नम्य होता है तथा जिसकी प्रक्रियाएं कठोर न होकर अधिक सहज प्रकार की होती है।

प्रबंध के स्तर (Levels of Management): सामान्य तौर पर प्रबंध के तीन स्तर होते हैं: शीर्षस्थ, मध्य और कनिष्ठ

प्रबंध (Management): संगठन के सदस्यों के कार्यों के नियोजन, संगठन निर्देशन तथा नियंत्रण की प्रक्रिया तथा संगठन के बताए गए लक्ष्यों को पूरा करने के लिए संगठन के सभी उपलब्ध संसाधनों को काम में लाने की प्रक्रिया।

संगठन (Organisation): वह स्थान जहां पर किसी विशिष्ट लक्ष्य या लक्ष्यों के सेट की प्राप्ति के लिए दो या उससे अधिक एक साथ काम करते हैं।

संगठनात्मक ढांचा (Organisational Sturcture): संप्रेषण के प्रवाह, निर्णायक, निर्णयों को कार्यरूप देने, नियंत्रण और संगठन की सभी क्रियाओं के संयोजन जैसे कारकों को सुचारू बनाने के लिए संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच संबंध कायम करने के लिए औपचारिक विधि।

प्रबंध के सिद्धांत (Principles of Management): वे आधारभूत विचार और मार्गनिर्देशक सिद्धांत जिनके आधार पर प्रबंध कार्यों का जाल इसलिए बुना जाता है कि संगठन में प्रबंध प्रभावी ढंग से हो सके।

प्रबंधक की भूमिका (Role of Manager): एक सचेतन के रूप में किसी प्रबंध द्वारा क्या किए जाने भी अपेक्षा की जाती है।

16.12 संदर्भ सूची

Koontz, H., & O'Donnell, C. (2017). *Principles of Management* (10th ed.). McGraw-Hill Education.

Robbins, S. P., & Coulter, M. (2020). *Management* (14th ed.). Pearson Education.

Chester I. Barnard (2019). *The Functions of the Executive*. Harvard University Press.

Mintzberg, H. (2017). *The Structuring of Organizations: A Synthesis of Research* (1st ed.). Prentice-Hall.

Daft, R. L. (2018). *Management* (13th ed.). Cengage Learning.

Schilling, M. A. (2021). *Strategic Management of Technological Innovation* (6th ed.). McGraw-Hill Education.

Schermerhorn, J. R. (2018). *Management* (12th ed.). Wiley.

Bhattacharya, S. (2017). *Organisation Theory and Behaviour*. Oxford University Press.

Drucker, P. F. (2018). *Management: Tasks, Responsibilities, Practices*. Harper & Row.

Stoner, J. A. F., & Wankel, C. (2019). *Management* (7th ed.). Pearson Prentice Hall.

16.13 अभ्यास प्रश्न

1) समाज में विभिन्न प्रकार के संगठनों के होने के मुख्य उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

2) किसी संगठन की मूल विशिष्टताओं का वर्णन कीजिए।

3) किसी संगठन में प्रबंध के विभिन्न स्तरों के कौन-कौन से प्रकार के विभिन्न दायित्व होते हैं ?

4) प्रबंध के कौन-कौन से विभिन्न सिद्धांत हैं? प्रबंध के विभिन्न सिद्धांतों को व्यवहार में लाने के संबंध में आधुनिक संगठन विशिष्ट क्लासिकी संगठनों से किस प्रकार से भिन्न हैं ?

5) प्रबंधकों के विभिन्न कार्यों और भूमिकाओं की व्याख्या कीजिए। संगठन की कार्यकुशलता को बढ़ाने में इनका क्या उपयोग है ?

6) विभिन्न प्रकार के संगठनों का विवरण प्रस्तुत कीजिए। संगठन एक दूसरे से भिन्न क्यों होते हैं।

इकाई -17

संगठन - सिद्धांत

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 संगठन की संकल्पना

17.3.1 संगठन का महत्व

17.3.2 संगठन प्रक्रिया में सोपान

17.4 संगठन- सिद्धांत

17.5 संगठन का क्लासिकी सिद्धांत

17.5.1 नौकरशाही

17.5.2 प्रशासनिक सिद्धांत

17.5.3 वैज्ञानिक प्रबंध

17.6 संगठन का नव- क्लासिकी सिद्धांत

17.7 संगठन का आधुनिक सिद्धांत

17.7.1 तंत्र सिद्धांत

17.7.2 प्रासंगिकता का सिद्धांत

17.8 संगठन- सिद्धांत में समकालीन समस्याएं

17.9 सार संक्षेप

17.10 मुख्य शब्द

17.11 संदर्भ सूची

17.12 अभ्यास प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

हमने संगठन में जन्म लिया है, संगठन ने हमें शिक्षित किया है और हममे से अधिकतर व्यक्ति संगठन के लिए काम करते हुए अपने जीवन का अधिकतर

भाग बिता देते हैं। संगठन का एक समन्वित एका होता है जिसमें लोग समूह के रूप में काम करते हैं तथा

सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। इससे आशय होता है कार्यकलापों की पहचान करने और समूहन की प्रक्रिया, अधिकार और दायित्व के सबंध में परिभाषित करना और नियत करना और यह निर्धारित करना कि संगठन की क्रियाएं किस प्रकार से परस्पर संबंधित है। इस प्रकार देखते हैं कि संगठन उन व्यक्तियों का एक समूह होता है जो संगठन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साथ कार्य करते हैं। अनेक सिद्धांतो को प्रतिपादित किया गया है जो संगठन की व्याख्या बंद मुक्त और गतिशील तंत्र के रूप में करते हैं। पंरपरागत रूप में संगठन को बंद तंत्र माना जाता है जो बाहरी पर्यावरण से प्रभावित नहीं होता है। यहां एक ऐसे सुदृढं संगठनात्मक ढांचा बनाने पर जोर दिया जाता है जो इसके लक्ष्यों को सरलतापूर्वक प्राप्त करने में सहायता करता है। इसके विपरीत संगठन के आधुनिक सिद्धांत में यह माना जाता है कि पर्यावरण संगठन के अस्तित्व का अंभिन्न भाग है इसलिए पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है कि संगठन बाहरी पर्यावरण के अनुरूप अपने को बनाए। मुक्त तंत्र में संगठन को एक ऐसा सामाजिक तंत्र माना जाता है जिसमें अनेक उप तंत्र होते हैं और वे सभी स्वतंत्र एवं परस्पर संबंधित होते है। मानव एवं उसका संगठन एक दूसरे के साथ गूथे हुए होते हैं। मनुष्य संगठन में कार्य करता है और उससे अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। किसी सफलता प्राप्त संगठन से आशय होता है। दो या उससे अधिक व्यक्तियों का समन्वित प्रयास। ये लोग अपनी योग्याताओं को बढ़ा सकते है। और संगठन से लाभ भी प्राप्त कर सकते है। इस इकाई में आप संगठन की संकल्पना और सिद्धांत के सबंध में पढ़ेंगे। इसके अतिरिक्त आप संगठन के संबंध में अन्य अनेक विचारों को भी पढ़ेंगे। संगठन के सिद्धांत की समकालीन समस्याओं के संबंध में भी आपको जानकारी दी जाएगी।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- संगठन की संकल्पना और उसके महत्व के संबंध में विवेचन कर सकें;
- संगठन के सिद्धातों की व्याख्या कर सकें,
- संगठन के क्लासिकी सिद्धांत का विवरण दे सकें,
- संगठन के नव-क्लासिकी सिद्धांत का विवेचन कर सकें;
- संगठन के आधुनिक सिद्धांत की व्याख्या कर सकें, और
- संगठन की आधुनिक समस्याओं का विश्लेषण कर सकें।

17.3 संगठन की संकल्पना

संगठित करने से आशय उस प्रक्रिया से हाता है जिसमें किए जाने वाले कार्यकलापों की पहचान की जाती है एवं उनका समूहन किया जाता है तथा अधिकार एवं दायित्व के संबंध को परिभाषित और स्थापित किया जाता है। इस प्रकार किसी उद्यम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलकर लोग अत्यंत कुशलतापूर्वक कार्य करते हैं। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि संगठन क्रिया के अंतर्गत उन व्यक्तियों, सामग्रियों मशीनों और द्रव्य का निर्धारण और व्यवस्था करना आता है जिनकी आवश्यकता किसी उद्यम को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए होती है। समिति और व्यवहार रूप में संगठित करने से आशय होता है काम पर लगाए गए व्यक्तियों के कार्यों और उनके दायित्वों को स्पष्ट करना और निर्धारित करना कि उसके कार्यकलाप किस प्रकार से परस्पर संबंधित हों। संगठित करने का अंतिम परिणाम होता है। उन विभिन्न स्थितियों वाले व्यक्तियों के कार्यों और दायित्वों का ढांचा बनाना

जिनका समूहन उनके कार्यों की एकरूपता और परस्पर संबंध के अनुसार किया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संगठन की प्रक्रिया का परिणाम होता है ऐसे व्यक्तियों के समूह का संगठन जो एक या उससे अधिक सम्मिलित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साथ-साथ कार्य करते हैं।

रॉबिन्स की परिभाषा के अनुसार कोई संगठन सचेतन समन्वित सत्ता होता है जिसका कि सापेक्ष रूप से पहचान योग्य सीमा होती है और जो सम्मिलित लक्ष्य या लक्ष्यों के एक सेट को प्राप्त करने के लिए सापेक्ष रूप से सतत आधार पर कार्य करता हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचतें है कि कोई संगठन एक आर्थिक या सामाजिक सत्ता होता है जिसमें पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक व्यक्ति कार्यों को करते हैं। इस प्रकार सामाजिक-आर्थिक प्रकार के अपने व्यक्तिगत उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में उन्हें सहायता मिलती है जिन्हें वे अकेले प्राप्त नहीं कर सकते। उसी प्रकार से यह कार्यकलापों के स्पष्ट रूप से परिभाषित ढ़ाचें का एक तंत्र होता है जिनकी रचना सचेतन रूप से इस प्रकार से की जाती है कि संगठन में लगे हुए व्यक्ति सम्मिलित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें।

किसी संगठन की विशेषताएं निम्नलिखित है:

व्यक्तियों का समूह (Groups of People): किसी संगठन का निर्माण उस समय होता है जब व्यक्तियों का समूह किसी सामान्य उद्देश्य के लिए अपने प्रयत्नों को एक साथ मिला देता है और उसी सामान्य उद्देश्य के लिए स्वेच्छापूर्वक कार्य करता है।

कार्य का विभाजन (Division of work): संगठन की स्थापना में संपूर्ण काम का विभिन्न कार्यकलापों एवं कार्यों में विभाजन तथा इनका विभिन्न व्यक्तियों को उनकी निपुणता, योग्यता एवं अनुभव के अनुसार सौपना सम्मिलित होता है।

सामान्य उद्देश्य (Common purpose): प्रत्येक संगठन का प्रादुर्भाव उद्द्यक के लक्ष्यों के आधार पर होता है और ये लक्ष्य नियुक्त व्यक्तियों के व्यक्तिगत लक्ष्यों से अलग होते हैं। संगठन का सामान्य उद्देश्य ही संगठन के सदस्यों के बीच सहयोग का आधार प्रदान करता है।

उर्ध्वस्तर और क्षैतिज संबंध (Vertifical and Horizontal Relationships): संगठन

विभिन्न विभागों एवं प्रभागों के बीच तथा वरिष्ठों एवं अधीनस्थों के बीच सहकारिता का संबंध स्थापित करता है। उत्पादन, विपणन, वित्तीयन, आदि विभिन्न कार्यों एवं कार्यकलापों का एकीकरण समुचित समन्वय प्राप्त करने के लिए किया जाता है। प्रत्येक विभाग एवं प्रभाग में वरिष्ठों एवं अधीनस्थों के कार्यों एवं दायित्वों का भी एकीकरण किया जाता है ताकि उनके संयुक्त प्रयासों का उद्देश्य सफल हो सकें।

आदेश की श्रृंखला (Chain of Command): किसी संगठन में वरिष्ठों अधीनस्थों के बीच स्थापित संबंध उच्च स्तर के प्रबंध से अगले निचले स्तर के प्रबंध को चलाने वाले प्राधिकार पर आधारित होते हैं और इस प्रकार वे एक सोपानिक श्रृंखला को जन्म देते हैं। इसे ही आदेश की श्रृंखला के रूप में जाना जाता है। जो संप्रेषण की रेखा भी निश्चित करता है।

संगठन की गतिशीलता (Dynamics of Organisation): व्यक्तियों में रचनात्मक संबंधों के अतिरिक्त, जो उनके कार्यकलापों एवं कार्यों पर आधारित होते हैं, एक संगठनात्मक अंतः क्रिया भी होती है जो व्यक्तियों और समूहों की भावनाओं, रुझानों एवं व्यवहार पर आधारित होती है। संगठन के ये पहलू संगठन के कामकाज में गतिशील तत्व प्रदान करते है। समय-समय पर इनमें परिवर्तन भी होता रहता है।

17.3.1 संगठन का महत्व

एक सुदृढ संगठन उद्यम की निरंतरता और सफलता में अत्यधिक योगदान करता है। इसके महत्व की चर्चा नीचे की गई है:

प्रशासन को सुविधाजनक बनाता है (Facilitates Administaration): सुदृढ संगठन प्रबंध व्यवस्था में वर्णित संसाधनों के व्यापक उद्देश्यों को निरंतर गति प्रदान करता है। यह एक ऐसे समुचित मंच की व्यवस्था करता है जहां से प्रबंध अधिकारी नियोजन, निर्देशन समन्वय, अभिप्रेरण एवं नियंत्रण के कार्यों को पूरा कर सकते हैं।

संवृद्धि और विविधीकरण को सुविधाजनक बनाता है (Facilitates Growth and Diversification): वितरण में यह सहायता करता है। काम के स्पष्ट विभाजन, अधिकार के समुचित प्रत्यायोजन आदि द्वारा संवृद्धि और कार्यकलापों का विविधीकरण आसान हो जाते हैं। जब संगठन का विस्तार एक समुचित अनुपात तक हो जाता है तब कार्यात्मक संगठनों का स्थान अधिक लोचदार विकेन्द्रीयकृत संगठन ले सकते हैं।

संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग संभव बनाता है (Permits Optimum use of Resoruces): सुदृढ़ संगठन तकनीकी एवं मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करने में सहायक होता है। कम्प्यूटरों इलेक्ट्रानिक डाटा प्रोसेसिंग मशीनों आदि जैसे नवीनतम तकनीकी सुधारों का संगठन अपना अंग बना सकता है। विशिष्टीकरण के माध्यम से यह मानवीय प्रयासों का अनुकूलतम उपयोग संभव बनाता है। प्रशिक्षण और पदोन्नति के समुचित अवसर प्रदान करके यह व्यक्तियों का विकास भी करता है। इस प्रकार संगठन कंपनी को पूर्वानुमानित आवश्यकताओं की बदलती हुई स्थितियों का सामना करने के लिए हर संभव शक्ति प्रदान करता है।

सर्जनशीलता को प्रोत्साहित करता है। (Stimulates Creativity): विशिष्टीकरण व्यक्तियों को सुस्पष्ट कर्तव्यों प्राधिकार की स्पष्ट रेखाओं एवं दायित्यों को प्रदान करता है। सुदृढ संगठन संरचना प्रबंधकों को इस योग्य बनाती है कि वे नैत्यिक (routine) एवं पुनरावर्ती (repetitive) कार्यों को सहायक पदो पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को सौप सकें और स्वयं उन कार्यों पर ध्यान दें सकें जहां पर अपनी योग्यता का वे अधिक अच्छा उपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार यह सर्जनशीलता को प्रोत्साहित करता है।

मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है। (Encourages Humanistic Approach): व्यक्ति कार्य दलों में काम कर सकते हैं न कि रोबोटों या मशीनों की भांति। संगठन कार्य आवर्तन (job rotation) कार्य विस्तार तथा समृद्धि प्रदान करता है। कार्यों का मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप सार्थक और दिलचस्प बनाया जाता है। संगठन कर्मचारी के चयन, प्रशिक्षण, पारिश्रमिक और पदोन्नति की कुशल पद्धतियों को अपनाता है। समुचित प्रत्यायोजन (delegation) और विकेन्द्रीयकरण, प्रेरक कार्यकारी माहौल तथा लोकतंत्रीय और भागीदारी नेतृत्व कर्मचारियों के अपने काम में अधिक संतोष प्रदान करते हैं। यह प्रबंध के विभिन्न स्तरों में अंतः क्रिया को बढ़ाता है।

यद्धपि ऊपर हमने संगठन के महत्व का विवेचन किया है परंतु एक सुदृढ़ संगठन ढांचा अपने आप में ही सफलता की गांरटी नहीं देता। ड्रक्कर (Drucker) के अनुसार कोई अच्छा संगठन ढांचा अपने आप ही अच्छा कार्य निष्पादन नही दे सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे एक अच्छा संविधान एक महान राष्ट्रपति, अच्छे कानून अथवा नैतिक समाज की गांरटी नहीं देता। लेकिन एक अक्षम संगठन ढांचा अच्छे कार्य निष्पादन को अंसभव बना देता है संगठन के कार्य करने वाले व्यक्ति कितने ही अच्छे क्यों न हों।

17.3.2 संगठन प्रक्रिया में सोपान

संगठन में निम्नलिखित अतः संबंधित सोपान सम्मिलित हैं:

उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of objectives): संगठन का संबंध सदा ही किन्हीं उद्देश्यों के साथ होता है इसलिए प्रबंध के लिए आवश्यक होता है कि कोई भी कार्य प्रारंभ करने के पहले वह उद्देश्यों को निर्धारित कर लें। यह प्रबंध को कर्मचारियों एवं सामग्री के चुनाव में सहायता देगा, जिससे वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। उद्देश्य प्रबंध और कर्मचारियों के लिए पथप्रदर्शक का भी काम करते हैं। वे संगठन में निर्देशन की एकता लाएंगें।

कार्यकलापों का तादात्मीकरण एवं वर्गीकरण (Identification and Grouping of Activities): यदि दल के सदस्य अपने प्रयत्नों को प्रभावपूर्ण ढंग से इकट्ठा करना चाहते हैं तो प्रमुख कार्यों का उचित विभाजन आवश्यक होता है। प्रत्येक काम का उचित विभाजन एवं वर्गीकरण आवश्यक है इससे सदस्य यह जान सकेंगे कि दल के सदस्य के रुप में उससे क्या आशा की जाती है और इससे प्रयत्नों के दोहरेपन से भी बचा जा सकता हैं उदाहरण के लिए एक वैयक्तिक औधोगिक और वित्त जैसे प्रमुख कार्यों में विभाजित किया जा सकता हैं और एसे प्रत्येक कार्य को पुनः कई भिन्न कामों में बाटा जा सकता है। इसके पश्चात् प्रत्येक काम का विभाजन एवं वर्गीकरण किया जा सकता है ताकि दूसरे कदमों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन किया जा सके।

कर्तव्यों का आबंटन (Allocation of Data): कार्यों को विभिन्न भागों में वर्गीकृत और समूहीकृत करने के बाद उन्हें व्यक्तियों को आबंटित किया जाना चाहिए ताकि वे उनका प्रभावशाली ढंग से निष्पादन कर सकें। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार विशिष्ट काम करने के लिए दिया जाना चाहिए और उसे उसके लिए उत्तरदायी बनाना चाहिए। उसे जो काम सौंपा गया है उसे पूरा करने के लिए उसे पर्याप्त अधिकार भी दिए जाने चाहिए।

संबंधो को विकसित करना (Developing Relationship): क्योंकि एक ही संगठन में अनेक व्यक्ति काम करते हैं। अतः संगठन में सबंधो का ढाचा स्थापित करना प्रबंध की जिम्मेदारी होती है। प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट रूप से पता होना चाहिए कि यह किसके प्रति उत्तरदायी है। प्राधिकार और दायित्व के प्रत्यायोजन को सुविधाजनक बनाकर उद्योग के निर्विधन परिचालन में यह सहायता करता है।

कार्यों के इन वर्गों का एकीकरण (Integration of these group of Activities): सभी कार्यों का एकीकरण निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है। (क) प्राधिकार संबंधो के माध्यम से क्षैतिज, उर्ध्वस्तर और पार्श्विक से तथा (ख) संगठित सूचना या संप्रेषण व्यवस्था के माध्यम से अर्थात् प्रभावपूर्ण समन्वय एवं संप्रेषण की सहायता से विभिन्न कार्यों के एकीएकरण द्वारा हम उद्योगों की एकता, सामुहिक कार्य एवं सामुहिक भावना. प्राप्त कर सकते हैं।संगठन सिद्धांत

17.4 संगठन - सिद्धांत

संगठन के सिद्धांत किसी कुशल संगठन ढांचे के आयोजन के लिए पथप्रदर्शक होते है। अब हम संगठन के महत्वपूर्ण सिद्धातों का विवेचन करेंगे।

उद्देश्यों की एकता (Unity of Objective): प्रत्येक उद्योग कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। संगठन और इसके प्रत्येक अंग को इन उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर निर्देशित होना चाहिए। संगठन के प्रत्येक सदस्य को इसके लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से परिचालित होना चाहिए। संगठन में उद्देश्यों की एकता का होना आवश्यक होता हैं ताकि सभी प्रयत्न निधारित लक्ष्यों पर केन्द्रित किए जा सकें। इस सिद्धांत में यह आवश्यकता निहित है कि उद्देश्यों को स्पष्टतः प्रतिपादित किया जाए और उन्हें अच्छी तरह समझा जाए।

काम का विभाजन और विशिष्टीकरण (Division of Work and Specialisation): संगठन में संपूर्ण काम को विभिन्न भागों में बाट देना चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति केवल एक काम मे निष्पादन के लिए उत्तरदायी हो। यह विशिष्टीकरण को सुविधाजनक बनाता है, जिससे कार्यक्षमता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। परंतु विशिष्टीकरण का प्रत्येक क्षेत्र सभी विभागों के सभी कार्यों मैं समन्वय के द्वारा संपूर्ण एकीकृत तंत्र से परस्पर संबंधित होना चाहिए।

जॉब की परिभाषा (Definition of Job): संगठन में प्रत्येक पद संगठन के अन्य पदों के संदर्भ में स्पष्टतः परिभाषित होना चाहिए। प्रत्येक पद को सौपे गए कर्तव्यों और दायित्वों और उसका अन्य पदों से संबंध इस प्रकार परिभाषित होना चाहिए कि कार्यों में दोहरापन न हो पाए।

रेखा और स्टाफ कार्यों में अलगाव (Separation of Line and Staff Functions): जहां तक संभव हो रेखा कार्यों को स्टाफ कार्यों से अलग करना चाहिए। रेखा कार्य वे है जो कंपनी के प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करते हैं। अनेंकों निर्माण कंपनियों में निर्माण एवं विक्रय विभागों को मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने वाले विभाग के रूप में माना जाता है और इसलिए इन्हें रेखा कार्य कहा जाता है। कार्मिक, प्लांट का रखरखाव, वित्तीयन और कानून जैसे अन्य कार्यों को स्टाफ कार्य माना जाता है।

आदेश की श्रृंखला या सोपानिक सिद्धांत (Chain of Common of Scaler Principle): संगठन के शीर्ष भाग से निम्नतक भाग तक जाती हुई प्राधिकार रेखा स्पष्ट होनी चाहिए।

प्राधिकार का अर्थ है निर्णय लेने, निर्देष देने और समन्वय करने का अधिकार। संगठन का ढांचा ऐसा होना चाहिए कि वह प्राधिकार के प्रत्यायोजन को आसान कर दे। शीर्ष पद से कार्यकारी पद तक स्तरों अथवा श्रेणियों में प्रत्यायोजन से

स्पष्टता आती हैं प्राधिकार रेखा मुख्य कार्याधिकारी से विभागीय प्रबंधकों, पर्यक्षकों या फोरमैनों (foreman) और अंततः श्रमिकों तक जा सकती है। आदेश का यह श्रृंखला संगठन के सौपानिक सिद्धांत के नाम से भी जानी जाती है।

प्राधिकार और दायित्व की एकरूपता या सांमजस्य का सिद्धांत (Parity of Authority and Responsibility or Principle of Correspondence): प्रत्येक दायित्व के साथ उसके अनुरूप भी होना चाहिए। प्रत्येक अधीनस्थ के पास प्र्याप्त प्राधिकार होना चाहिए

ताकि वह अपने दायित्व को अच्छी तरह निभा सके। इस सिद्धांत से आशय यह है कि यदि किसी बहु- संगठन के प्रबंधक के सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो अपने दिन प्रतिदिन के कार्यों के लिए उसे कंपनी मुख्यालय से आदेश लेने के लिए बाध्य नहीं होना चाहिए।

आदेश की एकरूपता (Unity of Command): संगठन के किसी भी व्यक्ति को एक से अधिक पर्यवेक्षक को रिपोर्ट नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को पता होना चाहिए कि उसे किसे रिपोर्ट करना और कौन रिपोर्ट करता हैं साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति का केवल एक ही अधिकारी होना चाहिए। कई पर्यवेक्षकों से निर्देश प्राप्त करने से भ्रांति दुर्व्यवस्था संघर्ष एवं कार्यवाही की कमी हो सकती है।

निर्देशन की एकरूपता (Unity of Direction): इस सिद्धांत के अनुसार सामान्य लक्ष्यों वाले कार्यों के समूह का प्रबंध एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। विभिन्न कार्यविधियों के एक सामान्य उद्देश्य के लिए एक प्रधान और एक ही योजना होना चाहिए। इससे व्यापक संगठनात्मक एकता की प्राप्ति की दिशा में अबाध गति से आगे बढ़ा जा सकता है।

अपवाद का सिद्धांत (Exception Principle): इस सिद्धांत के अनुसार उच्च स्तरीय प्रबंधकों को केवल अपवादात्मक मामलों पर ध्यान देना चाहिए। सभी रोजमर्रा के निर्णय निचलें स्तरों पर लिए जाने चाहिए तथा असामान्य मामलों से संबंधित समस्याएं और नीति निर्णय स्तर के प्रबंधकों के सम्मुख ले जाना चाहिए।

पर्यवेक्षण का विस्तार (Span of Supervision): पर्यवेक्षण के विस्तार शब्द से आशय व्यक्तियों की उस संख्या से होता है जिसे एक प्रबंधक या पर्यवेक्षक निर्देशित कर सकता है। कोई प्रबंधक उपलब्ध समय और क्षमता की सीमाओं में जितने व्यक्तियों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रबंध कर सकता है। उससे अधिक अधीनस्थों के पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी उसे नहीं दी जानी चाहिए। वास्तविक संख्या काम की प्रकृति एवं पर्यवेक्षण गहनता अथवा आवृति के अनुसार परिवर्तित हो सकती हैं

संतुलन का सिद्धांत (Principle of Balance): संगठन के विभिन्न अंगो में समुचति संतुलन होना चाहिए और किसी कार्य को दूसरे कार्यों की तुलना में अनुचित महत्व नहीं देना चाहिए। केन्द्रीयरण और विकेन्द्रीयकरण, पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा और सम्प्रेक्षण की रेखा तथा विभागों और विभिन्न स्तर के कार्मिकों के आंबटित प्राधिकार में भी सुतलन रखना चाहिए।

संप्रेषण (Communication): किसी संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संप्रेषण के एक अच्छे ढांचे को होना आवश्यक होता हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राधिकार की रेखा अधोमुखी और उर्ध्वमुखी संप्रेषण का माध्यम उपलब्ध कराती है, फिर भी अनेक संगठनों में संप्रेषण में कुछ बाधाएं उठ खड़ी होती है। वरिष्ठ अधिकारी का अपने अधीनस्थों में विश्वास और द्धि-दिशा संप्रेषण ऐसे तत्व है जो किसी संगठन को प्रभावपूर्ण रूप से कार्यवाही तंत्र में जोड़तें हैं।

लोच (Flexibility): संगठन का ढाचा लोचदार होना चाहिए ताकि उसे सरलता और मितव्ययतापूर्वक कार्य की प्रकृति में परिवर्तनों एवं प्रौद्योगिकी नवीकरणों के अनुकूल बनाया जा सके। संगठन ढांचे में लोच मूल डिजाइन में गड़बड़ी जाए बिना पर्यावरण के अनुसार परिवर्तन की क्षमता को सुनिश्चित करती है।

निरंतरता (Continuity): परिवर्तन प्रकृति का नियम है। संगठन के बाहर अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन संगठन में भी प्रतिबिंबित होने चाहिए। इस उद्देश्य के लिए संगठन के ढाचें का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो उद्यम की आवश्यकताओं को पूरा कर सके और लंबी अवधि के लिए इसके उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें।

बोध प्रश्न क

1) किसी संगठन की मूल विशिष्टताएं बताइए।

....

....

....

2) किसी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के सिद्धांत किसी प्रकार से सहायक होते हैं ?

....

....

3) संगठन के ऐसे पांच सिद्धांत बताइए जिनका प्रयोग आपने किसी संगठन में देखा है।

....

....

....

17.5 संगठन का क्लासिकी सिद्धांत

संगठन के प्राचीन सिद्धांत को संगठन के क्लासिकी वर्ग में रखा जाता हैं क्लासिकी सिद्धांतों की शुरूआत एफ डब्लू मैक्स वेबर जैमस. मूरे, इ. एफ एल बिच और लूइस एलेन द्वारा लिखी गई पुस्तकों से होती हैं। क्लासिकी सिद्धांत का प्रभाव अंत्यंत गहन रहा है। क्लासिकी सिद्धांत का विकास तीन धाराओं मे हुआ नोकरशाही, प्रशासनिक सिद्धांत और वैज्ञानिक प्रबंध। क्लासिकी सिद्धांत के इन घटकों का विकास एक समान मान्यताओं पर लगभग एक ही समय में (1900-1950 ई.) हुआ। इन घटकों ने संगठन के अर्थ में ढांचे की रूपरेखा का विकास किया। तदानुसार संगठन की परिभाषा संबंधों, शक्ति उद्देश्यों भूमिकाओं संप्रेषणो और अन्य कारकों के उस ढांचे के रूप में की गई जब लोग एक साथ कार्य करते हैं इस प्रकार क्लासिकी सिद्धांत की ये धाराएं संगठन की यांत्रिक ढांचे के रूप में देखती है। अब हम क्लासिकी सिद्धांत की इन तीन धाराओं के संबंध में विस्तार से चर्चा करेंगे।

17.5.1 नौकरशाही

नौकरशाही एक सामजिक अविष्कार है जिसे किसी फर्म के कार्यकलापों को संगठित करने और निर्देशित करने के लिए औद्ययोगिक क्रांति के समय पूरा रूप दिया गया। यह वह तंत्र है जिसमें सरकार का संचालन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अधिकारियों द्वारा होता है। नौकरशाही की परिभाषा संगठन के एक ऐसे तंत्र के रूप में दी जाती है जिसके अंतर्गत व्यक्तियों और पदों के बीच की भूमिकाओं, कार्यों और संबंधों के औपचारिक प्राधिकार के अनुसार स्पष्टतः

परिभाषित किया जाता है तथा नियमों और विनियमों से किसी भी प्रकार के विचलन को अत्यंत गंभीरतापूर्वक लिया जाता हैं नौकरशाही सिद्धांत का व्यवस्थित रूप से विकास मैक्स वेबर में (1864-1920) द्वारा हुआ। वेबर ने संगठन के अपने निरूपण को आदर्श माना। उनके अनुसार प्रत्येक संगठन की परिभाषा कार्यकलापों के एक ढांचे (साधनों) के रूप में दी जा सकती है। जिसका निर्देशन कुछ उद्देश्यों (साध्यों) को पूरा करने के लिए किया जाता है। सभी संगठन कार्यकुशलता और उत्पादित को अधिकतम करने के लिए विशेषज्ञता के एक तंत्र (कार्यों के विभाजन) तथा व्यवस्थित नियमों और प्रक्रियाओं के एक सेट को विकसित करते हैं वेबर ने इस बात पर जोर दिया कि नौकरशाही तंत्र उच्चतम कोटि की कार्यक्षमता प्राप्त करने में सक्षम है तथा यह किसी संगठन के अंतर्गत व्यक्तियों पर नियंत्रण रखने का अत्यंत विवेकपूर्ण ज्ञात साधन है। यह यथार्थता स्थायित्व अनुशासन और विश्वसनीयता के अर्थ में सभी तंत्रो से श्रेष्ठ है।

वेबर ने उन विभिन्न कारकों और परिस्थितियों को बताने का प्रयास किया जिनका कि आधुनिक समय में नौकरशाही की वृद्धि में योगदान रहा है। आधुनिक संगठनो और निगमों के विकास के फलस्वरूप संगठनों में नौकरशाही में अत्यधिक वृद्धि हुई। नोकरशाही में अंतर्निहित दोष तो है, फिर भी जटिल संगठनों को चलाने के लिए यह अनिवार्य हो गई है। दूसरी बात यह है कि नौकरशाही की प्रमुखता का एक महत्वपूर्ण घटक है, दिन-प्रति दिन बढ़ते हुए प्रौदयोगिकीय ज्ञान और आधुनिक प्रौद्यायोगिकी में विकास की भूमिका अर्थव्यवस्था पूंजीवादी है या समाजवादी परंतु संगठन की कार्यकुशलता को उच्च कोटि का बनाने के लिए उसमें अत्यधिक नौकरशाही विशेषज्ञता का होना आवश्यक होता है। तृतीय, वेबर ने इस बात पर बार-बार जोर दिया कि आधुनिक नौकरशाही के विकास मे पूंजीवादी व्यवस्था की प्रमुख अवांछनीय भूमिका रही है पूंजीवादी व्यवस्था को सही ढंग से चलाने के लिए स्थिर और

सुव्यवस्थित प्रशासन के लिए पूंजीवाद को अत्यधिक तर्कसंगत आर्थिक आधार माना जाता है।

नौकरशाही की विशेषताएं

संगठन के नौकरशाही रूप की पहचान निम्नलिखित संरचनात्मक और व्यवहारात्मक विशेषताओं से की जाती है:

श्रम-विभाजन और विशेषज्ञता (Division of Land and Speicalisation): श्रम विभाजन पर आधारित विशेषता नौकरशाही की आधारशीला है व्यक्ति की तुलना में यह जॉब (कार्य) पर अधिक लागू होती है। कार्य के विभाजन पर आधारित विभिन्न कर्मचारियों की भूमिकाएं स्पष्टतः परिभाषित होती हैं। इसके फलस्वरूप व्यक्ति के कार्य विषय (job-content) और संगठन के ढाचें में उसकी स्थिति स्पष्ट हो जाते हैं। इससे सगठन के लक्ष्यों / उद्देश्यों में स्पष्टता आ जाती हैं। इससे संगठन के सोपानिक ढांचे का डिजाइन बनाने में मदद मिलती है। इसका आधार सक्षमता का विशिष्ट क्षेत्र होता है, जिसके अंतर्गत निम्नलिखित आते है (क) कार्यों को करने का प्रयोग क्षेत्र जिसे व्यवस्थित श्रम विभाजन के एक भाग का रूप दिया गया है। (ख) आवश्यक प्राधिकार के साथ पदस्थ व्यक्ति का प्रावधान और (ग) बाध्यता के आवश्यक साधन स्पष्टतः परिभाषित होते हैं और उनका उपयोग कुछ विशेष परिस्थितियों में ही किया जा सकता है।

सोपान (Hierarchy): सोपान दूसरी मूल विशेषता है जो कि किसी संगठन के नौकरशाही रूप की विशिष्टता होती है। वरिष्ठ और अधीनस्थ अधिकारियों के बीच स्पष्ट रूप से पृथक्करण होता है अर्थात् निम्न पद का प्रत्येक अधिकारी किसी उच्च अधिकारी के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में होता हैं जॉब के स्वरूप और दायित्व के ग्रेड के अनुसार पारिश्रमिक निश्चित किया जाता है पदोन्नति और

वृत्तिक उन्नति (career advancement) के आधार वरिष्टता और मेरिट होते हैं।

नियम (Rules): नौकरशाही अमूर्त नियमों की संगत प्रणाली के अनुसार कार्य करती है। वेबर ने नियमों की भूमिका पर इसलिए जोर दिया है जिससे पक्षपात, मनमानापन और भाई-भतीजावाद संगठन की कार्यचालन में बाधक न बनें। यदि कोई अधिकारी अपने विवेक से कार्य करता है तो उस कार्य के परिणाम ऐसे होने चाहिए कि उसमें उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ निहित न हो।

तर्कशक्ति (Rationality): कार्यकुशलता और तर्कशक्ति के संबंध में वेबर के विचारों और नौकरशाही के विशिष्ट मॉडल के संबंध में उसके विचारों के बीच घनिष्ठ संबंध है उसने लिखा है कि मानव जाति पर अति आवश्यक नियंत्रण रखने के लिए नौकरशाही अत्यधिक तर्कसंगत ज्ञात साधन है। इसके चलते बहुत अधिक कार्यकुशलता आती है क्योंकि लक्ष्यों को पूरा करने के लिए जिन साधनों का उपयोग किया जाता है उन्हें वांछित साध्यों को ध्यान में रखकर ही तर्कसंगत और निष्पक्ष रूप से चुना जाता है। कार्यकुशलता आने का एक अन्य कारण यह है कि ऐसी प्रणाली में नेताओं के व्यक्तिगत मनमानापन और परंपरागत दबावों का कोई स्थान नहीं होता। नौकरशाही अपने नियमों के अनुसार चलती है तथा व्यक्तिगत और शासकीय मामलों के बीच की सीमा स्पष्टतः निर्धारित होती है।

निवैयक्तिकता (Impersonality): निर्णय लेने वाले अधिकारियों तथा पूरे संगठन में काम करने वाले अधिकारियों द्वारा इसका पालन करना आवश्यक होता हैं। नौकरशाही रूप में व्यक्तिगत मनमानापन, सनक या तर्कहीन भावनाओं के लिए कोई स्थान नही होता। अधिकारिक कार्य व्यावसायिक रूप में किए जाते हैं तथा इन्हें करने के संदर्भ में अत्यंत निवैयक्तिकता की आवश्यकता होती है।

नियम निर्धारण (Rule Orientation): तर्कशक्ति और अंतवैयकितकता की प्राप्ति मुख्यतः ऐसे नियमों और कार्य विधियों को बनाने से होता है जो प्राधिकार और व्यवहार के अधिकाधिक क्षेत्र को स्पष्टतः परिभाषित करते हैं। कर्मचारियों से अपेक्षा की जाती है कि अपना काम करने के दौरान वे इन नियमों का पालन करें।

निष्पक्षता (Neutrality): निर्णय लेने और इन नियमों को काम में लाने के दौरान निष्पक्षता नौकरशाही को चलाने के लिए प्रमुख सिद्धांत है। नौकरशाही से अपेक्षा की जाती है कि अपने कार्यों और व्यवहार से वह बिल्कुल ही निष्पक्ष रहे। कर्मचारियों से यह भी अपेक्षा की जाती है कि उसकी प्रतिबद्धता केवल उन्ही कार्यों के साथ हो जिन्हें उन्हें करना हैं।

नौकरशाही की आलोचना : मैक्स वेबर ने एक ऐसा मॉडल प्रस्तुत किया जिसका स्वरूप आदर्शक है और जिसका उपयोग बड़े-बड़े और जटिल संगठन कर सकते हैं लेकिन व्यवहार रूप में नौकरशाही इन आदर्शों के पूर्णतः अनुरूप नहीं हो पाती। बड़े-बड़े और जाटिल संगठनों में नौकरशाही आवश्यक बुराई होती है। अनेक विद्वानों के अनुसार नौकरशाही मॉडल में निम्नलिखित दोष है:

कठोरता (Rigidity): कठोर संगठन प्रायः यह महसूस नहीं कर पाता है कि किसी विकासशील अनुकूली संगठन के लिए नवीन प्रक्रिया (innovation) आवश्यक जीवन तत्व है। नौकरशाही का अंतिम लक्ष्य प्रायः पूर्ण दिखाई देता है लेकिन नियमों पर इसकी अत्यधिक निर्भरता पहले को समाप्त कर देती है और इसके फलस्वरूप संगठन में अप्रचलन (obsolescence) आता है।

निवैयक्तिकता (Impersonality): नौकरशाही में सबंध प्राथमिक और व्यक्तिगत न होकर गौण और संविदात्मक होते हैं। निवैयक्तिकता, अनामता (anonymity) मूल्यों के प्रति तटस्थता आदि विशेषताएं संगठन के मूल प्रकृति के विरोधी हैं क्योंकि संगठन में तो व्यक्तियों और नौकरशाही के बीच घनिष्ठ

संबंध का होना आवश्यक होता है। व्यक्तिगत संबंध के अभाव में उत्पादिता का स्तर गिर जाता है।

प्रत्यायोजन (Delegation): नौकरशाही मॉडल की आलोचना इस आधार पर भी की जाती हैं कि प्रचालन स्तरो पर प्रत्यायोजन की समस्याएं उठ खड़ी होती है। उच्च पदो पर बैठे हुए अधिकारी अधिकाधिक अधिकतर अपने हाथ में ले लेते हैं। और निचले स्तरों को बहुत ही कम अधिकारों और दायित्वों का प्रत्यायोजन किया जाता है। प्रत्यायोजन के न होने से संगठनों में निर्णय लेने में आवश्यक विलंब होता है।

लक्ष्य-विस्थापन (Goal Displacement): नियमों और विनियमों (rules and reguations) को अत्य अधिक पालने से लक्ष्य विस्थापन की समस्याएं उठ खड़ी होती है। ये नियम और विनिमय इसलिए बनाए जाते है कि संगठन को चलाने में ये सहायक हों। परतु इस बात को ध्यान में रखे बिना कि लक्ष्य की प्राप्ति में से सहायक हो रहे हैं या नहीं, इनका पालन किया जाता है।

सख्ती से वर्गीकरण (Strict Categorisation): नौकरशाही में समन्वय और विशेषज्ञता उसी स्थिति में लाभदायक होते हैं जब कार्यकलापों और व्यक्तियों का सख्तीपूर्वक वर्गीकरण और विभागीकरण किया जाए। वर्गीकरण के अप्रक्रियात्मक परिवर्तन का परिणाम है कि नौकरशाही में वृत्ति की जगह बहुत मुश्किल से बन पाती है। नौकरशाही इस तथ्य साथ सुकुन में है कि ग्रहण किया हुआ सम्पूर्ण विश्व कभी भी वर्गीकृत नहीं हो सकता।

स्वतः शाश्वतता और साम्राज्य निर्माण (Self-perpetuation and Empire Building): नौकरशाही की प्रायः यह धारण होती है कि किसी पद पर बैठने के फलस्वरूप उन्हें व्यक्तिगत स्वामित्व और विशेषाधिकार प्राप्त हो जाते हैं। वे पुरानी चीजों को बनाए रखना चाहते हैं और नवीन प्रक्रियाओं का विरोध करते हैं। मैक्स वेबर की मान्यता है कि नौकरशाही उन सामाजिक ढांचाओ में से एक

है जो एक बार यदि स्थापित हो जाता है तो बाद में उसकी उपयोगिता के न रहने पर भी उसे नष्ट करना कठिन हो जाता है। नौकरशाही में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और वेतन प्रायः इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसके अधीन कितने व्यक्ति काम करते हैं। इस प्रकार नौकरशाही का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि किसी व्यक्ति के अधीन कार्य करने वाले व्यक्तियों की संख्या को बढाया जाए। यह ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि साम्राज्य निर्माण की स्थिति में होता है।

नियंत्रणो का मूल्य (Cost of Controls): अनुरूपता को लाने के लिए नौकरशाही में नियमों, विनियमों, और कभी-कभी अनेक कार्यविधियों (procedures) को बनाए रखा जाता है। इसका परिणाम अपक्रियात्मक होता है लोगों की मान्यता है कि नौकरशाही की कार्यविधियां अत्यधिक प्रतिबंध और विलंब लाती हैं और उसके फलस्वरूप कुंठा आती है।

बोध प्रश्न क

1) मान लीजिए कि नौकरशाही के दोषों से बचने के लिए आप इसे समाप्त करना चाहते है यह कैसे किया जा सकता है? इसके परिणाम क्या होंगे ?

....

....

....

2) नौकरशाही में क्या आप कार्य करना चाहेंगे? क्यों और क्यों नहीं ?

....

....

....

17.5.2 प्रशासनिक सिद्धांत

वैज्ञानिक प्रबंध का मुख्य संबंध कर्मशाला (shop floor) में प्रत्येक श्रमिक की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना था। प्रबंधको की भूमिका और समस्त संगठन में उनके कार्यों पर समुचित ध्यान नहीं किया गया। लगभग इसी समय अर्थात 20वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में फ्रांस के एक कोयला के खान के निदेशक हेनरी फैयॉल ने प्रबंध की प्रक्रिया का विधिवत विश्लेषण किया। प्रबंध के अध्ययन की उसकी विधि को प्रक्रिया अथवा कार्यात्मक विचाराधारा (functional approach) कहा जाता है।

फैयॉल के अनुसार किसी भी उपक्रम में व्यावसायिक क्रियाएं एक दूसरे पर निर्भर छः प्रक्रियाओं में बांटी जाती है, अर्थात् तकनीकी (technical) वित्तीय (financial) सुरक्षा (security) लेखांकरण (accounting) और प्रशासनिक (administrative) अथवा प्रबंधन कार्य (managerial operations) उन्होंने प्रबंधन प्रक्रियाओं तथा आवश्यक दक्षता के लिए आवश्यक गुणों का विश्लेषण किया जिन पर तब तक के विचारकों ने ध्यान नहीं दिया था। उन्होंने प्रबंधन की प्रक्रिया को सार्वभौमिक रूप से प्रयोग किया जाने वाला बताया तथा इस प्रक्रिया के पांच तत्वों में स्पष्ट अंतर किया अर्थात् पूर्वानुमान लगाना और योजना बनाना (to forecast and plan) व्यवस्था करना (to orgainise) आदेश देना (to command) समन्वय करना (to coordinate) और नियंत्रण करना (to coordiante) इस प्रकार प्रबंध की अवधारणा को नियोजन, व्यवस्था आदि कुछ कार्यों की अवधारणा आदि कुछ कार्यों के निष्पादन के रूप में परिभाषित किया गया। उपक्रम के सभी स्तरों पर नियुकत सभी प्रबंधकों को यह कार्य करने होते है तथा सभी देशों एवं सभी प्रकार के उद्योगों में इस प्रणाली को अपनाया जाता है।

फैयॉल ने प्रबंध के अंतर्गत कुछ निश्चित कौशलों (skills) का प्रयोग करना भी आवश्यक बताया जो क्रमबद्ध रूप से निर्देश और प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं। इन कौशलों को यदि प्राप्त कर लिया जाए तो सभी प्रकार की

संस्थाओं में इनका प्रयोग किया जा सकता है। इन संस्थाओं में धार्मिक संस्थाएं, स्कूल और राजनैतिक और औद्योगिक प्रतिष्ठान शामिल होते हैं।

प्रबंधन प्रक्रिया तथा प्रबंध कार्यों का क्रमबद्ध विश्लेषण करने के साथ-साथ फैयॉल ने 14 सिद्धातों का एक सेट भी प्रतिपादित किया। ये सिद्धांत प्रबंधन प्रक्रिया के उपयोग में पथप्रदर्शक का काम करते हैं। इन सिद्धांतो का लचीला रूप दिया गया हैं। यह आशा की जाती है कि सभी परिस्थितियों में ये कौशल प्रबंधकों के लिए सहायक होंगे। प्रभावी प्रबंधन के लिए आवश्यक कोशल तथा योग्यताएं उपक्रम के विभिन्न स्तरों के प्रबंधकीय पक्षों पर निर्भर करते हैं। फैयॉल के अनुसार प्रशासनिक कौशल उच्चस्तरीय प्रबंधकों के लिए अधिक अनिवार्य है जबकि तकनीकी योग्यताएं नीचे के स्तर पर कार्य करने वाले प्रबंधकों के लिए आवश्यक हैं। फैयॉल की यह भी मान्यता थी कि जीवन के प्रत्येक मोड़ पर व्यक्तियों के लिए प्रबंधकीय प्रशिक्षण अनिवार्य है। उन्होंने ही पहली बार प्रबंध के क्षेत्र में औपचारिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। संक्षेप में फैयॉल का विश्लेषण साधनो का एक सेट (जैसे प्रक्रिया को व्यावहारिक रूप देने के लिए सिद्धांत) प्रदान करता है।

प्रबंध में चौदह सिद्धांत निम्नलिखित है। इनके संबंध में इकाई 1 में आप पहले ही पढ़ चुके हैं। इन्हें सरसरी तौर पर दुहराने का प्रयास किया जाएगा।

- कार्य का विभाजन
- अधिकार और उत्तरदायित्व
- अनुशासन
- आदेश की एकता
- निर्देश की एकता

- व्यक्तिगत हित सामान्य हित के अधीन होने चाहिए
- कार्मिको को परिश्रमि
- केन्द्रीयकरण
- सोपान श्रृंखला
- क्रम व्यवस्था
- समता
- कार्यकाल का स्थायित्व
- पहल
- सहयोग तथा मिलजुल कर कार्य करने की भावना

प्रबंध का प्रशासनिक सिद्धांत तथा प्रबंध की कार्यात्मक विचाराधारा का विश्लेषण करने के लिए एक संकल्पनात्मक ढांचा प्रस्तुत किया। साथ ही साथ उन्होंने प्रबंध को एक स्वतंत्र इकाई का सम्मान देकर उसका विश्लेषण किया। ज्ञान के समूह के रूप में प्रबंध को अत्यधिक लाभ फैयॉल द्वारा प्रबंधकीय कौशलो का विश्लेषण कर उन्हें सार्वभैमिक्ता प्रदान करने तथा उनके सामान्य प्रबंध के सिद्धातों से ही मिला। यद्यपि कुल आलोचकों ने इसे असंगत, अस्पष्ट तथा प्रबंधको का पक्ष लेने वाला सिद्धांत बताया है फिर भी यह सिद्धांत समस्त विश्व में प्रबंध शास्त्र की शिक्षा तथा व्यवहार में महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

17.5.3 वैज्ञानिक प्रबंध

एफ डब्ल्यू टेलर तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने 1890 और 1930 ई. के बीच के काल में वैज्ञानिक प्रबंध विचारधारा का प्रतिपादन किया। इस विचाराधारा का मुख्य उद्देश्य था किसी कार्य को करने तथा श्रमिकों के चयन, प्रशिक्षण और अभिप्रेरण करने के लिए वैज्ञानिक ढंग से सर्वोत्तम विधि को निर्धारित करना। टेलर के अतिरिक्त फ्रेंक गिलब्रेथ, लिलियन गिलिब्रेथ और हेनरी ग्रांट ने औद्योगिक संगठनो में विशेषतः शॉल फलोर पर मानव श्रम के प्रभावी प्रयोग के संबंध में जांच पड़ताल की। टेलर (1856-1915) ने इंजीनियरी का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उन्हें वैज्ञानिक प्रबंध का जन्मदाता माना जाता है।

टेलर ने अपनी प्रबंध प्रणाली का आधार पंरपरागत कार्य विधि (work method) को न बनाकर उत्पादन रेखा समय अध्ययन (production line time studies) को बनाया। समय अध्ययन को आधार बनाकर उन्होंने प्रत्येक कार्य को उनके घटकों में बांट दिया और प्रत्येक घटक को निष्पादित करने के लिए ऐसी विधि का डिजाइन बनाया जिससे कार्य अत्यधिक शीघ्रता से तथा सर्वोत्तम ढंग से किया जा सके। इस प्रकार उन्होनें निश्चित किया कि किसी श्रमिक के पास जितने औजार और सामग्री है उसकी सहायता से उसे कितना कार्य करना चाहिए। उन्होने नियोजको को अभिप्रेरित किया कि जो श्रमिक अधिक अध्ययन उत्पादन करते है उन्हें ऊंची दर पर मजदूरी दी जाए तथा वैज्ञानिक ढंग से सही दर पर अगर मजदूरी दी जाए तो इससे कंपनी और श्रमिकों दोनो ही को लाभ होगा। इस प्रकार श्रमिकों को अभिप्रेरित किया गया कि वे निष्पादन मानदडं (performance standard) से अधिक उत्पादन करके अधिक उत्पादन करें। टेलर ने इस योजना को विभेदक दर विधि (diferentail rate system) का नाम दिया।

आधुनिक उत्पादन में चमत्कार वैज्ञानिक प्रबंध के अनेक वसीयतों (legacy) में से एक है। इसके अतिरिक्त इसकी कार्यकुशलता की तकनीकों का प्रयोग फास्ट फूड सेवाओं से लेकर सर्जनों के प्रशिक्षण जैसे गैर औद्योगिक संगठनों के अनेक

कार्यों में भी किया जाता है। टेलर इस बात पर लगातार जोर देते रहे कि समुचित वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा कार्यकुशलता को बढ़ाया जा सकता है। कार्य को व्यवस्थित करने के लिए सर्वोत्तम विधि को निर्धारित करने के लिए उन्होनें प्रत्येक कार्य का आगमानात्मक (inductive) आनुभविक (empirical) और विस्तृत अध्ययन करने पर जोर दिया।

वैज्ञानिक प्रबंध की टेलर की आवधारणा वस्तुतः प्रबंध में संबंध में वैज्ञानिक विचाराधारा है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रयत्न त्रुटि (trial and error) और अंगूठे के जोर पर प्रबंध (rules of thumbs) की परंपरा को बदलना था। नई विचाराधारा का आधार के निम्नलिखित सिद्धांत कार्य का मानदंड निर्धारित करने, उचित मजदूरी दर को निश्चित करने तथा कार्य को श्रेष्ठतम विधि से करने के लिए वैज्ञानिक विधियों का विकास और प्रयोग।

- अनेक कार्यों को करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त श्रमिकों का वैज्ञानिक विधि से चयन तथा उनके कार्य पर लगाना तथा अधिकतम कुशलता लाने के लिए उनके प्रशिक्षण एवं विकास की व्यवस्था करना।

- अधिकारियों तथा श्रमिकों के बीच स्पष्ट आधार पर कार्य विभाजन तथा उत्तरदायित्व को निर्धारित करना।

- नियोजित कार्यों और टॉस्कों के अनुसार कार्य निष्पादित करने के लिए श्रमिकों के साथ सहयोग और मधुर संबंधो की स्थाना करना।

वैज्ञानिक प्रबंध को सफलीभूत करने के लिए अनेक तकनीकों को विकसित किया गया। कुछ मिलाजुला कर नई विचाराधारा के तंत्र के लिए निम्नलिखित तकनीकों को अपनाया गयाः

- किसी कार्य की विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करने में लगने वाले समय के विश्लेषण और मापन के लिए प्रक्रियाओं के मानकीकरण के लिए और उचित मजदूरी के निर्धारण के लिए समय अध्ययन (time study)।

- किसी कार्य को की जाने वाली अनुचित गति (wasteful motion) को रोकने तथा उस कार्य को करने को सर्वश्रेष्ठ विधि नियत करने की दृष्टि से गति अध्ययन (motion study) |

- औजारों, उपकरणों, मशीनों और कार्य करने की स्थितियों का मानकीकरण।

- प्रेरणात्मक मजदूरी योजना जिसके अंतर्गत कुशल और अकुशल मजदूरों की मजदूरी की दरें भिन्न-भिन्न हों।

- कार्यात्मक फोरमैनी (functional foremanship) को अपना जिसके अंतर्गत मशीनों की गति सामूहिक कार्य मरम्मत आदि के पर्यवेक्षण के लिए अलग-अलग फोरमैनो की नियुक्ति की जानी चाहिए।

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंध के अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में व्यक्ति किया हैं। प्रबंध व्यवहार के क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान निम्नलिखित पहलुओं से संबंधित है.

- प्रबंध की समस्याओं को हल करने के लिए जांच पड़ताल प्रेक्षण और प्रयोग की वैज्ञानिक विधि को काम ले लाने का महत्व।

- कार्य के नियोजन को उसके निष्पादन से अलग रखना जिससे श्रमिक अपनी कार्यक्षमता की श्रेष्ठता का प्रदर्शन कर सकें और अपनी जीविका कमा सकें।

- इस बात पर जोर देना कि प्रबंध का मुख्य उद्देश्य उद्योगपतियों की अधिकतम खुशहाली के साथ-साथ श्रमिकों की अधिकतम भलाई भी होनी चाहिए।

- वैज्ञानिक प्रबंध के लाभ को प्राप्त कने के लिए श्रमिकों और प्रबंधको में सम्पूर्ण क्रांति की आवश्यकता है जिसके अंतर्गत यह लाभ आपसी संबंधों में मधुरता तथा सहयोग से प्राप्त होने चाहिए। व्यक्तिवाद और मनमुटाव से नहीं।

गुण : वैज्ञानिक प्रबंध का प्रमुख लाभ ऊर्जा के प्रत्येक औंस का संरक्षण तथा उचित प्रयोग करना है। इसके अतिरिक्ता विशिष्टकीकरण और श्रम विभाजन ने दूसरी औधौगिक क्रांति ला दी हैं कार्यों को अधिक कुशल एवं विवेकपूर्ण ढंग से पूरा करने के लिए समय तथा गति की तकनीकें महत्वपूर्ण उपकरण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक प्रबंध उपक्रम की समस्याओं के समाधान के लिए केवल विवेकपूर्ण विधि ही नही है वरन् यह प्रबंधन के व्यावहारिक पक्ष को भी सुविधाजनक बनाता है। यद्यपि वैज्ञानिक प्रबंध के प्रमुख सिद्धातों का प्रतिपादन टेलर के किया था, फिर भी गैंट, फ्रैंग, लिलियन गिलब्रेथ तथा इमरसन जैसे उसके सहयोगियों ने इन विचारों का विस्तार किया, नई तकनीकें विकसित की तथा प्रबंध की नई विचाराधारा में सुधार किया। व्यवहार रूप में वैज्ञानिक प्रबंध उत्पादित को बढ़ाने तथा कार्य प्रक्रियाओं की क्षमता में वृद्धि करने में इतना सफल हुआ कि यू. एस. ए. तथा पश्चिमी यूरोप के देशो में इसका अत्यधिक उपयोग किया गया।

सीमाएं : वैज्ञानिक प्रबंध की अपनी सीमाएं है तथा नई आधार पर इसकी आलोचना की गई है। कुछ आलाचकों का कहना है कि वैज्ञानिक प्रबंध तकनीकी अर्थ में ही श्रमिकों की कार्यकुशलता से संबंधित है तथा यह केवल उत्पादन के महत्व पर ही बल देता है। यह मानकर चलता है कि श्रमिक कामचोर होते हैं। उन पर कड़ी निगरानी की आवश्यकता है तथा इस संबंध में प्रबंधकों को अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहिए। यह भी कहा जाता है कि श्रमिकों को केवल मुद्रा से ही अभिप्रेरित किया जा सकता है। कार्य के परिवेश के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। अन्य आलोचकों ने इसे

अवैज्ञानिक, असामाजिक, मनोवैज्ञानिक रूप से अनुचित तथा प्रजापंत्र विरोधी बताया है। यह अवैज्ञानिक इसलिए है कि श्रमिकों की क्षमता तथा मजदूरी के मापक की कोई उचित तथा विश्वसनीय विधि नहीं है। यह असामाजिक इसलिए है कि श्रमिको के साथ आर्थिक उपकरणों के रुप में व्यवहार किया जाता है। यह मनोवैज्ञानिक रुप से अनुचित है क्योंकि एक श्रमिक को दूसरे श्रमिक के साथ अधिक उत्पादन करने तथा अधिक धन कमाने के लिए अस्वस्थ प्रतियोगिता करनी पड़ती हैं यह प्रजातंत्र विरोधी है क्योंकि यह श्रमिकों की स्वाधीनता को कम करता है। श्रमिक संघ (trade union) इसका विरोध करते है क्योंकि यह प्रबंध को तानाशाही बनाता है, कर्मचारियों पर कार्य का भार बढ़ाता है तथा उनके रोजगार के अवसरो पर विपरीत प्रभाव डालता है।

बोध प्रश्न ख

1 नौकरशाही किसी संगठन की कार्यक्षमता को किस प्रकार से बढ़ाती है ?

....

....

....

2 फैयॉल के प्रबंध सिद्धांत की सीमाएं बताइए।

....

....

....

3 वैज्ञानिक प्रबंध किसी संगठन की कार्यक्षमता को किस प्रकार से बढ़ाता है?

....

....

....

17.6 संगठन का नव-क्लासिकी सिद्धांत

नव-क्लासिकी सिद्धांत (जिसे मानव संबंध विचारधारा भी कहा जाता है) का निर्माण क्लासिकी सिद्धांत के आधार पर हुआ। यहां क्लासिकी सिद्धांत का संशोधित, सवर्धित और विस्तृत रूप है। इसकी आधारभूत मान्यता यह है कि व्यक्ति के रूप में किसी श्रमिक के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्षों तथा उसके कार्य समूह पर जोर दिया जाना चाहिए। क्लासिकी विचारधारा के अनुसार किसी संगठन का केन्द्र बिंदु ढांचा व्यवस्था, औपचारिक संगठन तथा आर्थिक कारक होते हैं, परंतु नव-क्लासिकी विचारधारा सामाजिक कारकों और भावनाओं पर जोर देती हैं। प्रबंधकों और कर्मचारी के बीच जो परस्पर क्रियाएं होती है। उसे बताने के लिए मानव संबंध शब्द का प्रयोग प्रायः ही किया जाता है। मानव संबंधों के योगदान की मूलवस्तु के दो पक्ष हैः संगठनात्मक स्थिति को सामाजिक तथा आर्थिक और तकनीकी अर्थों में देखना चाहिए तथा नैदानिक विधि (clinical method) के रूप में यह डाक्टरों द्वारा किए जाने वाले मानव शरीर के निदान जैसा है।

होथोर्न प्रयोग

1924 और 1933 के बीच वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कंपनी में किए जा रहे अनेक सुप्रसिद्ध अध्ययनों के फलस्वरूप मानव संबंध आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ। अंततः इसे होर्थार्न अध्ययन (Hawthorne studies) का नाम दिया गया, क्योंकि इनमें से अनेक अध्ययन शिकागों के निकट के वेस्टर्न इलेक्ट्रिकस प्लांट में किए गए थे। होथोर्न अध्ययनों का प्रारंभ कार्यस्थल पर रोशनी के स्तर पर

श्रमिकों की उत्पादिता के बीच के सबंधों को जानने के प्रयास के रूप में हुआ। पहले के कुछ अध्ययनों के वेस्टर्न इलेक्ट्रिक अनुसंधानकर्ताओं ने श्रमिकों को दो समूहों में बांट दिया (1) परीक्षण समूह (test group) जिनके कार्य करते समय रोशनी. को कम अधिक की गई तथा (2) नियंत्रण समूह जिनके समस्त कार्य काल में रोशनी एक समान रखी गई इन प्रयोगो के परिणाम अस्पष्ट रहे। अब परीक्षण समूह के कार्य करते समय रोशनी में सुधार किया गया, तब उत्पादिता में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई, हालांकि ऐसा अनिश्चित रूप में हुआ जब रोशनी कम कर दी गई तब भी इस समूह की उत्पादिता में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई। इस रहस्य को और अधिक जटिल बनाने वाली बात यह थी कि इस अध्ययन के दौरान नियंत्रण समूह का उत्पादन भी बढ गया, हालांकि इनके कार्यकाल के दौरान रोशनी में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रमिकों के कार्य निष्पादन को रोशनी के अतिरिक्त कुछ और ही प्रभावित कर रहा था।

प्रयोगों के एक नए सेट में श्रमिकों के एक छोटे समूह को एक अलग कमरे में रख दिया गया और अनेक चरों में हेर-फेर किया गया। उनकी मजदूरी बढ़ा दी गई, कम अधिक काल के अनेक विश्राम समयों की शुरूआत की गई तथा कार्य दिवस और कार्य सप्ताह को कम कर दिया गया। श्रमिकों को इस बात की छूट दी गई कि वे अपने विश्राम काल का चयन स्वयं ही करें तथा प्रतिष्ठान में किए जा रहे परिवर्तनों के सबंध में अपना सुझाव दें। इस स्थिति में भी परिणाम अस्पष्ट ही रहा। समयोपरांत उत्पादिता में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई परंतु साथ ही साथ कभी बढ़ती थी और कभी घटती थी। जिस समय से प्रयोग किए जा रहे थे उसी समय इल्टन मेयो (1880-1949) और हारवार्ड के कुछ सहयोगी, जिनमें फ्रिज जे. रूथलिस बर्गर और विलियम जे. डिकसन थे। इस प्रयोग में शामिल हो गए।

इन प्रयोगों और इनके बाद के प्रयोगों में मेयो और उनकी सहयोगी निर्णय पर पहुंचें कि अभिवृतियों के एक जटिल श्रृखंला के चलते उत्पादिता में वृद्धि होती है। इन पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया अतः परीक्षण समूह तथा नियंत्रण समूह दोनों में ही समूह गर्व (group pride) की भावना आ गई थी जिससे उन्हें अपने कार्य निष्पादन के सुधार करने को अभिप्ररित किया। सहानुभूतिपूर्वक पर्यवेक्षण ने उनके अभिप्रेरण को और भी बल दिया था। अनुसंधानकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचें कि कर्मचारियों को यदि विश्वास हो जाए कि प्रबंधकों को उनके कल्याण की चिंता है और पर्यवेक्षक उन पर विशेष रूप से ध्यान देते है तो वे अधिक कार्य करेंगे। आगे चलकर इस घटना को होर्थार्न प्रभाव (Hawthorne effect) का नाम दिया गया। चूंकि नियंत्रण समूह पर कोई विशेष पर्यवेक्षण ध्यान नहीं दिया गया था तथा उनकी कार्य की परिस्थितों में भी सुधार नहीं किया गया था फिर भी इनकी उत्पादिता में वृद्धि गई थी अतः कुछ व्यक्तियों ने (जिनमें मेयो भी शामिल थे) अनुमान लगाया नियंत्रण समूह को उत्पादित में वृद्धि का कारण यह था कि स्वयं अनुसंधानकर्ताओं ने इन पर विशेष रूप से ध्यान दिया था।

अनुसंधानकर्ताओं ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि अनौपचारिक कार्य समूह (informal work group) और सामाजिक पर्यावरण (social environment) का उत्पादिता पर घनात्मक प्रभाव पडता है वेस्टर्न इलेक्ट्रिक्स के अनेक कर्मचारियों को अपना कार्य नीरस और अर्थहीन लगता था परंतु अपने सहयोगियों के साथ सहयोग और मित्रता ने (जिसका कारण कभी-कभी यह होता था कि सभी कर्मचारियों में अपने मालिक के प्रति शत्रुता की भावना होती थी) उनके कार्यों को कुछ सीमा तक सार्थक बना दिया और प्रबंधकों से कुछ संरक्षण भी प्राप्त हो गया। इन्हीं कारणो से श्रमिकों की उत्पदिता पर प्रबंध मांग की तुलना में समूह दबाव (group presssure) का अक्सर ही अधिक प्रभाव पड़ता था।

होथोर्न अध्ययन के निष्कर्ष निम्नलिखित थे :

- कार्यस्थल का भौतिक प्र्यावरण (physical environment) कार्यक्षमता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता।

श्रमिकों तथा उसकी कार्य टोली (work team) का कार्य के प्रति अनुकूल व्यवहार कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं।

- श्रमिकों की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने से उनके मनोबल तथा कार्यक्षमता पर लाभपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
- श्रमिक समूह जो सामाजिक पारस्परिक प्रभाव तथा सामान्य हित पर आधारित होते हैं. श्रमिकों के कार्य निष्पादन पर गहरा प्रभाव डालते हैं।
- केवल आर्थिक पुरस्कार श्रमिकों को प्रभावित नहीं कर पाते। कार्य सुरक्षा, अधिकारियों द्वारा प्रशंसा और संबंधित विषयों पर अपना विचार व्यक्त करने का अधिकार जैसे कारक श्रमिकों को अभिप्रेरित करने के अधिक महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

प्रबंध की समस्याओं की मानव संबंध विचारधारा (Human Relation Approach) इस धारणा पर आधारित है कि आधुनिक संगठन एक सामाजिक व्यवस्था (Social System) है जिसमें सामाजिक पर्यावरण और अंतवैयक्तिक संबंध (Interpersonal Relation) कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। यह इस बात पर बल देता है कि अधिकारियों और अधीनस्थों के बीच अधिकार दायित्व संबंध कर्मचारियों की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक संतुष्टि से संबंधित होना चाहिए। कर्मचारियों को प्रसन्न रखकर ही कोई उपक्रम उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सकता है तथा इस प्रकार उनकी कार्यक्षमता को बढ़ा सकता है। प्रबंध को चाहिए कि वह कार्यरत सामाजिक समूहों के विकास को प्रोत्साहित करे तथा कर्मचारियों के विचारों को मुक्तरूप से व्यक्त करने का अवसर प्रदान करे। प्रबंधको को लोकपंत्रीय नेतृत्व के महत्व को स्वीकार करना चाहिए जिससे

संप्रेषण का प्रवाह मुक्त रूप से हो सके और अधीनस्थ कर्मचारी निर्णयन में भाग ले सकें।

यह ध्यान रखना चाहिए कि मानव संबंध विचारधारा का उद्देश्य कर्मचारियों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना था। इस बात पर जोर दिया गया कि कर्मचारियों की संतुष्टि ही अधिक उत्पादिता और कार्यक्षमता के उद्देश्य को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। इसके लिए आवश्यक है कि प्रबंधक यह जान ले कर्मचारी क्यों काम करते है तथा कौन-कौन से सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारक उन्हें अभिप्रेरित करते हैं। अंतः सतुष्टि प्रदान करने वाले ऐसे कार्य पर्यावरण को उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए जिसमें कर्मचारी अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें तथा उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान दे सकें।

मेयो (Meyo) के अनुसार विवेकी पुरुष (जो अपनी व्यक्तिगत आर्थिक आवश्यकताओं से

अभिप्रेरित होता है) की पुरानी अवधारणा के पूरक के रूप में ऐसे सामाजिक पुरुष की अवधारणा की आवश्यकता है जो सामाजिक आवश्यकताओं और कार्य पर पुरस्कार से अभिप्रेरित होता है तथा प्रबंधकों के नियत्रण से अधिक कार्य समूह के दबाव से कार्य करता है। आज कहा जा सकता है। कि ये सभी निष्कर्ष कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। नव-क्लासिकी सिद्धांत विस्तृत रूप से परीक्षण किया है तथा संगठन में संरचनात्मक समायोजनों (Structural adjustments) के लिए मानव संबधों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। नव-क्लासिकी सिद्धांतकारों के योगदान को क्लासिकी सिद्धांत के संशोधन की श्रेणी में रखा जा सकता है।

यह सिद्धांत यह मानता है कि मानव संसाधनों (Human resources) को अभिप्रेरित करने के लिए समन्वय (coordination) और संप्रेषण

(communication) का बहुत अधिक महत्व है। श्रम विभाजन की तुलना में थकान (fatigue) शब्दों और नीरसता (monotony) पर अधिक ध्यान दिया गया। इस सिद्धांत की यह मान्यता थी। कि यदि व्यक्तियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया तो मानवीय संमस्याएं उठ खड़ी होगी। उदाहरणार्थ दायित्व के अनुरूप यदि अधिकार नहीं दिया जाता तो कुठा (frustration) या दुष्प्रकार्य (dysfunctionality) की स्थिति आएगी। नव-क्लासिकी सिद्धांतकारो का मानना है कि सहभागिता, मानव मर्यादा को स्वीकृति तथा संप्रेक्षण कुशल प्रबंध की आधारशिला है। इसके साथ ही साथ संगठनों की औपचारिक व्यवस्था में अनौपचारिक संगठन के भूमिका की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नव-क्लासिकी सिद्धांत ने क्लासिकी सिद्धांत में सुधार लाया। इसने अनेक चरों (variables) और अनौपचारिक संगठन जैसे अवधारणाऔं की व्याख्या की। फिर भी नव-क्लासिकी सिद्धांतक की आलोचना निम्नलिखित आधार पर की गई, यह व्यक्तियों की कठपतुली समझता है इसका परिप्रेक्ष्य निकट-दृष्टि (short sighted) का है तथा इस सिद्धांत के अंतर्गत मानव व्यवहार के अनेक पक्षों की उपेक्षा की जाती है।

17.7 संगठन का आधुनिक सिद्धांत

आधुनिक संगठन सिद्धांत गतिशील परिस्थितियों के सबंध में समष्टि और व्यष्टि स्तरों का विचार करता है। यह मानता है कि समाज में नाटकीय परिवर्तन होते रहते हैं। आधुनिक संगठन सिद्धांत संगठन के संबंध में विभिन्न विचारकों के दृष्टिकोण का संकलन हैं यह सिद्धांत तंत्र की सकंल्पना पर केन्द्रित है अतः इसे तंत्र सिद्धांत (system theory) का पर्यायवाची माना जाता है। सबसे पहली बार चेस्टर आई. बर्नार्ड (Chester 1 Barnard) (1938) ने कहा कि संगठन सदस्यों के बीच के सहकारी पारिस्परिक क्रियाओं का समाजिक तंत्र है तथा संगठन व्यक्ति और ग्राहक पर्यावरण के अंग होते हैं।

आगे चलकर मेरी पार्कर फालेट (Mary Parker Follet) (1941) ने तंत्र विचारा धारा के द्वारा व्यक्ति और संगठनात्मक इकाइयों के एकीकरण पर जोर दिया नोर्बर्ट विनर (Norbet Weiner) (1948) ने जो साइकर्नेटिकस के क्षेत्र में अग्रदूत थे, तंत्र के रूप में संगठन को स्पष्ट किया। चर्चम (Churcham) (1954) जैसे संक्रियात्मक अनुसंधानकर्ता ऐसे विद्धान थे, जिनके मतानुसार तंत्र कार्यों से संबंधित काज (Katz) और काहन (Kahn) जैसे कुछ और समाज विज्ञानियों नें मुक्त तंत्र विचारधारा (Open system approach) का प्रयोग करते हुए सगंठन को वृहत् सिद्धांत प्रस्तुत किया।

17.7.1 तंत्र सिद्धांत

विभिन्न दृष्टिकोणों से संगठन संबंधी वास्तविकताओं के संबंध में छानबीन की गई है। विभिन्न प्रकार के सिद्धांत उभर का सामने आएं हैं। महसूस किया जाने लगा है कि संगठन को एक व्यष्टि के रूप में देखा जाए। वैज्ञानिक क्षेत्र में हुए प्रगति के फलस्वरूप संभव हो गया है कि वैज्ञानिक ज्ञान के एकीकरण के लिए सामान्य तंत्र सिद्धांत (general system theory) का निरूपण किया जाए।

तंत्र विचाराधारा का विशेष महत्व उन सार्वजनिक संगठनों के अध्ययन के संबंध में जिनका ढांचा बहुत बड़ा होता है और जो विस्तृत सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक पर्यावरणो में कार्य करते हैं मुक्त तंत्रों के परिप्रेक्ष्य में कोई संगठन पर्यावरण से उन आगतों को प्राप्त करके जीवित रहता है तथा अपना विकास करता है तो अपनी आंतरिक प्रक्रिया के द्वारा अपने उत्पादों को निर्माण करते हैं। इस आगत रूपांतरण उत्पाद प्रक्रियाओं (input conversion output processes) के द्वारा कोई संगठन जीवित रहता है। और अपना विकास करता है। इस प्रणाली के द्वारा संगठनों, उनके विभिन्न अंगों और उनके पारस्परिक संबंधों को समझने में सहायता मिलती है।

एम. पी. फॉलेट (M.P. Follet) और चेस्टर बर्नार्ड (Chester Bernard) के लेखनों में संगठनों के संबध में व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रमुख था। हर्बटे साइमन (Herbert Simon) की निर्णयन योजना (decision making scheme) ने तंत्र विचाराधारा का अनुसरण किया, जिसमें उसने और उसके सहायोगियों ने बाद में और भी विस्तार किया। फिलिप्स सेल्जनिक (Philips Selznick) ने सरकार संबंधी और अन्य जटिल संगठनों के अध्ययनों में तंत्र ढांचे का प्रयोग किया। इस क्षेत्र में प्रमुख लेखन हेयर नॉर्बेट (Haire Norbet) जीनर द्वारा लिखित 'आर्गेनाइजेशन थियरी' (Organisation theory) है यह पुस्तक साइबरनेटिक्स (cybernetics) के क्षेत्र में है। उसने तंत्र के रूप में संगठन को सर्वप्रथम चित्रण प्रस्तुत किया, जिसके अंतर्गत आगतें प्रक्रिया, उत्पाद पुन पुष्टि और पर्यावरण आ जाते हैं।

सरल शब्दों में तंत्र की परिभाषा है उन परस्पर निर्भर भागों का एक सेट जो व्यस्थित इकाई अथवा सत्ता का निर्माण करते हैं। इन भागों को उप-तंत्र (sub-system) भी कहा जाता है। जो आपस में एक दूसरे को प्रभावित करते है। तथा परिवर्तित किए जाने वाले योग्य होते हैं। वे परस्पर संबंध रखते हैं और एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। अतः किसी भी उप-तंत्रो पर भी पड़ता है किसी भी कार्यरत संगठन में मोटे तौर पर तीन उप-तंत्र होते हैं।

- तकनीकी उप-तंत्र जो संगठन के सदस्यों की बीच औपचारिक संबंधो को प्रदर्शित करता है।
- सामाजिक उप-तंत्र जो अनौपचारिक संबंध समूहों के माध्यम से सदस्यों को सामाजिक संतुष्टि प्रदान करता है।
- शक्ति उप-तंत्र जो व्यक्ति अथवा समूह की शक्ति अथवा प्रभाव को परिलक्षित करता है।

इन सभी उप-तंत्रों की परस्पर क्रियाओं के फलस्वरूप समग्र तंत्र (total system) बनता है। समग्र तंत्र तथा उप-तंत्र पर्यावरण से भी प्रभावित होते हैं। पर्यावरण स्वय भी तंत्र अथवा उप-तंत्रो से प्रभावित हो सकता है।

तंत्र विचाराधारा की निम्नलिखित विशेषताएं है:

- तंत्र परस्पर संबंधित किंतु पृथक तत्वों का समूह है।
- सभी तत्व एक क्रम में व्यवस्थित होने चाहिए।
- तत्वों के बीच पारस्परिक प्रभाव स्थापित करने के लिए उचित संप्रेषण की आवश्यकता होती है।
- इन पारस्परिक प्रभावों से सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति भी होनी चाहिए।

उपक्रम के कार्यों को मूलभूत तत्वों के संदर्भ में देखा जा जाता हैं जो आगतों (inputs) को प्राप्त करते हैं तथा उन्हें निर्गतों (outputs) में परिवर्तित करते है। द्रव्य, कर्मचारी तथा स्वंय प्रबंधक भी तंत्र के भाग होते हैं। सामग्री, सूचना और ऊर्जा आगतों के रूप में है जो उपक्रम में प्रवाहित होते हैं। उपक्रम द्वारा उत्पादित वस्तुएं सेवाएं तथा संतुष्टि निर्गतों के रूप होते है। उपक्रम आगतों को विभिन्न प्रकार के निर्गतों में परिवर्तित करता हैं ये निर्गत उत्पादों सेवाओं और संतुष्टि के रूप में होते हैं। उपक्रमो आगतों को विभिन्न प्रकार के निर्गतों में परिवर्तित करता है। (ये निर्गत उत्पादों वस्तुओं और सेवाओं के रूप में होते है) और इन्हें बाह्य वातावरण के सम्मुख प्रस्तुत करता है। निर्गतों का विक्रय आवश्यक ऊर्जा (energy) प्रदान करता है। जिसे पुन पुष्टि कहा जाता है। यह प्रतिपुष्टि तंत्र-चक्र (system cycle) को पुनः दुहराता है। चित्र 2.1 को देखिए जो इस चक्र को दिखाता हैं।

सामाजिक व्यवस्था (social systems) के समान ही संगठन तंत्र को बाह्य पर्यावरण के सबंध में उनके व्यवहार में साइबर्नेटिक माना जाता है। इसका अर्थ है कि वे स्वयं चालित होते हैं और अपने व्यवहार का मार्गदर्शन और नियंत्रण के लिए पुन पुष्टि का प्रयोग करते है। अपनी निर्णयन प्रक्रिया में पुन पुष्टि का संचय करने, उनकी व्याख्या करने और उनका प्रयोग करने के लिए वे तंत्र को विकसित करते हैं, जिससे परिस्थितयों के अनुकूल अपने को बनाने निष्पादन का मूल्यांकन करने और त्रुटियों का सुधार करने के लिए क्षमता प्राप्त कर सकें। चित्र 2.1 को देखिए जिसमें तंत्र सिद्धांत के मूल तत्वों को दिखाया गया है।

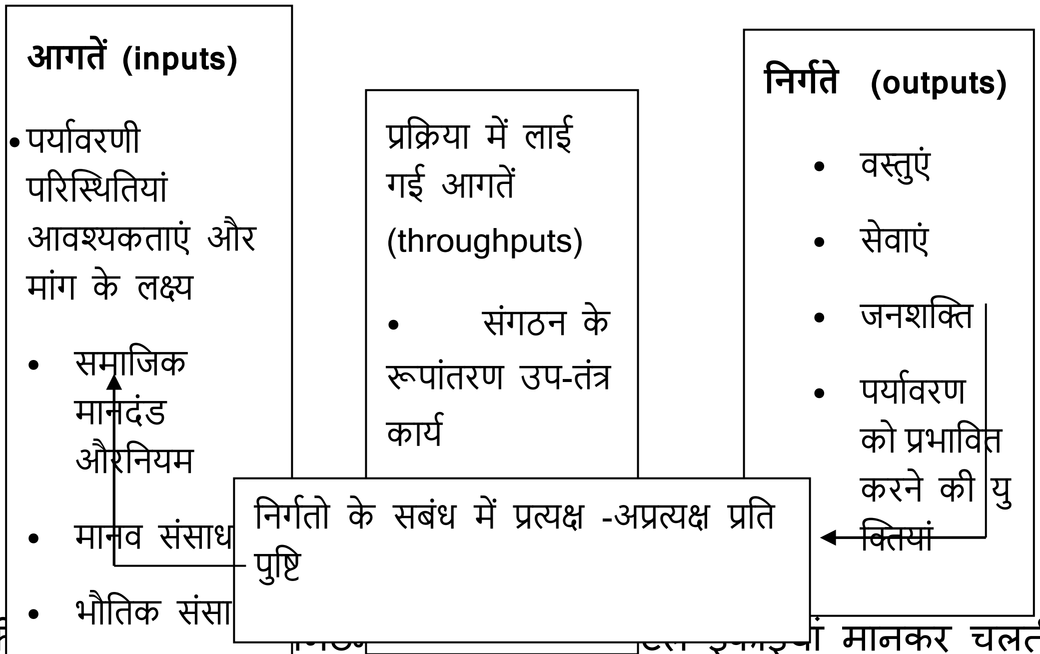

प्रबंध की ... मानकर चलती है जिनमें भीतर तथा बाहर दोनो ही ओर से परिवर्तन हो सकते हैं। इन संगठनों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रबंध के संबंध में संतुलित तथा एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक हो जाता है। तंत्र

विचारधारा के केंद्र में प्रबंध सूचना तंत्र (Management Information System) तथा सूचना और संख्यात्मक आंकडों के संकलन, विश्लेषण और प्रवाह के लिए संप्रेषण का जाल बिछा है जिससे नियोजन और नियंत्रण कार्य में सुविधा हो सके। उपक्रम के विभिन्न अंगों में संतुलन बनाए रखने वाले प्रमुख, साधनों के रूप में निर्णय लेने के महत्व पर जोर देता है। आधुनिक विचारक प्रबंध को दुर्लभ साधनों को श्रेष्ठतम उपयोग करने के लिए कार्यों को एकीकृत करने का एक तंत्र मानते हैं। प्रबंध को सामाजिक व्यवस्था के एक उप-तंत्र के रूप में भी माना जाता है। उप-तंत्र के रूप में प्रबंध को पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों का सामना करना तथा उनके अनुरूप अपने को बनाना होगा।

इस तंत्र विचारधारा के निम्नलिखित लाभ हैं:

- यह संगठनात्मक प्रयासों के एकीकृत केन्द्र बिन्दु प्रदान करती है।
- यह प्रबंधकों को संगठन को समग्र रूप में देखने का अवसर प्रदान करती है। समग्र रूप में संगठन अपने विभिनन अंगो के योग से बड़ा होता हैं
- यह विचारधारा संगठन को एक खुला तंत्र मान कर चलती है। इसके अतिरिक्त उप-तंत्रों के बीच पारस्परिक प्रभाव गतिशील होते है।
- आधुनिक सिद्धांत बहुस्तरों (multi level) तथा बहुआयामों (multi dimensions) वाली विचारधारा पर आधारित है, अर्थात् इसमे व्यष्टि (micro) और समष्टि दोनों ही पक्षों पर विचार किया जाता है
- यह तंत्र बहुचरों (multi level) पर आधारित है, क्योंकि कोई घटना बहुत से कारकों का परिणाम हो कसती है जो एक दूसरे से जुड़े हुए तथा परस्पर निर्भर हो सकते है।

- प्रतिपुष्टि तंत्र संगठन को अपने विभिन्न अंगों को पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार पुनर्व्यवसिथत करने का अवसर प्रदान करता है।

संगठनों के विश्लेषण में अब तंत्र विचारधारा का व्यापक रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। संगठन के संकल्पना-निर्धारण (conceptualisation) के लिए इसके आंतरिक और बाह्य संबंधमें के लिए यह अंत्यंत उपयोगी साधन सिद्ध हुआ है। इसने संगठन के प्रासंगिक (contingency) या स्थितिपरक (situational) दृष्टिकोण को भी सरल बना दिया है। यह दृष्टिकोण उस पंरपरागत विधारधारा से बहुत कुछ हटकर है जिसमें संगठनों की संरचना के लिए प्रायः एक ही सर्वोत्तम विधि पर जोर दिया जाता था। तंत्र सिद्धांत के प्रभाव के फलस्वरूप संगठनों के विश्लेषण के सबंध में वर्तमान मत यह है कि स्थितियों को परिवर्तनों के अनुरूप ढांचे में परिवर्तन हो सकता है तथा ऐसा होना पर्यावरणी परिस्थितियों और प्रोद्योगिकी जैसे कारकों पर निर्भर करता है।

यद्यपि तंत्र विचारधारा की अपील अत्यंत आकर्षक है फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमाएं भी हैं। वास्तव में यह संपूर्ण संगठन तंत्र का पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं है। किसी विशिष्ट संगठन के उपतंत्र किस प्रकार पर्यावरण से विशिष्ट रूप से जुडे होते हैं। इस बात का स्पीष्टीकरण यह विचारधारा नहीं कर पाती।

17.7.2 प्रासंगिकता का सिद्धांत

संगठन सिद्धांत कें सबंध में आधुनिक विचरारधारा में पर्यावरण के साथ गतिशील परस्पर क्रिया के महत्व पर तथा संगठन डिजाइन को प्रभावित करने वाले अन्य स्थितिपरक कारकों के महत्व पर जोर दिया गया है।

इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण विचारधाराएं प्रमुख हैं क्योंकि वे मुख्य स्थितिपरक कारकों (situational factors) को निर्धारित करने का प्रयास करती है। इनमें से एक संगठन डिजाइन के निर्धारण में प्रोद्योगिकी मे महत्व पर जोर देती है।

दूसरी विचारधारा पर्यावरण के महत्व को बताती है। प्रौद्योयोगिकी से आशय उन तकनीकों से होता है जिनका प्रयोग आगतों को निर्गतों का रूप देने के लिए संगठन अपने कार्य प्रवाह में करते हैं। प्रौद्योयोगिकी एक ऐसा शब्द है जो सभी प्रकार के संगठनो पर लागू होता है कोई संगठन उत्पादन प्रमुख हो या सेवा प्रमुख हो, परंतु उनमें प्रौद्योयोगिकी की भूमिका को उनकी उन क्रियाओं में देखा जा सकता है, जिनमें इसके फलस्वरूप वस्तुओं का रूपांतरण (transformation) होता है। प्रबंधकों के कार्यों में पर्यावरण की भूमिका को देखते हुए प्रबंधकीय परिस्थिति विज्ञान (mangement ecology) को विकसित किया गया है। व्यकित और संगठनात्मक पर्यावरण विज्ञान (organisational environment) एक दूसरे के साथ परस्पर क्रिया की जटिल स्थिति में होते हैं तथा स्वयं संगठन भी पर्यावरण को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है। अतः किसी संगठन के प्रभावी रूप से प्रबंध के लिए आवश्यक है पर्यावरण के संबंध में भलीभांति जानकारी कर ली जाए।

प्रासंगिता विचारधारा का तर्क यह है कि प्रबंध के लिए कोई एक सर्वश्रेष्ठ विधि नही है। सच्चाई तो यह है कि प्रबंध के विभिन्न कार्यों को करने के लिए अनेक प्रभावी विधियां है। यह विचारधारा इस बात पर जोर देती है कि नेतृत्व, नियोजन, व्यवस्था तथा प्रबंध कार्यों को करने की विधियां परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। किसी विशिष्ट विधि से किसी परिस्थिति में श्रेष्ठ परिणाम हो सकता हैं किन्तु अन्य परिस्थितियों में यह विधि बेकार सिद्ध हो सकती हैं सभी परिस्थितयों में कोई सार्वभौमिक सिद्धांत नहीं अपनाया जा सकता। प्रबंधकों को चाहिए कि वे विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण करें और उस परिस्थिति में सर्वश्रेष्ठ परिणाम देने के उपयुक्त विधि का प्रयोग करें। उदाहरण के लिए उत्पादन के बढानें के लिए वैज्ञानिक प्रबंध के समर्थक कार्य के सरलीकरण और अतिरिक्त अभिप्रेरणात्मक सुविधाओं को सुझाव दे सकते है। व्यावहारिक वैज्ञानिक कार्य को सम्पन्न बनाने (job enrichment) तथा

कर्मचारियों को प्रजातांत्रिक रूप से कार्यों के निर्णयन में भाग लेने का सुझाव दे सकते है। लेकिन प्रासंगिक विचाराधारा के समर्थक संपूर्ण परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में हल ढूंढने की वकालत कर सकते है। समिति साधनों, अकुशल श्रमिकों, सीमित प्रशिक्षण सुविधाओं तथा स्थानीय बाजरो के लिए सीमित उत्पादों के होने की स्थित में कार्य का सरलीकरण (work simplification) आदर्श उपाय होगा। जिस संगठन में कुशल श्रमिकों की बहुलता हो, वहां कार्य का सम्पन्न बनाना आदर्श उपाय होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी दी हुई स्थिति में परिस्थितियों के अनुकूलन प्रबंधकीय कार्य करने होते हैं इज विचाराधारा के अनुसार प्रबंधकों को सर्वप्रथम स्थिति की जानकारी करनी होती है और तद्नुसार उत्पन्न समस्याओं का हल करने की विधि ढूंढनी होती है। संक्षेप में प्रासंगिकता विचाराधारा दो पक्षो पर जोर देती है। (1) यह विशिष्ट स्थितिपरक कारकों (speficific situational factors) पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। ये किसी एक प्रबंधक की युक्ति को दूसरे प्रबंधक की युक्ति की तुलना में उपयुक्त बनाने

प्रासंगिकता की विचारधारा का मुख्य लाभ यह है कि यह हमको प्रत्येक परिस्थिति की जटिलताओं के संबंध में सचेत करती है तथा प्रत्येक स्थिति में क्या करना होगा, इसका निर्धारण करने में सक्रिय और गतिशील भूमिका निभाने के लिए हमे बाध्य करती हैं तंत्र विचारधारा की ही भांति यह केवल किसी विशिष्ट संगठन में दी हुई परिस्थिति में उप तंत्रों के संबंधों का ही परीक्षण नहीं करती वरन् व्यवस्था में आने वाली विशिष्ट समस्याओं का हल भी सुझाती है।

प्रासगिकता के सिद्धांत की अत्यधिक प्रशंसा के बावजूद इसकी अनेक सीमाएं भी है, जिनके उपेक्षा वैज्ञानिक नहीं कर सकते। इस सिद्धांत की आलोचना इसकी अत्यधिक जटिलता के कारण की गई है। उदाहरणार्थ, एक सरल समस्या का विश्लेषण कई संगठनात्मक अंगो के आधार पर करना होता हैं, और इनमें

से प्रत्येक के अनेक आयाम भी होते हैं। इसलिए इसका आनुभविक परीक्षण कठिन हो जाता है। अतः इसकी आलोचना मुख्यतः निम्नलिखित आधार पर की गई जटिलता, विषय वस्तु का अभाव, आनुभविक परीक्षण (emphinical testing) के कठिनाई तथा इसका प्रतिक्रियात्मक स्परूप (reactive anture)

17.8 संगठन- सिद्धांत में समकालीन समस्याएं

संगठन के विभिन्न सिद्धांतों के सबंध में विचार किया गया है, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि तीन प्रकार की विचारधाराएं हैं। उनके नाम है (i) संरचनात्मक - कार्यात्मक विचारधारा, (ii) सामाजिक मनोवैज्ञानिक विचाराधारा और (iii) तंत्र. प्रासंगिक विचारधारा। ये सभी एक दूसरे पर निर्भर है, क्योंकि इनके बीच अंतर्निहित संबंध है। इनमें से प्रत्येक सिद्धांत तब तक अपूर्ण रहता है जब तक कि उसके साथ अन्य दो विचारधाराओं को जोड़ा न जाए। इसके साथ ही साथ यह भी बताना कठिन है कि क्या संगठन का कोई सिद्धांत किसी संगठन का पूर्णतः स्पष्टीकरण कर सकता है। जैसाकि हम देखते है कि तंत्र (संरचनातमक) विचाराधारा मानवीय समस्याओं की उपेक्षा कर देती है। परंतु मानवीय सामाजिक मनोवैज्ञानिक विचारधारा (Humanistic Socio Psychological Approach) किसी संगठन की बंद और औपचारिक व्यवस्थापन को भरिता (weightage) प्रदान नहीं करती। अतः इन सिद्धांतों के बीच अंतर केन्द्रीयकरण और जोर देने के सबंध में है। अनेक विद्धानों के अनुसंधान के आधार पर संगठन सिद्धांत में समकालीन प्रवृत्तियों / समस्याओं को संक्षेप सारणी 2.1 में दिया गया है।

सारणी 17.1: संगठन सिद्धांत में समकालीन प्रवृत्तियाँ

परंपरावाद (Traditionalism)	सामाजिक गति की (Social Dynamics)

जॉब कार्य को सौंपना	सामाजिक, प्रक्रिया
तंत्र-प्रक्रिया के रूप में कार्यकुशलता	मानवीय प्रक्रिया के रूप में कार्यकुशलता
नौकरशाही ढांचे के रूप में संगठन	सामाजिक संस्था के रूप में नौकरशाही
आदेश द्वारा नियंत्रण	संप्रेषण द्वारा नियंत्रण
शीर्षस्थ अधिकारियों से अधिकार	समूह से अधिकार
नेतृत्व अधिकार से	सहमति से नेतृत्व
अत्यंत केंद्रित व्यक्ति का निर्णय	सामूहिक और स्थितिपरक निर्णय
नियंत्रित (regimented) कार्य पर्यावरण	लोकतांत्रिक कार्य पर्यावरण
डर से प्रौद्योगिकीय परिवर्तन	परामर्श से प्रौद्योगिकीय परिवर्तन
जीवन निर्वाह के लिए जॉब	संतुष्टि प्राप्त करने के लिए जॉब
संकट तकनीक के रूप में योजना	औपचारिक प्रक्रिया के रूप में योजना
अपूर्ण और विलंबित सूचना	पूर्ण और वर्तमान सूचना
नीति और प्रशासन द्विभाजन	नीति और प्रशासन का अटूट क्रम
मुनाफाखोरी	सामाजिक जिम्मेदारी के साथ मुनाफा

यहाँ परंपरावाद (Traditionalism) और सामाजिक गति (Social Dynamics) की तुलना में आधारित एक सरल सारणी (सारनी) प्रस्तुत है:

पहलू	परंपरावाद (Traditionalism)	सामाजिक गति (Social Dynamics)
जॉब कार्य	तंत्र-प्रक्रिया के रूप में सौंपना	मानवीय प्रक्रिया के रूप में समाजिक कार्य
कार्यकुशलता	नौकरशाही ढांचे के रूप में	सामाजिक संस्था के रूप में
संगठन	आदेश द्वारा नियंत्रण	संप्रेषण द्वारा नियंत्रण
अधिकार का स्रोत	शीर्षस्थ अधिकारियों से	समूह से
नेतृत्व का आधार	अधिकार से	सहमति से
निर्णय का प्रकार	अत्यंत केंद्रित व्यक्ति का निर्णय	सामूहिक और स्थितिपरक निर्णय
कार्य पर्यावरण	नियंत्रित (Regimented)	लोकतांत्रिक (Democratic)

संगठन सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य है व्याख्या करना और पूर्वानुमान लगाना। यह उस सामाजिक या मानवी समूहन को समझने का प्रयास करता है जिसे संगठन का रूप दिया गया है। यह सिद्धांत किसी अनुसंधानकर्ता को यह अवसर प्रदान करता है कि वह संगठन के सबंध में अपने विचारों का परीक्षण

करें तथा सिद्धांतों में और सुधार लाए। पर्यावरण में हुए परिवर्तनों के कारण संगठन सिद्धांत में जिन समकालीन समस्याओं के समाधान की आवश्यकता है वे निम्नलिखित है:

- किसी संगठन के मानव पक्ष पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव।
- संगठनात्मक डिजाइनो पर विश्वव्यापीकरण का प्रभाव।
- संगठन पर विभिन्न युक्तियों का प्रभाव।
- मानव जाति के व्यवहारात्मक परिवर्तन का संगठन पर प्रभाव।
- पर्यावरण और संगठनों के बीच संबंध।
- संगठन पर अंतः सांस्कृतिक (cross cultural) प्रभाव।
- व्यक्तियों और प्रौधोयोगिक की गतिशीलता की संगठन पर प्रभाव, आदि।

बोध प्रश्न ग

1) प्रबंधक के क्लासिकी और नव-क्लासिकी सिद्धांतों में अंतर दिखाइए।

....

....

....

2) किसी संगठन में तंत्र सिद्धांत किस प्रकार से कार्य करता है ?

....

....

3) संगठन के प्रासंगिकता सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

....

....

4) संगठन सिद्धांत में पांच समकालीन समस्याओं के संबध में बताइए।

....

....

....

17.9 सार संक्षेप

संगठन आर्थिक और सामाजिक सत्ता होता है जिसमें किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक व्यक्ति कार्य करते है। कार्य के प्रवाह को बनाए रखने के लिए ढांचा और कार्यकलापों को स्पष्टतः परिभाषित कर दिया जाता है। किसीं संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए संगठन के सिद्धांत मार्ग प्रदान करते हैं। संगठन सिद्धांत संगठन के ढाचें और डिजाइन की व्याख्या करता है। संगठन की आवश्यकताओं और समस्याओं को समझने, उनकी जांच करने और उनका समाधान करने में यह मदद करता है।

संगठन के क्लासिकी सिद्धांत का विकास तीन धाराओं में हुआ है नौकरशाही सिद्धांत, प्रशासनिक सिद्धांत और वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धांत नौकरशाही सिद्धांत में स्पष्ट किया गया है कि अपनी कार्यकुशलता और उत्पादकता को अधिकतम करने के लिए प्रत्येक संगठन विशेषज्ञता के तंत्र और व्यवस्थित नियमों और प्रक्रियाओं के सेट को विकसित करता है। नौकरशाही की विशेषताओं के अंतर्गत निम्नलिखित आ जाते हैं श्रम का विभाजन और विशेषज्ञता, सोपान, नियम, तर्कशक्ति, निवैयक्तिकता, नियम निर्धारण तथा निष्पक्षता । नौकरशाही के दोष निम्नलिखित हैं। निवैयक्तिकता, प्रत्यायोजन की कमी, लक्ष्य विस्थापन, सख्ती से वर्गीकरण, स्वतः शाश्वतता और साम्राज्य निर्माण तथा नियंत्रणों का मूल्य।

प्रशासनिक सिद्धांत किसी औद्योगिक संगठन के कार्यकलापों को छः ग्रुपो में बांटता है। वे है: तकनीकी, व्यापारिक, वित्तीय सुरक्षा लेखाकरण और प्रबंध कार्य। यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि प्रबंध कार्य एक प्रक्रिया है तथा प्रबंधक के कार्यों का विश्लेषण करके बौद्धिक रूप से इसकी छानबीन की जा सकती है। इस सिद्धांत में प्रबंध के चौदह सिद्धांत बताए गए हैं, जो किसी संगठन को सुचारू रूप से चलाने में सहायक होते हैं। इसकी आलोचना इस आधार पर की गई है कि यह एक बंद तंत्र है तथा इसमें मानवीय कारकों पर कम महत्व दिया गया है।

वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धांत किसी कार्य को करने तथा श्रमिकों का चयन करने, उन्हें प्रशिक्षित करने और उन्हें अभिप्रेरित करने की सर्वोत्तम विधि को वैज्ञानिक रूप से निर्धारित करने में सहायता करता है। यह सिद्धांत कर्मचारियों के वैज्ञानिक ढंग से चयन, अभिप्रेरणाओं और कार्यात्मक फोरमैनी पर जोर देता है। यह उत्पादकता को बढ़ाने पर जोर देता है लेकिन मानवीय संबंधो पर उपेक्षा कर देता है।

संगठन का नव-क्लासिकी सिद्धांत कार्य स्थल पर सामाजिक कारकों और भावनाओं पर जोर देता है। इसके अनुसार सहभागी विधि मानव गरिमा और संप्रेषण कुशल प्रबंध को आधारशिला है। क्लासिकी सिद्धांत पर इसे सुधार इसलिए माना जाता है कि यह मानवीय संबधों और अनौपचारिक संगठन पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इसकी आलोचना इस आधार पर की गई है कि यह व्यक्तियों पर आवश्यकता से अधिक जोर देता है।

संगठन का आधुनिक सिद्धांत व्यक्ति और समष्टि स्तरों पर गतिशील परिस्थितियों पर विचार करता है। तंत्र सिद्धांत विधि के द्वारा व्यक्तिगत और संगठनात्मक इकाइयों के एकीकरण पर जोर देता हैं यह आगतों, प्रक्रिया, उत्पाद और पुन पुष्टि के रूप में परिलक्षित होता है। प्रासंगिकता का सिद्धांत यह

बताता है कि प्रबंध के कार्य तंत्र या उप तंत्र के बाहर के कुछ कार्यों पर निर्भर करता है। पर्यावरण के साथ व्यवहार का एकीकरण कर देना चाहिए। संगठन सिद्धांत के समाकालीन समस्याओं के अनुसार किसी संगठन को समझने के लिए विभिन्न विचारधाराओं को एक साथ मिला देना चाहिए।

17.10 मुख्य शब्द

आदेश की श्रृंखला (Chain of command): किसी संगठन के शीर्षसथ पद के सबसे नीचे के पद तक की प्राधिकार-रेखा।

विभागीकरण (Departmentation): किसी सुनिश्चित आधार पर विभिन्न कार्यकलापों का समूहीकरण।

विभेदक कार्यानुसार मजदूरी दर (Differential Price Rate): मजदूरी दर की विधि जिसके अंतर्गत कुशल और अकुशल श्रमिकों की अलग-अलग दर से मजदूरी दी जाती है।

औपचारिक संगठन (Formal Organisation): सगठन का सुनियोजित ढांचा जो

व्यक्तियों, समूहों भागों, इकाइयों विभागों और प्रभागों के बीच के आधारिक रूप से व्यवस्थित स्वरूप को दिखाता है।

कार्यात्मक फोरमैनी (Funcational Foremanship): विभिन्न विशेषज्ञ फोरमैनों के द्वारा कार्य का पर्यवेक्षण।

हॉथोर्न अध्ययन (Hawthorne Studies): यह ज्ञात करने के लिए किया गया प्रयोगात्मक अध्ययन कि कार्य निष्पादन में सुधार लाने के लिए प्रतिष्ठानों में श्रमिकों को क्या अभिप्रेरित करता है।

मानवीय संबंध विचाराधारा (Human Relation Approach): श्रमिकों को संतोषजनक कार्य के पर्यावरण की व्सवस्था करके और उनकी सामजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके कार्य करने के लिए उन्हे अभिप्रेरित करना।

अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation) :किसी संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों के बीच संबंध का जाल जो उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के आधार पर स्वतः स्थापित हो जाता है।

गति अध्ययन (Motion Study): किसी कार्य के निष्पादन के लिए आवश्यक गति का प्रेक्षण, जिससे अनावश्यक गति को हटाया जा सके और कार्य को पूरा करने की सर्वोत्तम विधि के संबंध में निर्णय लिया जा सकें।

वैज्ञानिक प्रबंध (Scientific Management): प्रबंध की समस्याओं के समाधान के लिए अंगूठे के जोर पर नियमों या प्रयत्न त्रुटि विधियों के स्थान पर वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग।

नियंत्रण पर विस्तार (Span of Control) अधीनस्थ व्यक्तियों की संख्या, जिनका पर्यवेक्षण कोई मैनजेर प्रभावी ढंग से कर सकता है।

ढांचा (Sturcture): विभिन्न अंगो के बीच संबंध का जाल।

तंत्र (System): किसी प्रतिष्ठान को चलाने वाले उसके विभिन्न भागों की पारस्परिक व्यवस्था और संबंधो का सैट।

प्रणाली विचारधारा (System Approach): संतुलित करने और एकीकृत करने के तंत्र के रूप में प्रबंध को समझना।

समय अध्ययन (Time Study): किसी कार्य के विभिन्न भागों को करने में लगने वाले समय के विश्लेषण और माप के लिए काम में लाई गई तकनीक।

आदेश की एकता (Unity of Command): प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी का एक पर्यवेक्षक के अधीन कार्य करने का सिद्धांत।

17.11 संदर्भ सूची

Koontz, H., & O'Donnell, C. (2017). *Principles of Management* (14th ed.). McGraw-Hill Education.

Robbins, S. P., & Judge, T. A. (2018). *Organizational Behavior* (17th ed.). Pearson.

Mintzberg, H. (2019). *The Structuring of Organizations: A Synthesis of Research* (1st ed.). Prentice Hall.

Fayol, H. (2020). *General and Industrial Management* (1st ed.). Martino Fine Books.

Chester I. Barnard (2018). *The Functions of the Executive* (1st ed.). Harvard University Press.

Porter, M. E. (2020). *Competitive Strategy: Techniques for Analyzing Industries and Competitors.* Free Press.

Robinson, S. P., & Judge, T. A. (2021). *Essentials of Organizational Behavior* (15th ed.). Pearson.

Burns, T., & Stalker, G. M. (2017). *The Management of Innovation* (3rd ed.). Oxford University Press.

Morgan, G. (2018). *Images of Organization.* Sage Publications.

17.12 अभ्यास प्रश्न

1) संगठन के उद्देश्यों और संगठन की प्रक्रिया में सोपानों का वर्णन कीजिए।

2) संगठन के आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

3) नौकरशाही से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। क्या आप इस विचार से सहमत है कि नौकरशाही संगठन में कार्यकुशलता को बढ़ाती है ? अपने मत के पक्ष में दलीलें दीजिए।

4) संगठन का प्रशासनिक सिद्धांत क्या है? आज के युग के लिए कया वह उपयोगी है? सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

5) वैज्ञानिक प्रबंध के मूल विषय के संबंध में विवेचन कीजिए। क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि वैज्ञानिक प्रबंध किसी संगठन में उत्पादकता को बढ़ाता है? अपने मत के पक्ष में दलीलें दीजिए।

6) हाथोर्न के प्रयोगों को विस्तार से बताइए। उनके निष्कर्ष क्या है? आधुनिक संगठन पर वे इस पर किस प्रकार लागू होते हैं ?

7) संगठन के नव-क्लासिकी सिद्धांत के योगदान क्या है? क्या आप इस मत से सहमत हैं कि नव-क्लासिकी सिद्धांत क्लासिकी सिद्धांत का संशोधित रूप हैं सोदाहरणविवेचन कीजिए।

8) संगठन के आधुनिक सिद्धांत का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।